卐 'ॐ' 卐

भक्ति-प्रकाश

रचयिता

श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

*प्रकाशक :-

श्री स्वामी सत्यानन्द धर्मार्थ ट्रस्ट,

८ए, रिंग रोड, लाजपत नगर–४

नई दिल्ली –११००२४

web.site-shreeramsharnam.org

E-mail address: shreeramsharnam@hotmail.com

satsanglist@gmail.com

प्रथम संस्करण	से	पच्चीसवां पुनर्मुद्रण	१,८६,६२५
(सम्वत् १६८५/सन् १६२८)		(सम्वत् २०६७/सन् २०१०)	
		छब्बीसवां पुनर्मुद्रण	४,०००
		(सम्वत् २०६६/सन् २०१२)	
		योग	१,६३,६२५

***मूल्य: ७० रूपये**

*** मुद्रक :**

अनुभा प्रिंटर्स

प्लाट न०.१६ उद्योग केन्द एक्स०.१

ईकाटेक ३ ग्रेटर नोएडा उ०.प्र०.

विषय सूची

शब्द- प्रकाश (१-१४८)

साधन- प्रकाश (१४६-२८०)

भक्त प्रकाश (२८१-४१८)

कथा- प्रकाश (४१६-६३०)

अपनी संस्कृति से
गाढ़ प्रेम होना
चाहिए।

सत्यानन्द।

स्वामी सत्यानन्द जी के अन्य ग्रन्थ

१. एकादशोपनिषद् संग्रह (भाषा टीका सहित)

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य,बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर - ग्यारह उपनिषदों का हिन्दी अर्थ और व्याख्यान। प्रत्येक शब्द के अर्थ को जानने के लिये अंक दिये गये हैं।

२. वाल्मीकीय रामायणसार(पद्य)

यदि आप मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री भगवान् रामचन्द्र जी के परम पवित्र जीवन-चरित्र का पावन पाठ करना चाहते हैं तो रामायणसार का पाठ करिये। हिन्दी भाषा के सरस पदों में, सचित्र रामायणसार, एक सुन्दर ग्रन्थ है।

३. श्रीमद्भगवद्गीता - भाषा भाष्य

आप यदि, आनन्दकन्द भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी के उपदेशों के सार मर्म का महामधुर स्वाद लेना चाहते हैं, तो स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा किया गया गीता का सरल और सरस भाषानुवाद पढ़िये।

४. स्थित-प्रज्ञ के लक्षण

श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के अन्तिम २१ श्लोक तथा उन का शब्दार्थ और व्याख्या। स्थिर-बुद्धि के क्या लक्षण हैं। यह इस में बताया गया है।

५. प्रवचन पीयूष

६. प्रार्थना और उसका प्रभाव

७. उपासक का आन्तरिक जीवन

८. भक्ति और भक्त के लक्षण

६. भजन एवं ध्वनि संग्रह

१०. अमृतवाणी

ओ३म्

भक्ति-प्रकाश

शब्द-प्रकाश

मंगलाचार

परम धनी सब धाम का, परम पुरुष श्री राम ।
परम कृपा करुणा वश, कर स्फुरित स्व नाम ।।१।।
मंगलमय निज नाम में, महाशक्ति को स्थाप ।
जग जनजीवन हेतु हरि, उससे मिलते आप ।।२।।
मंगल मूर्ति नाम में, मानव मंगल काज ।
प्रकट विभूति शक्ति से, हो राम महाराज ।।३।।
देव-देव स्वदया से, नाम सुनाता जोड़ ।
प्राणी जन के पाप के, देते बन्धन तोड़ ।।४।।
नाम नाद के ध्यान से, करता राम कल्याण ।
महा मांगलिक नाम से, देता धाम महान् ।।५।।
इस से मंगल मानिए, राम राम धुन ध्यान ।
राम राम जय जय हरे, राम नाम शुभ गान ।।६।।
मंगल सर्व मनाइए, मंगल नाम उच्चार ।
राम राम जप पाठ से, मान मंगलाचार ।।७।।
मंगलाचरण सुख-करण, विघ्न हरण शुभ स्थान ।
राम नाम शिव शकुन है, स्वस्ति शान्ति निधान ।।८।।
राम-गीत गुण गान है, मंगल करण विशेष ।
स्मरण मनन भी राम का, करता पाप निःशेष ।।९।।

मंगल प्रथम ध्याइए, कार्य करने काल ।
सब सुकृत आरम्भ में, सिमरो राम दयाल ।।१०।।
जग जीना जन जन्म भी, बनता मंगल रूप ।
जगे ज्योति जब नाम की, जग मग प्रिय अनूप ।।११।।
मुख मन मंगल मानिए, रसना मंगल खान ।
जिस में मंगल नाम की, विलसे मीठी तान ।।१२।।
हृत्-मंडल मंगल शुचि, तन मंगल हो जाय ।
जब मंगलमय राम का, मंगल नाम रमाय ।।१३।।
अशरण शरण शान्ति करण, जन्म-तरण शुभवान् ।
मंगलकर मंगल परम, करिए सदा विधान ।।१४।।
शरणागत जन जान कर, मंगल करिए दान ।
नमो नमो जय राम हो, मंगल दया निधान ।।१५।।

नमस्कार सप्तक

करता हूं मैं वन्दना, नतशिर बारंबार ।
तुझे देव परमात्मन्, मंगल शिव शुभकार ।।१।।
अंजलि पर मस्तक किये, विनय भक्ति के साथ ।
नमस्कार मेरा तुझे, होवे जग के नाथ ।।२।।
दोनों कर को जोड़ कर, मस्तक घुटने टेक ।
तुझ को हो प्रणाम मम, शत शत कोटि अनेक ।।३।।
पाप-हरण मंगल करण, चरण शरण का ध्यान ।
धार करूँ प्रणाम मैं, तुझ को शक्ति-निधान ।।४।।
भक्ति भाव शुभ भावना, मन में भर भरपूर ।
श्रद्धा से तुझ को नमूँ, मेरे राम हजूर ।।५।।

ज्योतिर्मय जगदीश हे, तेजोमय अपार ।
परम पुरुष पावन परम, तुझ को हो नमस्कार ।।६।।
सत्य ज्ञान आनन्द के, परम-धाम श्री राम ।
पुलकित हो मेरा तुझे, होवे बहु प्रणाम ।।७।।

पूजा पाठ

परमात्मा को पूजिए, घट में धर कर ध्यान ।
मन को मन्दिर मानिए, जो है परम महान् ।।१।।
ईश सुपालक जगत् के, निराकार हरि राम ।
प्रियरूप आनन्द-मय, नारायण सुख-धाम ।।२।।
मंगलमय मंगलप्रद, महामोद के रूप ।
महामहिमामय हे शिव, तेजोमय स्वरूप ।।३।।
अतिशय निर्मल नाथ जी, निरंजन शुचि निर्लेप ।
निर्भय निश्चित एक हे, वर्जित सभी विक्षेप ।।४।।
सब के ज्ञाता शक्तिमय, सर्व सुखों के स्रोत ।
सब में सम, सब सुखप्रद, सदा एक रस जोत ।।५।।
दाता सुभक्ति-भाव के, अक्षय ज्ञान भण्डार ।
हर्ता भ्रम भय भूल के, कर्ता, सार के सार ।।६।।
हे शंकर शुभ शान्तिमय, सब के शरणाधार ।
स्रोत श्रुति आदेश के, परम पुरुष सुखकार ।।७।।
दीनदयालु दयानिधे, दाता परम उदार ।
सब देवों के देव हे, दुःख दोष से पार ।।८।।
परम-पिता पूर्ण प्रभु, परमानन्द अपार ।
प्रेमरूप पावन परम, ईश्वर सर्वाधार ।।६।।

शक्ति ज्ञान आनन्द से, रूप अनन्त महेश ।
देश काल से पार हे, सीमा रहित विशेष ।।१०।।
सत्य सनातन शुद्ध हे, सब के साक्षी एक ।
अन्तर्यामी सृष्टि के, भक्त जनों की टेक ।।११।।
तू तीर्थ तारक प्रभु, तीन ताप से तार ।
पूजूँ तेजोमय तुझे, ध्यान धारणा धार ।।१२।।
मनसा वाचा कर्मणा, नाम-ध्यान के साथ ।
वृत्ति एकाकार कर, पूजूँ तुझ को नाथ ।।१३।।
तेरा पूजन जाप है, सिमरन चिन्तन ध्यान ।
कीर्तन कर्मोपासना, स्तुति विचार सुज्ञान ।।१४।।
ऐसा पूजन मैं करूँ, भक्ति-भाव में आय ।
तेरे पद के प्रेम से, तेरा ध्यान लगाय ।।१५।।
पूजन करूँ परमात्मा, राम राम कह राम ।
परम भावना-भवन मम, भक्ति-भाजन विश्राम ।।१६।।
रोम रोम अर्चन करे, रोम हर्ष के संग ।
परा प्रीति की गंग के, उठें अभंग तरंग ।।१७।।
पूजन तेरा मैं करूँ, ले श्रद्धामय थाल ।
दीपक धर कर ध्यान का, अक्षत प्रेम रसाल ।।१८।।
धूप अगर कस्तूरी हो, तेरा गुणगण वाद ।
सुगंधित मन मन्दिर करूँ, पूज प्रेममय पाद ।।१६।।
पुष्प रसीले शब्द हों, सरस सुरों के गीत ।
उन से अर्चन मैं करूँ, कर के पूरी प्रीत ।।२०।।
निवेदन नैवेद्य है, नाना विनय सुभाव ।
तेरी पूजा है प्रभो, परम प्रेम का चाव ।।२१।।

परिक्रमा हो भाव से, जो है ज्योति अधूम ।
जगमगा रही जगत् को, उस को देखूँ घूम ।।२२।।
सूर्य आत्मजगत् के, तेरा दर्शन पाय ।
मानस पूजन मैं करूँ, गहरी लगन लगाय ।।२३।।
हाथ जोड़ वन्दन करूँ, सीस भूमि पर लाय ।
नमस्कार बहु बार हो, प्रेम-धुनि में समाय ।।२४।।
नमो नमः परमात्मन्, ज्योतिर्मय मम राम ।
सुनम्र नमस्ते हो तुझे, अहर्निश आठों याम ।।२५।।
सर्वाधार ओंकार जो, निराकार बिन पार ।
उसे राम श्री राम कह, नमूँ सदा बहु बार ।।२६।।
सर्व दिशा में मैं नमूँ, झुका, शरण में भाल ।
नमस्कार असंख्य हों, तुझे हरि त्रयकाल ।।२७।।
विघ्न-हरण मंगल करण, शरण गहूँ तव ईश ।
जन्म मरण से तरण का, तू कारण जगदीश ।।२८।।
शान्त शरण शिव रूप तू, परम शान्ति के स्थान ।
शंकर आश्रय दे शुभ, शरणागत जन जान ।।२९।।
दीन हीन जन जान कर, शरण पड़े को तार ।
पतित पावन पन प्रभो, अपना विरद विचार ।।३०।।
शरण पड़े की है तू ही, लाज शर्म शुभ आश ।
परम भरोसा एक तू, तू ही ओट विश्वास ।।३१।।
तेरे जन की धारणा, तुझ में ही हो जाय ।
निश्चय अचल अकम्प से, तव जन लचक न खाय ।।३२।।
भेंट धरूँ भगवन् विभो, भक्ति भाव से एक ।
नमस्कार शुभ भाव की, धरणी पर सिर टेक ।।३३।।

तन मन धन अर्पण करूँ, नतशिर होय विनीत ।
तेरे आगे देव जी, पालन करके प्रीत ।।३४।।
मनसा वाचा कर्मणा, मैं हूँ मेरे राम ।
अर्पित तेरी शरण में, सहित कर्म शुभ काम ।।३५।।
बुद्धि बल और तर्क को, ज्ञान ध्यान के साथ ।
कर्मकाण्ड अर्पण करूँ, तुझे जगत् के नाथ ।।३६।।
यह सुसमर्पण शरण में, हो मेरा स्वीकार ।
ओंकार निराकार जी, राम परम सुखसार ।।३७।।

आरती

परम देव तव आरती, करूँ प्रेम के साथ ।
श्रद्धा भक्ति धूप दीप, ले कर अपने हाथ ।।१।।
भावमयी यह आरती, करती पावन गात ।
मन मन्दिर में सुमधुर, सायं हो प्रभात ।।२।।
घंटे बजे सुगीत के, मृदु सुरों के साज ।
वीणा मधुर सितार के, नाद रिझाने काज ।।३।।
नाना वाद्य सुहावने, जय जय के शुभनाद ।
गायन हरिगुणवाद का, मन के हरे विषाद ।।४।।
महा मृदु संगीत से, मीठे मोहक राग ।
परम प्रभु की आरती, गाऊँ कर अनुराग ।।५।।
लोक अलख की आरती, विविध अनाहद भेद ।
भीतर के सब भेद हैं, हरते मानस खेद ।।६।।
महा ज्योति झलमल करे, मन मन्दिर के देश ।
जगमगाता तेज वहाँ, देवे हर्ष विशेष ।।७।।

हो प्रकाश सुखकर अति, मन मन्दिर के बीच ।
चमके सूर्य तेजसम, दीखे आँखें मींच ।।८।।
शशि सूर्य के दीप हैं, ज्योति ग्रहगण जान ।
तारागण नभ थाल में, मोती भरे महान् ।।९।।
चमचम चमके तेज शुभ, भीतर के आकाश ।
यही आरती ईश की, करती विघ्न विनाश ।।१०।।
लीला तेरी हे हरे, आरती है सुखरूप ।
अद्‌भुत रचना जगत् की, सुन्दर सर्व सुरूप ।।११।।
बसे मधुरता ही सदा, हो शुभारती आप ।
जिस घट में श्री राम का, होवे सिमरन जाप ।।१२।।
भय भञ्जन की आरती, करिए मंगल मान ।
परम पुरुष की आरती, करिए करके ध्यान ।।१३।।
भक्ति भाव की आरती, शब्द ध्यान का मेल ।
जप सिमरन की आरती, भीतर के सब खेल ।।१४।।
दान पुण्य शुभ कर्म सब, सेवा-भाव सुविशेष ।
आरती है तेरी हरि, करती पाप निश्शेष ।।१५।।
आरती रति आनन्द की, मोद सुमति की खान ।
तेरी हे परमात्मन्, देती मंगल दान ।।१६।।
आरती में मन मोद से, सहित सुभाव विचार ।
नाचे तेरी जोत लख, जय जय राम पुकार ।।१७।।
जय हो तेरी देव जी, तीन लोक त्रिकाल ।
जय जय हो जग के प्रभु, सब के देव दयाल ।।१८।।
जय जय हो सब जनों में, सब मन में जय घोष ।
दशदिश में जय नाद हो, दाता परम सुतोष ।।१९।।

आत्मा मेरा जय कहे, मन बोले जय ईश ।
रोम रोम प्रफुल्ल हो, जय बोले जगदीश ।।२०।।

ध्यान

ध्यान में राम ध्याइए, तेज पुंज सुखरास ।
आदित्य-वर्ण शान्ति-मय, परम प्रेम का वास ।।१।।
अस्ति भाति प्रिय-रूप ही, सर्व शक्ति भण्डार ।
सर्व ज्ञान आनन्द-मय, विभु नित्य निराकार ।।२।।
प्रेरक सारे विश्व का, पालक पोषक एक ।
विद्यमान सब स्थान में, कर्ता सृष्टि अनेक ।।३।।
सब से सुन्दर अतिप्रिय, ज्ञान दान का मूल ।
कारण करण समर्थ हरि, जिस में भ्रान्ति न भूल ।।४।।
व्यापक पूर्ण पुरुष है, पावन परमानन्द ।
परम प्रेमपद देव है, सत्य रूप सुख-कन्द ।।५।।
लोक लोकान्तर में हरि, साक्षी रहा विराज ।
शासक सारे विश्व का, सब जन का अधिराज ।।६।।
ध्येय में कर सुधारणा, लक्ष्य बना कर नाम ।
ध्रुव ध्यान में ध्याइए, धैर्य से श्री राम ।।७।।
परम प्रभु के नाम में, धृति धारणा धार ।
ध्येय-धुरा में ध्यान को, धरिए एकाकार ।।८।।
नोक झुकी हो वाण की, यथा लक्ष्य की ओर ।
अंगुली से दर्शाइए, बाल चाँद की ठौर ।।९।।
लक्ष्य में त्यों लगाइए, ध्यान गुणों की खान ।
ध्याता ध्यान में निमग्न, पावे स्थान सुमहान् ।।१०।।

दर्पण में प्रत्याकृति, बिम्बित यथा बनाय ।
कुशल चतुर जन ही तथा, रखिये ध्यान टिकाय ।।११।।
सूर्यकान्त सुरत्न में, सूर्य किरण समान ।
वृत्ति को केन्द्रित कर, धार नाम में ध्यान ।।१२।।
जब वृत्ति इकतार हो, जैसे जल की धार ।
नाम ध्वनि उपजे तदा, तेज का हो विस्तार ।।१३।।
एक सीध में हो यथा, दीपक शिखा अडोल ।
ऐसे वृत्ति जोड़िए, ले कर नाम अमोल ।।१४।।
पंछी पंख सिकोड़ कर, करे पेड़ पर स्थान ।
ऐसे वृत्ति रोक कर, करे राम में ध्यान ।।१५।।
सर्व कल्पना रोक कर, नाम धारणा धार ।
अंगों को कछुआ करे, ज्यों सिर में संहार ।।१६।।
सेनापति सेना सभी, यथा शिविर में लाय ।
त्यों विचार सब नाम में, लावे ध्यान लगाय ।।१७।।
ध्याऊँ मैं ऐसे तुझे, समझ के सर्वाधार ।
आश्रय आदि जगत् का, साक्षी रहित विकार ।।१८।।
सर्वनियन्ता जान कर, ध्याऊँ तुझ को ईश ।
अद्भुत तोहे जानते, योगी सन्त मुनीश ।।१६।।
तेरी सत्ता के बिना, हे मुद मंगल मूल ।
पत्ता भी हिलता नहीं, खिले न कोई फूल ।।२०।।
तेरी प्रेरणा के बिन, हे अविनाशी एक ।
परमाणु तक नहीं हिले, अविचल तेरी टेक ।।२१।।
तेरे नियति सुनियम से, होय न कोई पार ।
जीव जन्तु नर देव सब, सूर्य लोक अपार ।।२२।।

होवे तेरी इच्छा से, रूप रंग आकार ।
रचना नाना लोक की, लय उत्पत्ति विकार ।।२३।।
शशि सूर्य के नियम में, बीच अण्ड ब्रह्माण्ड ।
तारा-मण्डल में हरे, तेरा नियम अखण्ड ।।२४।।
तेरा मेरे राम जी, नाम बसे मन बीच ।
एकतारता चित्त हो, मिटे वासना नीच ।।२५।।
अलभ्य लाभ सुलीनता, मिले लक्ष्य में आप ।
महामंत्र सुनाम का, सहज योग हो जाप ।।२६।।
गूँजे मधुमय नाम की, ध्वनि नाभि के धाम ।
हृदय मस्तक कमल में, राम राम ही राम ।।२७।।
अजपा जाप यह आप हि, हो हर्ता सभी पाप ।
सुगम ध्यान शुभ योग यह, हरे सर्व संताप ।।२८।।
मेरे मन तू राम में, कर ले धारण ध्यान ।
चलते फिरते काम में, सरल योग यह जान ।।२९।।
कर ले मम मन नाम में, पूर्णतया विश्वास ।
तज कर भ्रम संशय सब, कर वृत्ति सम रास ।।३०।।
सम कर पलड़े सांस के, नाम रत्न को तोल ।
चिन्तामणि यह ध्यान है, नाम योग अनमोल ।।३१।।
योगी गुरु से योग यह, मिले दैव-संयोग ।
सहज योग यह रोग-हर, दाता अमृत भोग ।।३२।।
सब साधन का सार है, सब योगों का सार ।
सर्व कर्म का सार है, नाम ध्यान सुखकार ।।३३।।
दया हो देव दयाल की, मिले नाम का दान ।
वह दाता है दीन का, दीन-बन्धु भगवान् ।।३४।।

स्तुति

परम प्रभु परमेश्वर, पावन परम दयाल ।
प्रेमरूप परमात्मन्, परम पुरुष जन-पाल ।।१।।
परमानन्द स्वरूप हि, पारब्रह्म अपार ।
पुञ्ज परम प्रकाश के, परम धाम आधार ।।२।।
जगत्-जनक जगदीश जी, जगजीवन जन राज ।
जगत्-ज्योति जनदेव तव, जय जय रहे विराज ।।३।।
दीन-दयालु देव जी, दया दान भण्डार ।
स्वपद दर्शन दान के, दाता दिव्य उदार ।।४।।
निरंजन निराकार हे, निर्विकार भुवनेश ।
नारायण निर्मल सदा, निर्भय नित्य महेश ।।५।।
निर्गुण ही गुण तीन से, निज गुण-गण के ग्राम ।
गौरव गरिमा युक्त हे, गुणिगण के, गुरु राम ।।६।।
कारण कर्ता सृष्टि के, सर्व लोक के ईश ।
अकारण करुणा के घर, कृपामय जगदीश ।।७।।
उच्चतम चक्षु अचर्म से, अर्चित, शुचि आनन्द ।
सुचारु चित्त-चकोर के, चन्द परम सुखकन्द ।।८।।
शान्ति-कारक शान्त तू, शिव शंकर शुभ पाथ ।
राम परम पद हे प्रभु, वेद विधायक नाथ ।।६।।
तू भगवन् भय भंजना, भक्त जनों का स्थान ।
भक्त-भावना भुवन तू, भावुक जन का मान ।।१०।।
तू सद् गुरु सब सन्त का, सब साधों की आन ।
साधक साधन-शील का, सदा सहायक प्राण ।।११।।

लीलामय है अलख तू, उज्ज्वल ज्योति अकाल ।
[illegible]
शशि सूर्य की जोत में, तू चमके दिन रात ।
तारागण अनगिनत में, तेरी जोत विख्यात ।।१३।।
माला लोक अनन्त की, तुझ में रही पिरोय ।
सार सूत संसार का, तुझ से अन्य न होय ।।१४।।
तेरी महिमा का प्रभु, कोई न पाय पार ।
आदि अन्त से रहित तू, लीला-रूप अपार ।।१५।।
तेरे सुगुण अनन्त हैं, तव स्वरूप अनन्त ।
ज्ञानानन्द अनन्त है, शक्ति का नहीं अन्त ।।१६।।
सर्व लोक में है रमा, तू मेरा भगवान् ।
ओंकार प्रभु राम तू, पावन देव महान् ।।१७।।
तेरी महिमा दिव्य है, लीला परम अगाध ।
रचना अद्भुत है परम, कहते सन्त सुसाध ।।१८।।
सब मुनिजन गावें तुझे, महर्षि सन्त अनेक ।
उपासक भक्तिमान् का, है तू पालक एक ।।१९।।
नाना सूर्य चमकते, करते तेरा गान ।
सागर सरिता सहित मिल, तेरा करें बखान ।।२०।।
पुष्पित फलित सुहावनी, पत्रित कोमल गात ।
लता पत्ता है गा रही, तेरी सुन्दर बात ।।२१।।
पर्वत ऊँची चोटियाँ, हरे भरे वनराज ।
तेरा गायन कर रहे, जंगम जगत् समाज ।।२२।।
नारायणी रचना तव, नाना नयन पसार ।
तुझ को नीरव निरखती, दीखे कर सिंगार ।।२३।।

अद्भुत तोहे जान कर, धन्य कहें सब सन्त ।
विस्मित हो हैं देखते, महर्षि मुनि मतिमन्त ।।२४।।
सब जन जिस में रम रहे, सो है तू मम राम ।
तुझ में रमते योगिजन, है सार्थक सुनाम ।।२५।।
जिस में सन्त सुसाधु सब, रमें ध्यान धुन लाय ।
सो तू भगवन् ! राम है, सब में रहा समाय ।।२६।।
सब के मन जिस में रमें, हो कर एकाकार ।
सुस्थिर वृत्ति हो जहाँ, सो तू राम अपार ।।२७।।
चपल चित्त जिस में टिके, हो कर निश्चल मूक ।
एकतानता ध्यान की, जिस में रमे अचूक ।।२८।।
ज्ञानी ध्यानी संयमी, आत्मा सब गुणवन्त ।
जहाँ रमें है राम तू, कहते हैं सब सन्त ।।२६।।
जिसके नियम सुन्याय में, जड़ जंगम सब लोक ।
रहते रमते नियति में, सो तू राम अशोक ।।३०।।
पावन तेरा नाम है, पावन तेरा धाम ।
अतिशय पावनरूप तू, पावन तेरा काम ।।३१।।
परम पवित्र सुध्यान है, परम पुण्यमय जाप ।
पावन तेरा कीर्तन, नाशक पातक पाप ।।३२।।
जिस जन-मन में तू बसे, सो हो पावन रूप ।
पतित पावन सुनाम जप, पाये परम स्वरूप ।।३३।।
जिस जन-तन में जोत तव, जगे सदा दिन रात ।
सो पावे भव पार ही, पुण्यरूप कर गात ।।३४।।
जहां तव जय मनाइए, गाइए भक्ति गीत ।
मंगल माला फेरिए, तुझ से करिए प्रीत ।।३५।।

होवे सुख सम्पत् वहां, साधना सुमति सार ।
सरस सुरस बरसे सदा, सुर सम हो आचार ।।३६।।
बाधा विघ्न विनाश हो, हो सब शुभ संचार ।
जहां राम तव नाम का, गूंजे जय जय-कार ।।३७।।

प्रार्थनापुष्पाञ्जलि

तुझे वन्दना मैं करूँ, परम दयामय ईश ।
सर्वशक्तिमय देव जी, परम पुरुष जगदीश ।।१।।
दिखा सुपथ सीधा सरल, मुझे दया भण्डार ।
परम ईश मंगल करो, परम शान्ति सुखकार ।।२।।
निश्चय अपने नाम का, भक्ति प्रेम प्रकाश ।
दे निश्चय निज रूप का, अपना दृढ़ विश्वास ।।३।।
धारणा धरणी पर मम, पग निश्चल टिक जाय ।
धृति धीरता धर्म में, लचक न किंचित् आय ।।४।।
तेरे पथ के प्रेम से, चले चित्त न मूल ।
लाखों विघ्न विरोध पर, तुझे न जाऊँ भूल ।।५।।
निश्चय तेरे भाव में, अविचल अचल समान ।
हो जावे हे देव जी, हो अज्ञान की हान ।।६।।
मेरु सम ही अकम्प मैं, रहूँ सुनिश्चय धार ।
डांवांडोल न हो सकूँ, मान तुझे आधार ।।७।।
भ्रम शंका कुतर्क से, रहूँ सदा मैं दूर ।
संशय रूप पिशाच का, कर दूँ चकनाचूर ।।८।।
तेरे निन्दक नीच जो, करूँ न उन का संग ।
मन मुखियों का संग तज, रक्खूँ भक्ति अभंग ।।६।।

ऐसी प्रीति दो प्रभो, ऐसी श्रद्धा आश ।
तेरे देव ! सुद्वार से, होऊँ नहीं निराश ।।१०।।
तेरे जन के काम में, सदा रहूँ मैं लीन ।
तेरी भक्ति गंगा में, बन जाऊँ मैं मीन ।।११।।
जय जय तेरी बोल कर, तेरे गीत को गाय ।
तेरा यश वर्णन करूँ, तेरा नाम जपाय ।।१२।।*
कर कृपा जन जान कर, करुणा कर फैलाय ।
मृदु कृपा सुकिरण का, पात्र मुझे बनाय ।।१।।
कलिमल कलुषित कमल जो, अन्तःकरण कहाय ।
विकसित बने सुगन्धिमय, कृपा-किरण हि पाय ।।२।।
दया दान दे देव हे, दीनबन्धु भगवान् ।
दीन दुःखी तव द्वार से, मांगे दया सुदान ।।३।।
देह-दीप में देव जी, पड़े प्रेम का तेल ।
हो चित्त बत्ती साथ तव, दया ज्योति का मेल ।।४।।
बदली बन तेरी दया, बरसे बहु मण्डलाय ।
मेरे मन तन खेत में, देवे शान्ति बसाय ।।५।।*
अपनी छाया में सदा, मुझे दीजिए स्थान ।
शीतल छाया शान्त में, बैठ करूँ गुणगान ।।१।।
तेरी छाया में हरे, नहीं माया उत्ताप ।
पाप शाप व्यापे नहीं, वहां न तीनों ताप ।।२।।
आश्रय शरण मिले तव, मुझ को सब ही काल ।
तेरी छाया शरण में, सुख से रहूँ दयाल ।।३।।
शान्त परम है शरण शुभ, तेरी छाया रूप ।
उस में ग्रीष्म कुकर्म न, नहीं क्लेश की धूप ।।४।।

ऐसी छाया शान्त का, सदा करूँ उपभोग ।
साधना भक्ति धर्म की, समझूँ उत्तम योग ।।५।।*
परम प्रकाशमय प्रभु, परम ज्योति के धाम ।
सूर्य आत्म-लोक के, तेजोमय श्री-राम ।।१।।
निज ज्योति मुझे दान कर, अपना शुचि प्रकाश ।
जिस से चमके चित्त मम, तम अज्ञान हो नाश ।।२।।
मेरे सुचित्त चांद में, शुभ्र किरण कर दान ।
इसमें पूर्ण शारदी, पावे सुस्थिर स्थान ।।३।।
मन मन्दिर मेरा महा, ज्योति पाय ज्वलन्त ।
जगमगाय शुभ शोभता, हे जगदीश अनन्त ।।४।।
सुवर्ण किरण तेरी हरि, मुझ में कर प्रवेश ।
सुवर्णमय सुन्दर करे, सभी सुवृत्ति वेश ।।५।।
तेजोराशि अनन्त तू, रहा सर्व दिश छाय ।
तेजोमय मैं भी बनूँ, तुझ में सर्व समाय ।।६।।*
परम प्रेम स्वरूप हे, पावन परम अपार ।
परम पुरुष पूर्ण प्रभु, परा प्रीति-आधार ।।१।।
अपनी धुन का प्रेम दे, अपने पद का प्रेम ।
अपने जन का दे मुझे, सेवा प्रेम सुनेम ।।२।।
जाय पिरोया प्रेम में, मम मन मनका-राज ।
तव जन माला भक्त में, शोभित रहे विराज ।।३।।
कर कृपा ऐसी प्रभु, प्रेम अमीरस घूँट ।
किये पान मैं तो फिरूँ, निर्भय चारों कूँट ।।४।।
गंगा तेरे प्रेम की, बहे जगत् के बीच ।
उस में स्नान करें सभी, मिले ऊंच वा नीच ।।५।।

उस की लहरी एक तो, इसी ओर भी होय ।
मेरे तन मन चित्त को, देवे उछल भिगोय ।।६।।
बुद्धि चित्त दो फेफड़े, मेरे रहें अरोग ।
तेरे प्रेम सुपवन का, कर के शुभ उपभोग ।।७।।
मेरे मुख तन वचन से, बहे नयन से धार ।
तेरे पावन प्रेम की, लगातार इक सार ।।८।।
प्रेम सुधा-सिंचित रहे, ललित लता मम देह ।
हरी भरी हो सर्वथा, पा कर तेरा नेह ।।६।।
बादल तेरे प्रेम का, बरसे झड़ी लगाय ।
पाप ताप की तप्तता, देवे सर्व बुझाय ।।१०।।
असीम सागर प्रेम के, मेरे ईश महान् ।
महा मग्न कर प्रेम में, मुझ को स्वजन जान ।।११।।*
पथ प्रदर्शन कीजिए, सब के देव महेश ।
जिस पथ पर चल कर मुझे, हो नहीं मरण क्लेश ।।१।।
पथ पावन तुझ को प्रिय, जो है मेरे नाथ ।
जिस पर चल मुझ को मिले, अविचल तेरा साथ ।।२।।
साधु सन्त का पन्थ जो, ऋषि मुनि जन अनुभूत ।
सो ही मोहे दान कर, जान के अपना पूत ।।३।।
घन वन माया मोह में, गया मैं सुपथ भूल ।
बांह पकड़ अब डालिए, उस पर जो अनुकूल ।।४।।
अति अन्धेरी रात है, अविद्या घोर अज्ञान ।
पथ भूला मैं भ्रान्तिवश, संशय-शील अजान ।।५।।
अब तो दीप दिखाइए, जिस से देखूं पन्थ ।
जिस का वर्णन सब करें, वेद श्रुति शुभ ग्रन्थ ।।६।।*

परम गुरो ! जगदीश जी, मुद मंगलमय नाम ।
परम दया कर दे मुझे, राम राम ही राम ।।१।।
अपने पद के नाद से, कर पावन मम कान ।
ध्वनि गूंजे सुनाम की, सरस सुरीली तान ।।२।।
राम राम के नाद से, हो कर पूर्ण काम ।
मानस मन्दिर में मधुर, भजूँ राम मैं नाम ।।३।।
जिसे सिमर कर संत जन, ऋषि मुनि भक्त अनेक ।
तरे सिंधु संसार से, नाम मुझे दे एक ।।४।।
अपना शब्द सुदान कर, ध्वनि मृदु दे दान ।
मग्न रहूँ मैं रात दिन, कर के उस का गान ।।५।।
हृदय तन्त्री ताल से, करे नाम झंकार ।
राम राम सुर मधुरतम, बोले चित्त सितार ।।६।।
परम लीनता लाभ हो, नाम समाधि लगाय ।
तेरे पद के प्रेम को, पाऊँ नाम रमाय ।।७।।*
मेरी ऐसी हो स्थिति, समझूँ तुझे समीप ।
मन्दिर मेरा मन बने, हो तव तेज सुदीप ।।१।।
निज में चमकाऊँ तुझे, ज्यों चकमक से आग ।
घर्षण से विद्युत् यथा, जाय वेग से जाग ।।२।।
प्रकटे तू मुझ में हरि, विद्युत् वेग समान ।
जगमग भीतर सब करे, पा कर तेज निधान ।।३।।
सूर्यकान्त सुरत्न में, सूर्य रश्मि निवेश ।
होवे जैसे हो तथा, मुझ में तव प्रवेश ।।४।।
सुन्दर किरण सुवर्ण से, ज्यों चमके कैलाश ।
त्यों मम मस्तक मेरु में, तेरा बसे विकाश ।।५।।

चन्द्रकला सुशीतला, चन्द्र-मणि में आय ।
ऐसे तेरी शुभ कला, मुझ में रहे समाय ।।६।।
पथ आयस्कांतिक में पड़, बने लोह अयस्कान्त ।
ऐसे तेरे तेज से, मेरे चमके प्रान्त ।।७।।*
है तू ध्रुव निश्चल हरि, सदा एक रस राम ।
तेरे पूर्ण रूप में, नहीं काल का काम ।।१।।
बुद्धि इन्द्रियां मन मिल, मेरे ऋषि ये सात ।
परिक्रमा तेरी करें, सब दिन सारी रात ।।२।।
आत्म-सूर्य चमकते, तेरी चारों ओर ।
फिरूँ मैं, भानु के फिरे, यथा लोक सब सौर ।।३।।
तव प्रदक्षिणा मैं करूँ, परम देव भगवान् ।
गुरुजन की बटु ज्यों करे, यज्ञ की ज्यों यजमान ।।४।।
मधुकर गूँजे कमल पर, मत्त यथा हो लीन ।
रमूं तथा मैं नाम में, यथा सुजल में मीन ।।५।।
हो झुकी ध्रुव ओर ज्यों, ध्रुवदर्शक की नोक ।
त्यों मन मेरा ओर तव, झुका रहे बिन रोक ।।६।।*
आकर्षण कर देव जी, तेज शक्ति के संग ।
मेरा मिलना हो यथा, तुझ से सदा अभंग ।।१।।
सूर्य खींचे भूमि को, जैसे अपनी ओर ।
मुझ को खींचे ही तथा, परम प्रेम की डोर ।।२।।
महान् खींचे अल्प को, यथा नियम अनुसार ।
त्यों आकर्षित मैं रहूँ, पकड़ नाम की तार ।।३।।
जायें सागर ओर ज्यों, सरिता सब ही धाय ।
भक्ति भरा तव ओर त्यों, मन मेरा भी जाय ।।४।।

नाल नद का ज्यों मिल, लांघत पथ सुदूर ।
तैसे तुझ को मैं मिलूँ, लिये प्रेम जल पूर ।।५।।

प्रातः

प्रातः सिमरूँ ईश जो, शम सुख मंगलकार ।
आत्मरवि आनन्दमय, परम तेज भण्डार ।।१।।
तू ही मेरे देव जी, शुभ सबेर में आय ।
अपनी प्रीति सुपवन से, देना मुझे जगाय ।।२।।
तेरे पावन प्रेम की, मन्द सुगन्ध समीर ।
जागृत भक्ति भाव कर, हरे कल्पना पीर ।।३।।
निज निश्चय का तेज दे, प्रीति किरण के साथ ।
साथ रहे शुभ कर्म में, मंगल-मय तव हाथ ।।४।।
रहूँ जागता नाम में, जप में दिन का काल ।
काम करूँ तेरा हरे !, तेरा ध्यान दयाल ।।५।।
चित्त से सजग मैं रहूँ, धर्म कर्म के बीच ।
सेवा साधन से कभी, लूँ न आँखें मींच ।।६।।
सावधान चेतन सदा, रहूँ करूँ उपकार ।
आलस्य निद्रा त्याग कर, तेरा करूँ विचार ।।७।।
जगूँ जगाऊँ जनों को, देखूँ तेरी जोत ।
श्रद्धा शीतल सलिल का, उर में बहे सुसोत ।।८।।

सायम्

सायं सिमरूँ देव जो, है सुन्दर सुखधाम ।
आनन्द-मय अनन्त है, मेरा मोहन राम ।।१।।

दिन के कार्य कर्म में, मैं ने जो की भूल ।
पाप कर्म अपराध की, जो संचित की धूल ।।२।।
उस को धोऊँ नाम जप, धार धारणा ध्यान ।
गंगा धारा भक्ति में, सायं कर शुभ स्नान ।।३।।
निपट निशा के राज में, तम का हुए विस्तार ।
भूलूँ न ज्योति नाम की, लूँ मैं उसे निहार ।।४।।
शान्ति मन तन में बसे, समता में हों अंग ।
इन्द्रिय गण सुशान्त हों, शमता रहे अभंग ।।५।।

सोते समय

सोते समय सुदेव को, सिमरूँ चित्त लगाय ।
परमेश्वर परमात्मा, घट-घट रहा समाय ।।१।।
परम प्रेम के पुञ्ज हे, परम शान्ति के धाम ।
दया प्रेम की गोद में, दे विश्राम श्री राम ।।२।।
तू जगदम्बे मात हे, जान मुझे स्वबाल ।
अपने अमृत प्रेम से, करिए सींच निहाल ।।३।।
सुख शान्तिमयी नींद में, मिले मुझ को विश्राम ।
मैं तुझ में ही लीन हो, रहूँ सुखी सब याम ।।४।।
गाढ़ नींद के बीच ही, तुझ में हो मन लीन ।
सागर तल में निर्भया, जैसे होवे मीन ।।५।।
मन मस्तक तन कमल में, तेरा रहे सुनाम ।
रमता सारी रात में, करे योग का काम ।।६।।
जागूँ तेरी जोत ले, लिये तेरा विश्वास ।
परम भरोसा साथ ले, तेरी लिए सु-आश ।।७।।

कार्य

कार्य में परमात्मन्, हो तू आप सहाय ।
अपने आशिष दीजिए, मंगल हाथ बढ़ाय ।।१।।
रहूँ सच्चा निज काम में, पक्का प्रण में आप ।
मेल-जोल विधि युक्ति से, वर्तूं, करूँ न पाप ।।२।।
सारे कर्म कलाप को, करूँ सदा मन लाय ।
उद्यम प्रेम उद्योग से, लूँ कर्तव्य निभाय ।।३।।
परमार्थ में रत रहूँ, कर परहित उपकार ।
अर्थी जनों को अर्थ दूँ, करूँ सुधार उद्धार ।।४।।
सेवा मैं कर सुजन की, मानूं हर्ष अपार ।
भक्त सन्त के संग में, होवे मुझ को प्यार ।।५।।

आजीविका

जीवन सारे जगत् के, तुझे जान आधार ।
जीवन यात्रा मैं करूँ, धृति धर्म को धार ।।१।।
व्यापार व्यवहार में, वर्तूं साख के साथ ।
पर पूञ्जी पर पाप से, पड़े न मेरा हाथ ।।२।।
द्रोह दुःख दे कर कभी, करूँ नहीं .व्यौहार ।
सत्य सरलता शीलता, हो शुभ शिष्टाचार ।।३।।
दान पुण्य उपकार में, धन को दूं मन खोल ।
दिये धर्म में दान का, कभी न बोलूं बोल ।।४।।
तेरे जन के काम में, तेरे नाम सुकाम ।
मन तन धन सब वार दूँ, भाव तथा दे राम ।।५।।।

भ्रातृ-भाव

भगवन् ! मुझ को भावना, भक्ति प्रीति कर दान ।
सेवा सज्जन सन्त की, भ्रातृ-भाव महान् ।।१।।
भाई-पन के भाव से, सखा सगे जो लोग ।
उन से मिल कर मैं रहूँ, तज कर कलह कुरोग ।।२।।
धर्म बन्धु जो जन भले, कर के मधुमय मेल ।
उन से हिल-मिल कर रहूं, करूँ नहीं अनमेल ।।३।।
स्वार्थ ईर्ष्या द्वेष से, कभी न होवे भंग ।
भ्रातृ-भाव सुभावना, मीत प्रेम का रंग ।।४।।
सन्तों सुजनों से सदा, करूँ धर्म से प्रेम ।
सगे सम्बन्ध सुधर्म को, पालूँ करके नेम ।।५।।

भोजन समय

अन्नपते ! यह अन्न है, तेरा दान महान् ।
करता हूँ उपभोग मैं, परम अनुग्रह मान ।।१।।
अन्नपते ! दे अन्न शुभ, देव दयालु उदार ।
पा कर तुष्टि सुपुष्टि को, करूँ कर्म हितकार ।।२।।

भोजनानन्तर

धन्यवाद तेरा प्रभु, तू दाता सुख भोग ।
सारे स्वादु भोज्य का, रसमय मधुर सुयोग ।।१।।
विविध व्यंजन भोज्य सब, तू देवे हरि आप ।
खान पान आमोद सब, तेरा हि सुप्रताप ।।२।।

विनय

सुदया-दृष्टि दीन पर, कर अपना जन जान ।
भक्ति प्रीति प्रदान कर, परम देव भगवान् ।।१।।

[illegible] ।
पावन अपने प्रेम से, करिए इसे निहाल ।।२।।
परम प्रेम की गोद में, मिले मोहे विश्राम ।
तव भुज शक्ति विशाल में, मिले मधुर आराम ।।३।।
नाम पालने में पलूँ, पा कर पावन प्रेम ।
प्यार पंगूड़े में पड़, पाऊँ प्रेम सुनेम ।।४।।
परम पिता परमात्मन्, तुझ तक मेरी दौड़ ।
यथा सिन्धु में काक को, पोत एक हो ठौर ।।५।।
मुझे दया कर तारिए, भव सागर से पार ।
महा-द्वीप स्व-धाम दे, करिए अगाध प्यार ।।६।।
परम प्रभु जगदीश जी, परम शरण तव धार ।
निर्भय पद मुझ को मिले, पार करूं संसार ।।७।।
पाप पंक से मलिन हूँ, मन तन भरे विकार ।
नाम नदी के नीर की, निर्मल कर दे धार ।।८।।
तीन ताप से तप्त की, तू है शीतल छांह ।
गिरते दुर्बल दीन की, सुदृढ़ पकड़ो बांह ।।६।।
मुझ में है न प्रेमरस, नहीं श्रद्धा विश्वास ।
दया कर देव दयामय, रखिए अपने पास ।।१०।।
भक्ति भावना हीन हूँ, ज्ञान ध्यान से हीन ।
पर तव द्वार का भिक्षु मैं, हूँ तेरा जन दीन ।।११।।
भक्ति की भिक्षा दीजिए, भाव भावना और ।
भक्तवत्सल भगवन् तू, है मेरी शुभ ठौर ।।१२।।
पा प्रसादी प्रेम की, हो झोली भरपूर ।
मैं तृप्त छक कर रहूँ, पड़ा लगन में चूर ।।१३।।

अमृतमय निज नाम से, अमृत पद कर दान ।
निश्चय भरोसा दे हरि, अपना धाम महान् ।।१४।।
हृदय में हो तव ध्वनि, मन में हो तव नाम ।
मुख में तेरा यश बसे, तन में तेरा काम ।।१५।।
तेरा हूँ मैं हे हरे, तू मेरा गुरु-राज ।
तुझ में रम कर ही सभी, सुधरे बिगड़े काज ।।१६।।
निज जन का है तू प्रभु, शरण-रूप आधार ।
अपने जन को तू प्रभु, तार करे भव पार ।।१७।।
अपना जन ही जान कर, अपने को ही आप ।
अपना आप दिखाइए, अपने के हर पाप ।।१८।।
अपने को अपनाइए, अपना आप लखाय ।
अपनी कृपा अपार हि, करिए अपना पाय ।।१६।।
दिव्य दयामय देव जी, हो कर परम दयाल ।
अपने प्रेम सुदान से, करिए मुझे निहाल ।।२०।।
है नत मेरे देव जी, तव सम्मुख मम माथ ।
इसके ऊपर अब सदा, रखिये मंगल हाथ ।।२१।।
मस्तक मेरे में प्रभु, जगे नाम की जोत ।
चमके सुचारु चांदना, खुले शब्द का सोत ।।२२।।
तू है जननी जगत की, जगमग ज्योति अनन्त ।
तेरे सागर प्रेम का, पारावार न अन्त ।।२३।।
है तू माता मधुमयी, निज ममता दे दान ।
मनोमोहक सुगीत गा, महिमा करूँ बखान ।।२४।।
स्नेह सने सुर सरस से, सरल भाव के साथ ।
तुझे पुकारूँ मात ! कह, ऊँचे करके हाथ ।।२५।।

भोले नयन पसार कर, देखूं तेरी ओर ।
जैसे पूर्ण चांद को, निरखे सरल चकोर ।।२६।।
तेरे प्रेम अगाध में, गद्‌गद्‌ हो कर मात ।
रमण करूँ तव गोद में, सब दिन सारी रात ।।२७।।
बाल काल के भाव में, तुतली बोली बोल ।
लूटूँ लाभ अलभ्य मैं, दिल सुसरल को खोल ।।२८।।
मानूँ मंगल परम ही, महा-मधुरतम मोद ।
माता तेरे प्रेम की, पाय माधुरी गोद ।।२६।।
माता मुझे निहारिये, मिष्ट प्रेम के संग ।
आशिष कर को फेरिए, ले अपने उत्संग ।।३०।।
डगमगायें पैर मृदु, लचकें कोमल गात ।
निज पथ पर कर पकड़ कर, मुझ को ले चल मात ! ।।३१।।
महा मधुर मोहक मृदु, मां मां शब्द पुकार ।
मम मन मन्दिर में बजे, मीठी सरस सितार ।।३२।।
आत्म-सूर्य तू प्रभु, मन का तम कर नाश ।
तेरे उत्तम तेज से, अपना मिले विकाश ।।३३।।
मेरे अन्तःकरण में, नाम किरण संचार ।
कर के दे निज रूपता, सब तम भ्रान्ति निवार ।।३४।।
मानसरोवर मन बना, अमल कमल का कुंज ।
विकसित कोमल किरण से, कर भर तेज सुपुंज ।।३५।।
जब से दीवा नाम का, जगा हुआ गुणगान ।
तन देवालय बन गया, हृदय दिव्य दिवान ।।३६।।
मेरा मन मन्दिर बना, शुभ सुन्दर अभिराम ।
जब से स्थापित हो गई, उस में मूर्ति नाम ।।३७।।

मेरे भीतर आय कर, करिए प्रभु निवास ।
घर अपना कर लीजिए, करके निश्चित वास ।।३८।।
रोम रोम में तू रमे, मेरे मोहन राम ।
अमृतमय शिवरूप तू, है मुद मंगल धाम ।।३९।।
विनय करूँ कर जोड़ कर, सुनिए दीनदयाल ।
मेरी आशा एक तू, है टेक प्रतिपाल ।।४०।।
दे हरि ऐसा बल मुझे, पकड़ नाम की डोर ।
मेरु शिखर सम अचल हो, झुका रहूँ तव ओर ।।४१।।
चाहे अत्याचारी जन, देवें कष्ट अपार ।
टूक टूक काया करें, त्यागूँ न नाम प्यार ।।४२।।
मेरा जीवन तू हरे, परम प्राण आधार ।
शान्ति शरण भी ईश तू, योग क्षेम निस्तार ।।४३।।

कामना कमल कुंज

शरीर शिवालय हो शुभ, मूर्ति राम सुनाम ।
अनहत बाजे आरती, होवे बिना विराम ।।१।।
शशि सूर्य की जोत हो, जगती झलमल रूप ।
तब मैं दर्शन देव का, पाऊँ तेज सुरूप ।।२।।
कानों में गूंजा करे, राम नाम का नाद ।
मन इस मधुमय नाम का, लेवे अमृत स्वाद ।।३।।
मुख में विलसे नाम यह, रह रह कर ही आप ।
भीतर तो होता रहे, इस का उत्तम जाप ।।४।।
सुधा सुसिंचित मैं रहूं, सर्व काल सब देश ।
मंगलमय शुभ नाम में, पूजूँ राम महेश ।।५।।*

राम भक्त को देख कर, मानूँ मीठा मीत ।
जंगम मन्दिर मान कर, उस से करूँ सुप्रीत ।।१।।
जिस मन मुख में नाम हो, राम राम सुखकन्द ।
उसके मधुर मिलाप का, मिले मुझे आनन्द ।।२।।
जाऊँ उसके पास मैं, उत्तम यात्रा मान ।
समझूँ तीर्थ गुण भरा, उस का आसन स्थान ।।३।।
वचन अमीरस में सने, सुनूँ ध्यान में लाय ।
राम भक्त के संग में, बैठूँ विनय दिखाय ।।४।।
सारा समझूँ सार शुभ, राम जनों की देह ।
है दीवा अति दीपता, भरा सत्य गुण स्नेह ।।५।।*
भक्ति भाव से हो भरा, राम सुसेवक संघ ।
सेवा सत्य सुशील को, जावे नहीं उल्लंघ ।।१।।
परहित परता कर्म शुभ, श्रद्धा प्रेम विचार ।
धर्म कर्म उस में बसे, दया दान उपकार ।।२।।
प्रभु उपासक संघ में, मैं लिए एक कोन ।
बैठूँ संयम साध कर, मन वृत्ति कर मौन ।।३।।
उसके दर्श स्पर्श से, कर संगति संलाप ।
तन मन निर्मल मैं करूँ, मंगल मान मिलाप ।।४।।
राम सुजन के चरण शुचि, समझूँ सुगन्धित फूल ।
केसर चन्दन की बनी, पांव तले की धूल ।।५।।
सत्य सुधा से हो सना, उनका वचन विलास ।
प्रेम भक्ति देवे सदा, आस पास का वास ।।६।।*
यौवन युग में मत्त जन, सज धज कर सिंगार ।
हंसें खेलें मोद में, देखें बाग विहार ।।१।।

नवतर रचना नयन से, फिरते रहें निहार ।
पांच विषय उपभोग को, समझें जीवन सार ।।२।।
मैं अन्तर्मुख नयन कर, शाम्भवी मुद्रा साध ।
कृति में कर्ता को लखूं, मानूं मोद अगाध ।।३।।
अतिशय सुन्दर वस्तु जो, अद्‌भुत शोभावान् ।
वस्तु मनोहर में मुझे, सूझे श्री भगवान् ।।४।।
रूप रंग आकार में, रहे मग्न संसार ।
अपने दृष्टिकोण से, मैं लूं राम विचार ।।५।।
रचना की शुभ शाल में, निरखूं नयन पसार ।
चित्रकार को चित्र में, सृष्टि सर्जनहार ।।६।।*
नदी तट हो सुहावना, विपल नील हो नीर ।
वायु वेग की छेड़ से, लहरें बनी अधीर ।।१।।
नभ को चूमें नाचती, किरणों से कर रास ।
आलिंगन कर परस्पर, करें तीर से हास ।।२।।
केतकी चम्पा मधुमती, मालती सह मुस्कान ।
फूल बखेरें रास में, कर सिंगार महान् ।।३।।
मनमानी क्रीड़ा करे, मण्डल मीन अदीन ।
मोद मनावे मग्न हो, त्रासरहित स्वाधीन ।।४।।
सुखकर मन्द सुगन्ध शुभ, शीतल बहे समीर ।
नीर तीर पर धीर धर, अविचल किये शरीर ।।५।।
राम भजन में लीन हो, बैठूं मैं अनडोल ।
राम नाम में शान्ततम, पाऊँ लाभ अमोल ।।६।।*
उषा सभी शुभ साज सज, कर सुन्दर सिंगार ।
सजनी साजन पुरसरी, सोहे सुरी अपार ।।१।।

शान्ता शोभा-शालिनी, नभ जल थल को रंग ।
लता पत्ता वन कुँज में, शोभा भरे उमंग ।।२।।
कोमल कलि के कोश को, कांचन कर से खोल ।
विकसित कमल सुकुँज से, हँस रही हो बोल ।।३।।
सजी सुनहले वेश में, पा कर सरल सुहाग ।
नभ मण्डप सुविशाल में, खेल रही हो फाग ।।४।।
विरह निशा में चुप रहे, जो पक्षी निराहार ।
आश उषा को देख कर, करें हर्ष उद्गार ।।५।।
ऐसे शोभन काल में, भक्ति उषा शुभ-सार ।
राम ध्यान में ही मिले, मुझे लीनता प्यार ।।६।।*
उदय-काल में लाल शुभ, सोहे सूर्य बाल ।
बेल फूल जग को मिले, लिये सुनहली शाल ।।१।।
कलि कोंपल पल्लव कमल, विलसें सहित विलास ।
मुख पर ला कर लालिमा, करें लचकते हास ।।२।।
सुवर्ण तेज विस्तार कर, रजनी राज सुजीत ।
हिममय रजित सुशिखर से, राजा कर के प्रीत ।।३।।
सिन्धु मंच पर खेलता, भर कर नाना रंग ।
सूर्य सोहे सोम बन, सज्जित तेज तरंग ।।४।।
किरण करों से छू रहा, मृदु पंखड़ी फूल ।
गले लगा कैलाश को, जाय द्वैत को भूल ।।५।।
ऐसे अवसर शान्त में, भीतर भानु निहार ।
राम ध्यान में मग्न मैं, जय जय करूँ पुकार ।।६।।*
शैल शिखर हो शोभता, शोभें शिला विशाल ।
सविता सातों किरण से, सोहे सुन्दर लाल ।।१।।

रस सुवर्ण हो बरसता, हों सब दिशा सतेज ।
सुखकर पवन स्पर्श हो, हो नभ सूर्य-सेज ।।२।।
हरित मृदु नव घास हो, रहा भूमि पर छाय ।
मन्द पवन से खेलता, लचक लचक लहराय ।।३।।
सिर पर तम्बू हो तना, नभ शुचि विमल सुनील ।
सरस सुरों से बोलते, सोहें पक्षी सुशील ।।४।।
रम्य समय ऐसा मिले, स्थान महा रमणीक ।
रमूँ राम में मैं मग्न, हो कर स्थिर निर्भीक ।।५।।
धृति धारणा ध्यान में, रह कर शिखर समान ।
अचल रहूँ मैं भजन में, राम राम कर गान ।।६।।*
शुचि सरोवर स्वच्छ हो, सोहें सजे सरोज ।
भीनी सुगन्धि निसरती, कर सजीव सह ओज ।।१।।
जी में भरे नवीनता, मधुकर करता नाद ।
कमल केसरा चूम कर, चखे सुधारस स्वाद ।।२।।
कमलों पर क्रीड़ा करे, राज-हंस सह राग ।
लिये श्वेत पहरान पर, पतला पद्म पराग ।।३।।
जलचर जीव लुभावने, करते अधिक कलोल ।
सर समता को विषम कर, रहें सलिल में डोल ।।४।।
बेलें फूलों से लदीं, तन सिर सहज हिलाय ।
पवन संग हों नाचती, पुष्प वर्षा बरसाय ।।५।।
ऐसे सुन्दर स्थान में, सुख आसन सुसजाय ।
राम शब्द शुभ सार में, रहूँ समाधि लगाय ।।६।।*
वनराजी हो राजती, बहुविधि बूटे बेल ।
विविध वर्ण का वेश धर, रास रहे हों खेल ।।१।।

लता पत्ता का रंग भी, कुसुमों कलियों संग ।
सोहे शोभा धाम बन, लिये निराला ढंग ।।२।।
वन की राजें बूटियां, पत्र पुष्प नव जात ।
नाचें सुमृदु घास से, कर कम्पित नव गात ।।३।।
शाल ताल तरुगण सभी, हरित भरित वन खण्ड ।
पत्रित पुष्पित फलित हो, रहें भूमि को मण्ड ।।४।।
महा वृक्ष शुभ शाख का, रहें चन्दोआ तान ।
भूतल पर नव घास का, सम हो बिछा बिछान ।।५।।
राम नाम के ध्यान में, आसन वहां रमाय ।
रहूँ मग्न मैं हर्ष में, शीतल छाया पाय ।।६।।*
नीरव निर्जन देश हो, विघ्न रहित सुनसान ।
बहुत शान्त एकान्त हो, बाधा वर्जित स्थान ।।१।।
सनसन करती पवन शुभ, तिनके जाय हिलाय ।
कहीं कहीं उड़ता पक्षी भी, दृष्टि पथ में आय ।।२।।
क्रीड़ा करते कीट हों, जीव जन्तु बहु भान्त ।
अन्न गवेषण को फिरें, बान्धे लम्बी पान्त ।।३।।
ऐसा अवसर लाभ कर, और शुद्ध भू-भाग ।
राम-नाम का नाद शुभ, मुझ में जावे जाग ।।४।।
मौन भाव से मैं सुनूँ, अन्तर्मुख हो गीत ।
शब्द सुधारस पान कर, जन्म मरण लूँ जीत ।।५।।
अजपा जाप अपाप से, त्रय ताप से त्राण ।
पाऊँ परमानन्द मैं, पावन पद निर्वाण ।।६।।*
गिरी गुहा गहरी भली, कन्दरा हो निर्वात ।
चुपचाप चहुँ ओर हो, कोई न हो उत्पात ।।१।।

गमनागम भी हो नहीं, स्थान परम एकान्त ।
सन्नाटा सब ओर हो, शुचि स्वच्छ हो शान्त ।।२।।
ऐसे सुन्दर स्थान में, नयन कान मुख मूँद ।
नाम अमृत की सुमधुर, पान करूँ मैं बूँद ।।३।।
कंदरा अन्तःकरण की, आँखें कान कपाट ।
बन्द कर बैठूँ मौन मैं, कर्म कटु को काट ।।४।।
सुन कर शब्द सुहावने, पकड़ नाम की तान ।
देखूँ लीला राम की, चढ़ कर नाम विमान ।।५।।
साधन सारे सिद्ध हों, पाय सरल यह योग ।
साधूँ सिमरन ध्यान से, तज कुवासना रोग ।।६।।*
हरा भरा फूला फला, शोभा सहित उद्यान ।
लता-मण्डप सुपुष्प के, उस में सजे विमान ।।१।।
तरुमाला हो शोभती, कुसुम क्यारी अनेक ।
फूल लदी फुलवाड़ियां, हों दे रही विवेक ।।२।।
लता पुष्प के भार से, सभी रही हों झूल ।
मन्द पवन से खेलतीं, हों बरसाती फूल ।।३।।
पुष्पित पेड़ सुहावने, शाखा हस्त पसार ।
एक दूसरे को मिले, करते दीखें प्यार ।।४।।
कुसुमित चम्पा केतकी, आदि हार-सिंगार ।
आगत का स्वागत करें, कुसुमों से सत्कार ।।५।।
रेशम पशम समान शुभ, सम सुन्दर पा घास ।
वहाँ सुखासन साध मैं, भजूं राम सुखरास ।।६।।*
लगी झड़ी हो घोर तर, जल थल हों सब खेत ।
पवन वेग हो सबल तर, शीतल भूतल रेत ।।१।।

सिकुड़ रहे हों पक्षी सब, दुष्कर हो संचार ।
झोंके ठंडे पवन के, करते हों तन पार ।।२।।
जांगल जीव सुसिमट कर, घुसें बिलों में जाय ।
जन ऊनी ओढ़े वसन, तपें आग सुलगाय ।।३।।
ठिठुर रहे हों जरा वश, बूढ़े दान्त बजाय ।
नन्हें बालक छाती से, माता रहें लगाय ।।४।।
ऐसे शीतल शान्ततम, समय स्थान को पाय ।
उष्मा राम के नाम की, देवे मुझे जगाय ।।५।।
भक्ति गंग में कूद कर, गहरे पानी पैठ ।
अचल रहूँ श्री राम में, निश्चल आसन बैठ ।।६।।*
चन्द्र पूर्ण हो चढ़ा, चम चम चारों ओर ।
चमके चिट्टी चन्द्रिका, चांदी सम सब ठौर ।।१।।
वन पर बरसे सोमपन, रहें जलाशय राज ।
उन में तारा गण ग्रह, शोभित करें समाज ।।२।।
पुष्करणी शुभ ताल में, लहरी लीला साथ ।
सोहे नभ तारे लिए, रमता रजनी नाथ ।।३।।
लहरी अर्पित अर्घ्य में, किंचित् सीस नवाय ।
मानो दर्शन चांद के, कमल रहे हों पाय ।।४।।
मेरा चित्त चकोर तब, आत्मनयन पसार ।
पूर्णमासी भीतरी, इक टक रहे निहार ।।५।।
ईश ध्यान में लीन हो, चिदाकाश में ठीक ।
निरखूँ लीला राम की, अति सुन्दर रमणीक ।।६।।*
अन्धकार हो गाढ़तर, कृष्णा आधी रात ।
नीला वन हो संघना, पशु करते हों घात ।।१।।

हिंस्र प्राणी हों फिर रहे, सर सर करते नाग ।
हस्ति मृग वनराज से, रहे हों भीरु भाग ।।२।।
वन नभ लय हो रात में, बने हों एकाकार ।
देख सके अपना नहीं, मानव हाथ पसार ।।३।।
ऐसे भयमय काल में, मैं हो निर्भय मौन ।
राम निरंजन को भजूँ, गिनूँ न कहाँ व कौन ।।४।।
कम्बल में मुख डाल कर, चारों पलक मिलाय ।
भीतरी ज्योति को लखूं, गहरा ध्यान बसाय ।।५।।
अन्तःकरण की शुभ ध्वनि, सुन लूं सहित विशेष ।
ईश भजन में हो मग्न, कर दूं कर्म अशेष ।।६।।*
हरी भरी हों खेतियां, मंद पवन को पाय ।
लहरें लेवें शुभ यथा, सिन्धु नील लहराय ।।१।।
अमराई के मध्य में, नाच रहे हों मोर ।
कोयल पंचम नाद से, भरे सुरस सब ओर ।।२।।
रंग बिरंगे वेश में, पक्षी रहे हों राज ।
नाना सुर संलाप से, उनका सजे समाज ।।३।।
इत उत उड़ती तितलियां, सुन्दर पंख हिलाय ।
पुष्प चित्र के रंग में, देवें रंग बसाय ।।४।।
बाल गोपाल ही मोद में, मिले रहे हों खेल ।
बैठूँ पत्रित तरु तले, मैं दो आँखें मेल ।।५।।
भक्ति धर्म के खेत में, करूँ रमण कर ध्यान ।
राम नाम का फल मधुर, पाऊं अपना ज्ञान ।।६।।*
सागर लहरों को लिए, दीखे डांवांडोल ।
जलचर नाना भांत के, नाना करें कलोल ।।१।।

नौका बन कर तितलियां, शोभें दौड़ लगाय ।
गगनगगन पतंगोन का मन को रहे लुभाय ।।२।।
सिन्धु-बेल सुसेना सज, शिला तटों पर धाय ।
कूदे बहु बिजली बनी, नभ भूमि को गुञ्जाय ।।३।।
हत हो कर नभ को चढ़े, करने तट की हान ।
मानो उस के दमन को, इन्द्र धनु ले तान ।।४।।
सूर्यरंग लावण्य सह, जिस पर पड़े फुहार ।
उसी शिला पर बैठ मैं, रहूँ धारणा धार ।।५।।
राम नाम में एक हो, जानूं देश न काल ।
सुधा सिंधु श्री राम में, हो कर लीन निहाल ।।६।।*
झरने हों झरते विमल, हो ऊँचा जलपात ।
उस में सूर्य किरण के, बसे रंग हों सात ।।१।।
अंकित धारा पात में, रवि बिम्ब रहे राज ।
मानो नभ से उतर कर, आया क्रीड़ा काज ।।२।।
जल धारा में झूलता, रश्मि सुवेश उतार ।
कुन्दन काया को किये, बना सोम अवतार ।।३।।
सूर्य सोहे झलकता, बिंदु मोती बखेर ।
पक्षी दर्शन सूर्य के, करें नयन को फेर ।।४।।
आस पास के घास पर, बेल शाख पर आय ।
रंजित रंग सुवर्ण में, रहें बिंदु लहराय ।।५।।
वहां शिला पर बैठ मैं, सिमरूँ शोभा धाम ।
परम प्रिय सुन्दर सर्व, परम ईश श्री राम ।।६।।*
मान बड़ाई में पड़े, लोक लाज के काज ।
वाह वाह यश सम्मान वश, सदा सजायें साज ।।१।।

अपने को पर नयन में, देखें दर्पण मान ।
कीर्ति कीचड़ में गड़े, जन चाहें सम्मान ।।२।।
लोक एषणा के वश, छोड़ें सत्य विवेक ।
विमुख राम से जगमुखी, रचना रचें अनेक ।।३।।
उनसे मिल जुल मैं कहूँ, क्षण भंगुर संसार ।
है, नीरस हरि नाम बिन, सर्व कीर्ति विस्तार ।।४।।
ईश प्रेम में मग्न हो, मानो महा कल्याण ।
आत्म मंगल कामना, करो समय शुभ जान ।।५।।
बार बार मिलता नहीं, मानव तन का धाम ।
अवसर मिला अमोल अब, भज लो मन से राम ।।६।।*
वादी बहुविध वाद में, करें अवैध विवाद ।
वचन बाण मत-विष बुझे, मारें भरे उन्माद ।।१।।
लिये कुतर्क कटारियां, कटु कुवचन को बोल ।
कलह करें हो कर कड़े, कर कल्पित मत तोल ।।२।।
पन्थ पिंजड़े में पड़े, पंछी पंख कटाय ।
पक्षपाती पर अर्थ वश, रहे सुसत्य भुलाय ।।३।।
वाद वितण्डा में मग्न, मतवादी जन बीच ।
सम रह फैंकूँ मैं नहीं, कलह कर्म का कीच ।।४।।
शंका संशय रहित हो, राम जान भगवान् ।
वचन वज्र मतवाद से, हिलूँ न मेरु समान ।।५।।
बन्धु-भाव के नयन से, सम हो उन्हें निहार ।
राम नाम की मधुरतम, चंचल करूँ सितार ।।६।।*
भोग विलास की रास में, राग रंग में लीन ।
हास खेल में मग्न जन, शोभा सजें नवीन ।।१।।

वेश विभूषा में रहें, भर यौवन कर लाभ ।
नाना व्यंजन धार कर, बहुत बढ़ावें आभ ।।२।।
उन्हें कहूँ बन मीत मैं, हैं सुन्दर सब साज ।
है पर नाम सुगंधि बिन, नीरस कुसुम समाज ।।३।।*
ज्ञान बुद्धि के जो धनी, जिन के विमल विचार ।
जिन के दर्शन ज्ञान का, मिले न परला पार ।।१।।
कुशाग्र बुद्धिवन्त जो, महामना मतिमन्त ।
प्रतिभाशाली सुगुणी, युक्ति तर्कना वन्त ।।२।।
मैं मिल उन्हें सम्मान से, उन के सुगुण बखान ।
कहूँ राम रस स्वाद बिन, फीके हैं पकवान ।।३।।*
राग रागिणी रंग में, रचे रसीले लोग ।
रंगरलियां में रत रह, खोवें समय सुयोग ।।१।।
सुस्वर से सिंगार रस, बरसावें कर प्रीत ।
सर्व सार समझें इसे, फिरें सुनाते गीत ।।२।।
राम स्नेह से रहित सब, है नीरस सुर राग ।
उन्हें कहूँ मैं राग में, भक्ति लगाओ जाग ।।३।।*
कहें सियाने चुप भली, मीत कहें रह मौन ।
निन्दे निन्दक दल बली, जाने एक न पौन ।।१।।
चतुर चपल तर चाल चल, चुन चुन चोंच चलाय ।
चाहा चोगा यों चुगें, चंचल चित्त लगाय ।।२।।
पर इक तारा प्रेम का, मैं भी सुदृढ़ थाम ।
कर्म भक्ति खड़ताल ले, गाऊँ राम सुनाम ।।३।।*
शत्रु वैर को बांध कर, बहु विधि करें विरोध ।
सत्य छुड़ावें हठ भरे, विघ्न बाध कर क्रोध ।।१।।

विविध वेदना बहुत दें, करें अधिक अपमान ।
बहु बढ़ायें वे ईर्ष्या, उचितानुचित न जान ।।२।।
मैं चाहूं उन का भला, मुरली कण्ठ बजाय ।
राम राम का सुर मधुर, दूँ तो उन्हें सुनाय ।।३।।*
खींचातान कमान कस, मत के बाण बहाय ।
झगड़ें पण्डित नाम पर, अर्थ यथार्थ छुपाय ।।१।।
भक्ति बाँसुरी फूंक कर, उन में आसन मार ।
मैं कहूँ राम अनाम है, रूपरहित शिव सार ।।२।।
वस्तु सत्य स्वरूप के, होते नाम अनेक ।
नाना दैशिक नाम से, वस्तु रहे ही एक ।।३।।*
बलवानों के मध्य में, निर्भय भुजा पसार ।
कहूं मैं भक्ति धर्म है, राम नाम है सार ।।१।।*
द्रोह द्वेष की आग हो, भड़क रही जिस बीच ।
उसे शांत, सम रह करूँ, नाम सुधा को सींच ।।१।।*
नास्तिक दल में जा कर, स्वर सप्तम अलाप ।
कहूँ राम सुख धाम है, हर्ता पाप संताप ।।१।।*
विषम विरह वियोग जन्य, तड़पन जन में जान ।
राम नाम सुर सरित में, उसे कराऊँ स्नान ।।१।।*
पीड़ित जन को देख कर, रोगी सोगी पाय ।
नाम सुधा रस ओषधि, दूं मैं उसे छकाय ।।१।।*
विपदा संकट में घिरे, जन के जाय समीप ।
राम नाम सुमन्त्र का, वहाँ जगाऊँ दीप ।।१।।*
विपद् घोर में अटल रह, संकट में दिल थाम ।
मरण कष्ट में धर धृति, जपूं शांत रह नाम ।।१।।*

मानूँ मन में मोद मैं, नाम सुधा कर भोग ।।१।।*
रात दिवस में एक रस, चखूं नाम रस स्वाद ।
रहूं मग्न मैं नाम में, तज कर वचन विवाद ।।१।।*
मोहे अवस्था यह मिले, दश दिश चारों कूँट ।
सुनूँ राम शुभ नाम की, तान रही हो टूट ।।१।।*

प्रेम

परमात्मा से प्रेम कर, राम नाम से राग ।
प्रेम अमीरस पान कर, उपजे शुभ अनुराग ।।१।।
परमेश्वर अखण्ड है, परम प्रभु शुभ नाम ।
परिपूर्ण है सर्व में, सत्य नाम गुणधाम ।।२।।
प्रिय रूप हरि ईश है, परम पुरुष श्री राम ।
निराकार सुख रूप है, सर्व साक्षी निष्काम ।।३।।
उस से प्रीति कीजिए, भाव भक्ति के साथ ।
प्रियतम वही जानिए, त्रिलोकी का नाथ ।।४।।
पगे प्रभु के प्रेम में, जो जन हों सब काल ।
रमें रहें हरि भक्ति में, पूजें देव दयाल ।।५।।
बन्धु सभी वे समझिए, मानो मीठे मीत ।
प्रेमी उपासक ही जन, जाय जन्म को जीत ।।६।।
सच्चा धर्म है प्रीति पथ, समझो शेष विलास ।
मत मतान्तर जगत् में, अणु है सत्य विकास ।।७।।
चाहे जो निज रूप को, लखा, अलख, सुविकाश ।
करे प्रवेश प्रेम में, करके संशय नाश ।।८।।

हरि भक्ति ही सुलक्ष है, यहां प्रेम से जान ।
भक्ति परम ही धर्म है, आगम करें बखान ।।९।।
प्रीति लगाओ लगन से, परम पुरुष से नेह ।
अपना आप सुदान कर, कीजिये परम स्नेह ।।१०।।
परम प्रेम से पूजिए, भावमय प्रभु पाद ।
सखियो सब मिल गाइए, अहर्निश हरि गुणवाद ।।११।।
समझो स्नेह सनी सखी, है हरि प्राणाधार ।
लक्ष परम शुभ प्रेम का, परम प्रभु सुखकार ।।१२।।
अकाल पुरुष ही राम है, वही देव ओंकार ।
सरस सुरस से सिमरिए, सर्व सार का सार ।।१३।।
सखी सवेरे सिमरिए, प्रेम पाठ की बात ।
आलस निद्रा में गई, यों ही सारी रात ।।१४।।
सुगड़ सियानी समझ ले, बीते नहीं जप काल ।
काम काज तज कीजिए, करो नहीं कुछ टाल ।।१५।।
आओ मेरे देव जी, मुझे आश्रित जान ।
अपने दर्शन प्रेम का, दिव्य दीजिए दान ।।१६।।
प्रीति पथ नहीं सुलभ है, है धारा तलवार ।
चूक जाय किंचित् कभी, हो तुरन्त ही पार ।।१७।।
हो तब यह पथ सुगम जब, हो प्रेम व्रत नेम ।
बस जावे जब रंग यह, दीखे प्रेम हि प्रेम ।।१८।।
प्रेम प्याला जिस पिया, हो गया वह निहाल ।
उस में वह रंगा रहे, हो कर लालो लाल ।।१९।।
लख ली लाली अलख की, जिस लखिए कर भाल ।
लाल लाल वह हो गया, ले कर नाम सुलाल ।।२०।।

लालों वाले लाल दे, लीला रूप दयाल ।
अलभ्य लाल सुलाभ से, कर दे मालोमाल ।।२१।।
लाली देव दयाल की, दिल कर लखो विशाल ।
पी कर, लीला में रमो, प्याला प्रेम रसाल ।।२२।।
प्रेम लालिमा जब बसे, खिलें भीतरी फूल ।
विमल कमल मुख मधुर हो, रहे लता तन झूल ।।२३।।
रास रची रस रसिक ने, दे कर नाम सुचाल ।
भीतर लीला दान कर, छिड़का प्रेम गुलाल ।।२४।।
नाम प्रेम की चांदनी, जब चटके सब ओर ।
चित्त चांद की चारुता, चमके चारों कोर ।।२५।।
चलो सखी चल देखिए, चढ़ा प्रेम का चंद ।
अमृत बरसे भाव का, लो रस कर मुख बंद ।।२६।।
जिस रसिए यह रस लिया, दिया सीस का दान ।
हुआ मत्त रण रंग में, प्रेम सुधा कर पान ।।२७।।
पवन चले जब प्रेम की, शीतल हों सब अंग ।
प्राण मिले शुभ धर्म का, होवे भक्ति अभंग ।।२८।।
पावन पवन सुप्रेम की, पा कर सुरति पतंग ।
सूक्ष्म नभ में उड़ चढ़े, जैसे तेज तरंग ।।२९।।
पतित सुपावन प्रेम यह, उपजे जब मन बीच ।
जात पात वहां न रहे, नहीं ऊँच वा नीच ।।३०।।
पावन पानी प्रेम का, करता विमल शरीर ।
करे शुद्ध भीतर सकल, प्रेम गंग का नीर ।।३१।।
भेद भाव की धूल को, धो कर करता दूर ।
मन मल नाशक जानिए, प्रभु प्रेम का पूर ।।३२।।

परा प्रीति हो राम में, तन्मय हो लौ लाय ।
रीझ प्रेम से आप ही, कभी मिलेगा आय ।।३३।।
राम रमण में मन रमा, रम रम बन रमणीक ।
राम नाम में मस्त हो, सुदृढ़ हुआ निर्भीक ।।३४।।
प्रेम कस्तूरी नाभि में, वन में धाय अजान ।
मग्न नाम में मन मृग, पाय सुगन्धि महान् ।।३५।।
राम प्रेम जिस मन बसे, वहां न संशय ठौर ।
रहे श्येन जिस पेड़ पर, पंछी रहे न और ।।३६।।
सिंह कन्दरा में बसे, गीदड़ वहां न जाय ।
नाम प्रेम जिस मन रमे, पाप वहां न दिखाय ।।३७।।
गर्जे प्रेम की जब घटा, चिदाकाश में धाय ।
नृत्य करे मयूर मन, प्रीति पंख फैलाय ।।३८।।
प्रेम सुपथ पर जो चले, करे कर्म सुखकार ।
वही जन सच्चा भक्त है, प्रतिमा अतुल प्यार ।।३६।।
छुपता प्रेम छुपाया न, कितने करो उपाय ।
रुई में आग लपेटिए, दीखे बाहर आय ।।४०।।
ज्वलन्त ज्योति प्रेम की, भीतर नहीं छुपाय ।
विद्युत् दर्पण कोश से, निसर निसर चमकाय ।।४१।।
रोका रुके न प्रेम अति, हो प्रकट ही आप ।
कस्तूरी की सुगन्धि को, सकता रोक न शाप ।।४२।।
बहे सुधारा प्रेम की, चले सबल प्र-वाह ।
हो सकता न आर पार, पाय न कोई थाह ।।४३।।
सूक्ष्म वेग सुप्रेम का, भीतर कर संचार ।
व्यापे सर्व शरीर में, ज्यों विद्युत् की धार ।।४४।।

स्नेह सरभि दिल कमल से निकले शक्ति लगाय ।
कमल-कलि के कलाप से, ज्यों सुवास फैलाय ।।४५।।

उत्तम मार्ग प्रेम का, जहां ईश का नाम ।
राम राम ही रम रहा, नहीं और से काम ।।४६।।

प्रेम सुपथ पर पग पड़े, परम प्रीति के संग ।
लौटे पीछे फिर नहीं, बढ़ती जाय उमंग ।।४७।।

तन मन अर्पण जो करे, सो पावे यह बाट ।
जी जीवन को दान कर, उतरे उत्तम घाट ।।४८।।

प्रीति करो भगवान् से, मत मांगो फल दाम ।
तज कर फल की कामना, करिए भक्ति निष्काम ।।४६।।

इस मार्ग में जो चले, रहे न उसके पास ।
माया छल अभिमान ही, मलिन कर्म की रास ।।५०।।

मिलना चाहे राम से, पकड़ प्रेम की तार ।
मकड़ी वत् चढ़ जायगा, परम धाम ओंकार ।।५१।।

प्रबल प्रेम सुवेग हो, वेगवती भव धार ।
मन मछली को लांघते, लगे न किंचित् बार ।।५२।।

चढ़े रंग जब प्रेम का, देखें तब सब लोग ।
लोक लाज संकोच से, हो कर रहे वियोग ।।५३।।

लहर उठे जब प्रेम की, मन हृदय के धाम ।
नयन बैन सुर सैन से, विकसे बिना विराम ।।५४।।

प्रेम पन्थ की बात को, कहें वचन मुख नेत ।
हाव भाव मुस्कान मन्द, मधुर मृदु संकेत ।।५५।।

बसे रसीले नयन में, दिल में कर के राज ।
भाव भरे शुभ कथन में, रचता प्रेम समाज ।।५६।।

सब से बन्धन है बढ़ा, सबल प्रेम का पाश ।
छूटे न इस में फँसा, अन्य बन्ध हों नाश ।।५७।।
प्यारे हरि के नाम के, बरसें बादल आय ।
शम कर विरह दावानल, देवें तप्त बुझाय ।।५८।।
झूम झूम हरि प्रेम की, उठी घटा घनघोर ।
रोम रोम हर्षित हुआ, बन कर मोहक मोर ।।५९।।
झड़ी लगी हरि प्रेम की, छम छम बरसें बून्द ।
चम चम चमके दामिनी, देखी आँखें मूँद ।।६०।।
हरे भरे सब हो गए, सभी मनोरथ खेत ।
पाप धूल सब धुल गई, दबी वासना रेत ।।६१।।
मन मन्दिर में जग गया, दीवा दिव्य सुनाम ।
भक्ति प्रेम के तेल से, पूर्ण आठों याम ।।६२।।
आसन प्यारे देव का, हृदय बना महान् ।
राजे ज्योति रूप वहाँ, सब का जानी जान ।।६३।।
आँख कान मुख मूँदिए, हरि दर्शन के काज ।
घट के पट को खोलिए, जहाँ रहा हरि राज ।।६४।।
सखी सभी मिल गाइए, महा मधुर हरि गीत ।
तन मन अर्पण चरण पै, करिए करके प्रीत ।।६५।।
मोहन की मुरली बजी, सरस सुरीला तार ।
सुनिए घट के देश में, प्रेम पन्थ का सार ।।६६।।
आत्मदेव रिझाइए, प्रेम भाव से मान ।
परा भक्ति से ध्याइए, तज कर भ्रम अज्ञान ।।६७।।
एक देव की टेक है, सुदृढ़ निश्चय एक ।
अनन्य सुभक्ति राम में, है तज देव अनेक ।।६८।।

परम प्रभु के प्रेम की, हुई जभी प्र-भात ।
सदा उजाला हो गया, मिटी दुई की रात ।।६६।।
प्रेम का पानी जब पड़ा, गिरी भेद की भीत ।
अपने सब सूझे तभी, महा मनोहर मीत ।।७०।।
प्रेम सुधा सिंचित हुए, शांत हुए सब दोष ।
समता सागर ने किए, दूर द्वेष वा रोष ।।७१।।
देश हमारा प्रेम है, धाम हमारा प्रेम ।
पूजा पाठ उपासना, है प्रेम व्रत नेम ।।७२।।
प्राणी पिरोये प्रेम में, पाते हैं आराम ।
प्रेम पन्थ में चल सभी, ले रहे सुख विश्राम ।।७३।।
मित्र बन्धु सम्बन्ध में, स्नेह सूत है सार ।
प्रेम बिना नीरस सभी, अपना पर संसार ।।७४।।
फिर कर देखा जगत् जो, जहाँ प्रेम लवलेश ।
वहाँ तो सुख रस है कुछ, शेष है कष्ट क्लेश ।।७५।।
प्रेम भक्ति है धर्म का, सार मर्म सुविचार ।
फीका है इसके बिना, वाक्य जाल विस्तार ।।७६।।
प्रियरूप निजरूप है, प्रेम रूप है ईश ।
सिमरन चिन्तन प्रेम से, है पूजन जगदीश ।।७७।।
शक्ति प्रेम प्रकाश के, हे अनन्त भण्डार ।
अपने पथ में प्रेम दे, अपना पावन प्यार ।।७८।।

मधुर मिलाप

मेरे मन में तू बसे, मेरे मोहन राम ।
तेरे मधुर मिलाप में, मुझ को मिले विश्राम ।।१।।

तू मैं तो हम एक हैं, हे हरि दीन दयाल ।
पिता पुत्र संबन्ध से, तीन लोक त्रिकाल ।।२।।
मैं में ही माया बसे, जब मैं में हो पाप ।
तू तू में जब मैं रमे, मैं में तब तू आप ।।३।।
मैं को तू में मेल कर, मिले मधुर सुख स्वाद ।
तू सागर अनन्त में, मैं के मिटें विषाद ।।४।।
मम हूँ तव तू एक हो, तू तू हो झनकार ।
तुन तुन करते मधुर ज्यों, मिल कर तार सितार ।।५।।
तू में मेरी मैं रमे, कर के तू तू जाप ।
तू में हूँ को लीन कर, मैं को मिले मिलाप ।।६।।
तू तू करते तू हुआ, तेरी ध्वनि रमाय ।
बलिहारी उसी तू पर, जहाँ मैं रही समाय ।।७।।
तुझ में मेरी मैं रहे, ज्यों सागर में बूँद ।
निजू भेद में भिन्नता, दी तव तू ने मूंद ।।८।।
मेरा मुझ में मधुर रस, जो है सो तव प्रेम ।
तेरा तुझ को सौंप कर, रहे तू हि तू नेम ।।६।।
मैं में मिली सुमधुरता, तू तू की कस तान ।
सुर सारे मिल ताल से, हों ज्यों मृदु समान ।।१०।।
तेरी तू में मैं रमूँ, यथा क्षीर में नीर ।
तेरे गुण मुझ में बसें, मिटे जन्म की पीर ।।११।।
घुल जाऊँ तव प्रेम में, जल में लवण समान ।
महा मेल उपलब्ध हो, दुई न होवे भान ।।१२।।
बनूँ मधुर मैं मेल में, तेरे हे भगवान् ।
विविध पुष्प के रस यथा, मधु में हों इक जान ।।१३।।

तुझ में मिल कर मैं रहूँ, मिले खांड ज्यों क्षीर ।
[illegible]
तेरे तेजो-धाम से, मेरा अपना आप ।
मिला रहे ज्यों भानु से, सारा किरण कलाप ।।१५।।
सिन्धु-थाह लेने गया, पुतली बन कर नोन ।
घुल मिल लय वह हो गया, बाहर बताय कौन ।।१६।।
कूद सिंधु में बिंदु जब, हो गया वह तद्रूप ।
वहां अलौकिक भेद है, पर है रंग न रूप ।।१७।।
लोह पड़ अग्नि कुण्ड में, रह कर ही कुछ काल ।
भीतर बाहर से बने, अग्नि रूप ज्यों लाल ।।१८।।
मेरे आठों कमल में, तू ही बसे सुगन्ध ।
विद्युत् तार सतेज वत, हो मम तव सम्बन्ध ।।१९।।
नद नाले मिल कर घने, चलें गंग के संग ।
गंगा रूप बने सभी, लय कर अपने अंग ।।२०।।
ऐसी ब्राह्मी हो स्थिति, मेरी तू कर लाभ ।
तेरे पावन रूप की, मैं भी पाऊँ आभ ।।२१।।
सत्ता के वहाँ भेद हैं, सत्य का है न नाश ।
परम सत्ता में सत्य सब, पाएँ परम विकाश ।।२२।।
सत्ता परम को लाभ कर, सन्त भक्त हों लीन ।
शीतल जल तल में यथा, शांत लीन हो मीन ।।२३।।
तुझ में मुझ को मिल मिले, महा मोद शुभ मेल ।
भूलूँ माया खेल को, खिले मेल की बेल ।।२४।।
मेल मनाऊँ मैं सदा, मन में तुझे विचार ।
मग्न रहूँ आनन्द में, तज कर सर्व विकार ।।२५।।

ऐसी एकता दे हरि, जहाँ एक हो टेक ।
तेरे धाम ध्यान की, मिटें कुसंशय छेक ।।२६।।
मेल जोल का खेल है, सारा जग व्यौहार ।
सृष्टि की रचना सकल, मेल का कहा विस्तार ।।२७।।
जहाँ शक्ति सौन्दर्य है, बल वृद्धि गुण ज्ञान ।
सुख सम्पत् शुभ एकता, मेल मूल लो जान ।।२८।।
मन से मिले सुमेल है, मनो भेद है भेद ।
मनो मेल से मधुर बन, हरूँ भेद का खेद ।।२६।।
मेरा मन है भटकता, राम मेल के काज ।
निद्रा में गई रात सब, कर दिन गया अकाज ।।३०।।
इस अंधेरी रात में, मिष्ट मेल की आश ।
घिरी घटा घनघोर में, करियो नहीं हताश ।।३१।।
निशा निराशा कालिमा, रहे विरह घन छाय ।
अब तो तू कर चांदना, मिलना चांद चढ़ाय ।।३२।।
आश उषा सिंगार सज, दे रही समाचार ।
परम प्रेम की किरण का, होगा शुभ संचार ।।३३।।
मेरा मन तुझ से मिला, हो जाय एक तार ।
प्रेम तरंग उमंग में, भूले भेद विचार ।।३४।।
नयन सुनिर्मल धाम में, राम निरंजन आय ।
शोभो पुतली सेज पर, अपना मेल बसाय ।।३५।।
त्रिकुटी में दर्शन करूँ, पलकें परदे डाल ।
इससे न तो बाहर अब, जाय देव दयाल ।।३६।।
करूँ मैं तेरी आरति, मेल रागिणी गाय ।
माला जप लूँ मेल की, मन का सुमन फिराय ।।३७।।

प्रेमी को पतियां लिखूँ, वेग मिलो ही धाय ।
अपने की विपदा हरो, अपना आप दिखाय ।।३८।।
अवलम्बन तो एक है, आश-लता शुभ शाख ।
अपना दर्शन दान कर, रख ले अपनी साख ।।३६।।
भक्ति लेखनी हाथ ले, हृदय पट पर लेख ।
प्रेम अश्रु से है लिखा, दया नयन से देख ।।४०।।
पत्र प्रिय को मैं लिखूं, देश न जानूँ धाम ।
राम अनामी का पता, कहा मनोहर नाम ।।४१।।
अथाह सागर बन्ध का, दिखे न परला पार ।
तड़पे मन मधु मेल को, देख तरंग अपार ।।४२।।
नौका है हरि नाम की, केवल तारनहार ।
इस से पाऊँ पार मैं, करूँ अपना निस्तार ।।४३।।
तू मिले सभी कुछ मिले, सुख सम्पत् शुभ सार ।
दर्शन से देखा गया, यह वह सब संसार ।।४४।।
तू दूर सभी दूर हैं, तू पास सभी पास ।
तेरे उत्तम मेल में, है सुख-सिद्धि-निवास ।।४५।।
प्रेम सुधा को पान कर, हुआ जभी मैं चूर ।
रहा न मुझ से दूर तू, मैं नहीं तुझ से दूर ।।४६।।
सत्ता ज्ञान सम्बन्ध से, है तू मैं सम ठौर ।
ऐसे तू नहीं और है, मैं नहीं हूं और ।।४७।।
सुषुप्ति समाधि में यथा, लय हो वृत्ति जाल ।
ऐसी लयता मेल में, समझूँ ईश दयाल ।।४८।।
अब की बिछुड़ा जो मिलूँ, छोडूँ नहीं उत्संग ।
तू में मैं को मेल कर, मिलना करूँ अभंग ।।४६।।

अनन्त चेतन से मिलूँ, प्रेम भक्ति को जोड़ ।
सत्ता भाव अपना कभी, मैं तो जाय न छोड़ ।।५०।।
ज्योति मिला कर ज्योति में, मेल नाद में नाद ।
राम मेल का मधुरतम, पाऊँ अमृत स्वाद ।।५१।।
मिले लक्ष में लीनता, मिले परम पद ज्ञान ।
राम में समता लाभ हो, पा कर मेल महान् ।।५२।।
नारायण जगदीश जी, मेल दीजिए दान ।
मार्ग मेल बताइए, मिले मेल में मान ।।५३।।
अपने जन का मेल दे, राम नाम का मेल ।
पावन कार्य मेल दे, अपनी लीला खेल ।।५४।।
मेल सुमाला दे मुझे, मेरे मन के राम ।
मानूँ मंगल मेल में, जप कर आठों याम ।।५५।।

गुरु महिमा

सद्‌गुरु आप समर्थ हैं, सन्-मार्ग के बीच ।
बचा कर मिथ्या से मुझे, हरे भाव सब नीच ।।१।।
पथ में प्रकटे सद्‌गुरु, हस्त पकड़ कर आप ।
ताप तप्त को शान्त कर, दिया नाम का जाप ।।२।।
भ्रम भूल में भटकते, उदय हुए जब भाग ।
मिला अचानक गुरु मुझे, लगी लगन की जाग ।।३।।
कुमति कूप में पतन था, पकड़ निकाला हाथ ।
धाम बताया ईश का, दे कर पूरा साथ ।।४।।
सद्‌गुरु की महिमा बड़ी, विरला जाने भेद ।
भारे भव भय को हरे, और पाप के खेद ।।५।।

सद्गुरु जी की शरण में, मनन ज्ञान का कोष ।
जप तप ध्यान उपासना, मिले शील संतोष ।।६।।
सच्चे संत की शरण में, बैठ मिले विश्राम ।
मन माँगा फल तब मिले, जपे राम का नाम ।।७।।
गुरु को करिए वन्दना, भाव से बारम्बार ।
नाम सुनौका से किया, जिस ने भव से पार ।।८।।
गुरु तो ऐसा चाहिए, स्वार्थ से हो पार ।
परमार्थ में रत रहे, कर पर हित उपकार ।।६।।
वास करे जिस स्थान में, कर हरि नाम विख्यात ।
ईश प्रेम बाँटे सदा, पूछे जात न पात ।।१०।।
राम-रंग रंगा रहे, जो आय करे लाल ।
ओंकार निराकार को, जाने राम अकाल ।।११।।
नाम रूप जिस का नहीं, हैं उस के सब नाम ।
भेद सुगुरु से पाइए, ओंकार है राम ।।१२।।
सदगुरु चन्दन सम कहा, भगवद्-प्रेम सुवास ।
निश दिन दान करे उसे, जो जन आवे पास ।।१३।।
सच्चे सन्त के संग से, चढ़े भक्ति का रंग ।
नित्य सवाया वह बढ़े, कभी न होवे भंग ।।१४।।
गुरु संगति में बैठिए, सीखिए भक्ति-भेद ।
सुनिए ज्ञान विचार को, पुस्तक दर्शन वेद ।।१५।।
लोभी दम्भी गुरु घने, मठधारी अनजान ।
गद्दी के रद्दी हैं घने, उन में सार न मान ।।१६।।
सुगुरु से यहाँ समझिए, ज्ञानी अनुभववान् ।
बोधक धर्म सुकर्म का, दाता ज्ञान सुध्यान ।।१७।।

सत्गुरु की पहचान यह, उपरति प्रेम विचार ।
वीत-रागता सुजनता, रहित हठ पक्ष विकार ।।१८।।
शान्ति भक्ति संतोष का, कोश, रोष से पार ।
राम नाम में लीन जो, प्रतिमा प्रेम प्यार ।।१६।।
ऐसा गुरुवर जानिए, जंगम तीर्थ राज ।
ध्यान ज्ञान हरि नाम से, सफल करे सब काज ।।२०।।
पथ प्रदर्शक वह कहा, परमार्थ की खान ।
कर दे पूर्ण कामना, दे कर भक्ति सुदान ।।२१।।

भक्ति

भक्ति करो भगवान की, तन्मय हो मन लाय ।
श्रद्धा प्रेम उमंग से, भक्ति भाव में आय ।।१।।
भक्ति बीच भगवान् है, भक्तों बीच भगवान् ।
भक्ति भाव में रहे हरि, यही भक्ति का ज्ञान ।।२।।
जन जन में हरि जोत है, विद्यमान सब ठौर ।
भक्ति-हीन जाने नहीं, यों भटके सब ओर ।।३।।
सुभक्ति अपने राम की, नहीं और से काम ।
निराकार भगवान् है, सब से ऊँचा धाम ।।४।।
सत्य नाम शुभ नाम जो, वही जान ओंकार ।
वही राम के नाम से, सन्तन कहा पुकार ।।५।।
करो भक्ति उस धाम की, पकड़ नाम की डोर ।
सिमरन चिन्तन ध्यान से, हो दर्शन की भोर ।।६।।
प्रेम भाव से नाम जप, तप संयम को धार ।
आराधन शुभ कर्म से, बढ़े भक्ति में प्यार ।।७।।

सेवन मन में नाम का, भजन ध्यान गुण-गान ।
भावों सहित उपासना, भक्ति लीजिए जान ।।८।।
श्रद्धा प्रेम से सेविए, भाव चाव में आय ।
राम राधिए लगन से, यही भक्ति कहलाय ।।६।।
आस्तिकता हो सुदृढ़, श्रद्धा प्रीति अटूट ।
मन में निश्चय अचल हो, तब हो भक्ति अखूट ।।१०।।
बसे भक्ति में भावना, नियम धर्म शुभ काम ।
जप तप संयम साधना, और ईश का नाम ।।११।।
रस जीवन का जानिए, यही धर्म का सार ।
ज्ञान कर्म का मर्म है, नहीं तो सब असार ।।१२।।
भक्ति बिना तो फोक है, सारा कर्म कलाप ।
तर्क ज्ञान थोथा सभी, कथनी निरी विलाप ।।१३।।
भक्ति हीन जो धर्म है, है बालू का कोट ।
नकली मोती लाल है, लगे खरे सा खोट ।।१४।।
भक्ति धर्म को समझिए, आत्म-ज्ञान निधान ।
मर्म धर्म का मानिए, मुक्ति सुगति सोपान ।।१५।।
भक्ति में ज्ञेय ज्ञान है, ज्ञाता जाने ज्ञेय ।
कर के कर्म उपासना, तज कर सब जो हेय ।।१६।।
भक्ति न होवे ज्ञान में, किंचित् मिले न ज्ञान ।
प्रेम लगन श्रद्धा बिना, शुभ न करे अनजान ।।१७।।
दान पुण्य हो प्रेम से, सेवा पर उपकार ।
भक्ति से जाति देश हित, होवे सर्व सुधार ।।१८।।
परम पुरुष की राधना, करते भक्त विद्वान ।
संयम साधन ध्यान ही, भक्ति धर्म में जान ।।१६।।

अतः समन्वय भक्ति में, ज्ञान कर्म का मान ।
इस से ऋषि मुनि संत सब, करते भक्ति विधान ।।२०।।
भक्ति भरी नदियां बहें, वृष्टि में गहराय ।
छम छम बरसें प्रेम की, बादलियां जब आय ।।२१।।
लगे झड़ी सत् संग में, हरि यश वर्णन संग ।
उछलें प्रेम तरंग तब, उमड़े भक्ति सुगंग ।।२२।।
जो जन करे स्नान वहां, सो पावे भव पार ।
जान भक्ति भागीरथी, प्रेम भावना धार ।।२३।।
पीना चाहे भक्ति रस, मन चाहे अभिमान ।
एक कोश में दो खड्ग, देखे सुने न कान ।।२४।।
नाम मान, मन एक में, एक समय न समाय ।
तेज तम तो एक स्थल, कहीं न देखा जाय ।।२५।।
मोटा तन अभिमान का, लांघे न भक्ति द्वार ।
हस्ति यथा मणि छिद्र से, पा सके नहीं पार ।।२६।।
जिस मन में छल कपट हो, उस में न भक्ति मेल ।
जिस तरु जड़ में आग हो, उस पर चढ़े न बेल ।।२७।।
द्वेष कलह विवाद जहां, वहां न भक्ति उमंग ।
यथा ही मिल कर न रहे, अग्नि गंग के संग ।।२८।।
शंका-शील में भक्ति न, नहीं प्रेम लवलेश ।
शंका रहे न भक्त में, भज कर राम महेश ।।२६।।
संशय वाद वितर्क हो, जहां असत्य विचार ।
भक्ति वहां उपजे नहीं, बढ़े न श्रद्धा प्यार ।।३०।।
श्रद्धा निश्चय हीन में, भक्ति न अंकुर लाय ।
केसर कमल कपूर कब, ऊसर में उपजाय ।।३१।।

दया दान उपकार शुभ, सेवा विमल विचार ।
उपजते भक्ति में यथा, सर में पद्म अपार ।।३२।।
प्रतिपन्न तव शरण में, मैं हूँ मेरे ईश ।
सुरस भक्ति में दे मुझे, भजूँ तुझे जगदीश ।।३३।।
भक्ति करूँ तेरी सदा, हो कर धुन में लीन ।
निर्भय पद तेरा मिले, बनूँ न जन का दीन ।।३४।।

लगन

उदय हुए हैं पुण्य अब, लगी लगन की लाग ।
श्रद्धा प्रेम सुभक्ति के, भाव गये हैं जाग ।।१।।
अलख लखन की लगन है, अलख लोक का भाव ।
परम लाभ की लौ लगी, लगे लक्ष्य में चाव ।।२।।
लगन लगा कर राम में, हों सफल सभी काम ।
राम नाम में ला लगन, पावे पद अभिराम ।।३।।
मन में पूरा चाव जो, प्रेम लहर उमड़ाय ।
व्याकुलता जो मेल की, लगन वही कहलाय ।।४।।
परम प्रेम की भावना, उछले सिन्धु समान ।
प्रेम स्थान के मेल को, वही लगन पहचान ।।५।।
परम गाढ़ धुन हो लगी, कर जी जीवन एक ।
रात दिवस हो ध्यान वह, लगन का यह विवेक ।।६।।
लक्षण हैं लगी लगन के, रहे लक्ष्य में लीन ।
प्रबल प्रेम तरंग हो, अन्य लगन से हीन ।।७।।
प्रेमी में हो गाढ़तम, भक्ति भरा अनुराग ।
प्रेम मेल की वेदि पर, तन धन तक दे त्याग ।।८।।

वैरागी हो सर्व से, धार राम का राग।
मेल ध्वनि में मस्त हो, पूरा लिये विराग ।।६।।
सिर दे कर सौदा करे, स्नेह सरस के साथ।
टाला टले न लगन से, कभी न छोड़े हाथ ।।१०।।
छिन्न भिन्न काया करें, वैरी भरे विरोध।
निसरे नस नस से तभी, लगन किये अनुरोध ।।११।।
दुर्बल रहे उदास वह, लगन रही जिस लाग।
फिरे मत्त अन्दर लिये, गाढ़ लगन की आग ।।१२।।
पग पग पर डग मग करे, चले निराली चाल।
लगन लटक में डोलता, बोले तज सुर ताल ।।१३।।
साहस में हो सूरमा, जोखम में तन डाल।
करे काम अद्‌भुत सभी, रक्खे लगन सम्भाल ।।१४।।
राम लगन में मग्न हो, फिरे न पीछे पैर।
चाहे विरोधी हों सब, करें बन्धु भी वैर ।।१५।।
शीत उष्ण माने नहीं, जाने खान न पान।
हानि लाभ निन्दा स्तुति, सहे मान अपमान ।।१६।।
केवल राम सुलगन में, तत्पर ही हो जाय।
विरहिन चकवी रात में, ज्यों चकवे को ध्याय ।।१७।।
अहर्निश राखे राम धुन, अपना आप भुलाय।
धन की धुन में जन यथा, दें सुख दुःख बिसराय ।।१८।।
लगन तथा तो चाहिए, उमड़े सुभक्ति पाय।
पूर्ण शशि की ओर ज्यों, सागर उमड़ा जाय ।।१६।।
रहे मग्न मन लगन में, भूले सर्व विकार।
प्रिया पति में ज्यों रता, बिसरे अन्य विचार ।।२०।।

सच्ची लगन में मग्न मन, हो प्रेमी के पास ।
पद्म कमल के कुंज में, जैसे बसे सुवास ।।२१।।
प्रेमी का हो अन्तरा, चाहे कोस हज़ार ।
लगन प्रेम के पास है, ज्यों तार समाचार ।।२२।।
प्रेमी को प्रेमी मिले, अन्तर को कर दूर ।
सिन्धु से ज्यों आ मिले, पर्वत का जल पूर ।।२३।।
जिस पै जिस की हो लगन, सब तज उस पै आय ।
वन उपवन को लांघ कर, भ्रमर कमल पर जाय ।।२४।।
लगन राम में हो लगी, हो चित्त तदाकार ।
राम दया आवे यथा, बिना तार का तार ।।२५।।
आकर्षण हो लगन का, आशिष आवें आप ।
ग्रहगण में आय यथा, सूर्य किरण कलाप ।।२६।।
लगन सबलतर हो जभी, राम दया हो पास ।
नभ से आवें वेगयुत्, जैसे तेज उल्लास ।।२७।।
लगन सुतेज से आत्मा, पावे उच्च विकाश ।
जल सूक्ष्म हो तेज से, यथा चढ़े आकाश ।।२८।।
लगन लगाओ नाम में, नामी का कर ध्यान ।
नामी मिलता नाम में, यही लगन का ज्ञान ।।२६।।
लगन लगे हरि भजन की, राम मिलन की मांग ।
गाढ़ लगन के भक्त जन, जाते भव जल लाँघ ।।३०।।
हे राम मुझे दीजिए, अपनी लगन अपार ।
अपना निश्चय अटल दे, अपना अतुल्य प्यार ।।३१।।

नाम की महिमा

उत्तम नाम अनाम का, राम नाम सुखकार ।
जिसे सिमर बहु जन तरे, भव सागर से पार ।।१।।
नाम सदा आराधिए, वृत्ति वचन लगाय ।
उस रसना में रस बसे, जिस से नाम जपाय ।।२।।
महिमा महा, सुनाम की, मुनिगण पाय न पार ।
ज्ञानी ध्यानी योगिजन, गए कथन में हार ।।३।।
मन के मनके से जपे, भाव सहित हरि नाम ।
सर्व सिद्धि को लाभ कर, होवे पूर्ण काम ।।४।।
अन्तःकरण की कोठड़ी, आसन सुरति रमाय ।
अन्तर्मुखी मुद्रा किये, साधिये नाम ध्याय ।।५।।
प्रत्याहार विचार कर, मन को मन में लाय ।
धार धारणा नाम में, करिए मुक्ति उपाय ।।६।।
स्थान धारणा से सुगम, नाम धारणा जान ।
विधि से नाम मिले जभी, होवे अपना ज्ञान ।।७।।
नाम जगाओ लगन से, कर के ध्यान सुजाप ।
प्रेम भक्ति शुभ संग से, दे कर अपना आप ।।८।।
सहज से उपजे जो धुन, जपते मन में जाप ।
वही अनाहत नाद है, करे मन को निष्पाप ।।६।।
सब से ऊँचा नाद जो, उस में गूँजे राम ।
सत्य नाम सुखकार वह, परम शांत है धाम ।।१०।।
राम राम जब आ रमे, मन मुख में कर वास ।
ध्वनि सहज से हो तभी, मुक्ति मानिये पास ।।११।।

चंचल तरल तरंग सह, माया सिंधु अगाध ।
नाम नाव में रूढ़ हो, पावे पार अबाध ।।१२।।
नस नस में होवे बसा, पाप कर्म का रोग ।
नाम सुरस को पान कर, पावे पद नीरोग ।।१३।।
शांत भाव से सिमरिये, यदि नाम एक बेर ।
घास पात सब पाप के, बनें भस्म के ढेर ।।१४।।
पड़े पाप के पुंज में, जो हो सुमेरु मान ।
एक चिंगारी नाम की, कर दे राख समान ।।१५।।
होवे अविद्या घोरतर, अन्धकार फैलाय ।
सूर्योदय से ज्यों निशा, नाम से त्यों नसाय ।।१६।।
अन्तकाल जो जन जपे, जन्म जीत वह जाय ।
वेदागम का मर्म है, समझो निश्चय लाय ।।१७।।
चर्ममयी तन मश्क में, भरे नाम की फूँक ।
पाप नदी इस से तरे, जाय न किंचित् चूक ।।१८।।
चिन्तामणि हरि नाम है, सफल करे सब काम ।
महामन्त्र मानो यह, राम राम श्री राम ।।१६।।
नाम धाम भी एक है, नाम सुनामी एक ।
वाच्य वाचक एक हैं, यही नाम में टेक ।।२०।।
नाम नहीं जिस जीभ पर, जान निरा वह मांस ।
नाम बिना मन सुन्न है, तन ज्यों सूखा बांस ।।२१।।
साधो सिमरो नाम को, यही पते की बात ।
सहज सुगम है योग यह, रहित विघ्न उत्पात ।।२२।।
नाम-ध्यान बिन योग जो, मान निरा है रोग ।
खप खप मरना कष्ट है, समझ कर्म का भोग ।।२३।।

सन्तों ने समझा मर्म, लखा नाम को धाम ।
अलख निरंजन को कहा, नारायण वा राम ।।२४।।
नाम पकड़िए भाव से, जीभ होठ के बीच ।
अजपा जाप होवे शुभ, धो दे मानस कीच ।।२५।।
आप सुरसना जप करे, मन माने तब मोद ।
वृत्ति वश में हो तभी, हो संकल्प निरोध ।।२६।।
दीनदयालु देव तू हि, है निज जन का मान ।
अपने जन को दीजिए, अपना नाम सुदान ।।२७।।
निज जन का है देव तू, आन बान धन ज्ञान ।
दया दान निज नाम से, त्राण करो भगवान् ।।२८।।

सिमरन

साधो प्रातः सिमरिए, परम पुरुष भगवान् ।
पालक सन्तों का सदा, जो है प्रभु महान् ।।१।।
है नेता शुभ कर्म में, शुभ पथ दर्शक राम ।
भक्ति प्रेम से गाइए, उस के मिल गुण ग्राम ।।२।।
करो आह्वान देव को, राजा सब का जान ।
परम पिता जो जगत् का, सर्व गुणों की खान ।।३।।
सायं सिमरो ईश को, मन का जो प्रकाश ।
जागते ज्योति ज्ञान दे, सोते करे विकाश ।।४।।
बहुत दूर की सूझ हो, मन को जिस के साथ ।
ज्योति का एक धाम वह, सिमरो सब का नाथ ।।५।।
जिस की प्रेरणा सुकर्म, सिमरन दान सुज्ञान ।
जिसे स्मर मन मधुर हो, सो सिमरो भगवान् ।।६।।

ज्ञान-किरण का मूल जो, सब का जो आधार ।
मन में भरे सुबोध जो, सो सिमरो सुखकार ।।७।।
ऋषि मुनि जन जिस को भजें, सन्त भक्त गुणवंत ।
सिमरें जिस को यती सती, सिमरो देव अनन्त ।।८।।
सकल जगत् जिस में जुड़ा, ज्यों यंत्र में तार ।
वही हरि सदा सिमरिए, सब सारों का सार ।।९।।
नित्य सवेरे सिमरिए, अहर्निश तीनों काल ।
कभी तो सिमरन सुध्वनि, सुनेगा हरि दयाल ।।१०।।
सिमर सिमर कर नाम को, हुए सुजन भव पार ।
पापी पतित अधम बड़े, सुधर तरे संसार ।।११।।
प्रेम भाव से सिमरिए, परम मधुर शुभ नाम ।
तीन ताप त्रिदोष हर, देवे शान्ति विश्राम ।।१२।।
सिमरन चिन्तन नाम का, विनय कर्म शुभ ध्यान ।
आत्म-उन्नति के सभी, साधन किये विधान ।।१३।।
इस युग में ये कीजिये, सिमरन स्नान सुदान ।
सेवा-भाव उपासना, हैं पांचों गुण खान ।।१४।।
सिमरन में सब सुख बसें, सिमरन में हरि आप ।
वहां नामी निवास है, जहां नाम का जाप ।।१५।।
साधो जपिए नाम को, वही भला है काम ।
करो कमाई नाम की, मुख मांगा लो दाम ।।१६।।
जिस घट में हरि नाम है, वहां न काम का कोप ।
द्वेष ईर्ष्या तो नहीं, नहीं पाप आरोप ।।१७।।
काया चन्दन तरु कहा, लिपटे अवगुण नाग ।
नाम गरुड़ की गूँज सुन, जावें सब ही भाग ।।१८।।

जगे नाम का दीप जब, घट मन्दिर के देश ।
अज्ञान अविद्या सब मिटे, शांत हों दोष क्लेश ।।१६।।
नाम मंत्र सुजाप से, बाधा विघ्न विनाश ।
होता निश्चय जानिए, पाप-वासना नाश ।।२०।।
चंचल मन पारा तरल, नाम सुगन्धक जान ।
सिमरन कर कजली करो, निश्चलता हो भान ।।२१।।
घट को खाली कीजिए, काढ़ वासना धूर ।
सिमरन मोती डाल कर, फिर करिए भरपूर ।।२२।।
पाप पवन अति ही मलिन, मन घट में भर जाय ।
नाम प्रेम की पवन से, रखिए शुद्ध बनाय ।।२३।।
जो न भजे हरि नाम को, है सो मरे समान ।
धौंकनी ज्यों सुनार की, ले सांस बिना प्राण ।।२४।।
आत्मबोध से हीन जो, जपे न नाम सुपाठ ।
कथनी करनी फोक है, उस की काया काठ ।।२५।।
पत्र पुष्प शुभ नाम बिन, काया कही करीर ।
सिमरन चिन्तन ध्यान बिन, नीरस सभी शरीर ।।२६।।
स्मरण योग कहा सुगम, कठिन अन्य हैं योग ।
हरि दर्शन हरि धाम दे, सिमरन हरता रोग ।।२७।।
सिमरन में मन कीजिए, घट में ज्यों पनिहार ।
चले हँसती सखी से, चूके नहीं लगार ।।२८।।
सिमरन में मन जोड़िए, सुर में हिरण समान ।
सुने वधिक के गीत को, एक ध्यान धर कान ।।२६।।
चित्त लगावे भजन में, धन में ज्यों कंगाल ।
छिन भर तो बिसरे नहीं, पल पल करे सम्भाल ।।३०।।

राम नाम यों सिमरिए, यथा सती निज कन्त ।
विरहिन तड़पे रात दिन, रक्खे ध्यान एकान्त ।।३१।।
राम नाम यों सिमरिये, ज्यों स्वसुत को मात ।
गुण गा उस के प्रेम से, करे उसी की बात ।।३२।।
ऐसे सिमरिए नाम को, बछड़े को ज्यों गाय ।
बां बां करती ओर उस, जावे दौड़ लगाय ।।३३।।
मीत मिला मन मित्र को, ज्यों सिमरे दिन रात ।
ऐसे सिमरिए राम को, करिए पावन गात ।।३४।।
भूखा भोजन को भजे, प्यासा ज्यों जलपान ।
भजे डूबता तीर को, त्यों सिमरो भगवान् ।।३५।।
राम राम ही सिमरिए, मन को ठीक टिकाय ।
यथा लक्ष्य में कुशल जन, सीधा वाण बसाय ।।३६।।
सिमरे ऐसे नाम को, लगन प्रेम में आय ।
रोगी औषध ज्यों भजे, अति आतुरता लाय ।।३७।।
सिमरन में मन राखिए, चाँद में ज्यों चकोर ।
देखे दृष्टि एक से, सायं से कर भोर ।।३८।।
राम नाम यों सिमरिए, कर के निश्चल ध्यान ।
नट ज्यों नाचे बांस ले, रख कर भार समान ।।३९।।
चित्त लगाकर भजन में, मुख से वचन न बोल ।
द्वार बाहरी बन्द कर, भीतर के पट खोल ।।४०।।
तप संयम साधन व्रत, सब सिमरन में जान ।
भक्ति भजन के भेद को, समझे भक्त सुजान ।।४१।।
वश कर तन मन वचन को, जप में ध्यान लगाय ।
क्षण भर का ऐसा भजन, भारे पाप भगाय ।।४२।।

साँझ सबेरे सिमरिए, मुद मंगलमय नाम ।
अन्तर्मुख हो ध्याइए, नारायण श्री राम ।।४३।।
हे राम मुझे दान कर, अपना सिमरन आप ।
लगन प्रेम से मैं जपूँ, परम पुण्यमय जाप ।।४४।।

सेवा

सेवा धर्म सुधर्म है, है यह उत्तम काम ।
अर्पण कर भगवान् को, करे सेवा निष्काम ।।१।।
कृपा करुणा प्रेम से, करिए परहित धाय ।
तज कर फल की कामना, सो सेवा कहलाय ।।२।।
कर्म कर्तव्य जान कर, दीन हीन को दान ।
देना, दुःखी उभारना, सेवा कहें सुजान ।।३।।
अहं भावना त्याग कर, और छोड़ अभिमान ।
स्वार्थ-परता त्याग कर, सेवा हो गुणखान ।।४।।
सेवा में सब गुण बसें, पुण्य-कर्म उपकार ।
दया दान हित नम्रता, उन्नति पतित-सुधार ।।५।।
परमार्थ यह समझिए, परम धाम सोपान ।
परम प्रभु की साधना, दायक उत्तम ज्ञान ।।६।।
सेवा सफला सिद्धि है, सेवा जीत अपार ।
सेवा में रस सुख बसे, स्नेह सम्बन्ध प्यार ।।७।।
भावना बन्धु भाव की, करना देश उद्धार ।
सेवा में ये सिद्ध हों, जाति विजय व्यापार ।।८।।
सेवक सुजन सराहिए, जो है जन सिंगार ।
धर्मवीर वह मानिए, मानव मण्डल सार ।।९।।

हाथ जोड़ मांगूँ हरे, सेवा कृपा प्यार ।
विनय नम्रता दान दे, देना सब कुछ वार ।।१०।।
तेरे जन के हित लगे, तन मन धन सब ठाठ ।
आत्मा तुझ में ही रमे, मुख में तेरा पाठ ।।११।।
सन्त की सेवा दान कर, जो हो और अनाथ ।
दुर्बल दुखिया दीन की, दे सेवा मम नाथ ।।१२।।
साधो सेवा साधिए, मन से मान मिटाय ।
हरिजन को सन्तोषिए, ऊँचा नीच भुलाय ।।१३।।
साधक ! सेवा सरलता, सत्य शील को साध ।
दया सुजनता साध ले, तज कर सब अपराध ।।१४।।
सेवा में हरि आप हैं, सेवा हरती पाप ।
नीचे झुक सेवा करो, हरो दीन सन्ताप ।।१५।।
देख देव को दीन में, देवालय ले मान ।
दया देव का देहरा, दया दीन में जान ।।१६।।
दीन सेव कर दूर हों, हठ ऐंठन अतिमान ।
घृणा बड़प्पन न रहें, भेद भाव का ज्ञान ।।१७।।
राम मिले हो नम्र ही, हरिजन बने विनीत ।
परमार्थ हो नम्र बन, पले बन्धुपन प्रीत ।।१८।।
जिस मस्तक में ज्ञान है, आत्मा हरि का भान ।
फलित पेड़ सम नम्र वह, रहे भूल हठ-बान ।।१६।।
थोथा बादल दूर हो, नीचा भरा सुहाय ।
श्री हरि के दरबार में, नीचा शोभा पाय ।।२०।।
पूजें सब जन पैर को, झुक-झुक सीस नवाय ।
नीचा उत्तम ऊँच से, मानो मर्म बताय ।।२१।।

भक्ति जाप भगवान् का, भजन कर्म शुभ चाल ।
सेवा संगति संत की, उच्च कर्म सम्भाल ।।२२।।
सेवा में सिर दीजिए, तन की ममता खोय ।
दीप-शिखा को काटिए, तभी चांदना होय ।।२३।।
काँट छाँट कर के बढ़ें, तरु केले के कुँज ।
सीस शरीर समर्प कर, बढ़े तेज का पुँज ।।२४।।
जाति धर्म में बलि बने, जाय न जी से हार ।
सातों सागर लाँघ वह, कर ले बेड़ा पार ।।२५।।
बीज समान समाइए, सभी गाल कर अंग ।
कर्म धर्म का पेड़ तब, उपजे सेवा संग ।।२६।।
बत्ती यथा जल जाइए, जाति धर्म के काज ।
मुख मन पीठ न फेरिए, मान राम महाराज ।।२७।।
सूरमा सो सराहिए, लड़े धर्म के हेत ।
सुजन जाति शुभ सत्य हित, उष्ण करे रण खेत ।।२८।।
सन्तो ! सेवक सूरमा, क्रोध लोभ को मार ।
सुकर्म करे निष्काम हो, स्वार्थ हठ को टार ।।२६।।
साधो ! सेवक है बड़ा, भाना हरि का मान ।
सुख दुःख में सम हो रहे, सब में रहे समान ।।३०।।
सेवक सब से ऊँच है, नीच अधम वे लोक ।
करें कुकर्म अधर्म अति, मानें रोक न टोक ।।३१।।
दीन दास हूँ द्वार का, सेवा दे कर दान ।
सेवा सदन बनाइए, मुझ को हे भगवान् ।।३२।।
तव जन सेवा में सदा, मेरा बढ़े सुभाव ।
तेरे पथ में अर्प सब, चढ़े चौगुना चाव ।।३३।।

भक्त की भावना

भाने तेरे से प्रभु, भला भद्र हो जाय ।
जग में सब नर-नारि का, कष्ट न कोई पाय ।।१।।
सुख होवे संसार में, दुःख न होवे भान ।
भक्त बनें तेरे सभी, तुझे भजें भगवान् ।।२।।
मेरा तन मन्दिर बने, मन में नाम बसाय ।
वाणी में हो कीर्तन, परम प्रेम में आय ।।३।।
उत्तम मेरे कर्म हों, राम-इच्छा अनुसार ।
तुझ में सब जन ही बनें, रत्न पिरोए तार ।।४।।
तेरे नियति सुनियम में, मानें सब संतोष ।
सब में भ्रातृ-भाव हो, त्याग द्वेष भी रोष ।।५।।
मिल जुल कर सब जन रहें, प्रेम भाव के साथ ।
सदाचार उपकार में, सभी बढ़ावें हाथ ।।६।।
बढ़े शुभ बन्धु भावना, बने सुगठित समाज ।
सब जन में हो एकता, सुधरें सब के काज ।।७।।
जनता में ज्योति जगे, जाग जाय जन लोक ।
सभी सार-ग्राही बनें, तज कर नीरस फोक ।।८।।
उद्यम कर्म उद्योग से, पर का कर उपकार ।
दीन हीन जन देख कर, सब जन बने उदार ।।६।।
दिल में दया उदारता, धृति वीरता प्यार ।
मन में शक्ति विचारता, सब को दे यह सार ।।१०।।
आधि-व्याधि से जन बचें, दूर तीन हों ताप ।
सभी ईतियां नष्ट हों, पास न आवे पाप ।।११।।

खेत सभी फूलें फलें, हरे भरे हों बाग ।
वन उपवन सुखकर बनें, उपजावें अनुराग ।।१२।।
जय विजय बसे देश में, फैले सुनीति न्याय ।
स्व पर का भय भी कभी, जन को नहीं सताय ।।१३।।
तेज राजे राज्य में, जागे जागृति जोत ।
जीवन जी से सर्व जन, रहें ओत शुभ प्रोत ।।१४।।
खान पान सब को मिले, दूध पूत धन धान ।
देह सुगठित सुपुष्ट हो, द्वेषी करें न हान ।।१५।।
मार्ग सत्य दिखाइए, सन्त सुजन का पाथ ।
पाप से हमें बचाइए, पकड़ हमारा हाथ ।।१६।।
भक्ति प्रेम से सींचिए, कर के दया दयाल ।
अपनी श्रद्धा दान कर, सब को करो निहाल ।।१७।।
तेरा जय जयकार हो, दश दिश चारों कूँट ।
नाम अमीरस मधुर का, पान करें सब घूँट ।।१८।।
भजन कीर्तन गान हो, तेरा सब ही देश ।
सुकथा वार्ता हो सदा, श्रद्धा बढ़े विशेष ।।१९।।
नाम नाद की गूँजती, मधुर सुरीली तान ।
राम राम के शब्द में, सुनें सभी के कान ।।२०।।
तेरी महिमा हो सदा, यश का होवे गान ।
एक परम तू ईश है, यह लेवें सब मान ।।२१।।

वियोग

मेरे प्यारे हे पिता, परम पुरुष भगवान् ।
तुझ से बिछड़ा विषम बन, मैं भूला निज ज्ञान ।।१।।

विषमता अति वियोग है, समता है शुभ योग ।
समता में तू आप है, विषम हुए हैं रोग ।।२।।
त्रिगुणमयी माया अति, विषम कहें गुणवान् ।
जिन में तीनों गुण बसें, वे ही माया स्थान ।।३।।
सत्त्व, रजस् ही तमस् हैं, माया के गुण तीन ।
सृष्टि इन की विषमता, समता में हो लीन ।।४।।
राग-द्वेष की विषमता, माया की है चाल ।
मद मोह ममता में पड़, फैले माया जाल ।।५।।
रात अविद्या अज्ञान की, है माया का काम ।
इस में भटका मैं फिरा, तुझे भूल कर राम ।।६।।
माया मोह की मूर्ति, मारीची रच खेल ।
छल बल से तव जन छले, होने पाय न मेल ।।७।।
तुझ से करे वियोग यह, अन्तःकरण में छाय ।
आत्मा को घेरे बढ़ी, गाढ़ अज्ञान बढ़ाय ।।८।।
पड़ कर माया घोर में, मैं वियोगिनी होय ।
विरह वेदना झेलती, रही निरन्तर रोय ।।९।।
जन कहें इच्छा कामना, भारी तृष्णा चाह ।
वह उस सुख को रो रही, गहरी भर कर आह ।।१०।।
विषय सुखों की भटकना, कहें लोभ जन मोह ।
मैं कहूँ रही ढूँढ वह, जिस से हुआ बिछोह ।।११।।
मन में जितनी कल्पना, जग सुख मांग अपार ।
सच्चे सुख से हो पृथक्, सुरती रही पुकार ।।१२।।
आत्मपद से दूर हो, आत्मज्ञान से दूर ।
फिरे पाप की पोट ले, आत्मा हो कर चूर ।।१३।।

अपने प्रेम मिलाप का, दे पूर्ण संयोग ।
राम ! सुदर्शन दे मुझे, हर कर विरह वियोग ।।१४।।
विरह वियोग उत्ताप की, विषम वनी के बीच ।
सूखे काया कोमला, बदली बन कर सींच ।।१५।।
जन्म-जन्म भूला फिरा, पाया राम न नाम ।
अब की यदि संयोग हो, सिमरूँ आठों याम ।।१६।।
बालक बिछड़ा भूल से, चल कर उलटे पन्थ ।
अब तो मार्ग दीजिए, पढ़ूँ नाममय ग्रन्थ ।।१७।।
अपने जन की सार ले, अपना विरद विचार ।
भूल-चूक को कर क्षमा, पूरी कर सम्भार ।।१८।।
रोय विरही रात दिन, ले ले लम्बे सांस ।
पिता परम से दूर हो, लिया काल ने फांस ।।१६।।
तन दुबला मन से मिटा, भीतर भरा निराश ।
बिछड़ा दुखिया दीन है, कौन बन्धाय आश ।।२०।।
इस अटवी अति घोर में, भटक-भटक दुःख पाय ।
तुझ बिन मेरा कौन है, पथ जो मुझे बताय ।।२१।।
दावानल बन कर विरह, दग्ध करे मन बाग ।
दर्शन वर्षा से प्रभो, शांत करो यह आग ।।२२।।
प्रभु प्रियतम से पड़ी, पाप ताप में दूर ।
विरहिन काजल छोड़ दे, तिलक रेख सिन्दूर ।।२३।।
यह सिंगार न काम के, कर के महा वियोग ।
खाना पीना ओढ़ना, दीखे भारी रोग ।।२४।।
चेतना लगन त्याग कर, कर्म बन्ध में दीन ।
तड़पे विरह वियोग में, जल विहीन ज्यों मीन ।।२५।।

तड़पे विरहिन पाप में, कर के अति अनुताप ।
पश्चात्ताप में शाप में, करती बहुत विलाप ।।२६।।
तेरे देव ! वियोग में, क्षीण हुए सब गात ।
सगे सभी फीके लगें, मात तात सुत भ्रात ।।२७।।
विरहिन रटती राम को, नाम सुमाला फेर ।
काया कन्दरा में पड़, त्याग प्राण की मेर ।।२८।।
वैरागिन है राम की, रहती बनी उदास ।
अनुरागिन हरि नाम की, लिये प्रेम संन्यास ।।२६।।
सखियो, सुनो सहेलियो, पीड़ा विरह अपार ।
जाने जो अनुभव करे, वा जो देने हार ।।३०।।
विरहिन कलि को मसल दे, सहा वियोग न जाय ।
अथवा कमल खिलाइए, चारु चन्द्र चढ़ाय ।।३१।।
मुर्झाई देह बेल है, पा कर विरह उत्ताप ।
हरियावल को लाइये, बदली बन कर आप ।।३२।।
तेरे दर्श स्पर्श से, तन तरु तर हो जाय ।
वर्षा भक्ति ही प्रेम की, देवे तप्त बुझाय ।।३३।।
अब तो मम सुध लीजिए, दे कर नाम सुस्वाद ।
राम ! सुरस बरसाइए, दे संयोग अबाध ।।३४।।
दया करो मम देव जी, रहे वियोग न मूल ।
गाढ़ प्रेम से मैं मिलूँ, तुझे भेद को भूल ।।३५।।

अनुताप अश्रु

मेरे देव दयाल हे, दीन नाथ जगदीश ।
करुणा सिन्धु हे प्रभो, तीन लोक के ईश ।।१।।

हाथ जोड़ कर हूँ खड़ा, आकर तेरे द्वार ।
क्षमा करो अपराध मम, कर के अपना प्यार ।।२।।
मैं अपराधी जन्म का, भर कर भीतर पाप ।
पारा चढ़ा उत्ताप से, हुआ तभी अनुताप ।।३।।
मैं अपराधी हूँ बड़ा, अवगुण भरा विकार ।
क्षमा करो अपराध सब, अपना विरद विचार ।।४।।
दीन दुःखी बलहीन हूँ, पर तेरा हूँ दास ।
बहें अश्रु अनुताप के, देख पाप की रास ।।५।।*
आप समर्थ क्षमा धनी, मैं पापी गुणहीन ।
हूँ पर तेरे सिन्धु की, नन्हीं-सी मैं मीन ।।६।।
पाप किए तो अति किए, कभी न मानी हार ।
देव ! पड़ा हूँ द्वार पर, रख ले चाहे मार ।।७।।
कुकर्म कटुतम मैं किए, बन कर क्रूर कठोर ।
देव ! कृपा करुणा कर, दे कर शरण सुठौर ।।८।।
कांपूँ अपने कर्म से, निजू किए से खीज ।
आँसू धारा बन बहे, दिल जब गया पसीज ।।६।।*
पाप असुर पीछे पड़ा, सिर पर भारी पोट ।
कथं अभागा जन भगे, दे तू ही निज ओट ।।१०।।
अपने जन की राखिए, लाज आप हरि आज ।
भव सागर में डूबते, बनिए आप जहाज ।।११।।
तुझ से रहे न कुछ छुपा, मेरा मेरे नाथ ।
कर्म धर्म जाने सभी, सब ही संगति साथ ।।१२।।
दुर्गुण दोष अपार हैं, नख-शिख तक है खोट ।
कैसे छिपूँ अनन्त से, तिनके की कर ओट ।।१३।।

रहित विवेक विचार हूँ, विविध दोष की खान ।
अपना जन अब जान कर, पार करो भगवान् ।।१४।।
तन में बल सेवा नहीं, मन में प्रेम न भाव ।
बुद्धि ज्ञान भी लुट गया, पड़ पापों के दाव ।।१५।।
ऐसे दीन अनाथ का, है तू पालक नाथ ।
अंगुल पकड़ उठाइए, दे कर अपना हाथ ।।१६।।
अपने दोष निहार कर, पाप-वासना देख ।
पिछले पाप विपाक को, जन्म जन्म के लेख ।।१७।।
गंगा यमुना हैं बने, मेरे दोनों नैन ।
झरें अश्रु अनुताप के, लगातार दिन-रैन ।।१८।।*
लख कर कालख कर्म की, गया कलेजा कांप ।
मानों मिल कर सैकड़ों, दिल पर डोलें साँप ।।१६।।
पश्चात्ताप से ढबढबा, नयन बहायें नीर ।
काली करनी देख कर, काँपे सकल शरीर ।।२०।।*
मम मन मोती मिट गया, टूट चूर हो चूर ।
तेरा भरोसा है अब, मुझे न करना दूर ।।२१।।
जग में निंदा बहु करी, किया पिशुन अपमान ।
झूठे दोषारोप कर, दिया जनों को छान ।।२२।।
कलह कुवचन विवाद में, अपना माना मान ।
ऐसे मलिन मनुष्य को, क्षमा करो भगवान् ।।२३।।
तिलक देख कर भाल पर, घोषित किया कलंक ।
निज मुख पर कालख मले, जग में फिरा निश्शंक ।।२४।।
चन्दन मस्तक अन्य पर, देख किए आक्षेप ।
निज मुख माथा नहीं लखा, जिस पर कीचड़ लेप ।।२५।।

पर दोषों को देख कर, मन में माना मोद ।
अपना मन देखा नहीं, जिस में वैर विरोध ।।२६।।
पर से मुख को मोड़ कर, देखा अपना आप ।
अश्रु-तार टूटे तभी, देख घोर तर पाप ।।२७।।*
पापी देखत मैं फिरा, पापी मिला न और ।
सब से पापी मैं बड़ा, बना पाप की ठौर ।।२८।।
पापी से पापी पतित, पामर कुटिल अपार ।
मैं हूँ मेरे हे प्रभु, तू ही पार उतार ।।२९।।
बाहर मुख कर आप का, दिखे नहीं अपराध ।
घट में मुख कर देखिए, दीखें दोष अगाध ।।३०।।
निज दोषों को देख कर, काँप गए सब गात ।
टप टप टपके अश्रु तब, लगातार दिन रात ।।३१।।*
तेरा अपना लाल है, पड़ा काल के गाल ।
इस को आप निकालिए, प्रभो ! पुरुष अकाल ।।३२।।
तुझे भूल भटका घना, जग जंगल के बीच ।
पातक घोर कठोर कर, कर्म किए अति नीच ।।३३।।
पड़ कर माया जाल में, तुझ से किया वियोग ।
जन्म-मरण के रूप में, पाया भारी रोग ।।३४।।
शांत शरण तेरी तजी, कूद पाप की आग ।
धर्म-कर्म शुभ भाव के, दग्ध किए सब बाग ।।३५।।
भक्ति सुमार्ग त्याग कर, तज कर तेरा नाम ।
श्रद्धा निश्चय हीन हो, किये कुमति के काम ।।३६।।
तेरी निन्दा अति करी, किए कुतर्क विवाद ।
आप बड़ा बन नास्तिक, फिरा बढ़ाता वाद ।।३७।।

दशा निजू अब देख कर, थर थर काँपें अंग ।
नयन दोनों झरने बन, आँसू झरें अभंग ।।३८।।*
अपने जन की आँख के, अश्रु पूँछिए आप ।
सकल पाप को कर क्षमा, प्रभो ! प्यारे बाप ।।३९।।
मानव तन के काल को, खोया मूंदे नेत ।
फेंका गया चिन्तामणि, चिड़ी उड़ाने हेत ।।४०।।
पश्चात्ताप के अश्रु अब, बाहर उमड़े आय ।
हृदय का रस सार सब, नीचे रहे बहाय ।।४१।।
संगति सज्जन संत की, करी न कर के चाव ।
भक्ति प्रीति के धर्म में, नहीं बढ़ाया भाव ।।४२।।
आलस्य निद्रा भोग में, रहा निमग्न अचेत ।
निन्दा छालनी ले कर, फिरा छानता रेत ।।४३।।
कड़वे आँसू कष्ट के, निकले नयन सिकोड़ ।
पश्चात्ताप ने दिल कमल, सारा दिया निचोड़ ।।४४।।
कर्म कटुतर धूम्र से, निकले आँखें मींच ।
आँसू कड़वे कष्ट कर, करें कलेजा कीच ।।४५।।
आँसू मेरे कर्म के, हैं मन का परिशोध ।
परम उदार पिता प्रभु, दे अब अपना बोध ।।४६।।
आग अतुल अनुताप की, मन तन रही तपाय ।
रक्त वाष्प बन जल बना, आंसू रहे बताय ।।४७।।*
ज्वाला अति अनुताप की, हृदय रही उबाल ।
नयन नली से अर्क कर, आँसू रही निकाल ।।४८।।
देखूँ अपने पाप को, तीन लोक में स्थान ।
छिपने को मिलता नहीं, क्षमा करो निज जान ।।४९।।

तेरी दृष्टि में किए, नीच कर्म अति घोर ।
कैसे दिखाऊँ मैं मुख, अब आ तेरी ओर ।।५०।।
कपड़ा मुख पर डाल कर, रोऊँ फूट ही फूट ।
मन के धैर्य भाव के, बन अश्रु पड़े टूट ।।५१।।*
अश्रु बहें वियोग के, कर दिल डावाँडोल ।
पड़ी लड़ी मन टूट कर, दोनों कहें कपोल ।।५२।।
तेरे देव ! वियोग में, हो गया मैं अधीर ।
आतुरता तव मेल की, चंचल करे शरीर ।।५३।।
गद्गद् हो मैं रो पड़ा, दोनों आँखें मूंद ।
वाष्प अति अनुताप की, बरसे बन कर बूंद ।।५४।।*
अविद्या घोर अज्ञान में, जन्म मरण की पीर ।
पाई, अब उतरा नहीं, पा कर भक्ति सुतीर ।।५५।।
आंसू बन सिर झर रहा, पा कर अति अनुताप ।
गिरि से धातु ज्यों झरें, पाय ग्रीष्म उत्ताप ।।५६।।*
भक्ति योग पथ त्याग कर, नाम योग को छोड़ ।
मन मुखिया बन मैं फिरा, तुझ से मुखड़ा मोड़ ।।५७।।
वाष्प हृदय से उठी, नभ मस्तक में जाय ।
बरसी बादल नयन से, आँसू रहे दिखाय ।।५८।।*
ध्यान ज्ञान जप पाठ तज, छोड़े भाव विनीत ।
संगति सज्जन भक्त की, करी न कर के प्रीत ।।५९।।
अवसर महासुवर्ण यह, मानव जन्म बिताय ।
खेती फली उजाड़ कर, रोता हूँ पछताय ।।६०।।
पश्चात्ताप से पेड़ तन, काँप गया इस बेर ।
पलकें शाखा ओस के, आँसू रहीं बखेर ।।६१।।*

बिछड़ा जन व्याकुल बना, ले कर लम्बे श्वास ।
रो रो आंसू आठ से, हो रहा बहु उदास ।।६२।।
पीड़ा अपनी कह रहा, किये नयन दो लाल ।
उठा भुजा है देखता, तुझे बिलखता बाल ।।६३।।
तेरी दया अनन्त है, है भी क्षमा अपार ।
अनुग्रह तेरी से अब, होगा बेड़ा पार ।।६४।।
अपने देव ! सुद्वार से, दया दान कर दान ।
आँसू मेरे शान्त कर, शरण पड़ा जन जान ।।६५।।
मैली बुद्धि मैला मन, भीतर चंचल चाल ।
ममता माया वश पड़ा, रखिए देव दयाल ।।६६।।
ऐसे मानव मलिन को, देव! उद्धारो आय ।
पड़ा पाप के पंक में, ले लो आप उठाय ।।६७।।
राम राम तू आप है, संकट मोचन हार ।
क्षमा करो अपराध सब, बेड़ा दो अब तार ।।६८।।

प्रेम-सन्देश

प्रेमी दे सन्देश यह, सुनिए स्नेही राज ।
अपने की सुध लीजिए, अपने की रख लाज ।।१।।
मधुर मेल की आश में, काल गया बहु बीत ।
मेरे कर्म विचार कर, पतली पड़े न प्रीत ।।२।।
तू तो जानी जान है, मेरे मन की जान ।
कहो नहीं है टूटती, अहर्निश तेरी तान ।।३।।
मन तो तुझ में रम रहा, केवल तन है दूर ।
यदि मन होता दूर तो, मैं बन जाता धूर ।।४।।

प्राण पखेरू उड़ पड़े, पंख निराश हिलाय ।
यदि सुनाम का पिंजरा, बन्धन नहीं बन जाय ।।५।।
मन उड़ रहा पतंग बन, रह रह कर तव ओर ।
पीछे खींचे बलवती, आयु कर्म की डोर ।।६।।
मेरे देव दयाल तू, अब तो मुझे निहार ।
अपने ज्ञान सुप्रेम के, निर्मल नयन पसार ।।७।।
जल जाता मैं आग में, जो है विरह वियोग ।
यदि न बहते धारा बन, दे कर नयन सुयोग ।।८।।
तन तो सूखा काठ है, बिन जीवन तव नेह ।
बदली सागर प्रेम से, भेज हरी कर देह ।।६।।
दूर देश में हूँ पड़ा, गाड़ प्रेम का स्तम्भ ।
तेरे नाम सुध्यान से, करूँ मेल आरम्भ ।।१०।।
रात-दिवस चलता रहे, बिना तार का तार ।
बतियाँ होवें मधुरतम, आय शुभ समाचार ।।११।।
समझूँ ध्यान अनन्य से, सरस स्नेह की रीत ।
समाचार पावे वहीं, जो जन होवे मीत ।।१२।।
लिखो सखी सन्देश शुभ, पढ़ेगा पति अनन्त ।
स्याही आँसू प्रेम के, कथन करें सब सन्त ।।१३।।
पतियाँ प्रियतम देव को, प्रेमपगी लिख छोड़ ।
राम राम सन्देश लिख, लेखनी दे फिर तोड़ ।।१४।।
सुनियो सुगड़ सहेलियो, पूरा धर कर ध्यान ।
पत्र प्रेम के सब मिले, भजो भजन भगवान् ।।१५।।
सखी सन्देश सुनाम का, और सभी किस काम ।
स्नेह सने रसमय शब्द, सुने हमारा राम ।।१६।।

सखी सजनी सुसाज सज, कर सुन्दर सिंगार ।
प्रेम भक्ति में लीन हो, भजो नाम शुभ सार ।।१७।।
तेरे भजन सुपाठ का, जाय पहुँच सन्देश ।
वह तो जानन हार है, पूर्ण पुरुष महेश ।।१८।।
प्रेमी के सन्देश को, सुने प्रेम का धाम ।
पाय प्रेमी सुप्रेम को, जपे प्रेम से नाम ।।१६।।
जाना जाना डाकिए, ले जाना सन्देश ।
पतियां देना प्रिय को, कहना कथन विशेष ।।२०।।
तुझ बिन मेरे नाथ जी, सूख बना मैं काठ ।
आंखें तारे प्रात के, फीका मुख का ठाठ ।।२१।।
अस्थि, मज्जा ही शेष है, पिंजर दीखे देह ।
दिल बत्ती बिना तेल है, डालिए प्रेम स्नेह ।।२२।।
आश लता है सूखती, सहित पात सब शाख ।
आशिष बदली भेज कर, रखियो अपनी साख ।।२३।।
जानो निज जन की दशा, देना दर्शन काल ।
मिलियो मोहन अब मुझे, करियो कभी न टाल ।।२४।।
मेरे मन में यह बसे, बना वायुमय वेग ।
आऊँ तेरे पास मैं, यथा मेरु पै मेघ ।।२५।।
चढ़ कर लगन विमान में, आऊँ उस आकाश ।
ललित सुलीला लोक में, तेरा जहां विकाश ।।२६।।
दौड़ा मानस वेग से, आऊँ तेरे पास ।
सुखमय तेरे धाम में, अविचल करूँ निवास ।।२७।।
भानु किरण को पकड़ कर, चढ़ जाऊँ उस धाम ।
सूर्य सम शुभ शोभते, जहाँ विराजो राम ।।२८।।

मिलूँ तुझे अति वेग से, लाँघ सकल ब्रह्माण्ड ।
घुल जाऊँ तव प्रेम में, ज्यों पानी में खाँड ।।२९।।
विद्युत्-धारा सम चलूँ, लिए चित्त में चाह ।
तेरे धाम सुसिन्धु की, पाऊँ गहरी थाह ।।३०।।
चल तरंग आकाशवत्, मैं पाऊँ वह लोक ।
परम प्रेममय राम तू, शोभे जहाँ अशोक ।।३१।।
अन्तर अविद्या बाध कर, देश काल कर बाध ।
तू जहाँ वहाँ ही मिलूँ, मैं ले भक्ति अगाध ।।३२।।
तल अतुल्य में पैठ कर, भीतर डुबकी मार ।
निज में तुझ को पहुँच हि, रहूँ मौन मैं धार ।।३३।।
अथवा यह सब छोड़ कर, इस पर करूँ विराम ।
मेरा तो तू एक है, राम राम हे राम ।।३४।।
शकुन सभी सूचित करें, होगा अवश्य मेल ।
है वियोग यह चार दिन, जो माया का खेल ।।३५।।
उस पद का सन्देश है, सुन मेरे जन आज ।
तेरे जप तप ध्यान से, हो तुष्ट महाराज ।।३६।।
जपना माला नाम की, मन को मनका मान ।
सहज पन्थ है मेल का, नाम प्रेम जप ध्यान ।।३७।।

मतवाला योगी

हो मतवाला नाम से, रात-दिवस सब काल ।
पी कर प्याला प्रेम का, हो ही लालो लाल ।।१।।
अहो ! मस्ताना मैं हुआ, पा कर हरि अनुराग ।
लगन प्रेम और ध्यान में, रहूँ खेलता फाग ।।२।।

चढ़ी मस्ती हरिनाम की, खोले नयन कपाट ।
राम राम जय बोल कर, लूटी हठ की हाट ।।३।।
पन्थ पिंजरे तोड़ कर, गर्ज सुसिंह समान ।
मत्त बना मैं तो फिरूँ, कर मत हठ की हान ।।४।।
मत्त हुआ मन नाम में, रहे मतों से दूर ।
फिरे उड़ाता ओर सब, भ्रान्ति भेद की धूर ।।५।।
प्याला अमृत प्रेम का, जो पीवे गुणवान् ।
रहे मत्त वह राम में, अहर्निश कर गुणगान ।।६।।
नाम की मस्ती तब मिले, बेचो मान दुकान ।
तन, धन अपना दान दे, मिले तो सस्ती जान ।।७।।
मतवाले जो राम के, कलह का न कर काम ।
अलख निरंजन नाम में, मग्न रहें सब याम ।।८।।
राम नाम में मग्न जो, वे जानें मत खेल ।
रहें ध्यान एकांत में, तज मत धक्कमपेल ।।९।।
मतवाले को देख कर, मत वाले कर चोट ।
मतिमन्तों के सामने, निज मत धरते खोट ।।१०।।
राम नाम रस के रसिक, प्रेम सुरस कर पान ।
मस्ताने फिरें घूमते, कस कर ध्यान कमान ।।११।।
नाम सोम रस को पियें, घूमें बाँके वीर ।
आसुरी सेना पर अति, कस कर मारें तीर ।।१२।।
राम ध्वनि में मत्त जो, बनें कभी न अधीर ।
चाहे वैरी जन मिले, टुक टुक करें शरीर ।।१३।।
जिन के मन में राम का, बसे सुरीला राग ।
बजे बाँसुरी प्रेम की, हैं वे ही बड़भाग ।।१४।।

परम पुरुष भगवान् जी, तू देवों का देव ।
हो प्रकट स्वभक्त में, दिए ध्यान की टेव ।।१५।।
नाम सुबूटी दान कर, परम तुष्ट हो आज ।
दान दे मस्ती नाम में, निज जन की रख लाज ।।१६।।
हृदय कूण्डी में घुटी, लगन सुसोटे संग ।
प्रेम सुपानी में घुली, पी ली सहित उमंग ।।१७।।
कमली की इस पान ने, दिये मस्ती अति गाढ़ ।
भक्ति नदी उमड़ी घनी, पाय प्रीति की बाढ़ ।।१८।।
नाम महारस पान कर, नित्य भजूँ भगवान् ।
कमलों वाले कमली को, अब तो अपनी जान ।।१६।।
कमली तेरे कमल में, ध्वनि कम्बली ओढ़ ।
काया कदली कुँज में, लोक लाज को छोड़ ।।२०।।
फिरे कमल के धाम में, रटती तेरा नाम ।
हरि हरि मुख से बोलती, राम राम जय राम ।।२१।।
मस्तानी के साईयां, लाईयां अन्त निभाय ।
अपनी कमली जान कर, अब तो घर में आय ।।२२।।
झोली भोली ने भरी, नाम रत्न से आज ।
घट में सूर्य चाँद सब, तारे देखे साज ।।२३।।
साधु सन्त के संघ शुभ, सज्जन शान्त सुभाव ।
देखे आँखें मीच कर, गिरि झरने तालाब ।।२४।।
योगिन हूँ मैं नाम की, पूरी बिसवे बीस ।
तजे हार सिंगार सब, और गुँदाना सीस ।।२५।।
वैरागिन बन राम की, छोड़े सुन्दर वेश ।
राम-राग में मत हो, कौन सँवारे केश ।।२६।।

सादेपन में साधुता, सरल शुद्ध हो भाव ।
परम पुरुष के दर्श का, चढ़े चतुर्गुण चाव ।।२७।।
सखी, सरलता धार कर, टेढ़ा पथ दे छोड़ ।
बाह्य मुखता त्याग कर, भीतर को मुख मोड़ ।।२८।।
जिन के रंग सुप्रेम है, वे जन हुए निहाल ।
रहे मस्ताने नाम में, चलें निराली चाल ।।२९।।
पग पग पर डग मग करें, डोलें डांवांडोल ।
फिरें झूमते रंग में, घुले प्रेम के घोल ।।३०।।
बोलें बोली भेद की, गद्गद् हो कर आप ।
साथ सैन संकेत के, गहरा करें अलाप ।।३१।।
प्रेम पगे सब के सगे, लगे लगन में लोग ।
भक्ति भंग में मत्त हो, जानें रोग न सोग ।।३२।।
अपनी धुन के हों धनी, धुरा धर्म की धार ।
धृति में हों धरती सम, ध्रुव धर्म अवतार ।।३३।।
उनकी नस नस में बसा, हो रस बन हरि नाम ।
जप कर साँसों साँस ही, करें सियाना काम ।।३४।।
अलख जगावें राम की, ले खप्पर निज हाथ ।
नाम की मुद्रा डाल कर, बनें निराले नाथ ।।३५।।
धूनी धर कर ध्यान की, लगन आग सुलगाय ।
रम कर राम विभूति में, आँखें रहे चढ़ाय ।।३६।।
आसन आशा का किए, बैठें अचल अडोल ।
नाम अमृत दें ओषधि, बोली बिल को खोल ।।३७।।
झोली ले कर धारणा, करें भिक्षा दिन-रात ।
प्रेम मधुकरी माँग कर, करें व्यर्थ न बात ।।३८।।

गेरु ले कर शब्द का, चित्त सुचादर रंग ।
सुकर्मी संन्यासी बनें, करें न वेश कुढंग ।।३६।।
मूँड मान सिर ज्ञान से, हो कर घोटम घोट ।
परम हंस सेवक खरे, त्याग करें सब खोट ।।४०।।
ले अवलम्बन नाम का, अति बलिष्ठ शुभ दंड ।
कर्म कमण्डल कर लिए, फिरें छोड़ पाखण्ड ।।४१।।
ऐसे मस्त सुभक्त जन, करें राम का काज ।
तारे नारी नर घने, दे कर नाम जहाज ।।४२।।
मत्त रहूँ मैं लगन में, तोड़ूँ तेरी तान ।
गाता फिरूँ सुनाम को, बल ऐसा दे दान ।।४३।।

नन्दन वन

मोहन मन मेरा बना, नन्दन वन सुखकार ।
सुन्दर मस्तक मेरु पर, जिस का महा विस्तार ।।१।।
नाना पथ हैं ज्ञान के, जिन में बहुत विशाल ।
सहस्त्र कमल दल से अति, सजी मृदु मृणाल ।।२।।
शोभित हैं उस में कमल, अमल रंग के संग ।
श्रद्धा भक्ति सुगन्धि से, उठते हर्ष तरंग ।।३।।
साधो ! इसी उद्यान में, खेलो उत्तम खेल ।
गुणिगण सन्त मिलें यहां, कर के मीठा मेल ।।४।।
गंगा यमुना बह रही, है हंसों की डार ।
नाना पंछी शोभते, सज सुन्दर सिंगार ।।५।।
सूर्य जोत जगे विमल, तम की कर के हान ।
चेतन सत्ता वहां रमें, विस्तृत कर निज ज्ञान ।।६।।

आत्मा अपनी सत्ता से, वहां रहा है राज ।
[illegible]
बहुविध पुष्प सुहावने, जो हैं विमल विचार ।
नन्दन वन में राजते, ज्ञान का कर विस्तार ।।८।।
बुद्धि-वैभव बहुत ही, उस में रहा विराज ।
सुगुण प्रतिभा नीति का, सोहे सजा समाज ।।६।।
नई उपज के पेड़ सब, शोभा का कर अन्त ।
बेलों सहित सुहावने, पहरे वेश वसन्त ।।१०।।
मनोरंजक वृत्ति जग, कौशल प्रेम उल्लास ।
भक्ति भावना का वहां, होवे अधिक विकास ।।११।।
ऐसा वन कहीं और न, दीखे तीनों लोक ।
इसी में कल्पतरु मिलें, श्रद्धा-रूप अशोक ।।१२।।
क्रीड़ा का यह स्थान है, सुन्दर शुभ रमणीक ।
यही सुख शान्ति धाम है, समझो कर मति ठीक ।।१३।।
सन्तो, समझो सत्य यह, यहीं मिलें श्री राम ।
भ्रमण रमण इस में कर, सिमरो मधुमय नाम ।।१४।।

भरोसा

मुझे भरोसा राम का, रहे सदा सब काल ।
दीनबन्धु वह देव है, सुखकर दीन दयाल ।।१।।
पकड़ शरण अब राम की, सुदृढ़ निश्चय साथ ।
तज कर चिन्ता मैं फिरूँ, पा कर उत्तम नाथ ।।२।।
जो देवे सब जगत् को, अन्न पान शुभ प्राण ।
वही दाता मेरा हरि, सुख का करे विधान ।।३।।

केवल मेरी टेक है, कड़े काल में आज ।
सुख सागर श्री राम जो, भक्तों का महाराज ।।४।।
मुझे भरोसा परम है, राम राम ही राम ।
मेरी जीवन जोत है, वही मेरा विश्राम ।।५।।
वन अटवी गिरि-शिखिर पर, घोर विपद् के बीच ।
राम भरोसे मैं फिरूँ, निर्भय आँखें मीच ।।६।।
वेदना व्याधि दुःख में, पा कर सोग वियोग ।
राम भरोसे मैं रहूँ, मन से सदा अरोग ।।७।।
कष्ट क्लेश के काल में, निन्दा हो अपमान ।
राम भरोसे शान्त रह, सोऊँ चादर तान ।।८।।
करें कुटिल कटुतर कलह, कड़े कुवचन कुवाण ।
कस कर मारें जन किये, बाँकी कल्म कमान ।।६।।
राम भरोसे सम रहूं, मानूँ सब को मीत ।
निर्भर रह भगवान् पर, दुई द्वेष लूँ जीत ।।१०।।
क्रूर कर्म कर के कभी, दे जन कष्ट अपार ।
मुझे मेरु सम अचल हो, राम भरोसा प्यार ।।११।।
विघ्न बाधा भी न गिनूँ, जानूँ नहीं विरोध ।
राम भरोसा परम है, मेरा हो अनुरोध ।।१२।।
सम कर समझूँ दुःख सुख, सब उतराव चढ़ाव ।
राम भरोसे मैं सहूँ, सभी बिगाड़-बनाव ।।१३।।
सोते जगते काम में, चलते फिरते बैठ ।
रहूँ भरोसे राम में, शान्त प्रेम जल पैठ ।।१४।।
घोर निशा नैराश हो, विपद् घटा घन टोप ।
उस के भरोसे न गिनूँ, कलि कुकाल का कोप ।।१५।।

राम देवाधिदेव है, राम सच्ची सरकार ।
मैं हूँ अर्पित जान कर, राम सच्चा दरबार ।।१६।।
मेरा राजा राम है, स्नेही सखा विशेष ।
दाता त्राता राम है, नाशक कष्ट निश्शेष ।।१७।।
मेरी आशा राम है, परम शरण शुभ ओट ।
सुख सम्पत् सब राम है, परम धाम शुभ कोट ।।१८।।
किले कोट कटु कर्म के, हो गिरे एक सार ।
भस्म भये संशय भ्रम, दुविधा गिरी दिवार ।।१६।।
जब से निश्चय राम का, मिला मुझे कर भाव ।
जन्म मरण के भय मिटे, कटे काल के दाव ।।२०।।
राम भरोसे बैठ कर, दोषों के गढ़ तोड़ ।
मन मुख पन मतवाद की, मोड़ी मूँछ मरोड़ ।।२१।।
हो न भरोसा राम का, तो तन जानो चाम ।
हीरे रत्न जहां बिकें, वहां न उस का काम ।।२२।।
राम भरोसे के बिना, जगत् जान जंजाल ।
बिना भरोसे जानिए, जीव निरा कंगाल ।।२३।।
भला भरोसेवान् जन, यद्यपि होवे रंक ।
राजा कहा विश्वास बिन, पतित पाप के पंक ।।२४।।
जो भाना भगवान् का, जो जाना जगदीश ।
होवे भावी जगत् में, सो ही बिस्वे बीस ।।२५।।
भावे जो भगवान् को, वही भला कहलाय ।
पुण्य कर्म सो समझिए, उत्तम वही कहाय ।।२६।।
मुझे भरोसा राम तू, दे अपना अनमोल ।
रहूँ मस्त निश्चिन्त मैं, कभी न जाऊँ डोल ।।२७।।

मन मुमुक्षु

बन ही मुमुक्षु मेरा मन, लगा मोक्ष के काम ।
भक्ति गंगा में निहला, जपे राम ही राम ।।१।।
बहु विधि बन्धन बन्ध के, लगा तोड़ने आप ।
कर तप संयम साधना, ध्यान नाम का जाप ।।२।।
बलयुत बन्धन है बड़ा, आत्म-स्थित अज्ञान ।
जिस से स्व पर रूप का, हो न राम का भान ।।३।।
महा बन्ध यह नाश हो, भक्ति ज्ञान को पाय ।
उत्तम सुकृत कर्म कर, स्व-सत्ता को जगाय ।।४।।
मोक्ष सुमार्ग पर चले, मेरा मन धुन लाय ।
आत्म सूर्य कर उदय, पाप अज्ञान नसाय ।।५।।
कर्म-योग में रत रहे, सेवा में दिन रात ।
हो छुटकारा बन्ध से, यही विचारे बात ।।६।।
डूबते जन को हो ज्यों, लगूँ तीर यह चाह ।
तरना चाहे मन तथा, सागर जन्म अथाह ।।७।।
फंस जाल अति जटिल में, पंछी ज्यों घबराय ।
जन्म जाल में मन दुःखी, करे निस्तार उपाय ।।८।।
बन्ध नाश की कामना, करे नाम में लीन ।
निकला चाहे जाल से, ज्यों मृगी वा मीन ।।६।।
बन्दी घर से बद्ध जन, चाहे यथा विमोक्ष ।
तथा करे मन कामना, पाने को पद मोक्ष ।।१०।।
पीड़ा में जन तड़पता, माँगे यथा अरोग ।
तैसे माँगे मुक्ति मन, तज कर उत्तम भोग ।।११।।

लक्ष चौरासी घूमते, पा कर यह तन सार ।
उत्तम नाम अनाम का, देवे मन न बिसार ।।१२।।
जन्म जन्म की ताड़ना, सह कर कष्ट महान् ।
अब ले मन पथ मोक्ष का, जपे राम भगवान् ।।१३।।
लक्ष्य मोक्ष का धार कर, और परम पद धाम ।
आशा कर आनन्द की, आराधे शुभ नाम ।।१४।।
नाम डोर को पकड़ कर, जाय सकल नभ भेद ।
पा कर पद निर्वाण को, सर्व बन्ध दे छेद ।।१५।।
मोक्ष को चाहे जो जन, सो ही मुमुक्षु कहाय ।
करे कर्म वह सब भले, समता भाव रमाय ।।१६।।
निन्दा पैशुन लांछना, पर की करे न भूल ।
निज के दोष निहार कर, हो सब के अनुकूल ।।१७।।
दोषी कहे न अन्य को, अपने अवगुण जान ।
कलह वितण्डावाद से, रहे बना अनजान ।।१८।।
अहर्निश कर आलोचना, आप किये की आप ।
नुकताचीनी अन्य की, माने भारा पाप ।।१९।।
सब का सखा स्नेही बन, कर सेवा उपकार ।
चिन्तन ध्यान सुज्ञान से, लेवे जन्म सुधार ।।२०।।

सन्ध्या

भजूँ तुझे भगवान् मैं, तू शंकर शम कार ।
पुष्टि सुपालन तू करे, प्रेम वृष्टि विस्तार ।।१।।
सिर मस्तक त्रिकुटी को, हृदय ग्रीवा आप ।
पावन करो नाभि चरण, पूर्ण पुरुष अपाप ।।२।।

तू धारक है सत्य का, ज्ञान-रूप सुख रूप ।
तू है तप का रूप भी, तीन लोक का भूप ।।३।।
उत्पादक तू ज्ञान का, भूमि तथा आकाश ।
चाँद सूर्य तारा गण, तू ने किये विकाश ।।४।।
तू कर्ता सभी लोक का, क्रम परम अनुसार ।
जन का पालन तू करे, तू सुदान भण्डार ।।५।।
अजर अमर हरि ध्याइए, निराकार शुभ सार ।
भजूं सच्चिदानन्द को, जो है पुरुष अपार ।।६।।
नयनों का है तेज तू, शान्ति सुधा का स्रोत ।
जगत् पाल जगदीश तू, सदा एकरस जोत ।।७।।
सिमरूँ तुझ को देव जी, उत्तम तू प्रकाश ।
बुद्धि बल मुझे दान दे, पाप कर्म कर नाश ।।८।।
परिक्रमा उस की करूँ, जो देवों का देव ।
मन्दिर जिस का जगत् है, जिसे रहे जन सेव ।।९।।
मानस पूजा मानसी, परिक्रमा मन लाय ।
करूँ जगत् के ईश की, चंचल चित्त टिकाय ।।१०।।
पूर्व में हरि तेज है, परम ज्योति का धाम ।
अपने आतप तेज से, पाले अहर्निश राम ।।११।।
दक्षिण दिशा में राजता, है राजा भुवनेश ।
पूज्य प्रभु रक्षक भजूँ, मेरा वही महेश ।।१२।।
शीतल छाया प्रेम से, जो पाले दिन रात ।
अन्नपाल पश्चिम भजूँ, सब दिन सायं प्रात ।।१३।।
उत्तर को सब से प्रिय, शरण शान्ति का स्थान ।
दाता भक्ति सुशक्ति का, भजूँ राम भगवान् ।।१४।।

अधोदिश से पाले हरि, सत्य धर्म कर दान ।
धरणी धारक मैं भजूँ, पालक और महान् ।।१५।।
ऊपर से कर पालना, पानी पवन सुधार ।
नाशे आधि व्याधि सभी, सो सिमरूँ सुखकार ।।१६।।
ध्याऊँ तेजोमय प्रभु, उत्तम सब से जान ।
कर्ता सारी सृष्टि का, परम पुरुष ही मान ।।१७।।
मेधा शुद्ध विचार दे, बुद्धि वृद्धि, विवेक ।
ज्ञान ध्यान शुभ कर्म दे, निज निश्चय की टेक ।।१८।।
जीवित रह शत वर्ष तक, कहूँ सुनूँ चिरकाल ।
देखूँ जानूँ वर्ष शत, पूजूँ तुझे दयाल ।।१९।।
पुष्टतर हों इन्द्रियां, बली रहें सब अंग ।
शक्तिशाली रहूँ बना, साहस होय न भंग ।।२०।।
नमस्कार सुखमय तुझे, मंगलमय शिव शान्त ।
हो सदा ईश्वर हरे, नमो नमः एकान्त ।।२१।।

राम-कृपा अवतरण

परम कृपा सुरूप है, परम प्रभु श्री राम ।
जन पावन परमात्मा, परम पुरुष सुखधाम ।।१।।
सुखदा है शुभा कृपा, शक्ति शान्ति स्वरूप ।
है ज्ञान आनन्दमयी, राम कृपा अनूप ।।२।।
परम पुण्य प्रतीक है, परम ईश का नाम ।
तारक मंत्र शक्ति घर, बीजाक्षर है राम ।।३।।
साधक ! साधन साधिए, समझ सकल शुभ सार ।
वाचक वाच्य एक है, निश्चित धार विचार ।।४।।

मंत्रमय ही मानिए, इष्ट देव भगवान् ।
देवालय है राम का, राम शब्द गुणखान ।।५।।
राम नाम आराधिए, भीतर भर ये भाव ।
देव-दया अवतरण का, धार चौगुना चाव ।।६।।
मंत्र-धारणा यों कर, विधि से ले कर नाम ।
जपिए निश्चय अचल से, शक्ति-धाम श्री राम ।।७।।
यथा वृक्ष भी बीज से, जल रज ऋतु संयोग ।
पा कर, विकसे क्रम से, त्यों मंत्र से योग ।।८।।
यथा शक्ति परमाणु में, विद्युत कोष समान ।
है मंत्र त्यों शक्तिमय, ऐसा रखिए ध्यान ।।६।।
ध्रुव धारणा धार यह, राधिए मंत्र निधान ।
हरि कृपा अवतरण का, पूर्ण रखिए ज्ञान ।।१०।।
आता खिड़की द्वार से, पवन तेज का पूर ।
है कृपा त्यों आ रही, करती दुर्गुण दूर ।।११।।
बटन दबाने से यथा, आती बिजली धार ।
नाम जाप प्रभाव से, त्यों कृपा अवतार ।।१२।।
खोलते ही जल नल ज्यों, बहता वारि बहाव ।
जप से कृपा अवतरित हो, तथा सजग कर भाव ।।१३।।
राम शब्द को ध्याइए, मंत्र तारक मान ।
स्वशक्ति सत्ता जग करे, उपरि चक्र को यान ।।१४।।
दशम द्वार से हो तभी, राम-कृपा अवतार ।
ज्ञान शक्ति आनन्द सह, साम शक्ति संचार ।।१५।।
देव दया स्व शक्ति का, सहस्त्र कमल में मिलाप ।
हो सत्पुरुष संयोग से, सर्व नष्ट हों पाप ।।१६।।

[illegible]

भक्त विवेकी सन्त जन, पकड़ नाम की तार ।
सुरति शब्द के मेल से, हो जाते भव पार ।।१।।
एकतानता ध्यान जो, वही सुरति कहलाय ।
लक्ष्य ध्यान का नाम जो, सो ही शब्द कहाय ।।२।।
ध्येय परम श्री राम है, ध्याता भक्त सुजान ।
ध्येय में सुरति लीन को, माना उत्तम ध्यान ।।३।।
ध्येय ध्याता सुध्यान मिल, एकतार जब होय ।
तब ही समाधि समझिए, सुनाम समाधि सोय ।।४।।
वृत्ति समता में रहे, मन में हो श्री राम ।
समाधि का यह जानिए, अर्थ शुद्ध अभिराम ।।५।।
गुरुमुख से जब ही मिले, शब्द नाम अनमोल ।
वृत्ति, ध्यान समाधि में, हो कर रहे अडोल ।।६।।
समाधान जब ध्यान में, हो वृत्ति का आप ।
जानो शुद्ध समाधि वह, हरती मानस पाप ।।७।।
एकतानता ध्येय में, माना गया सुध्यान ।
वृत्ति का लय लक्ष्य में, समाधान ही जान ।।८।।
सत्संगति में बैठ कर, विधि से ध्यान लगाय ।
सुदृढ़ निश्चय धार कर, मन में नाम रमाय ।।९।।
करिये साधन सार शुभ, भीतर भर कर प्रीत ।
श्रद्धा धैर्य नियम से, साधिए भक्ति रीत ।।१०।।
जैसे चुम्बक संग से, लोह तथा हो जाय ।
ऐसे सद्‌गुरु संग से, मन में समाधि आय ।।११।।

जैसे ताम्र-तार में, हो विद्युत् संचार ।
ऐसा हो शुभ नाम से, ध्यान का अति विस्तार ।।१२।।
जैसे सूर्य किरण से, चमके चाँद स्वरूप ।
ऐसे उत्तम नाम से, चमके अपना रूप ।।१३।।
विनय कुशलता लगन हो, शील सेवा सत्संग ।
परा प्रीति हो ईश में, मन में भरी उमंग ।।१४।।
तज कर भ्रम संशय सब, शंका सकल निवार ।
साधक साधे योग को, पकड़ नाम की तार ।।१५।।
लगन परम का काम है, परम प्रेम का काम ।
भक्ति परम का काम है, ध्याना मन में राम ।।१६।।
मन में रमाय राम को, गुरु संगति में बैठ ।
करे कमाई नाम की, चली जात है पैठ ।।१७।।
राम लगन में अर्प दे, अपना मान अमान ।
सिर के समर्पण से हरि, मिले तो सस्ता जान ।।१८।।
जिन सुजनों ने लगन से, अविचल निश्चय धार ।
प्रेम-पन्थ में पग धरा, पार हुए संसार ।।१६।।
सुगम पन्थ है प्रेम का, यदि मन में हो भाव ।
निश्चय हो हरि नाम में, ध्यान धर्म में चाव ।।२०।।
भक्तों ने लखा नाम को, उत्तम समाधि कार ।
परम धर्म का मर्म यह, हर्ता पाप के भार ।।२१।।
मन को पकड़े नाम जब, पुनर्न आवे काल ।
नामी मिले सुनाम में, हो कर आप दयाल ।।२२।।
नाम धार कर मौन हो, जन राधे भगवान ! ।
बीज गुप्त रह भूमि में, बनता वृक्ष महान् ।।२३।।

मोती बनता सीप में, छुपा आप ही आप ।
कोयला भूमि में गड़ा, हो हीरा पा ताप ।।२४।।
चुप्प रहे शुभ नाम ले, करिए नहीं बखान ।
कहना अपने ध्यान का, विघ्न कहें गुणवान ।।२५।।
हृदय पटारी में धर, नाम रत्न अनमोल ।
गाहक गुणिजन के बिना, उस को बोल न खोल ।।२६।।
कहना जप तप ध्यान का, और दक्षिणा दान ।
अहंकार का अंश है, ओच्छा पन अभिमान ।।२७।।
पारस सच्चा सुनाम है, नामी परम उदार ।
अपने पद का दान दे, दे भव सागर तार ।।२८।।
पहली समाधि जानिए, मुख में उपजे नाम ।
आप ही आप ध्यान में, अथवा करते काम ।।२९।।
आप ही आप सुनाम धुन, मन मुख में हो आय ।
समाधि उत्तम सन्त की, समझो अनुभव पाय ।।३०।।
सहज से नाम जगे जब, बिना यत्न हो जाप ।
जानी समाधि परम यह, हरती सारे ताप ।।३१।।
है ही मंगल मुक्ति कर, भक्ति सहित यह योग ।
होता है अति प्रेम से, सुरति शब्द संयोग ।।३२।।
राजयोग जानो इसे, अजपा जाप अपाप ।
चित्त-जागृति चिन्ह है, हरे सर्व सन्ताप ।।३३।।
अजपा जाप सुजोत जब, जगे चित्त के धाम ।
नाम नाद विलसे तभी, आप राम ही राम ।।३४।।
स्वर रसीले मधुर से, धीमी नाम सितार ।
अपने आप जभी करे, भीतर झन झनकार ।।३५।।

धीरे शीघ्र जब बहे, आप नाम की धार ।
ताल सहित जब जाप हो, समझो बेड़ा पार ।।३६।।
जानो मन में बस गया, नामी नाम समेत ।
आत्मा सोता जग गया, फला मनोरथ खेत ।।३७।।
करनी सफला हो गई, लिया जन्म को जीत ।
सिद्ध हुए साधन सभी, गई भटकना बीत ।।३८।।
राम जपा मन लगन से, रात-दिवस सब याम ।
अब तो राम भजे मुझे, मुझ को मिला विश्राम ।।३९।।
साधन कर्म कठोर कर, आसन मुद्रा लगाय ।
ऐसे समाधि जो मिले, दूसरी वह कहाय ।।४०।।
एक भेद सविकल्प है, इस का कहा विचार ।
स्फुरण संकल्प हों पर, उन का बने न तार ।।४१।।
उल्कापात समान जहाँ, विद्युत् रेख समान ।
बिखरे विचार उठें सब, वह विकल्प पहचान ।।४२।।
साधन कर के घोर तर, मिलती है कर देर ।
नाम आराधन में यह, मिलते करे न बेर ।।४३।।
निर्विकल्प है दूसरा, जानो इस का भेद ।
अहम्भाव जिस में रहे, अन्य संकल्प विच्छेद ।।४४।।
अजपा जाप के साथ ही, यह आती है आप ।
नाम ध्यान में सहज से, मिले सर्व हर पाप ।।४५।।
शून्य समाधि भी यही, कहते मुनि मतिमन्त ।
लय समाधि के नाम से, कहते अनुभववन्त ।।४६।।
प्रकाश समाधि है शुभ, तीसरी सहित ज्ञान ।
जिस में दृष्टि दिव्य हो, दिव्य रूप हों भान ।।४७।।

दीखें दृश्य मनोहर, नाना सूक्ष्म लोक ।
प्रकाश समाधि में बहु, हों लीला आलोक ।।४८।।
वन उपवन पर्वत सजे, अद्‌भुत पुष्प सुगन्ध ।
सरित् सिन्धु सर शोभते, ताल सहित अरविन्द ।।४६।।
विविध रंग शुचि नभ विमल, ग्रह तारक अपार ।
शशि सूर्य शोभें वहाँ, दीप्ति ज्योति विस्तार ।।५०।।
दीखें साधु सन्त सिद्ध, शोभित रहें विराज ।
प्रकाश समाधि शुभतर, दे जभी महाराज ।।५१।।
नाम ध्यान से आप ही, खिले कमल के कुँज ।
नाम जाप के योग से, विकसे तेज सुपुँज ।।५२।।
चौथी समाधि नाद की, जानी महर्षि सन्त ।
रमते नाद समाधि में, योगी मुनि गुणवन्त ।।५३।।
वीणा मृदु सितार से, मेघ गर्ज से नाद ।
झंकार स्वर ताल से, नाशक सर्व विषाद ।।५४।।
भेरी से मीठे घने, उपजें नाना भान्त ।
नाम ध्यान से जो जगें, कर दें मन तन शान्त ।।५५।।
नाम नाद उत्तम कहा, ऊँचा है वह धाम ।
अतिशय मधुर सुरस सना, नाद राम ही राम ।।५६।।
अन्य नाद सब जानिए, अन्य धुनों की तान ।
उस पद की है राम धुन, जो है परम महान् ।।५७।।
स्वर सुधा सम नाम का, अपने आप अलाप ।
होवे मन में मधुरतम, चित्त जगे जब आप ।।५८।।
बन्धन सर्व विनाश हों, हो पापों का नाश ।
पतित पावन राम जभी, कर दे नाम विकाश ।।५६।।

समझो नाम समाधि में, नाद अनाहत धाय ।
उपजे स्वयं सहज से, यदि हो राम सहाय ।।६०।।
साधो ! समझो मर्म यह, नाम समान न और ।
जानी समाधि सन्त ने, नाम परम है ठौर ।।६१।।
सब ही समाधि सार है, नाम समाधि एक ।
इस को साधे सब सधें, अन्य समाधि अनेक ।।६२।।
नाम साधना के बिना, साधन हैं सब भार ।
सहज योग है नाम का, सर्व साधना सार ।।६३।।
समाधि मेरे राम में, सब शुभ हैं अभिराम ।
उत्तम सब से समझिए, जिस में विकसे नाम ।।६४।।

घट मन्दिर

घट मंदिर सुन्दर सुखकारी, मधुर मनोरंजक मनहारी ।
उस में देव दयामय राजे, परम धाम की जोत विराजे ।।१।।
जगमग ज्योति जगे दिन राती, बिन दीवे घी तेल सुबाती ।
नाना नाद बजें शुभ बाजे, अलख धाम की आरती गाजे ।।२।।
गीत मधुर हो नाद सुहाना, बहुविध से श्री राम रिझाना ।
भेरी वीणा सितार सुहानी, मेघ गर्ज सुर तार लुभानी ।।३।।
धीमी धीमी नाद सुधारा, राम राम हो अपरं पारा ।
रोमराजी हर्षे सुन के ही, पावे शान्ति जो नाम स्नेही ।।४।।
उपजे नाद नाम का ऊँचा, राम राम तू तू हि समूचा ।
किन किन तन तन नाद सुरीला, छन छन बजे नाद की लीला ।।५।।
परम धाम अति ऊँचा तेरा, राम ! नारायण तू हि मेरा ।
नाम नाद जो हनन विहीना, मन में रमे माधुरी वीणा ।।६।।

अपनी प्रेम सितार बजाना, तन तंत्री में हो तव गाना ।
मधुर मनोगम मुरली तेरी, बाजे लीन हो सुरति मेरी ।।७।।
भेद भेदिनी भारी भेरी, गर्जे कर भ्रम भय की ढेरी ।
नाद दान तेरा है भाना, राम राम अति ऊँचा जाना ।।८।।
ऐसी आरति हो तव प्यारे, मनमन्दिर में मोद पसारे ।
जिस घट में यह आरति होवे, पाप धूल सब उस की धोवे ।।६।।
राम राम सुने नाद प्यारा, मन मेरा हो जाय तिहारा ।
सुन कर शब्द अगम का ऐसा, मन हो लीन नींद में जैसा ।।१०।।
अलख ध्वनि में सुरति समाई, निर्मल हो शुभ नाम रमाई ।
अति महिमामय राम बताया, अनुभव से गुणिगण ने गाया ।।११।।
घट में कही किरण सी झीनी, सुषुम्ना नाड़ी सुरस भीनी ।
मूलाधार द्वार है माना, उस का स्थान गया वह जाना ।।१२।।
कुण्डलिनी सुकुण्डलाकारा, सुप्त पड़ी वहाँ शक्ति-धारा ।
झिल्ली चढ़ी उस पर है ऐसी, विद्युत् बन्द कोष में जैसी ।।१३।।
नाम ध्यान की जब धुन लागे, सुप्त पड़ी नागिन तब जागे ।
सुषुम्ना भीतर हि हो जावे, चल सुचाल कमल विकसावे ।।१४।।
चक्र खुलें तब सभी सुहाने, शक्ति विकाश करें सुख खाने ।
अष्ट चक्र में मन विलसावे, राम नाम से लीला पावे ।।१५।।
स्वाधिष्ठान चक्र में समावे, शक्ति सुभक्ति सुप्रीति बढ़ावे ।
भिदे भेद की ग्रन्थि भारी, मिटे पाप की रचना सारी ।।१६।।
नाभि चक्र में नाद विराजे, शब्द जगे शुभ शोभा राजे ।
चेतन देश हृदय हि पाया, चित्त स्थान सो चक्र बताया ।।१७।।
कंठ कमल है शोभा शाली, शांत भाव की सुखमय ताली ।
तालू देश में शक्ति जैवी, शांति करे शोभा शुभ शैवी ।।१८।।

त्रिकुटी स्थान शुचि त्रिवेणी, तेजोमयी सुमंगल देनी ।
आत्मधाम लिलाट बताया, ध्यान का स्थान मुनिजन गाया ।।१६।।
मन बुद्धि का यहाँ पर वासा, है सब वृत्ति का यह निवासा ।
राम नाम जब मन में आवे, स्वयं ध्यान यहीं टिक जावे ।।२०।।
मन में नाम बसे तब जानो, ध्यान भाल में है यह मानो ।
ऐसे ध्यान सहज से होवे, जन्म मरण के दुखड़े खोवे ।।२१।।
ध्याता है मन मधुर प्यारा, ध्येय है राम नाम सुधारा ।
ध्यान, ध्येय में चित्त लगाना, राम राम सुनाद गुँजाना ।।२२।।
जब ही मन से नाम उच्चारे, एकतारता मन में धारे ।
हो हि ध्यान वहीं जहाँ ध्याता, उत्तम ध्यान सुना यह जाता ।।२३।।
ब्रह्मधाम है चक्र न्यारा, सहस्त्र कमल दल यह पुकारा ।
यहीं सुषुम्ना धारा जावे, शान्तरूप हो वहीं समावे ।।२४।।
कुण्डलिनी का अंतिम डेरा, आत्मा का यह परम बसेरा ।
चक्र भेद विरला जन जाने, राम भजे सो ही पहचाने ।।२५।।
सरल सुगम पथ यह है पाया, भक्त संतजन यह समझाया ।
मुनि जन ने यह भेद बखाना, चक्र वेध सुनाम से माना ।।२६।।
घट मन्दिर तू अन्दर मेरे, देव ! लखूँ गुणगण मैं तेरे ।
करूँ वन्दना बारम्बारा, नाम ज्योति का पकड़ सहारा ।।२७।।
देव दयाल दीन दुःखहारी, ज्योति जगे, हो दया तिहारी ।
नाम फुरे शक्ति शुद्ध जागे, नाम ध्वनि में मम मन लागे ।।२८।।
नारायण मम देवन देवा, दे मुझे भक्ति भक्त सुसेवा ।
नाम योग में निश्चय मेरा, अविचल रहे भरोसा तेरा ।।२६।।
राम ! अनुग्रह कर रखवारे, नाम योग दे जाऊँ वारे ।
गा कर गुण मैं तुझ को ध्याऊँ, राम राम कह लयता पाऊँ ।।३०।।

कृतज्ञता

उस का रहूँ कृतज्ञ मैं, मानूँ अति आभार ।
जिस ने अति हित प्रेम से, मुझ पर कर उपकार ।।१।।
दिया दीवा सुदीपता, परम दिव्य हरि नाम ।
पड़ी सूझ निज रूप की, जिस से सुधरे काम ।।२।।
कर्म धर्म का बोध दे, जिस ने बताया राम ।
उस के चरण सरोज पर, नत शिर हो प्रणाम ।।३।।
धन्यवाद उस सुजन का, करूँ आदर सम्मान ।
जिस ने आत्मबोध का, दिया मुझे शुभ ज्ञान ।।४।।
उस के गुण उपकार का, पा सकूँ नहीं पार ।
रोम रोम कृतज्ञ हो, करे सुधन्य पुकार ।।५।।
उस के द्वार कुटीर पर, मैं दूँ तन सिर वार ।
नमस्कार बहु मान से, करूँ मैं बारम्बार ।।६।।
बहते जन को पोत शुभ, दिया नाम का जाप ।
शब्द शरण को दान कर, नष्ट किये सब पाप ।।७।।
उस ने जड़ी सुनाम दे, हरे जन्म के रोग ।
संशय भ्रान्ति दूर कर, हरे मरण के सोग ।।८।।
चिन्तामणि हरि नाम दे, चिन्ता की चकचूर ।
दिया चित्त को चाँदना, चंचलता कर दूर ।।६।।
वारे जाऊँ सन्त के, जो देवे शुभ नाम ।
बाँह पकड़ सुस्थिर करे, राम बतावे धाम ।।१०।।
सत्संगति के लाभ से, ऐसा बने बनाव ।
रंग बहुत गूढ़ा चढ़े, बढ़े चौगुणा चाव ।।११।।

ईश्वर स्वरूप

राम सत्स्वरूप है

अस्तित्व वस्तु का परम, वस्तु शुद्ध स्वरूप ।
भाव रूप वस्तुत्व है, सत्य अखण्ड सुरूप ।।१।।
तीन काल त्रिलोक में, जिस का न हो अभाव ।
सत्ता अस्तित्व एक रस, कहा सत्य सद्भाव ।।२।।
चयोपचय परिणाम से, रहित वस्तु जो होय ।
रहित विकार विनाश जो, सत्य समझिए सोय ।।३।।
जिस में परिवर्तन नहीं, नहीं अन्य संयोग ।
वही तो वस्तु सत्य है, कहते ज्ञानी लोग ।।४।।
भावरूप श्री राम है, पूर्ण पुरुष अबाध ।
उस का होना एक रस, कहा अनन्त अगाध ।।५।।
सत्यरूप भगवान् है, सर्व सत्य आधार ।
निरपेक्षित अस्तित्व है, सर्व सत्य का सार ।।६।।
सत्ता राम की सर्वथा, वर्जित सर्व विकार ।
परम शुद्ध ही सर्वदा, है समरूप अपार ।।७।।
नाम रूप में काल है, युक्त वस्तु में काल ।
नाम रूप संयोग से, रहित है राम दयाल ।।८।।
कार्य सब ही जन्य है, कार्य का है नाश ।
कार्य रूप न राम है, है शुभ सत्य विकाश ।।६।।
अविनाशी निश्चल कहा, राम रहित परिणाम ।
ईश एक ही सत्य है, सर्व सत्य का धाम ।।१०।।
अमृत आत्म पद परम, अनादि और अनन्त ।
परिवर्तन से पार है, कहते ऋषि मुनि सन्त ।।११।।

राम सत्य स्वरूप में, नहीं काल व देश ।
है अद्वैत स्वरूप में, आत्मा परम महेश ।।१२।।
भेद नहीं है राम में, राम सदृश न और ।
सत्ता सनातन सत्य है, राम सर्व की ठौर ।।१३।।
अंशांशी के भाव से, रहित सत्ता है एक ।
कार्य कारण रहित है, राम सर्व की टेक ।।१४।।
सूर्य से जैसे जुड़ा, रहता किरण कलाप ।
सर्व सत्ताएँ राम से, रखतीं तथा मिलाप ।।१५।।
सृष्टि मालाकार है, सूत्र राम अशोक ।
सभी पिरोये शोभते, उस में सुन्दर लोक ।।१६।।
सर्व सत्य के सत्य हे, राम सर्व की तार ।
अपने सत्य सुरूप में, मुझे दीजिए प्यार ।।१७।।

राम ज्ञान स्वरूप है

ज्ञाता सारे विश्व का, सब ज्ञानमय शान्त ।
अतिशय चेतन है प्रभु, पूर्ण और निर्भ्रान्त ।।१।।
परम ज्ञानस्वरूप है, चिद्घन चेतनधाम ।
ज्ञान तेज का पुंज है, परमात्मा श्री राम ।।२।।
तेज पिण्डवत् ज्ञानमय, तथा समुच्चय ज्ञान ।
प्रकाशमय सूर्य सम, कहा गया भगवान् ।।३।।
आत्मसूर्य राम है, तेजोराशि अनन्त ।
अनन्त चेतना कोश है, ज्योतिर्वर्जित अन्त ।।४।।
वह स्वतः प्रकाश है, उज्ज्वल ज्योति अखण्ड ।
वस्तु प्रकाशक है वह, और सभी ब्रह्माण्ड ।।५।।

सब का ज्ञाता देव है, द्रष्टा साक्षीरूप ।
सत्ता चेतना पुंज है, अमृत शुचि स्वरूप ।।६।।
सब ही सूक्ष्म स्थूल जो, कहे पदार्थ ज्ञेय ।
उन का ज्ञाता ईश है, राम सभी का ध्येय ।।७।।
नाम रूप अस्तित्व में, वस्तु मात्र समाय ।
वस्तु ज्ञान तो सर्व ही, राम पास आ जाय ।।८।।
शब्द रूप गतियां सभी, क्रिया कर्म विकास ।
व्यापें सब आकाश में, तथा राम के पास ।।६।।
मानस चिन्तन ज्ञान जो, स्मृति स्थित सुविचार ।
संस्कार सभी देश में, करते हैं संचार ।।१०।।
स्फुरित स्फुरणा हो जब, व्याप जाय सब देश ।
उस सब को पूर्णतया, जाने राम महेश ।।११।।
पड़ते विमल स्फटिक पर, प्रतिबिम्ब ज्यों आय ।
वस्तु भाव ऐसे सभी, ईश समीप लखाय ।।१२।।
जैसे विमल सुनील नभ, सह तारागण रास ।
जल अमल में सोहे त्यों, हरि में सब आभास ।।१३।।
सूक्ष्म लोक सुविमल में, आ-भास प्रति-भास ।
विलसित हैं सब देश में, नभ में लिये विलास ।।१४।।
लहरें लें आकाश में, जैसे ज्योति उल्लास ।
ऐसे राम अनन्त में, है सब ज्ञेय निवास ।।१५।।
निरावरण श्री राम में, सभी वस्तु का भाव ।
अंकित बिम्बित जानिए, लय परिणाम बनाव ।।१६।।
उज्ज्वल सूक्ष्म लोक में, अन्तर नहीं गिणाय ।
वहां पदार्थ राम को, हस्तामलक हि दिखाय ।।१७।।

सब ही अतीत अनागत, वर्तमान का ज्ञान ।
है उस को ऐसा कहें, सब आस्तिक विद्वान् ।।१८।।
भूत भविष्यत् नित्य में, करें नहीं प्रवेश ।
नित्य वस्तु है एक रस, काल रहित सुविशेष ।।१९।।
कारण कार्य भाव में, काल-कल्पना होय ।
काल कला उस में नहीं, नित्य वस्तु है जोय ।।२०।।
परम नित्य श्री राम में, अचल भाव अविकार ।
रहे एक रस सर्वदा, सत्ता शुद्ध आधार ।।२१।।
परिवर्तन में काल है, गणना रूप कहाय ।
सापेक्षित इस को कहें, ज्ञानी जन समझाय ।।२२।।
निरपेक्षित श्री राम है, रहित सर्व परिणाम ।
उस में परिवर्तन नहीं, और काल का नाम ।।२३।।
होनापन सब वस्तु का, वर्तमान का भान ।
पूरेपन में हो रहा, उसे सब वस्तु-ज्ञान ।।२४।।
अगम्य गति का ज्ञान है, वर्णन में न समाय ।
कहते हैं संकेत से, मुनि अनुभव को पाय ।।२५।।
नियमबद्ध सृष्टि सकल, नियमित कार्य होय ।
सब विकास हैं नियम में, लयोत्पत्ति भी सोय ।।२६।।
रचना सब है नियम में, है सब का मित तोल ।
स्थिति सुयोग वियोग गति, सब भूगोल खगोल ।।२७।।
नियम एक रस है सदा, तीन लोक त्रिकाल ।
उस को पूर्ण ज्ञान से, जाने ईश दयाल ।।२८।।
भाव हुए पहले यथा, होंगे हैं हि तथैव ।
सुज्ञान उन का यथावत, उस में रहे सदैव ।।२९।।

कारण कार्य भाव सब, याथातथ्य बताय ।
पूर्ण क्रम सुनियमपन, याथातथ्य कहाय ।।३०।।
ऐसे याथातथ्य का, ज्ञाता राम महान् ।
रचना सूक्ष्म स्थूल का, जाने सर्व विधान ।।३१।।
अंकित हैं भगवान् में, भाव सुसूक्ष्म स्थूल ।
उस के ज्ञान अनन्त में, नहीं भ्रान्ति तम मूल ।।३२।।
अन्तर्यामी कहा प्रभु, सब का जानन हार ।
भीतर से वश में करे, सर्व सृष्टि विस्तार ।।३३।।
इच्छा उस की सृष्टि में, रही निरन्तर राज ।
संकल्प महाराज का, बहुविध करें सुकाज ।।३४।।
अति प्रबल संकल्प से, मेरा राम महान् ।
कारण कार्य विश्व में, हो रहा विद्यमान ।।३५।।
है प्राप्त सब देश में, निराकार भगवान् ।
इच्छा अलौकिक परम से, वह है सब ही स्थान ।।३६।।
सूक्ष्मतम से स्थूल तक, है जो तत्त्व विकार ।
राम इच्छा का सर्व में, विद्यमान संचार ।।३७।।
सृष्टि सकल का आत्मा, यमन करे सब लोक ।
अपने पूर्ण नियम से, बिना रोक वा टोक ।।३८।।

राम आनन्द स्वरूप है

परम शुद्ध स्वरूप जो, आत्मा पूर्ण ज्ञान ।
अतिशय ज्योतिर्मय प्रभु, पूर्ण पद असमान ।।१।।
अतिशय अपनी सत्ता में, है पूर्ण जो ईश ।
सो ही सुखमय है सदा, परम विमल जगदीश ।।२।।

पूर्ण चेतन परम जो, है पूर्ण आनन्द ।
परम सत्ता चैतन्य में, शोभित है सुखकन्द ।।३।।
भेद भ्रान्ति से रहित जो, चिद्घन सदा निर्बन्ध ।
शुद्ध बुद्ध स्वभाव जो, सो है परमानन्द ।।४।।
नित्य एक रस राम है, सत्ता अनादि अनन्त ।
अनंत ज्ञान सुखमय हरि, कहते ज्ञानी संत ।।५।।
अल्प वस्तु में भूल हो, दोष विकार अज्ञान ।
काल कला उस पर पड़े, सम्भव हो दुःख हान ।।६।।
राग द्वेष उपजे वहां, नाना मानस दोष ।
त्रुटि अभाव वहां रहें, कलह कल्पना रोष ।।७।।
अनादि शुद्ध अनन्त जो, चेतना रूप महान् ।
वही परम सुखकंद है, वह आनन्द निधान ।।८।।
विषय जन्य जो सुख सभी, क्षणभंगुर हो जाय ।
इन्द्रियरस का सब सुख, हो कर फिर विनसाय ।।९।।
भोग रोग के योग हैं, दें संयोग वियोग ।
नीरस रस हों सर्व ही, हास रमण दें सोग ।।१०।।
विषयातीत महान् जो, चेतन भाव विशेष ।
पूर्ण अपने आप में, है सुखरूप अशेष ।।११।।
सुख तो है समता शुचि, सत्ता मुक्त स्वभाव ।
पूर्ण सुखमय राम है, वीतराग सम भाव ।।१२।।
सुख स्वरूप सुशांत है, शिव शम शंकर आप ।
उस शुचिपद अति शुद्ध में, रहा आनन्द व्याप ।।१३।।
राग द्वेष से विषमता, होती कहें सुजान ।
तीन गुणों से हो वही, ऐसा कहें विद्वान् ।।१४।।

विषमता में सब दुःख है, वैषम्य में अज्ञान ।
सम्भव होवें भ्राँति भय, करे पाप भी स्थान ।।१५।।
मान सरोवर चित्त में, विषमता वायु संग ।
आधि व्याधि महादुःख के, विलसित करे तरंग ।।१६।।
अनादि नित्य निर्वाण जो, है गुणों से अतीत ।
उस पद से सब विषमता, जाय सर्वथा बीत ।।१७।।
शांत एक रस भाव जो, परम चेतनावान् ।
शुद्ध अनादि अनन्त जो, है समरूप समान ।।१८।।
समता सागर राम पद, है शिव शांत अद्वैत ।
द्वन्द्व विषमता रहित है, वहाँ नहीं गुण त्रैत ।।१६।।
ऐसा सम जो सर्वदा, सो है सुखमय देव ।
आनन्द कन्द शुभरूप है, वह सदा सत्यमेव ।।२०।।

राम सर्वशक्तिमान् है

सर्वशक्तिमय देव है, अतिशय शक्तिमान् ।
वस्तु शक्ति स्वरूप है, चेतन शक्ति निधान ।।१।।
सत्ता ज्ञान स्वरूप है, प्रभु पुरुष भगवान् ।
पूर्ण पद है परम ही, आत्मा अति बलवान् ।।२।।
समझो मौलिक शक्ति है, ज्ञाता का शुभ ज्ञान ।
ज्ञानमयी जो सत्ता है, वही है शक्ति स्थान ।।३।।
चेतन का स्वभाव है, जाने जो है ज्ञेय ।
पूर्ण ज्ञाता ही लखे, वस्तु सभी प्रमेय ।।४।।
नाम रूप का ज्ञान जो, ऐसे पन का भान ।
यह वह का जो ज्ञान है, लखना सर्व विधान ।।५।।

ज्ञाता का संकल्प है, ज्ञेय ज्ञान व्यापार ।
चेतनता का यह कहा, ईक्षण इच्छा विस्तार ।।६।।
जहाँ जहाँ ही ज्ञान है, शक्ति वहाँ सुदिखाय ।
चेतनता का भाव ही, शक्ति समझ में आय ।।७।।
पूर्ण चेतन ईश जो, पूर्ण पुरुष अभ्रान्त ।
विद्यमान सब स्थान में, शक्ति वही एकांत ।।८।।
सर्वज्ञ सर्व सुशक्तिमय, ईश्वर वह कहाय ।
जानो पूर्ण ज्ञान में, शक्तिमात्र समाय ।।६।।
सृष्टि कार्य रूप है, बहु कारण परिणाम ।
नाना साधन योग से, बने रूप ही नाम ।।१०।।
सब आकार विकार ही, गति से कहे विकास ।
गति क्रिया है एक ही, जिस का विश्व विलास ।।११।।
पहले कारण विश्व का, था अक्रिय चुपचाप ।
निष्क्रिय कारण जगत् में, सम्भव कम्प न आप ।।१२।।
रामेच्छा उस में सबल, प्रेरणा बनी व्याप ।
स्फुरित गति उससे हुए, कार्यक्रम कलाप ।।१३।।
परम सबल संकल्प से, प्रेरित कारण जाल ।
कम्पित वह सब हो गया, क्रिया-शील तत्काल ।।१४।।
वेगवती गति हो गई, उस में अतुल अपार ।
उस से हुए विकास सब, नाम रूप संसार ।।१५।।
अति सूक्ष्म संकल्प ही, कहा ज्ञान व्यापार ।
वह ही कारण मूल में, है करता संचार ।।१६।।
सूक्ष्मतम संकल्प ही, शक्तिरूप है ज्ञान ।
परम पुरुष की प्रेरणा, परम शक्ति की खान ।।१७।।

प्रथम गति तो ज्ञान है, अति सूक्ष्म सुविचार ।
व्यक्तरूप वह ही बने, गति क्रिया अवतार ।।१८।।
राम इच्छा शुभ बीज है, कारण खेत समान ।
विकसा उन के मेल से, विश्व वृक्ष महान् ।।१६।।
कारण कार्य भाव में, नियमबद्ध है काम ।
सृष्टि चलती नियम में, बिन विश्राम विराम ।।२०।।
नियत नियम में हो रहे, रचना के संयोग ।
विधि सुक्रम से हो रहा, सब संयोग वियोग ।।२१।।
ज्यों जल रचे रसायनी, दो पवनों को मेल ।
ऐसे पूरे नियम से, हो नभ में जलखेल ।।२२।।
रसायन घर में निराम से, यथा हों रस निर्माण ।
जगत् रसायन भवन में, होते तथा विधान ।।२३।।
गुरुत्वाकर्षण नियम है, कैसा नियत अखण्ड ।
है ऐसे ही नियम में, ओत प्रोत ब्रह्माण्ड ।।२४।।
सर्व शक्ति का काम है, सर्व पूर्ण नहि न्यून ।
जो है पूर्ण चेतना, है शक्ति बिना ऊन ।।२५।।
है नियम निश्चित यह, आम बीज से आम ।
गेहूँ होय गेहूँ से, आदि दाख बादाम ।।२६।।
यथा बीज से हो तथा, वनस्पति जग विस्तार ।
जंगम जग में नियम यह, चलता है इकसार ।।२७।।
रंग रचना सब पुष्प की, पंखड़ी पत्ति पात ।
कतर ब्यौन्त विधि नियम में, सोहे सब संघात ।।२८।।
जैवी जग को जानिए, ज्ञान नयन को खोल ।
यथायोग्य सुनियमता, उस में है अनमोल ।।२६।।

जलचर स्थलचर खेचर, जितने हैं ये जीव ।
योग्यता अनुसार है, उन के तन की नींव ।।३०।।
जल थल नभ के योग्य हि, उन के हैं सब अंग ।
इन्द्रिय तदनुसार हैं, रहन रंग वा ढंग ।।३१।।
देह-गठन का नियम भी, अद्‌भुत है चमत्कार ।
कर्म सभी स्वभाव से, होते वहां अपार ।।३२।।
पूर्ण यंत्र देह है, पुर्जे हैं सब ठीक ।
सहस्त्रों कार्य कर रहे, अहर्निश अति रमणीक ।।३३।।
ऐसा पूर्ण नियम जो, परम ज्ञान से होय ।
ऐसी पूर्ण चेतना, शक्ति समझिए सोय ।।३४।।
विश्व देह की चेतना, शक्तिमती कहलाय ।
शक्ति चेतना एक है, सार समझ में आय ।।३५।।
होते कारण नियत से, सब ही कार्य भाव ।
नियत वस्तु संयोग से, बनते सभी बनाव ।।३६।।
नियत तत्त्व के मेल से, नियमित मित के संग ।
विविध पदार्थ हैं बने, दीखे नियति अभंग ।।३७।।
रचना सब द्युलोक की, सारी सृष्टि सौर ।
नियत वेग पथ से चले, सुनियत उन की ठौर ।।३८।।
ऐसी निश्चित नियति है, नहीं वहां अपवाद ।
उन के गति पथ वेग में, होता नहीं विवाद ।।३९।।
उसी पथ पर अनेक की, आ जाती है चाल ।
नियत वेग से सब चलें, नियत रहे ही काल ।।४०।।
नियत समय में लाँघते, विघ्न न उन में आय ।
लोक से लोक परस्पर, कभी नहीं टकराय ।।४१।।

संचालन सह ज्ञान है, भ्रान्ति भूल से पार ।
नियति नियम हैं कह रहे, सहस्त्रों युक्ति उच्चार ।।४२।।
नियत लोक का मान है, नियत सभी का स्थान ।
परस्पर अन्तर लोक का, गिना गणित गत ज्ञान ।।४३।।
नियम ऐसा निर्भ्रान्त यह, कुछ भी रही न चूक ।
देख सुनिश्चित नियम को, हैं सब ज्ञानी मूक ।।४४।।
नियत वेग से आ रहा, सूर्य से आलोक ।
भू पर आता नियम से, बिना त्रुटि वा रोक ।।४५।।
उदय अस्त के नियम को, हुए वर्ष बहु लाख ।
अब तक अचल अखण्ड है, देते ज्ञानी साख ।।४६।।
आकस्मिक न नियति यही, नियम नहीं यह अन्ध ।
ऐसे सुदृढ़ नियम का, है ज्ञान-कृत बन्ध ।।४७।।
पूर्ण चेतन के बिना, उत्तम यह प्रबन्ध ।
कारण अन्ध न कर सके, जिस में ज्ञान न गन्ध ।।४८।।
सृष्टि क्रम सुनियमता, रचना लोक अनन्त ।
ज्ञान शक्ति सूचित करे, कहते हैं मतिमन्त ।।४६।।
है ही पूर्ण चेतना, नियति नियम का मूल ।
शक्ति सर्व स्वरूप वह, रहे न उस में भूल ।।५०।।
मूल परमाणु पुंज में, विद्युत् वेग समान ।
राम इच्छा है रम रही, करती विविध विधान ।।५१।।
इच्छा वस्तुतः सबल तम, परम शक्ति कहलाय ।
पूर्ण पुरुष सर्व ही, सब शक्तिमय कहाय ।।५२।।
ज्ञान इच्छा श्री राम की, जग की आत्मा होय ।
बसी बीज बन विश्व में, सब शक्तिमयी सोय ।।५३।।

अपने सुनियति नियत में, जो न पर के अधीन ।
सर्व शक्तिमय सो प्रभु, कर्ता ईश स्वाधीन ।।५४।।
ज्ञान-स्फुरणा ज्ञेय में, शक्ति कहें गुणवान् ।
ज्ञाता सारे ज्ञेय का, है सर्व शक्तिमान् ।।५५।।
ज्ञान मूलक इच्छा कही, इच्छा शक्ति है एक ।
ज्ञान इच्छा में शक्तियां, रहीं समाय अनेक ।।५६।।
इच्छा हरि सर्वज्ञ की, है सर्व शक्तिरूप ।
सर्व जगत् की चेतना, शक्ति सर्व स्वरूप ।।५७।।
जिस में हैं सब शक्तियां, सो सर्व शक्तिमान् ।
अर्थ सब शक्तिमान् का, करते यही विद्वान् ।।५८।।
अशुभ कर्म विपरीतता, जानिए दुरुपयोग ।
शक्ति शुद्ध स्वरूप का, कहते ज्ञानी लोग ।।५९।।
भ्रम भूल से रहित जो, जिस में राग न द्वेष ।
शुभ पूर्ण जो ज्ञानमय, चेतन शुद्ध विशेष ।।६०।।
उस में सर्व ही शक्तियां, हैं शुचि रहित विकार ।
उस में तो विपरीतता, पाय नहीं संचार ।।६१।।
जैसे ज्योति सूर्य से, पुष्प से ज्यों सुवास ।
ऐसे हरि की शक्तियां, शुभ ही करें विकास ।।६२।।
इच्छा कही स्वाभाविकी, राम की शुचि अकाम ।
इच्छा कर्म स्वभावगत, जानिए सब निष्काम ।।६३।।
जैसे मानव देह में, होते कर्म कलाप ।
सहस्त्रों ही स्वभाव से, बिना कामना आप ।।६४।।
इच्छा कामना रहित से, ऐसे है संसार ।
लयोत्पत्ति विकास में, गतिमान् लगातार ।।६५।।

क्रिया गति उत्पत्ति लय, सृष्टि सुक्रम योग ।
रचना नाना कर रहा, हरि सन्निधि संयोग ।।६६।।
चाँद-कला पा कर यथा, आय सिन्धु में बेल ।
ऐसे सन्निधि राम की, करती बहु विध खेल ।।६७।।
सूर्य-किरण सुयोग से, ज्यों अगणित परिणाम ।
हो रहे हरि सुयोग से, ऐसे नाना काम ।।६८।।
जिस के सन्निधि भाव से, प्रेरित सब संसार ।
सर्व शक्तिमय राम है, रहित रूप आकार ।।६९।।
पावन पद जो परम है, पावन जिस का नाम ।
सर्व शक्तिमय है वही, सर्व ज्ञानमय राम ।।७०।।

राम प्रेम स्वरूप है

राम प्रेम स्वरूप है, पूर्ण प्रेम अगाध ।
असीम सागर प्रेम का, धारा अमृत निर्बाध ।।१।।
पूर्ण अपने आप में, प्रेम रूप ही होय ।
जिस में ऊनापन नहीं, प्रेम रूप है सोय ।।२।।
पूर्ण सृष्टि जिस रची, पूर्ण जिस का नेम ।
पूर्ण पुरुषोत्तम वह, कहा प्रेम ही प्रेम ।।३।।
प्रेममय, शुद्ध सत्य है, जिस में दोष न मैल ।
पावन पद का प्रेम ही, रहा सभी दिश फैल ।।४।।
प्रीति सत्य में सब को, होती है लो देख ।
सत्य सूर्य है प्रेममय, कहते ग्रंथ सुलेख ।।५।।
सत्ता सत्य निरपेक्ष जो, अमृत रहित विकार ।
वही एक रस राम है, सब सारों का सार ।।६।।

प्रियता बसे ज्ञान में, चेतनता है प्यार ।
चित्त की चारु चमक जो, करती प्रेम पसार ।।७।।
सुन्दरता प्रियता सब, खिले ज्ञान को पाय ।
विकसी सुप्रीति ज्ञान से, अनुभव रहे बताय ।।८।।
शोभा बसे सुज्ञान में, क्रम सुगठित सुहाय ।
जहां सुनियम सुक्रम अति, वही प्रिय हो जाय ।।९।।
सृष्टि नियम सुक्रम गठन, सहित शोभित अपार ।
उस का नियन्ता है हरि, कल्पना पार प्यार ।।१०।।
जो अच्छा वही शुभ प्रिय, है यह उत्तम नेम ।
सब से अच्छा राम है, परम प्रेम ही प्रेम ।।११।।
सब में सम प्यारा लगे, शोभन वही कहाय ।
सब में सम श्री राम है, प्रेम रहा बरसाय ।।१२।।
परम ज्ञानमय जो प्रभु, रहता बना अखूट ।
सदा एकरस प्रेम वह, सो है प्रेम अटूट ।।१३।।
राग-द्वेष से रहित जो, पक्ष-पात से पार ।
पाप ताप से रहित हो, परम प्रेम अवतार ।।१४।।
वीतराग पद राम है, उस में दोष न लेश ।
प्रतिमा परम प्यार की, माना वही महेश ।।१५।।
राग-द्वेष की विषमता, जानो प्रेम अभाव ।
जो ही सम है सर्वदा, वही प्रेम स्वभाव ।।१६।।
समता सिन्धु असीम जो, सदा सौम्य सुशांत ।
प्रियरूप सो है प्रभु, अमृत पद एकान्त ।।१७।।
सुन्दर जो सो है प्रिय, सुन्दर हो रमणीक ।
सुन्दर शोभाधाम जो, वही प्रियपन ठीक ।।१८।।

सुन्दरता है ज्ञान में, ज्ञान सौन्दर्य स्थान ।
सुन्दर रचना ज्ञान से, होती सदा विधान ।।१६।।
चित्रकार के ज्ञान में, जो सुन्दरता होय ।
चित्रपट पर वही बसे, चित्रित हो कर सोय ।।२०।।
सारे जग की चेतना, परम ज्ञान की रास ।
सकल विश्व में कर रही, सब सौंदर्य विकास ।।२१।।
अभिव्यक्ति है ज्ञान की, कुसुम लता के कुंज ।
सुन्दर सजे सुहावने, बने प्रेम के पुंज ।।२२।।
प्रकृति पट पर प्रेम हि, धर सौंदर्य सुरूप ।
ज्ञान कथा को कह रहा, बना प्रेम अनुरूप ।।२३।।
जिस में पूर्ण ज्ञान है, सुन्दर वही कहाय ।
सो सुन्दर हरि प्रेम है, गुणि गण कहते गाय ।।२४।।
श्वेत प्रिय हो सर्व को, अधिक नयन को भाय ।
श्वेत सुवर्ण अवर्ण है, इससे बहुत लुभाय ।।२५।।
श्वेतपन सभी रंग का, कहें अभाव सुजान ।
राग-द्वेष रंग रहित हि, राम प्रेम की खान ।।२६।।
शुद्ध वस्तु प्यारी लगे, जिस में नहीं विरूप ।
पूर्ण अपने भाव में, है ही प्रेम सुरूप ।।२७।।
त्रिगुण ताप विकार से, रहित राम ही आप ।
परम शुद्ध है प्रेममय, पतित पावन निष्पाप ।।२८।।
जिस से अपना मेल हो, हो समीप सम्बन्ध ।
अपने सदृश जो वही, कहा प्रेम का बन्ध ।।२६।।
जिस से अपना आप ही, जन्मे देह को धार ।
रहना जाना हो जहां, उस में होवे प्यार ।।३०।।

सब का अपना राम है, आत्म-तत्त्व पहचान ।
सखा बन्धु भगवान् है, सब में एक समान ।।३१।।
उत्पत्ति स्थिति पालना, जो करता है ईश ।
सब के वही समीप है, प्रेमरूप जगदीश ।।३२।।
विद्यमान सब देश में, है सब जन के पास ।
आत्मभाव सुमुक्त जो, वह है प्रेम निवास ।।३३।।
सदृश आत्मतत्त्व है, पर है परम महान् ।
इस से जानो है प्रिय, कहते गुणी विद्वान् ।।३४।।
पिता पुत्र सम्बन्ध से, ज्यों शारीरी शरीर ।
सब का अपना राम है, सिंधु प्रेम गम्भीर ।।३५।।
आत्मा को आत्मा प्रिय, होवे सहित विवेक ।
स्वसम आत्मा राम है, सदा शुद्ध वह एक ।।३६।।
परम धाम श्री राम है, भक्त जनों का स्थान ।
उस पद के शुभ ध्यान से, होवे अपना ज्ञान ।।३७।।
प्रियरूप माना वही, वीतराग भगवान् ।
सम शिव शान्त अद्वैत जो, धाम पावन निर्वाण ।।३८।।

राम मुनिजन अनुभूत वस्तु है

ईश्वर सत्ता है नहीं, करते गुणी विवाद ।
भद्र नहीं वह, यों कहें, लौकिक दर्शन वाद ।।१।।
सैद्धांतिक मतवाद का, ईश नहीं कहलाय ।
उस का होना मिट गया, यह युग रहा बताय ।।२।।
इतने भारी दुःख हैं, महा व्याधि बहु रोग ।
इन का कर्ता न ईश है, कहें दार्शनिक लोग ।।३।।

पदार्थ विद्या से नहीं, वह तो जाना जाय ।
युक्ति तर्क से वह कभी, सिद्ध नहीं हो पाय ।।४।।
करते ऐसे तर्क का, ज्ञानी सुसमाधान ।
अनुभव से जाना गया, युक्ति सिद्ध भगवान् ।।५।।
हो न कल्पना वाद से, यदि सुवस्तु प्रतीत ।
कहना वह तो है नहीं, कहा युक्ति विपरीत ।।६।।
अति सूक्ष्म जो तत्त्व है, वस्तु रहित आकार ।
उस का लौकिक वाद से, है खण्डन निराधार ।।७।।
मत के मनमाने कथन, बने हठधर्मी रूप ।
देश काल की रीतियां, धारे फिरें कुरूप ।।८।।
पहरायें अति युवक को, बाल काल का वेश ।
सड़ान्ध सैद्धांतिक में सड़, करें हठ वाद क्लेश ।।६।।
उन में यदि आया नहीं, पूरा ईश विचार ।
देश काल का समझिए, वहां अधिक अधिकार ।।१०।।
पर जो द्रष्टा जन हुए, पूरे सन्त सुजान ।
वे सब हो एक सम्मति, कहें वस्तु भगवान् ।।११।।
स्वतः सिद्ध भगवान् है, स्वयं सुज्योतिर्मान् ।
सिद्धि युक्तियों से करें, गुणी लिए अनुमान ।।१२।।
विश्व सिद्धि जिस से हुई, सर्व ज्ञान का मूल ।
प्रेरक सारे जगत् का, सिद्ध रहित है भूल ।।१३।।
जो सूर्य है सर्व का, सभी दिखाने हार ।
उस का दीपक तर्क से, वर्णन वचन विस्तार ।।१४।।
राम के अस्ति भाव में, वेद श्रुति का गान ।
अनुभव मुनिजन सन्त का, माना उत्तम मान ।।१५।।

अस्ति भाव भगवान् का, नहीं कल्पना वाद ।
कोरी तर्क न जानिए, नहीं भक्त सम्वाद ।।१६।।
वीतराग जो जन हुए, हैं जो सज्जन सन्त ।
ऋषि महर्षि सब काल के, ज्ञानी शुभ मतिमन्त ।।१७।।
एक जीभ हो कर कहें, अपना अनुभव ज्ञान ।
दृष्ट सुवस्तु राम है, सत्य शुद्ध भगवान् ।।१८।।
लोभ मोह से रहित जो, जिन में दम्भ न लेश ।
कहते हैं अनुभूत है, ज्योतिर्मान महेश ।।१६।।
शान्त दान्त जो सन्त हैं, सच्चे सहित विवेक ।
कहते हैं श्री राम है, सच्ची अनुभूति एक ।।२०।।
ज्ञानी ध्यानी संयमी, भक्त योगी विद्वान ।
श्रेष्ठ सज्जन सब काल के, करते राम बखान ।।२१।।
इस को कोरी कल्पना, कहना कहा अज्ञान ।
अनुभव गम्य जो वार्ता, वहां न खींचा तान ।।२२।।
परा विद्या से गम्य है, समाधि से है ज्ञात ।
साक्षी आत्मलोक का, है अनुभव की बात ।।२३।।
फल विपर्य्य से जानिए, जैवी कर्म कलाप ।
जीव है कर्ता कर्म का, भोक्ता रच कर आप ।।२४।।
इच्छा कही स्वतन्त्र हि, जिस से होते काम ।
अच्छे बुरे बहु भान्त के, रात दिवस सब याम ।।२५।।
जैवी जग चेतन कहा, इच्छा सहित स्वाधीन ।
करे चेष्टा स्वतन्त्र से, अच्छे कर्म वा हीन ।।२६।।
स्वेच्छा में स्वतन्त्र न, यदि होवें सब जीव ।
ईंट खिलौने वे बनें, बिना मूल बिन नींव ।।२७।।

निज इच्छा स्वतंत्र से, जैसे कर्म कमाय ।
फल भोगें वैसे सभी, जीव जन्म को पाय ।।२८।।
ईश का इस में दोष न, वह द्रष्टा है एक ।
स्वकृत फल पावें सब, जग में जीव अनेक ।।२६।।
ज्वालामुख गिरि शिखर पर, रहें जो नगर बसाय ।
भूचल से यदि नष्ट हों, उन का दोष दिखाय ।।३०।।
उष्ण विषम अति देश जो, अति शीतल भूभाग ।
वहां करें आवास जो, वे भोगें निज भाग ।।३१।।
इस में देना राम को, दोष कर्म अनजान ।
अपना कर्म न मानना, माना दोष महान् ।।३२।।
नदी-खेत में जो बसें, सागर के अतिपास ।
जल-विप्लव से यदि मरें, ऐसा कर के वास ।।३३।।
दोष उन्हीं का जानिए, किये कर्म का भोग ।
भोगें इच्छित कर्म कर, ऐसे सब ही लोग ।।३४।।
स्थान अयोग्य में वास कर, जो जन पावें हान ।
उन के अपने कर्म ही, ऐसा करें विधान ।।३५।।
संयम तज कर अधिक जन, बहु उपजा सन्तान ।
निज जातिक बहु दुःख को, वर्द्धन करें अजान ।।३६।।
स्वास्थ्य सुनियम भंग कर, नियम उचित को तोड़ ।
रोग भोग स्वकर्म फल, समझें सर्व निचोड़ ।।३७।।
वैर विरोध बढ़ाय कर, हो लोभ वशीभूत ।
समर हनन समझें सभी, अपना काता सूत ।।३८।।
ईश कर्म जानो वही, प्राकृत जो कहाय ।
सुनियम लोक अनन्त का, उस से समझा जाय ।।३६।।

ग्रह उपग्रह की चाल जो, उन के अन्तर मान ।
इन्द्रिय-गण की योग्यता, नियम दैहिक निर्माण ।।४०।।
सब नैसर्गिक नियम जो, वस्तु मेल परिणाम ।
आदिक मौलिक नियम का, कहा सूत श्री राम ।।४१।।
सब सुबौद्धिक नियम जो, मनुज कृति से पार ।
उन का नियन्ता है हरि, यही कथन का सार ।।४२।।
उस की भक्ति उपासना, आत्मबोध निधान ।
उन्नति चेतन-भाव की, अमृत मार्ग यान ।।४३।।
देती समता प्रेम को, तथा शान्ति सन्तोष ।
पाप ताप परिहारिणी, नाशिनी भ्रान्ति दोष ।।४४।।
दैविक जीवन दायिनी, सत्य ज्ञान सोपान ।
चित्त शुद्धि शुचिकारिका, दात्री अमृत पान ।।४५।।

लीला

लीला है श्री राम की, सृष्टि के सब भाव ।
अवलोकन कर प्रेम से, बढ़े चित्त में चाव ।।१।।
लीला लखने के लिए, लगन लालिमा होय ।
कालिमा कुटिल कुतर्क की, सभी दीजिए धोय ।।२।।
लीला लखे लुभावनी, प्रेम लालसा संग ।
निश्चय श्रद्धा भक्ति से, मन में लिए उमंग ।।३।।
शोभा लिए सुवर्ण की, प्रभा सहित सुप्रात ।
लीला करती भज रही, राम राम शुभ बात ।।४।।
उषा सुवर्ण सुवेश से, कर लीला संचार ।
सब को लाली दे रही, ले लीला अवतार ।।५।।

शुभ सुन्दर सिंगार से, सजे पेड़ सह पात ।
कोंपल पल्लव नव सभी, बने सुवर्ण संघात ।।६।।
लहकें ले लाली ललित, लता बेल के कुँज ।
सबेर समय उद्यान बन, दिखें प्रेम के पुँज ।।७।।
भोर भई भौरे भ्रमण, करें फिरें सब ओर ।
अर्द्धखिली कली कमल की, सोहे ठौर सुठौर ।।८।।
शोभा शालिनी ही बनी, वनराजी शुभ राज ।
लीला श्री भगवान् की, करती सब सज साज ।।६।।
चिड़ियां तोते सारसें, बोलें शुभ सारंग ।
स्वर सरस से बोलते, सोहें सुर के अंग ।।१०।।
मैना मोर सुमधुर तर, करते शोभें नाद ।
करें आरती ईश की, हर कर सर्व विषाद ।।११।।
चहुँ ओर है हो रहा, पंछीगण का गीत ।
शुभागमन दिननाथ का, सहित सहज संगीत ।।१२।।
पिउ पिउ कर के प्रेम से, पाले पपीहा प्रीत ।
हूं हूँ घू घू नाद से, गुग्गी गावे सुगीत ।।१३।।
वन में लीला हो यथा, तथा नदी नद तीर ।
मन्द सुगन्ध समीर चल, कम्पित करती नीर ।।१४।।
अमल नील जल चल रहा, चंचल चपल तरंग ।
उषा-काल लाली लिए, उछलें लीला संग ।।१५।।
तरु कम्पित हो पवन से, ललित लता से खेल ।
नद को पूजें पुष्प से, मीठा मान सुमेल ।।१६।।
नत शिर बेलें पुष्प की, पत्र कोंपलों साथ ।
अंजलि दे कर पूजतीं, नद को नमाय माथ ।।१७।।

लिए उषा की लालिमा, हुए लाल से लाल ।
मिल समीर से नाचते, शाख डालियां डाल ।।१८।।
ऐसा मधुर सुहावना, नृत्य सदा निर्दोष ।
होता लीला राम में, देता परम सुतोष ।।१९।।
सोहे नीला अमल नभ, विस्तृत बहुत विशाल ।
सोता जगा सुप्रात में, ओढ़ सुनहली शाल ।।२०।।
मन्द हुए तारे सभी, टिम टिमाए सुलोक ।
उषा लालिमा को लख, पा कर शुभ आलोक ।।२१।।
खेल रजनी राज्य का, गया तभी सब बीत ।
उषा सुलीला दान कर, नभ में भर दी प्रीत ।।२२।।

२

आई बधाई तेज की, बादल दीखें लाल ।
सरिता सागर झील सर, लाल हुए सब ताल ।।२३।।
टुकड़ी मेघ जहाँ तहाँ, छिड़की रंग गुलाब ।
शोभे रटती राम को, ले कर सुन्दर आभ ।।२४।।
पूर्व शोभा शुभ हुई, उदय हुआ जब भान ।
दीखा सूर्य-बिम्ब जब, उस ने पाया मान ।।२५।।
दीखें दृश्य अति भले, उदित समय सर तीर ।
गिरी शिखर कैलाश पर, जहां सिन्धु शुभ नीर ।।२६।।
लगता बड़ा सुहावना, सुन्दरता का सार ।
मन मोहक मन भावना, लीला का अवतार ।।२७।।
दर्शन पाय दिनेश के, खिले फूल बहु रंग ।
बेलें बूटे हर्ष में, सजे रंग के संग ।।२८।।
कलियां खिल कर बन रहीं, आप ही कमलाकार ।
बाग वाटिका शोभते, कर सोलह सिंगार ।।२९।।

सुन्दर कलियां, कुसुम सब, किये सुनहले वेश ।
समीर सुगन्धित से सब, देते हर्ष विशेष ।।३०।।
प्रातः के प्रताप से, बहता हर्ष बहाव ।
वाह वाह कह जन सभी, भरें चित्त में चाव ।।३१।।
नाचें भौंरे कमल पर, मोर वाटिका बीच ।
कूँजे कोयल मोद में, स्वर सुधा से सींच ।।३२।।
खा कर सुमृदु मंजरी, मंजुल मधुर अलाप ।
कोयल कोमल कंठ से, करे हरे संताप ।।३३।।
पंछी गण मिल खेलते, रहे वियोगी जोय ।
सूर्य दर्शन से सभी, अभी सुयोगी होय ।।३४।।
विमल निराला खेल है, अद्भुत लीला राग ।
ईश परम का हो सदा, देख इसे अनुराग ।।३५।।
मानव मंडल मन चला, महा मोद में आय ।
उदय समय सुभ्रमण कर, सुख सुहर्ष को पाय ।।३६।।
प्यारे जन जो राम के, वनी उपवन उद्यान ।
हरे भरे फूले फले, देखें लीला स्थान ।।३७।।
करें सुनहले सिन्धु में, सूर्योदय शुभ स्नान ।
जल में डुबकी मारते, शुचि को धर्म बखान ।।३८।।
पहरे शुचि पहरान को, हाथ जोड़ सिर नाय ।
जपें गायत्री पाठ को, मन में प्रेम बसाय ।।३९।।
साथ सावित्री पाठ के, पूजें लीला धाम ।
ईश हरि प्रभु बोल कर, ओंकार कहें राम ।।४०।।
अन्तर्मुख हो पूजते, लीला का आधार ।
भीतर सूर्य देखते, सुवर्ण तेज विस्तार ।।४१।।

ध्यान ध्वनि में लीन हो, राम में लौ लगाय ।
मुनि जन रमते राम में, राम राम धुन लाय ।।४२।।
पूजा पाठ सुहावने, करते पुण्य सुदान ।
राम भजन कीर्तन कथा, होते उत्तम गान ।।४३।।
लीप पोत आंगन भले, कर घर स्वच्छ बुहार ।
महिला मंगल मानतीं, धूप दीप उपचार ।।४४।।
हवन दान शुभ कर्म से, गृह-कर्म से लोक ।
पुरश्चरण कर राधना, हरते संकट शोक ।।४५।।
पुत्र पुत्रियों सहित ही, मात पिता परिवार ।
करें आरती राम की, जय जय राम उच्चार ।।४६।।
मन्दिर श्री जगदीश के, गूँजें प्रातःकाल ।
आरती जय जय नाद से, बजें शंख घड़ियाल ।।४७।।
चन्दन गुग्गल धूप से, मन्दिर भरे सुगन्ध ।
शोभें हरियश गान से, भजन पाठ सम्बन्ध ।।४८।।
गायक श्रद्धा भक्ति से, मधुर सुरीले गीत ।
आसावरी सुभैरवी, गाते कर के प्रीत ।।४६।।
नर-नारी के झुण्ड मिल, सुनने आते पाठ ।
कीर्तन भक्ति भाव का, बसे निराला ठाठ ।।५०।।
सुप्रसाद ले कर सभी, जाते करते काम ।
दिन में लीला में रमे, भक्त रिझाते राम ।।५१।।

३

दिन भर दिनकर दीपता, दिये दिव्य प्रकाश ।
सविता सातों किरण से, करता तम का नाश ।।५२।।
जनता अपने कर्म में, लगी कमावे भोज ।
उद्यम सेवा नौकरी, करे लिये बल ओज ।।५३।।

कला कौशल सुकर्म कर, और वणिक व्यौहार ।
लेन देन से बहुत जन, करें विविध व्यापार ।।५४।।
पठन सुपाठन के कर्म, होते विधि अनुसार ।
क्रीड़ा कला कलोल सब, पालन पोषण प्यार ।।५५।।
नीति न्याय के कर्म भी, बहु विध दण्ड विधान ।
होते लीला राम में, बहुते विषम समान ।।५६।।
कृषि कर्म कर उद्यमी, परिश्रमी बहु लोग ।
उत्तम यह आजीविका, साधें सुकृत योग ।।५७।।
शूरवीर सज कर करें, जाति देश के हेत ।
शत्रु दल बल का दलन, उष्ण समर का खेत ।।५८।।
धीर वीर बांके बली, लड़ें धर्म को धार ।
नीति-सूत्र विचार से, करें शत्रु-संहार ।।५६।।
दान पुण्य शुभ कर्म से, सेवा कर उपकार ।
दाता ज्ञानी जन गुणी, करें समाज सुधार ।।६०।।
समाज सभा समिति सभी, किये मण्डप निर्माण ।
मन-माने उत्सव करें, मेले लगें महान् ।।६१।।
यों बहु लीला राम की, होती दिन में जान ।
भक्त जनों को भक्ति में, दीखे पा कर ज्ञान ।।६२।।
ऐसी लीला देव की, सरल रसीली रास ।
आस पास सुनिवास में, रही रसिक को भास ।।६३।।
राम की इच्छा में सभी, विलसे भिन्न तरंग ।
भाना श्री भगवान् का, कभी न होवे भंग ।।६४।।
वायु में तृण ज्यों उड़े, मत्स्य चले जल संग ।
रामेच्छा में काम हो, नभ में यथा पतंग ।।६५।।

उस की लीला मान कर, भक्त करें शुभ काम ।
करना अपना कर्म कह, प्रेरक मानें राम ।।६६।।

४

कड़कड़ाती सुधूप में, करें लोग व्यापार ।
लू बन लपटें आग की, जब झुलसें तन सार ।।६७।।
एक भूतलाकाश हो, आग उगले जिस काल ।
काम काज में लोग रत, रहें बाल गोपाल ।।६८।।
सीधी सातों किरण कर, मार अग्नि के बाण ।
भानु भस्म भू को करे, तेज धनुष को तान ।।६६।।
यथा भट्ठी भूतल बना, तीक्ष्ण पाय उत्ताप ।
घास पात सूखे सभी, तापस पै ज्यों पाप ।।७०।।
सर सरिता में सलिल का, हुआ अल्प संचार ।
सूखे स्रोत सुताल सब, ग्रीष्म पाय अपार ।।७१।।
पशु-गण दीखें हाँपते, चिड़ियाँ चूँच निकाल ।
तड़पें पंछी गण सभी, पा कर ग्रीष्म काल ।।७२।।
गृह कर्म व्यौहार में, परिश्रमी जो लोग ।
पसीज पसीना ही बन, भूले कर्म उद्योग ।।७३।।
तन से बूँदें यों बहें, झरने से ज्यों नीर ।
वर्षा में ज्यों गिरि शिखर, रसता रहे अधीर ।।७४।।
ऐसे कटुतर काल में, सन्त भक्त गुणवान् ।
लीला हरि की मानते, करते सेवा काम ।।७५।।
कर्मी लोग उपकार कर, करते देश सुधार ।
सम रहते वे सर्वदा, लीला को मन धार ।।७६।।

५

सायं समय सुशोभता, सन्ध्या राग सुफाग ।
खेलें नभ में मेघ मिल, नील वर्ण को त्याग ।।७७।।
लाली लिये गुलाल सी, लता कमल वन कुंज ।
दिन-कर को करने विदा, बने हर्ष के पुंज ।।७८।।
सूर्य सोहे राजता, पा अभिनन्दन मान ।
किये वरण सुवर्ण वर्ण, लिये सुनहरी वाण ।।७६।।
विदाई ले कर दिन-पति, बहुत बना अभिराम ।
मुस्कराया आप ही, लेने चला विश्राम ।।८०।।
रास स्थान से निकलते, किये किरण संहार ।
चमकता वेश उतार कर, बन कर सोमाकार ।।८१।।
कुन्दन का गोला बना, शुभ दर्शन सुख खान ।
जाता सूर्य अति भला, लगे नयन को जान ।।८२।।
शैल-शिखर पर देखिए, सागर बीच विशेष ।
अद्‌भुत दृश्य अति भले, होते अस्त निश्शेष ।।८३।।
सुवर्णमय शुभ चौखटा, उस में लाल समान ।
सोहे बिम्ब सुहावना, अस्त होय जब भान ।।८४।।
जग मग सुन्दर वेश में, सन्ध्या सज सिंगार ।
शोभे शोभाशालिनी, सूर्य से कर प्यार ।।८५।।
पिघला शिखर सुवर्ण का, लेता लहर अनेक ।
लीला सोहे अस्त की, रास निराली एक ।।८६।।
हिममय सागर उमड़ ज्यों, ठाठें मारे ठीक ।
सुवर्णछटा दीखे लिए, घन मण्डल रमणीक ।।८७।।
रजत रूप भर कर नदी, चलती सुचारु चाल ।
सूर्य को मानो मिले, जान विदाई काल ।।८८।।

बरसे नीला रंग शुभ, शांत गुलाबी रंग ।
नील-सिन्धु के उछलते, सोहें विविध तरंग ।।८६।।
लीला रच दी राम ने, भक्त रिझाने हेत ।
भक्ति प्रेम से देखिए, खोल हिये के नेत ।।६०।।
वृत्ति नृत्य करे तब, मन में बसता मोद ।
राम रास को देख कर, चमके चाँद सुबोध ।।६१।।

६

आते रात्रि का समय, पंछी सब मिल आय ।
बैठें वृक्ष मकान पर, यथा मुनि कुटी पाय ।।६२।।
कोमल खेल अलाप का, कर सब उपसंहार ।
सिमटे टहनी डाल पर, किंचित् पैर पसार ।।६३।।
बने वियोगी विरहिन से, पंख नयन मुख मूँद ।
चोगा चुगना छोड़ कर, तज कर जल की बूँद ।।६४।।
मुनिवत् साधे मौन सब, संयम में कर अंग ।
उप-वासी तापस बने, देख निशा का ढंग ।।६५।।
नदी तीर पर भक्त मिल, शुचि हो जल कर पान ।
जपें सावित्री को सभी, मन को मन्दिर मान ।।६६।।
प्राण पवन को पूर कर, कुम्भक रेचक साथ ।
जपते राम सुनाम को, जान जगत् का नाथ ।।६७।।
करें आरती भाव से, मन्दिर अन्दर जोत ।
जगती दीपक अग्नि की, बहे भजन का स्रोत ।।६८।।
नाम राम का गूँजता, एक ईश ओंकार ।
कहते कथा सुकथक जन, बान्ध प्रेम का तार ।।६६।।
भक्ति-भाव में लीन हो, भजते कर मुनि मौन ।
स्थान कुटी एकान्त में, भूल कहाँ है कौन ।।१००।।

धूप सुगन्धित महकता, अगर तगर लोबान ।
गुग्गल, घी के दीप से, सोहे सुगन्धि स्थान ।।१०१।।
पति पत्नी और बंधु मिल, सुता पुत्र परिवार ।
हंसें खेलें मोद में, स्वादु करें आहार ।।१०२।।
गावें सुस्वर ताल से, भक्ति प्रेम के गीत ।
मीठे वार्तालाप से, करें परस्पर प्रीत ।।१०३।।
दीप जगे घर घर दिखें, तारक सम आकार ।
दीपे माला दीप की, हाट बाट बाज़ार ।।१०४।।
रजनी तारागण जड़ी, राजे चाँद समेत ।
ग्रहगण से सोहे बहु, विमल नील नभ खेत ।।१०५।।
सिन्धु चाँदनी का उमड़, जल थल पर ही छाय ।
खेतों श्यामल पर रहा, लीला में लहराय ।।१०६।।
सर सब चमके जल भरे, शुद्ध सरोवर नीर ।
चाँदी पिघली से भरे, दिखे नदी नद तीर ।।१०७।।
सागर तरल तरंग से, चढ़े उछल आकाश ।
शशि-आकर्षण से चला, कर मिलने की आश ।।१०८।।
दीखे सागर तीर पर, दो लोकों की सैर ।
सिर पर सोहे जगत् जो, सो नीचे जहाँ पैर ।।१०६।।
है ऊपर आकाश जो, नीला बहुत विशाल ।
सागर भीतर शोभता, लिये लोक के लाल ।।११०।।
उछलें कूदें मछलियां, पंख सुपैर पसार ।
बड़वानल चमके वहाँ, रह रह किये विस्तार ।।१११।।
सन्नाटा संसार में, हुआ सभी जग मौन ।
सारी जनता सो रही, चार दिशा सब कोन ।।११२।।

उल्लू बोले कहीं कहीं, चकवा चकवी दोय ।
[illegible]
वनचर पशु वन वन फिरें, खोज रहे आहार ।
लपकें झपटें केसरी, पंजे सिंह पसार ।।११४।।
भीरु मृग भागे फिरें, घने वनों के बीच ।
वन-भैंसे हाथी गिरें, ऊँच नीच पा कीच ।।११५।।
घोर निशा काली हुए, करें दस्यु जन घात ।
जन अति पापी पातकी, चोर करें उत्पात ।।११६।।
जीव जन्तु जो जगत् में, जन्में कर्म संयोग ।
भोगें अपने कर्म के, देश काल में भोग ।।११७।।
नियति नियम में रास यह, है होती दिन रात ।
काले परदे बीच पड़, करें नाटक विख्यात ।।११८।।
कर्म-भोग भोगें सभी, राव रंक सुरराज ।
अन्धे बहरे पंगु जन, दुखिया दीन समाज ।।११६।।
हंसें खेलें मिल कहीं, रोदन करें विलाप ।
नाटक दीखे कर्म का, विरह वियोग मिलाप ।।१२०।।
किये कर्म का खेल सब, खेल खिलाड़ी लोग ।
सूत्रधार माने हरि, रास कर्म-उपभोग ।।१२१।।
इच्छा-शक्ति है जगत् में, उस का यही विकास ।
कर्म-भोग वश हो रहा, नियति सुनियम विलास ।।१२२।।
नियति नियम है राम का, जीव रचित है भोग ।
रोग विरह बहु वेदना, मधुर मनोहर योग ।।१२३।।
अन्त तो यही तार है, जिस में पिरोय लोक ।
नियत नियम में सब फिरें, रहें, करें आलोक ।।१२४।।

७

वर्षाकाल में घूमते, घोर घटा घन टोप ।
हुआ सुमण्डल मेघ का, उष्ण काल पर कोप ।।१२५।।
मण्डलाय अभिमान में, मेघ मण्डलीमान ।
महा मूसलाधार से, करें उष्ण-अपमान ।।१२६।।
गर्जे बादल दल बली, भरे जलों के धाम ।
बरसें छम छम, हर रहे, घोर भूमि का घाम ।।१२७।।
रथ सुरपति के चल रहे, पवन पन्थ आरूढ़ ।
ग्रीष्म-गरिमा हरण कर, जल को करें सुगूढ़ ।।१२८।।
धुएँ सम नीले धवल, नाना बादल यान ।
उड़ रहे वायु वेग से, नभ में यथा विमान ।।१२६।।
घन माला सेना सजी, नभ में समर रचाय ।
सूर्य पर दौड़े यथा, वीर शत्रु पर धाय ।।१३०।।
हत कर किरण कलाप को, गर्जी घटा घन घोर ।
विजय नाद सुन नाचते, वाह वाह कर मोर ।।१३१।।
धमा-चौकड़ी मच रही, घोर घटा घमसान ।
रगड़ से चमकी कड़क कर, बिजली तान कमान ।।१३२।।
चहुँ ओर हैं छा रहे, घिर कर मेघ महान् ।
कोर किनारी शोभती, विद्युत् रेख समान ।।१३३।।
जहाँ नदी नद उछलते, अथवा कुहरे बीच ।
भानु-किरण के रंग का, जाय चित्र ही खींच ।।१३४।।
इन्द्रधनु के बीच में, सजे सुहाते सात ।
रंग निराले निर्मले, दृश्य जगत् विख्यात ।।१३५।।
जल थल सब ही हो गये, खेत विषम सम देश ।
झील ताल सर शोभते, पूर्ण कण्ठ विशेष ।।१३६।।

नदी नाले सब पूर में, बहते बल को धार ।
तोड़ किनारे दौड़ते, वृक्ष वनी कर पार ।।१३७।।
मेंडक मंगल मानते, मनमाना जल पाय ।
कीट पतंग अगणित बन, रेंगें निकले आय ।।१३८।।
भूतल हरियावल भरा, कोमल नूतन घास ।
शोभे शुचि मण्डल बना, जहाँ राम की रास ।।१३६।।
पर्वत-माला शिखर सब, ऊँचे समतल स्थान ।
तराई तलेटी हि सब, बने हरे मैदान ।।१४०।।
हरित वेश भू धार कर, नीलम जड़ित पहरान ।
नाचे मिल कर पवन से, करती हरि गुण गान ।।१४१।।
लहलहा कर लीला में, बेल लता वनखण्ड ।
कुसुम मुखों से हँसते, ज्यों वटु रहित घमंड ।।१४२।।
श्यामल हरियां खेतियां, लेतीं लहरें झूल ।
शाख झूलने बैठ कर, झूलें कलियाँ फूल ।।१४३।।
पींगें झूलें हर्ष में, तले नीम बट बाल ।
मिले तरुण लें तारियां, पाय नदी सर ताल ।।१४४।।
गौएँ भैंसें मोद में, चरतीं कोमल घास ।
करें जुगाली सहित सुख, बैठ जलों के पास ।।१४५।।
ठंडी ठंडी पवन के, वह झोंके सुखकार ।
जन मन में जीवन भरें, करें हर्ष संचार ।।१४६।।
बैठ किसान सुकूप पर, नीम तले सुख मान ।
छाया में पड़ लेटते, पा कर घास बिछान ।।१४७।।
खेलें युवक कबड्डियां, गेंद उछालें बाल ।
हरी भरी शाखा पकड़, झूलें पकड़े डाल ।।१४८।।

कूदें गाते खेलते, खाते पावें मोद ।
नागर वा ग्रामीण जन, सभी अबोध सुबोध ।।१४६।।
राम रची लीला मधुर, वर्षा ऋतु सुखखान ।
सुजन सन्त सुख मानते, सज्जन जान अजान ।।१५०।।

८

शीत समय शीतल हुए, सरित सरोवर नीर ।
शीत पवन तन को करे, आर पार ज्यों तीर ।।१५१।।
सिकुड़े तन ठर ठर करें, बजें दान्त से दान्त ।
खड़ी रोम-राजी कहे, देह रही हो शान्त ।।१५२।।
नयन नाक मुख जल झरें, काँपे सकल शरीर ।
पतझड़ से सब वन बने, शोभा रहित करीर ।।१५३।।
पशु पंछी सब ठिठुर कर, बैठे अंग सिकोड़ ।
तृषित अति जल शीत से, लेते मुख को मोड़ ।।१५४।।
जल जम कर हिम बन गये, हुआ शीत अति पात ।
सर में डुबकी मारते, हिम करती आघात ।।१५५।।
प्यासे गजगण दिनों के, झील ताल पर जाय ।
कर पसार जल पान को, हिम-हत लें लौटाय ।।१५६।।
नीर तीर पर उतर कर, पंछी चूँचें मार ।
बार बार हिम हत हुए, उड़ें अन्त में हार ।।१५७।।
शीत सलिल तन को दहे, शान्त करे तब आग ।
सूर्य भी दक्षिण गये, गई उष्मा सब भाग ।।१५८।।
पानी परुष स्पर्श हो, तन पर पड़े कुठार ।
अग्नि धूप कोमल बने, करें उष्मा संचार ।।१५६।।
कड़ी झड़ी लग शीत में, शीत पवन के संग ।
ओले बरसा धीर की, करे धीरता भंग ।।१६०।।

घोर घटा उमड़ी फिरें, श्यामल नीली होय ।
[illegible]
महामेघ बरसे तभी, पड़े सुमंद फुहार ।
शीतपात हो घोरतर, शीतल हो संसार ।।१६२।।
संत सरोवर झील पर, गंग यमुन के तीर ।
हिममय शीतल देश में, ध्यान करें धर धीर ।।१६३।।
जानें जग है नियति में, नियम नियंता राम ।
लीला उस के नियम में, होती रहित विराम ।।१६४।।
हिम के ठण्डे प्रांत में, नद नाले सर झील ।
जम कर सब हिम बन गए, सरित जलाशय नील ।।१६५।।
झरने झरते ही जमे, नदी बनी सब ठोस ।
जम कर मोती बन गये, सभी जो बिंदु ओस ।।१६६।।
धूम्र वर्ण नीले अति, नभ में घूमें मेघ ।
वायु हुई उपशम तभी, तज कर अपना वेग ।।१६७।।
दश दिश सूनी हो गई, बना समय गम्भीर ।
मौन मही में छा गया, यथा मौन मुनि धीर ।।१६८।।
सुन्न शांत आकाश से, पड़े नन्हें से खण्ड ।
हिम के श्वेत सुहावने, रहें भूमि को मण्ड ।।१६६।।
मानो धुनिया तूमता, नभ में रुई अपार ।
फहे वहाँ से गिर रहे, लगातार दिश चार ।।१७०।।
धवल सभी तरुगण हुए, शाख पात के साथ ।
चिट्टे सुचोले चोटियां, धारे ढक कर माथ ।।१७१।।
धरती धौली हो गई, चिट्टी सुचादर ओढ़ ।
चाँद सी चारु चमकती, चहुँ ओर मुख मोड़ ।।१७२।।

शाख टहनियाँ पेड़ की, मुकुट रजतमय धार ।
मोती माला से मढ़ी, मोहे बेल अपार ।।१७३।।
हिम के हीरे सुहावने, जड़े फभें सब ओर ।
शाखा पत्तों पेड़ों पर, लटकें ठौर सुठौर ।।१७४।।
मोती झालर झूमती, हिम की बनी नवीन ।
शोभे शाखों पर सजी, वन राजी पर लीन ।।१७५।।
चम चमाया चन्द्र तब, चांदनी चारु लाय ।
धरणी चमकी चौगुनी, रजत राग को पाय ।।१७६।।
चांदी का सब ही बना, सोहे पर्वत देश ।
श्वेत सुभूषण धार कर, चिट्टे वेश ही केश ।।१७७।।
चाँदी की चादर लिये, चुप्प चाप वन बाग ।
सोते शीतल सेज पर, हिम से कर अनुराग ।।१७८।।
दीखें तम्बू शुभ तने, रात समय तरुराज ।
उन में किरणें चाँद की, दीपक बनी विराज ।।१७६।।
ऐसे हिम ऋतु में रमें, भक्त राम के नाम ।
माला ले गुण-ग्राम की, जपें राम ही राम ।।१८०।।
लखें सुलीला अलख की, लिये लगन का ध्यान ।
लीला-धर श्री राम को, प्रेरक जग का जान ।।१८१।।
आदि कम्प का जो प्रभु, प्रेरक चालक एक ।
उस की लीला हो रही, भर कर रूप अनेक ।।१८२।।

६

यौवन वन पर बरस कर, हरे करे सब लोक ।
ऋतुराज सभी साज सज, दूर करे जन शोक ।।१८३।।
लता बेल वन बूटियाँ, बूटे विविध सुपेड़ ।
नवतर तरुण तरंग में, रहे परस्पर छेड़ ।।१८४।।

लगे हँसने बाग सब, पुष्प सुमुखड़े खोल ।
कोमल पल्लव शाख हिल, कौतुक करें कलोल ।।१८५।।
मंजुल सुमृदु कोंपलें, कोमल तन लचकाय ।
लटक लहर से नाचती, सोहें शोभा पाय ।।१८६।।
नाना फूलों से सजे, वन उपवन सुविशाल ।
हँसें लता सुवेश सज, कलियां दशन निकाल ।।१८७।।
बहुविध फूलों से सजी, रही लता लहराय ।
पंखड़ियों के पंख से, नभ में उड़ती जाय ।।१८८।।
शत शत सुन्दर रंग से, सज कर सारे साज ।
धीमी रम्य समीर से, खेले कुसुम समाज ।।१८६।।
कमल सुकलि क्रीड़ा करे, मन्द स्मित मुख लाय ।
आस पास वासित करे, स्रोत सुगन्धि बहाय ।।१६०।।
राजहंस की जोड़ियाँ, पाय सरोवर ताल ।
कमल कुसुम के कुंज में, चलें माधुरी चाल ।।१६१।।
महा-मत्त मधुमास में, यौवन मद कर पान ।
हाथी मन माना करे, वन का मर्दन मान ।।१६२।।
भीनी सुगन्धि सहित शुभ, शीतल बहे समीर ।
शीतल निर्मल अति मधुर, झरने झरें सुनीर ।।१६३।।
लें हिलोड़े पंछी गण, बैठ शाख पै डार ।
चूसें मिल मधु मक्खियां, मृदु कुसुम का सार ।।१६४।।
मांगने मधु मधूकरी, मधुकर कर बहु आस ।
हुआ मत्त मधुमास में, गया कमल के पास ।।१६५।।
चुग कर सुमृदु मंजरी, महा मौन को तोड़ ।
कोमल कूजन कर रही, कोयल कुलज्जा छोड़ ।।१६६।।

अमराई में बैठ कर, गाती कोकिल राग ।
पंचम सुर से सुन्दरी, तर्जन करती काग ।।१६७।।
षड्ज अलापा मोर ने, पूरे पंख पसार ।
मधुर चाल से नाच कर, भरा बाग में प्यार ।।१६८।।
मैना तोते बोलते, सारस सरल सरंग ।
कूँजें कोमल कूज कर, नभ में भरें उमंग ।।१६६।।
सुन्दर नाना रंग के, पहरे पंख सुचीर ।
मानव मन को मोह लें, पक्षीगण के शरीर ।।२००।।
बुलबुल बोली मन्द सुर, उड़ कर शाख सुशाख ।
मृदु कुसुम की केसरा, खावे नवतर दाख ।।२०१।।
चिड़ियाँ चोगा चुग रहीं, वन पुष्पित में जाय ।
कीट-राशि अनगिनत पर, चुन चुन चूँच चलाय ।।२०२।।
दशों दिशा में शोभता, यौवन सहित वसन्त ।
बैठा पुष्प विमान में, लीला लिये अनन्त ।।२०३।।
पुष्पित कर संसार को, मद का कर संचार ।
वन जन-तन पशु पक्षी में, ले वसन्त अवतार ।।२०४।।
कुसुम सेज पर शयन कर, धार कुसुम के हार ।
कुसुम सुवेश वसन्त सज, सजे सभी सिंगार ।।२०५।।
ऐसे शुभ ऋतुराज में, मुनि मद मान विहीन ।
सन्त भक्त जन संयमी, रहें राम में लीन ।।२०६।।
जो जन प्यारे राम के, यौवन युग को पाय ।
चारु चरित सुचन्द्र में, रहें वसन्त मनाय ।।२०७।।
रमें नाम-मधुमास में, राम भक्त मतिमन्त ।
उन के मन-वन में बसे, बारह मास वसन्त ।।२०८।।

नर नारी रम राम में, चलें धर्म अनकूल ।
उन के मन तन चित्त में, खिले भक्ति के फूल ।।२०६।।
जो जन लीला मानते, सर्व विश्व व्यापार ।
अमृत परमार्थ मिले, उन को कर व्यौहार ।।२१०।।
उन को सृष्टि सूझती, राम रास का धाम ।
रम्य वस्तु वे देख कर, मन में भजते राम ।।२११।।
शोभा तेज विभूति युत, सुन्दर शुभ जो होय ।
हरि-लीला सुविकास है, सन्त मानते सोय ।।२१२।।
उन को नद नाले सभी, शिखर गिरि वन कूट ।
आनन्दित करते सदा, लें सुलाभ वे लूट ।।२१३।।
ऐसे सज्जन सन्त को, सभी वस्तु का संग ।
लीलामय लगता भला, लिये प्रेम का रंग ।।२१४।।
उन के मन में मोद के, मधुर मनोहर बाग ।
विकसित रहें सुगन्धिमय, सोहें खिले सुफाग ।।२१५।।
राम-रास के रसिक जन, रंग नाम में अंग ।
रंगे चोले पहरते, ले कर प्रेम तरंग ।।२१६।।
राम इच्छा में खेल सब, जाने जो जन सन्त ।
वन उजाड़ घर में उन्हें, सदा वसन्त अनन्त ।।२१७।।
भाग्यवन्त सुभक्त हैं, भक्ति भावना साथ ।
लीला में भगवान् लख, उसे झुकायें माथ ।।२१८।।
भद्र भला भावे उन्हें, सूना वा जन देश ।
मन में विमल रहें सदा, तज कर वैर विद्वेष ।।२१६।।
शुभ शुभ सूझे सन्त को, सुखमय सुन्दर स्थान ।
सार सरस रस स्वाद लें, जिन को है शुभ ज्ञान ।।२२०।।

१०

राम इच्छा में हो रहे, नाना खेल विधान ।
भक्त मति मनोभावने, वादन राग सुगान ।।२२१।।
तार सितार के सुमधुर, करें कहीं झंकार ।
सारंगी वीणा बजे, सहित मृदुतर तार ।।२२२।।
ताल मधुर मृदंग दे, करे नाद गम्भीर ।
चुटकियाँ ताली से शुभ, गावें गायक धीर ।।२२३।।
सन्तों की भगवान् में, सुरति स्वर के संग ।
एक तार लग कर बसे, सहज न होवे भंग ।।२२४।।
गाते सुनते गीत को, लूटें रस जो प्रेम ।
रसिया समाधि में रमें, तज कर आसन नेम ।।२२५।।
स्वर अश्व पर रूढ़ हो, सुरति चढ़े आकाश ।
प्रभु प्रेम की सुध पड़े, होवे संशय नाश ।।२२६।।
सुरति शब्द के साथ मिल, हुई ध्यान में लीन ।
अमृत सिंचित हो गई, ज्यों पानी में मीन ।।२२७।।
राग रंग अभाग्य वश, पड़ा नीच के हाथ ।
गंगा जल गंदा बना, बरतन मैले साथ ।।२२८।।
सन्त सुजन सत्संग में, बहे गीत की गंग ।
शब्द पाठ सुर राग के, उठें तरंग अभंग ।।२२६।।
राग रागिणी गाय कर, जो भजते भगवान् ।
सफल जन्म उन का गिनो, सफल कर्म शुभ ज्ञान ।।२३०।।

११

नाना रचना लोक की, ज्योति शुभ्र प्रकाश ।
तारा गण असंख्य मिल, करते तम का नाश ।।२३१।।

सोहे तारक मालिका, सुन्दर किये विस्तार ।
जग मग करती अति शुभा, दीखे नयन पसार ।।२३२।।
नीले नभ में विमलतम, ग्रह रहे चमकाय ।
उन की शोभा जीभ से, वर्णन करी न जाय ।।२३३।।
चम चम करता चमकता, चका चौन्ध कर तेज ।
नभ मन्दिर शुभ अमल में, अपनी सजाय सेज ।।२३४।।
ये जो लोक अनंत हैं, दीपें सदा समतार ।
भूमि लोक को तेज दे, नाश करें अन्धकार ।।२३५।।
उन के भीतर क्या भरा, हरि बिन जाने कौन ।
ज्ञानी जन की कल्पना, अन्त मानिए गौण ।।२३६।।
उन में होगी जो रची, रचना मेरे राम ।
कितनी होगी दिव्य वह, सुन्दर शोभा धाम ।।२३७।।
कब से सूर्य दे रहा, सौर लोक को जोत ।
हुआ न उस का आज तक, मंद तेज का सोत ।।२३८।।
विमल चाँद में किरण का, है कैसा संयोग ।
रहता उस का भूमि से, कैसा बना सुयोग ।।२३९।।
हो रहा क्रीड़ास्थली, विमल नील नभ आप ।
करें लोक लीला ललित, उस में रम्य अपाप ।।२४०।।
सुन्दर रचना राम की, रही जगत् में राज ।
अद्भुत चित्र सुहावने, उस में रहे विराज ।।२४१।।
किस कोमलपन से भरे, पक्षी पंख में राग ।
सूक्ष्म सोहें नियम से, उपजावें अनुराग ।।२४२।।
जीव जन्तु उड़ते फिरें, अति सुन्दरता पाय ।
उन के पतले पंख के, लेते चित्र लुभाय ।।२४३।।

ऐसी पतली पट्टी पर, ऐसे अद्‌भुत रंग ।
हैं सुन्दर जिस ने भरे, वही प्रेम का अंग ।।२४४।।
मृदु पुष्प की पंखड़ी, लगे शोभाय-मान ।
विचित्र चित्र सुरंग से, करे राम यश गान ।।२४५।।
सुन्दर शोभित चित्र हैं, लता वनों के बीच ।
दिव्य सुकौशल से सभी, दिये दैव ने खींच ।।२४६।।
कतर ब्योंत किस ढंग से, मान नियम के संग ।
पुष्प पत्र में दीखती, पूर्ण लिये सुढंग ।।२४७।।
रंग बिरंगे कुसुम सब, नाना कमल कलाप ।
मुख विकसित से वे सभी, लीला करें अलाप ।।२४८।।
लता लदी बहु पुष्प से, धारें शुभ सिंगार ।
सुन्दर लगे सुहावनी, बनी चित्र भंडार ।।२४६।।
शाखें कोमल पत्तियाँ, मृदुल कोंपल सुजात ।
सुन्दर कलियाँ अधखिली, हरि यश करें विख्यात ।।२५०।।
कर्ता ने कृति में भरा, शुभ सौन्दर्य अपार ।
सभी कल्पनातीत है, जगत् शोभा विस्तार ।।२५१।।
जिस की रचना है बड़ी, सुन्दर सहित सुप्यार ।
कैसा सुन्दर राम है, समझो सहज विचार ।।२५२।।
जिस की रचना राशि में, हैं अति सुन्दर लोक ।
सर्व सुसुन्दर राम है, पूर्ण प्रभु अशोक ।।२५३।।
चित्र-कार के चित्र का, हो सब चित्र विकास ।
सृष्टि सुन्दर जिस रची, है सौन्दर्य निवास ।।२५४।।
भक्ति धर्म में भक्त को, सूझे सुन्दर जोय ।
उस में वह भगवान् का, भाना माने सोय ।।२५५।।

जग में उस को जानिए, लीला देख विधान ।
[illegible]

१२

जन जन में जो नियम है, नियति कर्म वश भोग ।
दुःख सुख आपद् विपद् है, रोग वियोग सुयोग ।।२५७।।
है उस में जो भोग का, पूर्ण रूप विधान ।
नियति नियम से जानिए, फल दाता भगवान् ।।२५८।।
जीवन का संग्राम है, जैवी जग में घोर ।
इस में जो सुयोग्य हो, उसे मिले शुभ ठौर ।।२५९।।
जग में जो जो सबल है, जीव बुद्धि बल बीच ।
अबल दीन को दाबता, मिले बनाता नीच ।।२६०।।
ज्ञान गुणों से हीन जन, शक्ति बुद्धि से हीन ।
नीति न्याय में हीन जन, बनें दास अति दीन ।।२६१।।
स्वाभाविक यह नियम है, खोल आँख लो देख ।
जलचर थलचर खेचरों, में भी है यह रेख ।।२६२।।
जीव जीव को मारता, सबल अबल को खाय ।
पाप अबलपन है बड़ा, कहे योग्यता न्याय ।।२६३।।
भक्ति धर्म का मर्म है, एक राम को मान ।
असुर समूह से न दबे, मन तन कर बलवान् ।।२६४।।
ज्ञान सुबुद्धि विचार बल, आत्मशक्ति बढ़ाय ।
कर्म धृति में हो बली, जन सुख सम्पत् पाय ।।२६५।।
रामेच्छा में हो रहे, बल बुद्धि के विकास ।
जैवी उन्नति के लिए, भरने को सुख रास ।।२६६।।
दीखे सुक्रम जगत में, गति क्रिया अनुसार ।
उत्तरोत्तर समुन्नति, है करता संसार ।।२६७।।

पर जानो यही उन्नति, प्राकृतिक है एक ।
मानस उन्नति में सदा, साधन रहे अनेक ।।२६८।।
क्रम समुन्नति जानिए, नाम रूप ब्योहार ।
आत्मा में करे न कभी, यही उन्नति विस्तार ।।२६९।।
नित्य वस्तु है चेतना, आत्मा रहित विकार ।
उस में क्रम गत उन्नति, करे नहीं संचार ।।२७०।।
ज्ञान बुद्धिमयी उन्नति, है सर्व व्यवहार ।
आत्मोन्नति से पृथक्, इस का रहे विचार ।।२७१।।
परमार्थ में समुन्नति, होती अधिक न जान ।
परमार्थ है आदि से, उन्नत आत्म-ज्ञान ।।२७२।।
परमार्थ हरि भक्ति है, राम प्रेम गुण गान ।
रमणा श्रद्धा भाव में, है सब काल समान ।।२७३।।
अटल भक्तिमय धर्म है, अचल प्रेम का पाथ ।
बन्धु-प्रेम है एकसा, है सम सुहृद् साथ ।।२७४।।
आदि काल जो प्रेम था, श्रद्धा सुभक्ति भाव ।
राई रत्ती न हो सका, उस में आज बढ़ाव ।।२७५।।
प्रीति सुभक्ति अखण्ड है, सब समय सम कहाय ।
भक्ति ही सच्चा धर्म है, सार समझ में आय ।।२७६।।
नियम कर्म आचार के, जो पहले थे आज ।
मिलते मौलिक हैं सभी, करते सुखी समाज ।।२७७।।
क्रमयुक्त आत्म-उन्नति, धर्म चरित के बीच ।
हो रही तथा मानना, वाद-रूप है खींच ।।२७८।।
समुन्नति है विज्ञान में, कल-कौशल के काम ।
जानो प्राकृत उन्नति, कहा इसी का नाम ।।२७९।।

न आश्चर्य सुभील को, सूझे अपना राम ।
बहु ज्ञानी सूना फिरे, रात-दिवस सब याम ।।२८०।।
चरित-धर्म में निपुण जन, मिले भील भी मूढ़ ।
पण्डितपन की पोट ले, करे पाप भी गूढ़ ।।२८१।।
अनपढ़ भी हो धर्म में, धृति धारणावान् ।
धुरन्धर विद्या ज्ञान में, मिले कुकर्म निधान ।।२८२।।
दया सुदान उदारता, विद्या बिना भी आय ।
विद्या ज्ञान में पारंगत, दुर्जन भी हो जाय ।।२८३।।
लीला हरि की जानिए, जो जन हुए गँवार ।
अवतार सुगुरु मानता, आज उन्हें संसार ।।२८४।।
उन अपढ़ों के कथन में, दीखे मौलिक सार ।
सम्प्रदाय मत पन्थ के, पोथे थोथे भार ।।२८५।।
भाना है भगवान् का, बर्तन रिक्त भराय ।
भांडा भरा घमण्ड का, खट्टा कड़वा कहाय ।।२८६।।
क्रम न धर्म सुप्रेम में, यही कथन में तार ।
आत्मपद है एक रस, समझो इस में सार ।।२८७।।
आत्मा में होवे नहीं, है जो कहा विकास ।
सुस्थित अपने भाव में, है यह सब सुख रास ।।२८८।।
झरने झर कर मधुर दें, शीतल जल का स्वाद ।
सागर खारे हो गए, लिए बड़प्पन वाद ।।२८९।।
जिस ने निज लघुता लखी, तजा बड़प्पन भूत ।
ऊँचा नीचा राम का, सो सियाना सुपूत ।।२९०।।
जिस को रंगा राम ने, वही चतुर मतिमान ।
विमुख नारकी जानिए, अहं-मानी विद्वान् ।।२९१।।

परा विद्या है राम की, भक्ति प्रीति शुभ देख ।
शेष कल्पना मानसी, जिस में न बिन्दु रेख ।।२६२।।
ग्रन्थ पाठ का सार है, लखना लीला राम ।
श्रद्धा आत्मज्ञान बिन, पुस्तक ग्रन्थ नकाम ।।२६३।।
खर पर चन्दन लादिए, लखे पीठ पर भार ।
समझे नहीं सुगन्धि को, भार में जो है सार ।।२६४।।
केवल ग्रन्थों के पन्थ जो, करें पन्नों का पाठ ।
जानें अर्थ न सार को, बहुत बढ़ावें ठाठ ।।२६५।।
कर्म सहित रचना रची, हरि ने रास निधान ।
भावना भक्तों में बढ़े, इस का जान निदान ।।२६६।।
मंगलमय की कामना, है मंगल का मूल ।
कृति मनोमोहक मधुर, मेटे माया भूल ।।२६७।।
परख निरख हरि-रास को, जान के आदि भेद ।
सन्त भक्त आनन्द लें, हर कर सारे खेद ।।२६८।।
प्रेरक प्रभु समर्थ का, ईक्षण कारण जान ।
सारे सुन्दर जगत् को, भक्त लखें सुख-खान ।।२६६।।
जिस के शुभ संकल्प से, होता विश्व विकास ।
आशीर्वाद से वह हरि, है निज जन के पास ।।३००।।
वारे जाऊँ भक्त के, जो ध्यावे श्री राम ।
धुन में रम कर भाव से, करे राम का काम ।।३०१।।
लीला उस का काम है, उस में देवे योग ।
कर्म-योग शुभ भक्ति से, पाय राम संयोग ।।३०२।।
परम निरंजन राम के, भक्त वे हैं निष्काम ।
दया दान उपकार कर, मांगते न फल दाम ।।३०३।।

सत्संग सेवा साधना, राधन राम अनन्त ।
करत लीला में मग्न, ऋषि मुनि सज्जन सन्त ।।३०४।।
हे राम मुझे दान दे, अनन्य सुभक्ति आप ।
कर्म-योग में मैं लखूँ, तेरी रास अपाप ।।३०५।।
आँखें खुलें सुविमल हों, जो देखें यह सार ।
सृष्टि लीला रूप सब, बनी रास अवतार ।।३०६।।
कान खुलें सुदिव्य हों, सुन्दर सुनें सुनाद ।
अमृत पद सुख धाम का, नाशक पाप विषाद ।।३०७।।
तेरे, मेरे राम जी, सभी निराले खेल ।
पीड़ा रोग वियोग में, भी होता तव मेल ।।३०८।।
भाना है भगवन् सदा, तेरा ही बलवान् ।
सुख-दुःख में भी है छुपा, तेरा भेद महान् ।।३०९।।
ज्ञान ध्यान जप पाठ सब, वर्णन कथा अलाप ।
सेवा सुकृत कर्म का, मुझ को मिले मिलाप ।।३१०।।
भीतर की लीला लखूँ, तेज सुरूप सुलोक ।
लीला सूर्य चाँद की, स्वसत्ता की अशोक ।।३११।।
सूक्ष्म पद के भेद का, उत्तम तेज निहार ।
प्रेमी तेरा मैं सदा, बना रहूँ सरकार ।।३१२।।
अगम्य गति पद की लखूँ, अलख सुन्न स्वरूप ।
आठ पहर तव नाम का, रहे गूँजता रूप ।।३१३।।
तेरे धाम सुनाम का, बनूँ प्रेम का पुञ्ज ।
बनूँ निश्चय अनन्य से, भक्ति लता का कुञ्ज ।।३१४।।

साधन-प्रकाश

काया के साधन

सब का प्रभु परमात्मा, विद्यमान जो देव ।
तीन लोक सब काल में, ज्ञानमय सत्यमेव ।।१।।
उस के अनुभव ज्ञान का, भक्ति सुपथ पहचान ।
साधन से ही पाइए, भक्ति धर्म प्रधान ।।२।।
साधन से हों सिद्ध सब, कर्म मनोरथ काज ।
साधन सीढ़ी स्वर्ग की, सर्व सिद्धि का साज ।।३।।
कर के साधन साधिए, जप तप संयम ठीक ।
वशीभूत सब करण कर, हो कर सदा निर्भीक ।।४।।
कायिक साधन समझिए, पहला पूरक आश ।
इस के साधन से सभी, हो सुख सिद्धि विकाश ।।५।।
धर्म, अर्थ, शुभ काम का, पन्थ मोक्ष का मान ।
मानव काया कल्पतरु, परमार्थ गुण-खान ।।६।।
मानव काया उच्चतर, समझी सन्त सुजान ।
धर्म धृति की है धुरा, अमृत सार निधान ।।७।।
इस को रखिए नियम से, पाल शुद्धि शुभ स्नान ।
मर्दन मज्जन कर्म से, कर व्यायाम विधान ।।८।।
वायु शुद्ध को सेविए, कर भ्रमण गुणकार ।
खेल परिश्रम कर्म से, रखिए देह सुधार ।।६।।
आसन नाना भाँति के, उन में उत्तम चार ।
साधक करते नित्य ही, हरते रोग विकार ।।१०।।
मुख्य आसन शीर्ष है, हर्ता नयन के रोग ।
मस्तक मज्जा सुजाल को, करे पुष्ट हर सोग ।।११।।

दिल की धड़कन दूर कर, देत फेफड़े शोध ।
साँस नली को शोध कर, कफ का हरे विरोध ।।१२।।
सर्व पेट के दोष हर, पाचन बल आरोप ।
आन्तड़ियों के रोग हन, हरे वात का कोप ।।१३।।
कुपित पित्त को शमन कर, शान्त करे कफ वात ।
तीनों दोषों के विषम, दूर करे उत्पात ।।१४।।
कटि को सीधा कर कसे, करे गुर्दा बलवान् ।
अंग सर्व को पुष्ट कर, रक्खे स्वास्थ्य समान ।।१५।।
वृक्ष आसन साधिए, दिन दिन काया हेत ।
पुष्टि कन्धों पृष्ट की, कर के शोधे नेत ।।१६।।
रीढ़ के मोहरे ठीक कर, शोधे कमल सुनाल ।
उदर-दोष को हरण कर, मस्तक करे विशाल ।।१७।।
शीर्ष आसन सम कहा, गुणिजन ने गुण जान ।
सावधान हो साधिए, लाभ सभी धर ध्यान ।।१८।।
आसन उत्तम तीसरा, कहा मयूर महान् ।
आँखें मस्तक नाभि दिल, रीढ़ करे बलवान् ।।१६।।
वायु के सभी दोष हर, काया करे सुडौल ।
व्याधि उदर की नाश कर, तन को देवे तोल ।।२०।।
भुजा में शक्ति को भरे, तन को करे सुरूप ।
कटि जोड़ों के दोष हर, शोधे अंग कुरूप ।।२१।।
चौथा आसन जानिए, गुण कर शुभ सर्वांग ।
काया के हित कीजिए, सीख गुणी से ढंग ।।२२।।
जंघा कटि कन्धे सभी, ग्रीवा पेट कपाल ।
शोधे शम कर दोष को, मेरू दण्ड सनाल ।।२३।।

आसन करिए सर्व ही, होवें जो बलकार ।
तन मन को सुख हर्ष दें, दोष-कोप को टार ।।२४।।
सुप्रकार व्यायाम के, रखते आसन नाम ।
शेष कल्पना जानिए, अर्थ-वाद का काम ।।२५।।
करे क्रिया शक्ति बढ़े, साहस हर्ष बढ़ाय ।
दे क्रिया उद्यम भला, वह सुक्रिया कहाय ।।२६।।
ढीले कर दे जोड़ सब, देवे पट्ठे मार ।
उलटे कर्म स्वभाव से, समझो कष्ट विकार ।।२७।।
राम ध्यान आसन बिना, आसन नट की खेल ।
व्यर्थ नसें निचोड़ना, धड़ की धक्कम पेल ।।२८।।
मन का आसन जब जमे, कर के नाम सुमेल ।
फिर हठ कर्म कठोर सब, दीखें ठेलम ठेल ।।२६।।
साधो ! आसन साधिए, कर पुष्टि हरें रोग ।
तन के हित को लक्ष्य कर, कर नियमित सब भोग ।।३०।।
पथ्यापथ्य आहार का, करना नहीं विचार ।
भोजन भेद का न भ्रम, रखना मन में धार ।।३१।।
सात्विक भोजन जानिए, तुष्टि पुष्टि बलकार ।
वर्द्धक जीवन प्रीति सुख, वीर भोज्य सुसार ।।३२।।
राजस भोजन समझिए, उष्ण तिक्त अति जान ।
खट्टा बहुत अति चटपटा, मादक करता हान ।।३३।।
तामस भोजन मानिए, बासी रस विपरीत ।
जूटा सड़ा सड़ांदयुत, हरता भोजन प्रीत ।।३४।।
भोज्य वस्तु न तामसी, समझो निश्चय लाय ।
बल शक्ति सुख पुष्टिप्रद, शुभ ही समझा जाय ।।३५।।

भोजन में भ्रम न करो, विहित जान आदेश ।
भोक्ता का है भोग सब, जो भी भोज विशेष ।।३६।।
भोजन के भ्रम भेद में, पड़े पन्थ के लोग ।
पाप पुण्य की कल्पना, करते सभी अयोग ।।३७।।
हित मित भोजन खाइए, ओज तेज सुखकार ।
रुचिकर वर्द्धक शक्ति का, प्रीति सत्त्व भंडार ।।३८।।
रहना करना नियम से, खान नियम से पान ।
सोना जगना नियम से, नियम बनाना बान ।।३६।।
मर्यादा का पालना, नियम बद्ध आचार ।
काया की शुभ साधना, साधिए कर विस्तार ।।४०।।
पूजन श्री भगवान् का, सिमरन ज्ञान सुध्यान ।
तन सुगठित कर कीजिए, धर्म कर्म को मान ।।४१।।
देह पुष्टि कर कीजिए, जन हित पर उपकार ।
हितकारी के जन्म का, होता बेड़ा पार ।।४२।।

वचन के साधन

सुसाधन कहूँ वचन के, सिमर देव भगवान् ।
जिस की महिमा अटल है, है परिपूर्ण ज्ञान ।।१।।
वाणी का वह ईश है, बृहस्पति जगदीश ।
दिव्य विमल आदेश से, तारे सुजन मुनीश ।।२।।
परा वाणी की तार का, है शुभ घट में नाद ।
सुने विवेकी ध्यान से, तज कर दोष विषाद ।।३।।
लौकिक वाणी वैखरी, मानी ऋषि मुनि संत ।
करिए शुचि यह सत्य से, परा मिले एकांत ।।४।।

वाणी तानी कर्म की, तन्तु तने संस्कार ।
जन्म भोग कपड़ा बुना, पहरे जो संसार ।।५।।
नहीं वचन का मोल है, यह हीरा अनमोल ।
बोल बोलने से पुरा, मुख में उस को तोल ।।६।।
हीरा वचन न खोइए, व्यर्थ वाद के बीच ।
मिथ्या कथन जनवाद में, डाल द्वेष के कीच ।।७।।
तीन दोष हैं वचन के, अपना करे बखान ।
निंदा करना अन्य की, झूठा वचन महान् ।।८।।
अभिमानी के वचन में, बसते वैर विरोध ।
आत्मश्लाघा अधिकतर, द्वेष कलह अतिक्रोध ।।६।।
अभिमानी फूला फिरे, अहंकार का भार ।
भारी कन्धों पर लिए, लांघ विनय की कार ।।१०।।
अतिमानी जन अधम है, अति निन्दक अति नीच ।
मिथ्या मान बड़ाई के, पड़ा कीच के बीच ।।११।।
तुच्छ गिने जन अन्य को, निज गुण का कर गान ।
सभ्य जनों में ऐंठ से, पाय घोर अपमान ।।१२।।
झुके न गुरु जन सुजन पै, मात पिता को मान ।
देवे नहीं घमण्ड घर, भरा विषम अभिमान ।।१३।।
परुष कड़े कटुतर वचन, बोले बिना विचार ।
जन में हलका हो रहे, भीतर भरा विकार ।।१४।।
साधो ! तजिए मान को, कर साधन सुखकार ।
हित मित सुमृदु वचन को, बोलिए साथ प्यार ।।१५।।
प्रिय वचन से पूजिए, सुजन समागत जोय ।
हींग लगे न फटकड़ी, रंग भी चोखा होय ।।१६।।

स्वागत आदर मान से, अभ्यागमन समुत्थान ।
महाराज शुभ आइए, वन्दन आसन दान ।।१७।।
यही विनय है सभ्यता, मिटे इसी से मान ।
रहना नम्र सुशील हो, बड़ी बड़ाई जान ।।१८।।
बांकी मान कमान में, चढ़ें न दोनों बाण ।
एक भक्ति भगवान् की, और महा अभिमान ।।१९।।
मान जहाँ, वहाँ न रहे, प्रेम दया उपकार ।
शम कोमलता मित्रता, मृदु वचन आचार ।।२०।।
मान मारिए मान दे, दान में कर सुभाव ।
दीन दुःखी पर कर दया, सेवा में रख चाव ।।२१।।
परम दयामय देव के, हो रहिए अनुदास ।
भजन भक्ति जप पाठ से, मान न आवे पास ।।२२।।
निन्दा कर न बिगाड़िए, मन की मधुर सुचाल ।
मैले पानी पाप से, भरे न दिल का ताल ।।२३।।
निन्दा करना अन्य की, दोषों को दिखलाय ।
पोल खोल पर-जनों को, नीचाधम बतलाय ।।२४।।
समालोचना रात दिन, करना कलह विरोध ।
दोष लगाने अन्य को, कर के हठ अनुरोध ।।२५।।
हैं ये कर्म कुकर्मी के, जिस के मन में खोट ।
मन मैले मतिमन्द का, काम है निन्दा चोट ।।२६।।
निन्दक जन को निन्दिए, बैठिए न उस पास ।
मन तन में है विष भरा, नाग महाविष रास ।।२७।।
तोले जग में पाप सब, ध्यान तुला में आप ।
निंदा भारा पाप है, सभी पाप का बाप ।।२८।।

निंदक के मन में बसें, छिद्र देखना दाग ।
गुण के सुन्दर बाग को, वही लगावे आग ।।२६।।
सुवर्ण-मय सुसदन में, कीड़ी ढूँढे छेक ।
निंदक गुण गण को तजे, मिले दोष यदि एक ।।३०।।
छालनी सम निंदक लख, तजे सार ले दोष ।
सज्जन छाज समान है, गहे सार तज रोष ।।३१।।
दीमक निन्दक एक-से, सार को करें असार ।
सुगुण मोदक मिट्टी करें, अवगुण के अवतार ।।३२।।
निन्दक से डरते नहीं, सन्त भक्त गुणवान् ।
साबुन, सज्जी समझ कर, उस को देते मान ।।३३।।
जैसी जिस पै वस्तु है, वैसी वही दिखाय ।
उस का बुरा न मानिए, अन्य कहाँ से लाय ।।३४।।
निन्दा तजिए निन्द कर, अपने दोष विकार ।
यदि घट में मुख डालिए, अवगुण दिखें अपार ।।३५।।
बुरा देखने जग फिरा, ढूँढा देश विदेश ।
मिला न स्वसम ही बुरा, कोई अन्य विशेष ।।३६।।
अपने किये कुकर्म पर, करिए दृष्टिपात ।
कम्पित पाप विपाक से, हो जावें सब गात ।।३७।।
बलिहारे उस भक्त के, जो निन्दे निज काम ।
लाय अश्रु अनुताप के, मुख से बोले राम ।।३८।।
डरिए अपने राम से, जपिए उस का नाम ।
अपने कर्म निहारिए, यही सियाना काम ।।३६।।
अपने जन सब जानिए, तज कर निन्दा वैर ।
भ्रातृ, मैत्री भाव से, धरो वैर पर पैर ।।४०।।

असत्य वचन न बोलिए. इस से होती हान ।
साक्षी मिटे विश्वास भी, बात न पावे मान ।।४१।।
जैसी होवे ज्ञान में, कहना सत्य कहाय ।
कहना आगम वेद का, मर्म मान मन लाय ।।४२।।
व्यवहारिक सुसत्य यह, ऊपर वर्णित जान ।
परमार्थ का सत्य है, वस्तु-तत्त्व का ज्ञान ।।४३।।
आत्म-तत्त्व विवेक में, आत्म-तत्त्व विश्वास ।
यही अध्यात्म सत्य है, पूर्ण सत्य निवास ।।४४।।
अपवाद व्यवहार में, जाति धर्म के काज ।
उपयोगी मत से कहे, ग्रन्थों में मुनिराज ।।४५।।
प्रण प्रतिज्ञा पालना, कथन न करना झूठ ।
कहना करना एक-सा, रखना सदा अटूट ।।४६।।
स्वाध्याय शुद्ध पाठ-जप, ज्ञान विनय उपदेश ।
पठन सुपाठन सत्य के, साधन कहे विशेष ।।४७।।
वाणी ऐसी बोलिए, जिस से हो उपकार ।
हित उद्धार हो दीन का, मेल सुगठन सुधार ।।४८।।
ऐसा वचन न बोलिए, जिस से फैले फूट ।
कलह क्रोध विरोध वैर, फैले लूट खसूट ।।४६।।
सत्य वचन अमृत कहा, सींचे मन तन गात ।
दुष्ट वचन विष जानिए, जिस से हो उत्पात ।।५०।।
वाणी से अमृत झरे, करे सुशांत शरीर ।
भक्ति साहस उत्साह दे, वाणी बनाय वीर ।।५१।।
वचन आग बन कर दहे, सुकृत भस्म बनाय ।
वचन से शांति सुख बढ़े, उन्नति ज्ञान उपाय ।।५२।।

जैसा जल हो कूप में, वैसा बाहर आय ।
वाणी का धर वेश ही, बाहर चित्त दिखाय ।।५३।।
प्रतिबिम्ब ही जानिए, वाणी दिल का सार ।
जिस का भीतर विमल है, उस के शुद्ध विचार ।।५४।।
संतो ! वाणी साध लो, जपो नाम भगवान् ।
अर्पण तन मन कर उसे, वचन सहित निज मान ।।५५।।

पिशुनता तथा ईर्ष्या

दो दोष दुःख खान हैं, चुगली ईर्ष्या जान ।
पाप बेल इन से बढ़े, वैर विरोध अज्ञान ।।१।।
पर की चुगली खाय कर, करना चाहे हान ।
कपटी कायर कुमति जन, ऐसे को ले मान ।।२।।
सम्मुख दोष बताय जो, उस को जानो वीर ।
पीछे जो चुगली करे, द्रोही चोर अधीर ।।३।।
मुँह देख बातें करे, भीतर भाव छिपाय ।
चिकनी चुपड़ी कपट से, पीछे दोष लगाय ।।४।।
ऐसे जन को समझिए, चापलूस दुःखकार ।
चुगलखोर की खोपड़ी, सब की सहे धिक्कार ।।५।।
लगाय लांछन अन्य को, जाने वा अनजान ।
धर्म गंवाना जगत् में, है निन्दा अपमान ।।६।।
दुर्मुख वह जन जानिए, पर को जो दे दोष ।
चुगली खाय पेट भर, नहीं पाय सन्तोष ।।७।।
काक कुत्ते सम ही कहा, चुगल खोर नर नारि ।
चोट लगावें पीठ पर, छुप कर करते वार ।।८।।

है चापलूसी नीचता, कूकर कर्म समान ।
पूँछ हिलावे लिट पड़े, टुकड़ा दाता जान ।।६।।
दोष-दर्शी है गीध सम, दोष दूर से देख ।
चूँच चलावे और पर, लखे न अपना लेख ।।१०।।
मैत्री से समझाइए, कर के बांधव भाव ।
त्रुटि बता एकांत में, करे सुधार उपाव ।।११।।
बैठ व्यर्थ न बोलिए, दोष अन्य की पोल ।
डमडम नहीं बजाइए, चौबारे चढ़ ढोल ।।१२।।
नर ! डर श्री भगवान् से, ऊँचा बोल न बोल ।
खोलो पोल न और की, निजू कमाई तोल ।।१३।।
पतन-शील प्राणी कहा, जल वत् नीचे जाय ।
बड़ा सुबाहु वीर भी, अधो-गमन को पाय ।।१४।।
वे नर नारी धन्य हैं, जिन को राखे राम ।
पाप दोष को दूर कर, दे कर अपना नाम ।।१५।।
पराई देख समुन्नति, मान ज्ञान धन धान ।
मन में जलन न लाइए, सब का है भगवान् ।।१६।।
कुढ़ना पर को देख कर, मन में रखना डाह ।
सहना नहीं पर उन्नति, भ्रम भूल है दाह ।।१७।।
अनिष्ट चिन्तन और का, करे गुणों का नाश ।
बढ़ कर ईर्ष्या आसुरी, हरे विवेक विकाश ।।१८।।
ईर्ष्या ज्वाला विषम है, गुण-वन की है आग ।
जिस में यह दुर्गुण बसे, सुख सिद्धि जाय भाग ।।१६।।
ईर्ष्या के वश में पड़ा, चढ़ चिंता के चाक ।
चित्त चेतना चूक कर, भोगे कर्म विपाक ।।२०।।

मन में रखना डाह अति, वृद्धि पर की देख ।
जलना ज्वाला द्वेष में, ईर्ष्या का यह लेख ।।२१।।
सौम्य सुसाधु भाव से, सब से करिए मेल ।
ईर्ष्या द्वेष न कीजिए, चार दिनों का खेल ।।२२।।
देखे पर समृद्धि जब, मन में बुरा न मान ।
किये कर्म का फल कहा, दाता है भगवान् ।।२३।।
अपने मान घमण्ड में, अंड बंड मत बोल ।
डर जा राजा राम से, जीभ न लम्बी खोल ।।२४।।
करिए मैत्री सर्व से, हित चिन्तन उपकार ।
सज्जनता रख सर्व से, बन सेवक सुखकार ।।२५।।
मिट्टी में मिल जायगा, महिमा मान महान् ।
चार दिनों की चांदनी, अंत अंधेरा जान ।।२६।।
उस का गौरव ही गला, जिस ने किया घमण्ड ।
अभिमानी के सीस पर, पड़े काल का दण्ड ।।२७।।
राजे राणे अति बलि, शूर वीर भूपाल ।
महामान्य सुसिद्ध जन, पड़े काल के गाल ।।२८।।
परम प्रभु को पूजिए, जो है सर्व निवास ।
हो कर सेवक दास जन, सब के रहिए पास ।।२६।।

इन्द्रिय-संयम

परम पुरुष को सिमरिए, नारायण ओंकार ।
शासक सारे जगत् का, सब का जो आधार ।।१।।
पांच इन्द्रियां ज्ञान की, उस का नियम विधान ।
करिए संयम में सदा, पूर्ण धर कर ध्यान ।।२।।

अपयश सुनना अन्य का, निन्दा पैशुन टार ।।३।।
यश गायन अपना नहीं, सुनते सज्जन संत ।
ज्ञानी तापस दान घर, वीर धीर मतिमन्त ।।४।।
कथा कीर्तन प्रेम से, सुनिए कोसों जाय ।
सन्त सुसज्जन संग में, जाये दूर से धाय ।।५।।
सत्संगति में जाइए, मन दे सुनिए ज्ञान ।
कर्मयोग सुभक्ति धर्म, धारे धर कर ध्यान ।।६।।
शब्द सुरीले भजन शुभ, हरि यश के सुन लेय ।
नाम सुमहिमा माधुरी, सुने सदा दिल देय ।।७।।
शुभ संगति ही गंग है, ज्ञान अभंग तरंग ।
भक्ति-भाव भागीरथी, विमल करे सब अंग ।।८।।
शुभ संगति सुख स्रोत है, सुधा नाम है राम ।
जप पूजन चिंतन कथन, मन को दे विश्राम ।।९।।
संगति सुगुणी संत की, देती संत बनाय ।
सोना तप कर आग में, ज्यों कुन्दन बन जाय ।।१०।।
नद नालों के मलिन जल, गंगा में मिल गंग ।
बनते प्रेमी संग में, दुष्ट दस्यु शुभ अंग ।।११।।
चुम्बक जैसे लोह को, करता आप समान ।
ऐसे संगति सन्त की, देती जीवन दान ।।१२।।
छूते विद्युत् तार को, हो बिजली संचार ।
संगति शुभ में बैठते, बढ़े नाम में प्यार ।।१३।।
भक्त भजन से मानिए, हो साधन से संत ।
सेवक साधक हैं सभी, सज्जन साधु महंत ।।१४।।

वेश नहीं पहचान है, भेख पंथ की रेख ।
भक्ति कर्म के योग में, इस का नहीं उल्लेख ।।१५।।
पहने बाना पंथ का, फिरें पुरोहित पीर ।
हैं रंगे बहु ढंग में, बने लकीर फकीर ।।१६।।
सज्जन सादे सरल जन, भजन पाठ में लीन ।
सेवक साचे भक्त जन, साधु संत ले चीन ।।१७।।
ऐसे जन की संगति, कान को देवे शोध ।
भक्ति भजन के दान से, मन में भरे सुबोध ।।१८।।
सुनने से सद्ग्रन्थ के, कर्ण शुद्धता पाय ।
गीत कथा हरि यश कथन, कान पवित्र बनाय ।।१६।।
नयन सुसाधन, पाठ को, पढ़ना चित्त लगाय ।
संत सुजन के दर्श को, पावे भाव जमाय ।।२०।।
मात पिता गुरु सुजन को, करे पूज कर नैन ।
पावन दर्शन प्रेम से, जान मर्म के बैन ।।२१।।
नयनों में लावे नहीं, द्वेष दोष व रोष ।
मलिन भाव छल सैन तज, पावे सुख संतोष ।।२२।।
दीन दुःखी को देख कर, करिए करुणा भाव ।
सेवा परोपकार से, सुख का करे उपाव ।।२३।।
साधन आँखों का शुभ, सुगुणी कहें विचार ।
त्यागे दृष्टि पाप की, दृष्टि दोष निवार ।।२४।।
कर से करिए कर्म शुभ, दान पुण्य उपकार ।
सेवा सुरक्षा पालना, दीन दलित उद्धार ।।२५।।
जपना माला राम की, कर से धीरे फेर ।
ध्यान धारणा कर वहीं, वृत्ति चंचल घेर ।।२६।।

हाथ एक हथियार है, पर को जो दे त्राण ।
दया भाव भरपूर से, पाले पीड़ित प्राण ।।२७।।
बढ़े बहुत बल बाहु से, शूर वीर जन सार ।
सेवा कर जन जाति की, गये जनों को तार ।।२८।।
स्थिर पांव से बैठिए, संगति हरि-दरबार ।
आसन कर आराधिए, नाम सार-संसार ।।२६।।
चल कर जावे चाव से, जहाँ सुजन का संग ।
कथा कीर्तन भजन में, जहाँ राम का रंग ।।३०।।
कर्मयोग के काम में, दीन-दया के काज ।
पैरों से चल जाइए, सेवा रखने लाज ।।३१।।
जाति देश के काम में, जाय दौड़ कर वीर ।
तन अर्पण तक कर हरे, कष्ट पराई पीर ।।३२।।
ऐसे साधन साध कर, करिए सिद्ध शरीर ।
ईश नाम के जाप में, बनिए शांत सुधीर ।।३३।।

आधार-शुद्धि

माना आधेय आत्मा, तन उस का आधार ।
भीतर की सुवृत्तियाँ, सुधरें छोड़ विकार ।।१।।
वृत्तिमय जब शुद्ध हो, सुधरे तन आधार ।
आत्मज्ञान तुरन्त हो, सुख भी बढ़े अपार ।।२।।
सकल जगत् का आश्रय, नारायण ओंकार ।
अन्तर्यामी अनन्त है, शान्त ही सर्वाधार ।।३।।
करे भावना भाव से, है हरि बहुत समीप ।
भीतर बाहर राजता, लोक त्रय सब द्वीप ।।४।।

उस में सब हैं रम रहे, ज्यों जल में हो मीन ।
प्रिय रूप वह है पिता, परम पुरुष स्वाधीन ।।५।।
उसी में से विकास हो, सकल जगत् का जान ।
उस में लय है सर्व का, पालन करे महान् ।।६।।
अजर अमर सुख कंद है, अनन्त चेतना कोश ।
शक्ति ज्ञान आनन्द का, पूर्ण वही सुकोश ।।७।।
निज जन वत्सल राम है, दाता दान अनन्त ।
सर्वाधार है प्रेममय, रहित आदि वा अन्त ।।८।।
तेजोमय आदित्य सम, शान्त ज्योति का धाम ।
असीम सूर्य भावमय, है शोभामय राम ।।९।।
ऐसी कर के धारणा, साधन से निज प्राण ।
करिए सारे शुद्ध ही, विधि से कर के ध्यान ।।१०।।
तन है पूर्ण प्राण से, कहा न पवन समान ।
पर सुपवन पावन करे, देह-प्राण प्रधान ।।११।।
जैवी सुशक्ति जीव की, जीवन जाना जाय ।
वास्तव में वह प्राण है, अनुभव से लख पाय ।।१२।।
उस का कुछ सम्बन्ध है, पवन से जान विशेष ।
उस के भारी भाव को, जानें सन्त अशेष ।।१३।।
वह अगम्य है तर्क से, वस्तु गहन गम्भीर ।
श्रद्धा निश्चय से लखे, मन से बन कर धीर ।।१४।।
जैवी प्राण का कोश है, मूलाधार विशेष ।
उस के जगने से सभी, होवें दोष निश्शेष ।।१५।।
सुरीति उस की समझिए, मिल कर योगी सन्त ।
भक्ति भाव से समझ कर, करे कर्म एकान्त ।।१६।।

प्राणायाम सरीति है, शोधक देहाधार ।
शोधक वृत्ति जगत् का, कारक चक्र सुधार ।।१७।।
मुद्रा आसन हैं सभी, साधन कठिन अनेक ।
ध्यान धारणा भेद है, अन्तिम फल है एक ।।१८।।
सब साधन सिर मुकुट है, राम नाम का ध्यान ।
सुशक्ति शीघ्रतर जगे, इस का पाय विधान ।।१६।।
कुंजी सुशक्ति कोश की, समझो राम सुनाम ।
जैवी विद्युत् ही बहे, खुलें अखिल ही धाम ।।२०।।
ज्ञानी जन से सीखिए, गुरु जन से यह रीत ।
रहस्य मौन अभ्यास है, रखिए श्रद्धा प्रीत ।।२१।।
वर्णन करना कर्म का, कला मान की मान ।
भेद बात को खोलना, उन्नति में है हान ।।२२।।
साधक का यह कर्म है, करे कमाई आप ।
कथन क्रिया का न करे, तज मन के सन्ताप ।।२३।।
उपजे बीज सुगुप्त रह, अंकुर बने सुरूप ।
मोती हीरा गुप्त रह, चमके सुन्दर रूप ।।२४।।
बोले मुख से नहीं बहु, कच्चे काम की बात ।
ध्याइए मुद्रा मौन से, राम राम दिन रात ।।२५।।
साधन प्राणायाम है, रवि भेदी बलकार ।
भस्त्रिका बहुत भाँति की, मन के हरे विकार ।।२६।।
कुम्भक भीतर बाहर की, प्राण को पुष्टि देय ।
शक्ति को जागृत करे, देह दोष हर लेय ।।२७।।
प्रातः उठ कर कीजिए, सूर्य भेदी भेद ।
शोधक प्राणायाम जो, हर्ता देह के खेद ।।२८।।

धीरे धीरे पूरिए, भीतर प्राण सुधार ।
भर कर कुम्भक कीजिए, जपिए राम सुसार ।।२६।।
विधि से प्राण निकालिए, जपे प्रभु का नाम ।
बाहर उस को रोकिए, मन में जपिए राम ।।३०।।
निश्चय हो भगवान् में, जिस का किया बखान ।
ध्येय लक्ष्य वह मानिए, परम दयालु महान् ।।३१।।
साधना शक्ति बोध की, शुभ यह है पर गौण ।
मुख्य नाम ही मानिए, उस सम दीखे कौन ।।३२।।
भावों में भगवान् है, बीच भक्त भगवान् ।
प्रिय भक्त की भक्ति को, लेता श्री हरि मान ।।३३।।
हरि को सिमरो ध्यान से, चलते फिरते बाट ।
काम काज में सिमरिए, सुख कर योग विराट ।।३४।।
योग रीति यह सुगम है, फल है परम अपार ।
अति विश्वास का काम है, श्रद्धा की है कार ।।३५।।

कुण्डलिनी-प्रबोध

नट ज्यों नाचे बाँस ले, कभी न चूके ध्यान ।
तथा धारणा कीजिए, नाम धाम के स्थान ।।१।।
सुदृढ़ रखिए धारणा, राम नाम को धार ।
बार बार मन मोड़ कर, करिए उत्तम कार ।।२।।
जग मेले में घूमिए, भूलिए न निज नाम ।
जाति गोत पितु मात को, और आप का गाम ।।३।।
कर्म करो त्यों जगत् के, धुन में धारे राम ।
हाथ पांव से काम हो, मुख में मधुमय नाम ।।४।।

एक पंथ दो काज यों, होवें निश्चय जान ।
भक्ति धर्म का मर्म है, योग युक्ति ले मान ।।५।।
कुण्डलिनी को बोधिए, किए ध्यान आधार ।
अष्ट चक्र को बेधिए, यह परमार्थ सार ।।६।।
मूलाधार में सो रही, नाड़ी कुण्डला-कार ।
कुण्डलिनी के नाम से, सन्तों कही पुकार ।।७।।
बाल के सौवें भाग से, है सूक्ष्म वह तार ।
नीचे नाभि-सुकमल के, सोती बल भण्डार ।।८।।
जैवी चेतना है वहाँ, सुप्त पड़ी जो शांत ।
उसे शक्ति के नाम से, कहते मुनि जन दान्त ।।९।।
व्यवहार में वृत्ति जो, उसे कहें मन लोक ।
परमार्थ में चित्त है, शक्तिरूपी अशोक ।।१०।।
काम काज की चेतना, स्थूल कर्म व्यौहार ।
कल्पना इच्छा जानिए, मनो-वृत्ति विस्तार ।।११।।
इच्छा बिना जो हो रहे, तन में कर्म कलाप ।
स्वाभाविक वे कर्म सब, चित्त के हैं निष्पाप ।।१२।।
शांत स्थिति है जीव की, चित्त कहा जो जाय ।
उस के जगने से सभी, आत्म-भाव बसाय ।।१३।।
वही शक्ति है जीव की, चेतन साक्षी रूप ।
शुद्ध विमल निज रूप है, अस्ति ज्ञान स्वरूप ।।१४।।
परमार्थ में तो वही, मन भी माना जाय ।
आत्म-सत्ता सुविमल, वह शुभ चित्त कहाय ।।१५।।
जगने से इस शक्ति के, हो नारायण बोध ।
बन्धन टूटें कर्म के, भिदे ग्रन्थि सह क्रोध ।।१६।।

जगी हुई वह ही चले, सूक्ष्मतर शुभ चाल ।
द्वार सुषुम्ना खोल कर, विघ्न बाध को टाल ।।१७।।
क्रम से चक्र स्थान को, लांघे दैवी जोत ।
नाना दृश्य दिखा कर, करे निराला द्योत ।।१८।।
पहुँच जाय शक्ति जभी, सहस्त्र कमल सुलोक ।
मुक्त होवे तब आत्मा, भगें भय भ्रम शोक ।।१६।।
कल्पलता वर मानिए, सुरभि सुधा की सोत ।
सम्पत् सारी योग की, रही इसी में प्रोत ।।२०।।
शक्ति जगी के चिन्ह हैं, उपजे आप सुनाम ।
बिना यत्न मुख आदि में, फुरे राम ही राम ।।२१।।
स्वयमेव चल प्राण ही, देवे काया शोध ।
समाधि होवे सहज से, बिना कष्ट अनुरोध ।।२२।।
समता में मन हो सदा, भीतर होवे शान्त ।
काम काज में सम रहे, कभी न होवे भ्रान्त ।।२३।।
भक्ति बढ़े हरि धाम में, बढ़े राम अनुराग ।
जब चाहे मन हो स्थिर, पाप को रहे त्याग ।।२४।।
लखे ज्योति हरि धाम की, होवे निज का ज्ञान ।
सुख दुःख में समता लखे, जीवन मरण समान ।।२५।।
द्वन्द्व सारे पार कर, बने प्रेम का पुंज ।
वह प्रसन्न रहे सदा, बना शान्ति का कुंज ।।२६।।
ऋतम्भरा प्रज्ञा खिले, हो निज रूप प्रकाश ।
भेद भावी भावों का, दैवी दिव्य विकाश ।।२७।।
गुरु मुख से ले शब्द को, करिए नित्य अभ्यास ।
अचल धारणा धारिए, जहां शक्ति का वास ।।२८।।

ब्रह्म कोश उत्तम लख, सब धामों से धाम ।
मस्तक में ही मानिए, आत्म-देव विश्राम ।।२९।।
विधि से राम उच्चारिए, समझ सकल सुविधान ।
ध्यान वहां ही समझिए, है जहां जीव-स्थान ।।३०।।
दया राम की हो जब, मन से लेते नाम ।
त्रिकुटी आदि सब खुलें, एक साथ सब धाम ।।३१।।
राम धाम ऊँचा परम, यह ही सन्त अलाप ।
पन्थ कीच की कल्पना, जानी सर्व विलाप ।।३२।।
शक्ति योग अराधिए, साधिए शक्ति योग ।
शक्ति रूप हो जाइए, हो सब सोग वियोग ।।३३।।
शक्ति प्रभु जगदीश की, करती पालन लोग ।
धारण कर संसार को, हरती भारे सोग ।।३४।।
शक्ति धाम भगवान् है, भक्त शक्ति के काज ।
आराधे भगवान् को, भक्ति रूप सज साज ।।३५।।
शक्ति भक्ति के धर्म में, राई रत्ती न भेद ।
पथ भूला भोला भक्त, करे भेदमय खेद ।।३६।।
शक्ति सुसेवा कर्म में, विकसे सह उपकार ।
भक्ति भावना प्रेम में, अपना ले अवतार ।।३७।।
कर्मयोग शुभ शक्ति लख, कुटिल पाप संहार ।
भक्ति, श्रद्धा, प्रार्थना, जप,पूजा से प्यार ।।३८।।
भक्ति शक्ति जगें दो मिल, कुण्डलिनी के संग ।
योग सिद्ध हो सन्त का, बढ़ती जाए उमंग ।।३९।।
दया दयामय देव की, देवे दिव्य सु-योग ।
लख हो उस के धाम की, भगें भारी दुर्भोग ।।४०।।

काया-शोधक प्राणायाम

परम प्रभु परमेश को, सिमर कहूँ विधि एक ।
काया-शोधक कर्म की, जिस के भेद अनेक ।।१।।
आसन नाना जो कहे, विविध रूप व्यायाम ।
काया शुद्ध करें सभी, मन में भरें विश्राम ।।२।।
गुरुजन से जो सीख कर, करे कर्म सह ध्यान ।
उसे अभ्यासी जानिए, श्रम कर्ता पर मान ।।३।।
आत्मा का कल्याण जो, चाहे सहित विवेक ।
सीखे सुगुणी सन्त से, यही योग की टेक ।।४।।
ज्ञान ध्यान में जो रमा, पूर्ण योगी जोय ।
जप सिमरन से सिद्ध जो, मानिए सुगुरु सोय ।।५।।
बैठ खड़े हो सीध में, ढीले रख कर गात ।
प्राणायाम सुध्यान से, करिए सायं प्रात ।।६।।
प्राणायाम करें सभी, तन आत्म-हित धार ।
संशय भ्रम कुरीति तज, चंचलता को टार ।।७।।
वायु भरी है रक्त में, करना उसे अधीन ।
लक्ष्य प्राण का है बड़ा, नहीं पाय विधि हीन ।।८।।
रेचक पूरक को करे, धीरे खींचे वात ।
कमलनाल ज्यों जल पिये, पवन पियें ज्यों पात ।।६।।
दूध पिये थन से यथा, बालक ही नव-जात ।
ऐसे धीरे खींचिए, शोधक प्राण विख्यात ।।१०।।
भीतर भर कर रोकिए, बहुत अल्प ही काल ।
हठ से अधिक न रोकिए, प्राण पवन की चाल ।।११।।

शनैः शनैः रेचक करे, लम्बा सांस हि छोड़ ।
यथाशक्ति कुम्भक करे, ध्यान न देवे तोड़ ।।१२।।
सांस छोड़ते काल ही, पेट पीठ की ओर ।
खींचे धीरे से गुणी, लेवे बहुत सिकोड़ ।।१३।।
पूरक करते पेट को, लेवे अधिक उभार ।
उभरें छाती पसलियां, कन्धे करें विस्तार ।।१४।।
मन में सिमरे राम को, पिये नाक से सांस ।
वृत्ति सम कर के रहे, पकड़ ध्यान का बांस ।।१५।।
पलड़े प्राण अपान के, सांस साम कर तोल ।
जपे राम सुख धाम जो, चिन्तामणि अनमोल ।।१६।।
रिक्त पेट से कीजिए, लम्बे प्राणायाम ।
खुली पवन उद्यान में, दे कर बीच विराम ।।१७।।
नदी किनारे कीजिए, वन जंगल में जाय ।
सुन्दर सुथरी छत्त पर, खुली पवन को पाय ।।१८।।
कोमल काया को करे, नाड़ी गण को शोध ।
मज्जा जाल नूतन बने, मन में जगे सुबोध ।।१९।।
श्वास कास को यह हरे, दे बल शक्ति अपार ।
उदर हृदय के दोष हर, करे शान्ति संचार ।।२०।।
सम कर रखे सांस को, सोचे निश्चय ठान ।
सागर प्राण सुवर्ण सा, है सब ओर महान् ।।२१।।
भीतर भरते पवन को, करता हूँ वह पान ।
अमीरस शान्ति कांन्तिमय, मोद सिद्धि सुख खान ।।२२।।
ऐसे भावों से मिले, परम शुद्ध जो प्राण ।
जीवन ज्योति ओज का, मेधा बुद्धि निधान ।।२३।।

लम्बे प्राणायाम में, खींचे मूलाधार ।
धीरे धीरे ध्यान से, वहीं धारणा धार ।।२४।।
सुरक्षा ब्रह्मचर्य की, हो दोष हों दूर ।
ऊर्ध्व गति हो पुरुष की, बढ़े बुद्धि बल पूर ।।२५।।
आँखों को दे चाँदना, मस्तक को दे तेज ।
हृदय को प्रसन्नता, मिले शांति सुख सेज ।।२६।।
दीर्घ प्राणायाम से, सभी अस्थिगत दोष ।
दूर हों मज्जा-जालगत, वात पित्त कफ रोष ।।२७।।
स्वच्छ फेफड़े हों तभी, क्षय की होवे हान ।
सब सुख दाता जानिए, दीर्घ प्राण विधान ।।२८।।
समता कर के साँस में, जपे राम का नाम ।
निश्चय कर के सब रहें, इस में प्राणायाम ।।२६।।
सब साधन में मानिए, नाम परम अनमोल ।
भीतर के सब भेद यह, देवे सुख से खोल ।।३०।।
प्रणिधान श्री राम का, योग युक्ति का सार ।
जाना अनुभव से महा, फल दाता सुखकार ।।३१।।
आशीर्वाद भगवान् का, माँगे विनती साथ ।
औषध उस का नाम है, वैद्य आप जग नाथ ।।३२।।
वही प्राण है सर्व का, दाता जीवन दान ।
सब में बल को वह भरे, दे कर प्राण महान् ।।३३।।
सिमर प्रेम से राम को, भाव भक्ति को लाय ।
जीवन बल भण्डार को, सीस सुनम्र झुकाय ।।३४।।

मन को प्रबोधन

परम प्रभु का ध्यान कर, सायं प्रातःकाल ।
अवसर जब अनुकूल हो, भज कर देव दयाल ।।१।।
निज मन को प्रबोधिए, दे उद्बोधन भाव ।
माया ममता मोह-मय, मैला त्याग कुभाव ।।२।।
मन मेरे तू महा मधु, मोहन मधुर महान् ।
शक्तिरूप है अतिप्रिय, सुख सम्पत् का स्थान ।।३।।
नाम नाव में बैठ कर, हो जग-जल से पार ।
प्रेम प्रभु के धाम का, कहा तेरा निस्तार ।।४।।
मेरे प्यारे पूज ले, चरण कमल जगदीश ।
भुवन कर्ता भगवान् जो, है ऋषियों का ईश ।।५।।
उस के पूजन ध्यान से, तेरा हो कल्याण ।
तेरा वह आधार है, तेरा जीवन प्राण ।।६।।
पूजा सायं प्रात कर, जभी मिले अवकाश ।
इस से तेरे रूप का, होगा सुलभ विकाश ।।७।।
भक्ति भजन तव धर्म है, कर्म-योग है काम ।
पथ तो तेरा प्रेम है, परम भरोसा राम ।।८।।
प्रीति अमीरस पान कर, प्रेम पगा हो आप ।
परहित परता में रहो, परिहर पातक पाप ।।६।।
प्रिय ! प्रभु के नाम को, भज ले धर कर ध्यान ।
अवसर मानव जन्म का, चिंतामणि सम जान ।।१०।।
सुन्दर मन्दिर मधुरतम, है तेरा तन-धाम ।
स्थिर शांत हो पूज तू, महा मनोगम राम ।।११।।

जप ले माला भाव से, कर भारी भय नाश ।
भगवती भक्ति साध ले, पा कर ज्ञान विकाश ।।१२।।
बनो पुजारी देव का, जो है दीन दयाल ।
देवों का है देव वह, दुःख हर्ता जन पाल ।।१३।।
तज कर सारी कल्पना, भ्रम विकल्प विकार ।
अविद्या मोह माया तज, नाम ध्यान को धार ।।१४।।
जप जपनी हरि नाम की, जय जय शब्द उच्चार ।
जगत् पिता जगदीश जय, जय सृष्टि के सार ।।१५।।
लौ लगा कर लगन से, कर ले नाम सुजाप ।
नाम नारायण साध ले, तज कर सारे ताप ।।१६।।
बनें काम सब नाम से, नाम भीतरी दीप ।
जीवन नाम विहीन जो, जानो फूटी सीप ।।१७।।
नाम रत्न जिस पास है, वह है धनपति सेठ ।
नाम साधना से समझ, हैं साधन सब हेठ ।।१८।।
नाम सुदीपक हाथ ले, चलिए बीहड़ बाट ।
जाय अन्धेरा लांघ कर, उतर कर्म का घाट ।।१६।।
सर्व सहारा नाम का, माना जिस ने देख ।
लिया भरोसा नाम का, उस के सुधरें लेख ।।२०।।
मन में नाम महामधुर, खिंचे नाम सुरेख ।
कर्मगति वहां क्या करे, उस में मीन व मेख ।।२१।।
पूंजी पा कर नाम की, हो जा मालामाल ।
कामधेनु यह जानिए, तुझ को करे निहाल ।।२२।।
रोम रोम में जब रमे, कोमल नाम तरंग ।
नस नस में जब रस बसे, होवे कभी न भंग ।।२३।।

रंग सभी अपने वसन, ओ ! रंगीले आज ।
भक्ति भाव के रंग में, सज सुन्दर सब साज ।।२४।।
रसिए रस सुर राग के, मधुर नाम का स्वाद ।
चख चतुर सुख से अभी, तज कर तर्क विवाद ।।२५।।
चंचलता की चाल को, चपल ! छोड़, कर जाप ।
निश्चल निश्चय धार कर, हर ले तीनों ताप ।।२६।।
बनी में बाजी जीत ले, जय कर सारे दोष ।
जय कर सारी वासना, तज दे लालच रोष ।।२७।।
घट में तेरे रास है, भीतर तेरे मोद ।
नाना रचना राजतीं, पर तू पड़ा अबोध ।।२८।।
कान किवाड़े बन्द कर, पलकें पड़दे डाल ।
त्रिकुटी मन्दिर में मन, सुन्दर लीला भाल ।।२६।।
अष्ट चक्र को वेध कर, सुषुम्ना मार्ग जाय ।
लख ले लीला राम की, परम धाम को पाय ।।३०।।
तेरे में है सार रस, परम प्रेम का सोत ।
तू है निर्मल आप में, शुद्ध ज्ञान की जोत ।।३१।।
सीढ़ी पकड़ सुनाम की, चढ़ जा ऊँचे धाम ।
नाम अमोलक राम है, दुःख भंजन विश्राम ।।३२।।
निश्चय तेरा शुद्ध हो, जप हो तेरा आप ।
जप अजपा निज नाद का, जान परम ही जाप ।।३३।।
जीभ जपे जब नाम को, ध्यान धारणा संग ।
उपजे अनहद् नाद तब, निर्मल नाना रंग ।।३४।।
कर में माला फेरिये, जीभ फिरे मुख बीच ।
आत्मा फिर सब अंग में, अमृत से दे सींच ।।३५।।

रमते मन अभिराम तू, कहा सरोवर मान ।
विविध रंग के कमल का, है तू ही शुभ भान ।।३६।।
महामधुर तू आप है, तेरी मधुर सुतान ।
जप अजपा में नाद में, करता तू ही गान ।।३७।।
तेरे सारे खेल हैं, अहो ! खिलाड़ी राज ।
तू रसिया सब रंग का, सुन्दर तेरे काज ।।३८।।
तेरे हारे हार हो, तेरे जीते जीत ।
मोक्ष धाम तुझ को मिले, कर अपनी प्र-तीत ।।३६।।
अवलम्बन ले राम का, जो सब ऊपर एक ।
आशा और विश्वास की, है वह ऊँची टेक ।।४०।।

आत्मोद्‌बोधन

आत्मा को उद्‌बोधिए, हरि का कर के ध्यान ।
नारायण को सिमरिए, अन्तर्यामी जान ।।१।।
आत्मा मेरे आप ही, अपना आप सम्भाल ।
त्याग वासना सब बुरी, काट अविद्या जाल ।।२।।
है तू शुचि स्वभाव से, ज्यों गंगा का नीर ।
माया से तू मलिन है, मान जान धर धीर ।।३।।
तेरी सत्ता विमल में, न मायामयी मैल ।
उपाधि का मल धोइए, होवे तभी सुचैल ।।४।।
तेरे अपने रूप में, नहीं पाप का वास ।
अविद्या में हैं पाप सब, वही कष्ट की रास ।।५।।
तू तो तेज अखंड है, ढका तमोमय कोष ।
इसे दूर कर ज्ञान से, तज शंका के दोष ।।६।।

कर निश्चय हरि नाम में, अन्तःकरण के साथ ।
[illegible]
तुझ में कुछ भी खोट न, खरा शुद्ध तू आप ।
नाम कसौटी पर कसे, तब भागें भय ताप ।।८।।
ध्यान तुला में तोल ले, अमोल लाल सुनाम ।
तीन लोक की सम्पदा, बने न इस का दाम ।।९।।
मेरे आत्म-भाव तू, राम राम भज राम ।
रम जा मीठे नाद में, यही परम है काम ।।१०।।
जाग जाग जीवन परम, जोत, जीत, जयकार ।
सोते सिंह महाबली, अपना आप विचार ।।११।।
तेरी गहरी नींद में, लुटा बुद्धि-धन प्राण ।
विषय लुटेरे ले गये, तेरा शुद्ध सुज्ञान ।।१२।।
माया ठगनी ठग गई, परदा अविद्या डाल ।
शंका संशय छोड़ कर, तुझ पै अपने बाल ।।१३।।
वैरी तेरा रक्त का, प्यासा पाप अज्ञान ।
भ्रांति-रात में हर रहा, तेरा रूप महान् ।।१४।।
उठो उठो जागो अभी, तुझ में जरा न काल ।
अपना पद पहचान ले, माया की गति टाल ।।१५।।
धारा अमृत नाम की, दिव्य सुधा सम जान ।
अन्तर्मुख हो प्रेम से, कर ले प्यारे पान ।।१६।।
सुन ले ध्वनि अगम्य की, खोल किवाड़े कान ।
सुदया देव दयाल की, दिव्य दान ही मान ।।१७।।
नयनों में है वास तव, जो है तेरी सेज ।
तेरे अपने आप का, इस में चमके तेज ।।१८।।

मन्दिर तेरा भाल है, रम्य मनोहर धाम ।
यहीं निरख स्वरूप को, जप कर अपना राम ।।१६।।
सहस्त्र कमल-दल ज्ञान के, हैं सुन्दर जो कोष ।
खिलें, खुले, जब सुषुम्ना, नाशें सारे दोष ।।२०।।
मेरे प्यारे आप तू, भज देवों का देव ।
भक्ति भाव शुभ भावना, जान यह सच्ची टेव ।।२१।।
तव शुद्ध सत्ता आत्मन्, वर्णन करी न जाय ।
अस्ति भाव तेरा विमल, शब्दों में नहीं आय ।।२२।।
परमात्मा के संग से, तू है बल भंडार ।
महिमा गुण गण आदि का, और ज्ञान आगार ।।२३।।
सत्ता से है अच्छिन्न तू, देश काल के बीच ।
तू तो ऊँचा भाव है, बना भूल से नीच ।।२४।।
मकड़ी जैसे जाल रच, फंस उसी में जाय ।
ऐसे तू है फंस रहा, भ्रान्ति जाल फैलाय ।।२५।।
रेशम का कीड़ा यथा, रच कर कोश अजान ।
बन्ध जाय वह आप ही, ऐसे निज को मान ।।२६।।
मृग-तृष्णाति देख कर, तृषित हिरण ज्यों धाय ।
ऐसे तू है भटकता, कल्पित कर्म बढ़ाय ।।२७।।
अपने घोर अज्ञान से, रच कर तू ने बन्ध ।
अपने चेतन भाव को, आप किया तू मन्द ।।२८।।
मांस-खण्ड के लोभ से, जैसे मत्स्य महान् ।
पड़े जाल में, तू तथा, घिर रहा रच अज्ञान ।।२६।।
पाप पिंजरा तोड़ कर, प्रेम सुपंख हिलाय ।
उड़ जा हंस आकाश में, परम ज्योति को पाय ।।३०।।

अभय केसरी गर्जते, बन कर भीरु सियार ।
वश पड़ कूकर कर्म के, तू सहता है मार ।।३१।।
सिंह सूरमे वीर तू, अपनापन ले चीन ।
मृग-दल में चरना तज, नहीं कभी हो दीन ।।३२।।
कायरपन को छोड़ दे, जो है अविद्या भूल ।
तू तो शूर सुवीर है, महा शक्ति का मूल ।।३३।।
तेरा तू है छुप रहा, माया बादल बीच ।
सहस्त्र-दल का कमल तू, छुपा बीच है कीच ।।३४।।
तू तो दर्पण विमल है, अपना रूप निहार ।
माया मल को दूर कर, छाया भ्रान्ति निवार ।।३५।।
तू देखे निज रूप को, आप दिखाने योग ।
कर कंगन को आरसी, कहें दिखाना रोग ।।३६।।
दीवा ले कर देखिए, वस्तु अन्धेरे स्थान ।
दीवे को दीवा लिये, ढूँढे निपट अजान ।।३७।।
तू तो दीवा दिव्य है, जगता सदा अभंग ।
तेरे तेज विकास के, दिखें निराले रंग ।।३८।।
सूर्य सम है चमकता, तन में आठों याम ।
करता सारे अंग में, कौशल से तू काम ।।३९।।
पर पहचाने तू नहीं, अपनी सुन्दर चाल ।
प्यारे आत्म-भाव अब, पाप ताप तज डाल ।।४०।।
नाश उत्पत्ति रहित तू, आदि अन्त से पार ।
चयोपचय से रहित तू, वा परिणाम विकार ।।४१।।
बद्ध मानना आप को, अज्ञानी महा मूढ़ ।
अबल विनाशी जानना, है माया में रूढ़ ।।४२।।

जाने न निजू रूप को, अपना पाय न ज्ञान ।
संशय अज्ञान में जो घिरा, माया वश वह जान ।।४३।।
प्रकृति के विकार को, अपना माने जोय ।
घटना बढ़ना बिगड़ना, माया वश है सोय ।।४४।।
सत्य को मिथ्या मान कर, जो जन करता भूल ।
उस जन में माया बसे, शाख पात सह मूल ।।४५।।
मेरे आत्मा नाश कर, माया का जंजाल ।
राम नाम के ध्यान से, भज कर देव दयाल ।।४६।।
मेरे आत्मा आज तू, चेत चेत ही चेत ।
आभा अपनी देख ले, खोल ज्ञान के नेत ।।४७।।
मोक्ष पन्थ को जान ले, कर के कर्म कल्याण ।
भक्ति धार भगवान् की, है जो सब का प्राण ।।४८।।
तीर्थ हरि का नाम है, सुव्रत जपना जाप ।
संयम हरि का ध्यान है, पूजा अर्पण आप ।।४६।।
कर्म सभी अर्पण करो, सिमर सिमर भगवान् ।
ध्यान करो कर धारणा, आत्म-हित को मान ।।५०।।
सांस सांस से सिमर ले, परम प्रेम मय नाम ।
धार धारणा ध्यान से, है तेरा श्री राम ।।५१।।
पलड़े सांसों सांस के, दोनों कर ले ठीक ।
गुरु मुख से ले शब्द को, हो जा सदा निर्भीक ।।५२।।
सिद्ध कामना कीजिए, वृत्ति ठीक टिकाय ।
आत्मपद को पाइए, सुदृढ़ ध्यान जमाय ।।५३।।
सैन बैन संक्षेप से, इस का वर्णन होय ।
गुरु जन से जा सीखिए, मार्ग देवे सोय ।।५४।।

ग्रन्थों में बहु भेद हैं, पर शाखा से शाख ।
[illegible]
भुने घुने ज्यों बीज से, अंकुर निकल न आय ।
तथा भावना-हीन से, अनुभव विकस न जाय ।।५६।।
मार्ग वेत्ता पाय कर, सत्संगति में बैठ ।
नाम सुमोती पाइए, गहरे पानी पैठ ।।५७।।
परम पिता परमात्मा, पूजें ऋषि मुनि सन्त ।
उस को मन से पूजिए, हो कर शुभ मतिमन्त ।।५८।।
मेरे आत्मा आप तू, अपना पद पहचान ।
नाम सिमर कर धारणा, राम सिमर कर ध्यान ।।५९।।

अपने आप को उपदेश

मेरे अपने आप हे, कहूँ सिमर जग नाथ ।
कुछ तो बातें बोध की, जो देवें शुभ साथ ।।१।।
चार कर्म तू छोड़ दे, कुमति, कुकर्म, कुसंग ।
मदिरा पान कुबान को, करें ये भक्ति भंग ।।२।।
चार नरक की खान हैं, अतिमान, अहंकार ।
दुःख देना जन दीन को, हरना पर धन सार ।।३।।
चार चतुर जन हैं सही, जो करते उपकार ।
सेवा दीन अनाथ की, जन-हित और सुधार ।।४।।
तीन कर्म अति नीच तज, क्रूरता, अत्याचार ।
मारना निरपराध को, पतित कर्म व्यभिचार ।।५।।
तीन शत्रु से बच रहो, जो करते हैं हान ।
दोष लगाना, छल कर्म, कभी न देना दान ।।६।।

सीख संत पै तीन गुण, राम भक्ति शुभ नाम ।
सेवा सज्जन सन्त की, दीन की, शोभा-धाम ।।७।।
पाँच चोर से चतुर बच, क्रोध, कपट, अतिद्वेष ।
लोभ पराई वस्तु का, निन्दा जान विशेष ।।८।।
प्रभु भक्तों में पाँच गुण, विनय दान को धार ।
सेवा हित करते सदा, मान बड़ाई मार ।।६।।
पाँच सखा को संग ले, संगति, सुमति, प्यार ।
दान, दया को समझ ले, बन कर एक उदार ।।१०।।
छः से स्व को बचाइए, ईर्ष्या, पैशुन, द्रोह ।
फूट परस्पर कलह से, करना अति ही मोह ।।११।।
सुख की सीढ़ी समझिए, सेवा, दया, सुसंग ।
भक्ति, प्रीति आराधना, श्रद्धा-भाव अभंग ।।१२।।
उत्तम सातों समझिए, भक्त, सेवक, हितकार ।
श्रद्धायुत, विश्वासी जन, ज्ञानी, सहित विचार ।।१३।।
उत्तमता हो आठ में, प्रेम, धर्म, दयावान् ।
सच्चा, सुसभ्य, सुशील जो, विनय-शील, गुणवान् ।।१४।।
मेरे आत्मा समझ ले, भेखी धर्म न देख ।
वेश बहाना बहु बना, मिले न इस का लेख ।।१५।।
हरि का रंग न रंग में, प्रेम निराला रंग ।
मानें भेखी वेश को, पंथों की पी भंग ।।१६।।
नहीं गेरू में धर्म है, नहीं रंग में त्याग ।
हरि के अर्पण हो रहो, यही त्याग वैराग ।।१७।।
कुसुम्भा ले हरि नाम का, प्रेम सुजल में घोल ।
चित्त सुचोला रंग ले, यही भेख अनमोल ।।१८।।

अविद्या का घर छोड़ दे, भार्या माया जाल ।
लोभ, मोह, परिवार को, हठ, मद, शठता टाल ।।१९।।
गुरु से दीक्षा लीजिए, मंगलमय ले नाम ।
बाना रखना पन्थ का, जान तभी बिन काम ।।२०।।
कर्म करो सब जगत् के, परहित सेवा हेत ।
संन्यासी बन बोइए, कर्म-योग का खेत ।।२१।।
समन्वय कर सब धर्म का, मत की हठ को छोड़ ।
साम्प्रदायिक पन्थ से, अपने मुख को मोड़ ।।२२।।
पूजें पन्थ मनुष्य को, दिये ईश का स्थान ।
गुरु जन को ही मानते, हरि ब्रह्म भगवान् ।।२३।।
यही कोरा अज्ञान है, मानव कहना ईश ।
पंथों के पंजे पड़े, पूजते न जगदीश ।।२४।।
मेरे आत्मा मान तू, एक निरंजन नाथ ।
परम प्रिय श्री राम जो, सत्य-नाम शुभ पाथ ।।२५।।
तेरा राम अखण्ड है, नित्य एक सब काल ।
सत् चित् सुखमय समझिए, ऐसा देव दयाल ।।२६।।
विभूति श्री भगवान् की, भुवन चतुर्दश जान ।
भुवन-भर्ता भुवनेश को, सब से ऊँचा मान ।।२७।।
महिमा उस की लोक हैं, सोहें सर्व अनन्त ।
राम परम सुखकन्द है, रहित ही आदि अंत ।।२८।।
देश काल एक देश में, उस के कहे विशेष ।
देश काल से भी परे, है तव राम महेश ।।२६।।
प्रकटे जिस जन में हरि, कर दे उसे निहाल ।
परम प्रेम को दान कर, हो कर परम दयाल ।।३०।।

पूज पूज श्री राम को, मन मन्दिर में पूज ।
पूर्णमासी आयगी, हुई चाँदनी दूज ।।३१।।
तुझ में मेरे आत्मा, हरि का हुआ निवास ।
हरि, हरिजन कभी दूर न, हरिजन के हरि पास ।।३२।।
जो जन हरि के हो रहे, हरि की करते कार ।
योग क्षेम उन का सभी, करता हरि सम्भार ।।३३।।
मेरे अपने आप तू, हो जा हरि का दास ।
अर्पण कर सब कर्म को, उसे जान सुख-रास ।।३४।।
भज ले श्री भगवान् को, अवसर बीता जाय ।
नाम रत्न धन लूट ले, बीता हाथ न आय ।।३५।।

---

१२ आत्मिक भावनाएँ

१. सत्य भावना

आत्म भाव जगाइए, सिमर राम का नाम ।
भावना उच्च ध्याइए, चिन्तन कर गुणग्राम ।।१।।
तू है मेरे आत्मा, अविनाशी सद्भाव ।
तीन लोक त्रिकाल में, है तू सत्य स्वभाव ।।२।।
नित्य एक रस अमर तू, वर्जित सकल विकार ।
परिवर्तन परिणाम से, रहे सदा तू पार ।।३।।
अजर अमर अविछिन्न तू, तू है अमृत रूप ।
नाश काल से है परे, तेरा अचल सुरूप ।।४।।
मरण नहीं तेरा कभी, जन्म न जाना जाय ।
अजन्मा जग में फिरे, अविद्या बन्ध बसाय ।।५।।

वस्तु अनादि अनन्त तू, तत्त्व अखण्ड निरंश ।
सत्ता रूप तव भाव न, नहीं पतन का अंश ।।६।।
कोई वस्तु न जगत् में, तीन लोक में जान ।
जड़ चेतन जो भी कभी, कर दे तेरी हान ।।७।।
सदा सुधा सिंचित विमल, सत्ता नित्य प्रकाश ।
कारण कार्य रहित तू, आत्मा रहित विनाश ।।८।।
छेदन भेदन रहित तू, हनन जलन से दूर ।
सत्य शुद्ध तू आत्मा, है अमृत रसपूर ।।६।।
अपना होना समझ ले, सर्व काल निर्बाध ।
तेरे होने में रहें, अमृत-भाव अगाध ।।१०।।

२. ज्ञान भावना

ज्ञानरूप शुभ चेतना, है तू मेरे आप ।
तेजोमय ! तुझ में नहीं, तमोरूप अतिपाप ।।१।।
तू तो जगती जोत है, उज्ज्वल अति ज्वलन्त ।
तेरे निर्मल तेज का, नहीं कदापि अन्त ।।२।।
चमकते चारु चाँद तू, चित्त चन्द्रिकावान् ।
जान ज्योति निज रूप को, जो है विमल सुज्ञान ।।३।।
तू है चेतन एक रस, जगती ज्योति अखण्ड ।
बुझा सके तव जोत को, वायु नहीं प्रचण्ड ।।४।।
तू धूम्र से रहित है, तेजोमयी सुजोत ।
तेरे चेतन भाव से, बहे ज्ञान का सोत ।।५।।
आत्मा प्यारे परम हे, चेतन रूप महान् ।
तेरी सुसत्ता ज्ञान है, सत्य ज्योति ही मान ।।६।।

शुचि स्वतः प्रकाश है, निर्मल रहित कलंक ।
तेरे चेतन भाव में, नहीं तमोमय पंक ।।७।।
शशि सूर्य का चाँदना, द्योतक तारा लोक ।
ग्रहगण जाननहार तू, चेतन रूप अशोक ।।८।।
दीप्त दीपक देह का, बिना बत्ती बिन तेल ।
जगता ज्योति अखण्ड से, महा निराला खेल ।।६।।
सर्व धाम का चाँद तू, जो काया कहलाय ।
अंगों को दे चाँदना, ज्ञान किरण फैलाय ।।१०।।
सूर्य सम स्वरूप में, तू है रहित विकार ।
चिन्तन कर चिद्रूप हे, अपना आप विचार ।।११।।

३. सुख भावना

मेरे आत्मा जान ले, सुख सम्पत् का कोश ।
तेरा आत्म-भाव है, रहित द्वेष वा दोष ।।१।।
दुःख है माया संग से, राम संग आनन्द ।
लख ले अपने आप में, सर्व सुखों का कन्द ।।२।।
सुख स्वरूप में सुस्थिर, तू मेरे निज रूप ।
सत्ता तेरी में आत्मा, नहीं क्लेश की धूप ।।३।।
वृत्ति जगत् में दुःख है, देह जगत् में हान ।
निर्मल आत्म-भाव है, सर्व सुखों का स्थान ।।४।।
अमृत पद को पाय कर, अमृत रस का स्वाद ।
चख ले मेरे आप तू, सम हो रहित विषाद ।।५।।
शान्त भाव समता खरी, तुझ में रही समाय ।
तेरी सुचारु चेतना, रही सुधा बरसाय ।।६।।

चेतनता में रमण कर, मान मधुरता मोद ।
हो प्रसन्न सुभाव में, जो है शुद्ध सुबोध ।।७।।
पूर्णता का पद पकड़, पूर्णपन को पाय ।
पूर्ण सुखपद को समझ, पूर्ण भाव बसाय ।।८।।
तेरे में सब सुख बसें, पुष्प में यथा सुगन्ध ।
स्व सुख रस का स्वाद ले, कर सब तृष्णा मन्द ।।९।।
तेरा चेतन रूप है, परम सुखों का स्रोत ।
सागर सुधा अनन्त ही, वहाँ ओत है प्रोत ।।१०।।

४. शक्ति भावना

चित्त शक्ति स्वरूप तू, है बल का भण्डार ।
महा बली तू ही बना, राम नाम को धार ।।१।।
बहु विधि बन्धन कर्म के, काट भस्म कर डार ।
हो कर अपने आप में, समझ शक्ति का सार ।।२।।
छिन्न भिन्न सूर्य करे, जैसे भारे मेघ ।
कर्म-बन्ध ऐसे हरे, तेरा सुशक्ति वेग ।।३।।
तेरे बल सम्मुख कभी, खड़ा न होवे पाप ।
तेरी सुशक्ति ही हने, सभी शाप परिताप ।।४।।
सावधान हो सूरमे, सोते सिंह महान् ।
तज दे आलस नींद को, ले निज बल पहचान ।।५।।
बांके वीर सुहावने, पकड़ शक्ति का बाण ।
शत्रु दोष को नष्ट कर, कस कर भक्ति कमान ।।६।।
समता सुख संतोष शम, शांति दमन के संग ।
वैर द्वेष को कर हनन, तोड़ कलह के अंग ।।७।।

तेरे आत्मरूप में, रही सबलता राज ।
ओज सुतेज समर्थता, गुणगण रहे विराज ।।८।।
महाबली तू सार है, गौरव गुण का ठाम ।
दृढ़ता धैर्य शूरता, यश महिमा का धाम ।।६।।
अचल भाव में तू रहे, निश्चल मेरु समान ।
अभय, निडर स्वभाव तू, अमृत रूप सुज्ञान ।।१०।।

५. पवित्र भावना

आत्मा मेरे जान ले, पतित सुपावन एक ।
राम प्रभु जगदीश है, परम उसी की टेक ।।१।।
दोष मैल है मोह में, माया अविद्या बीच ।
कुटिल कर्म दुर्भाव में, और पाप के कीच ।।२।।
तेरे विमल सुरूप में, नहीं दोष की लाग ।
तेरे अपने आप में, नहीं पाप की आग ।।३।।
चमके चेतन चित्त में, चढ़ा शुचि चारु चन्द ।
सर्व कला पूर्ण लिये, किये दोष मल मन्द ।।४।।
सत्ता शुद्ध को समझ ले, पाय विचार विवेक ।
निर्मल पद को पाय कर, साध उपाय अनेक ।।५।।
तू पवित्र चैतन्य है, निर्मल ज्यों हिम नीर ।
केवल आत्म-भाव में, नहीं मलिनता पीर ।।६।।
चेतन चिट्टी चन्द्रिका, अपनी ले चमकाय ।
निज चिंतन कर चित्त में, शुद्ध भावना लाय ।।७।।
चर्म-चक्षु को मींच कर, चित्त-चक्षु से देख ।
अमल अचल निज रूप को, खींच ध्यान की रेख ।।८।।

ज्यों दूध से घृत करे, भिन्न तिलों से तेल ।
सुवर्ण रेत से न्यारिया, कण कण ज्यों ले मेल ।।६।।
तत्त्व सार ज्यों कुसुम से, खींचे कुशल अत्तार ।
पाँच तत्त्व से चेतना, ले तू आप निथार ।।१०।।

---

६. शान्त भावना

मेरे आत्मा समझ ले, शान्त धाम श्री राम ।
शुद्ध स्वसत्ता चेत कर, भज कर उसका नाम ।।१।।
शान्त रूप तू है सदा, स्वसत्ता से विचार ।
तेरे अपने आप में, नहीं विषम व्यौहार ।।२।।
तीन गुणों की विषमता, कार्य जगत् विकार ।
मायिक मोह मल अशांति, नहीं चित्त में धार ।।३।।
वास्तव में सुशांत है, सत्ता शुद्ध स्वभाव ।
तेरे चेतन तत्त्व में, विषम का है अभाव ।।४।।
मेरे चेतन रूप तू, है शम शांत अबाध ।
नित्य शुद्ध तव भाव में, समता शांति अगाध ।।५।।
अन्य वस्तु संसर्ग ही, विषय-जन्य संयोग ।
विषम करे वृत्ति जगत्, सम तू रहे अरोग ।।६।।
विषय वासना वात से, तुझ में विषम तरंग ।
दीखें गुण संयोग से, पर तू रहे असंग ।।७।।
पर को अपना आप कह, गुण निज में आरोप ।
मन में माने विषमता, है तू शांत अकोप ।।८।।
तेरी सुसत्ता में सदा, समता रहे अटूट ।
तेरे अस्ति सुरूप में, शमता बसे अखूट ।।६।।

विमल शांत स्वभाव तू, सदा एक रस साम ।
गुणातीत निज रूप में, विकार रहित निष्काम ।।१०।।

---

७. प्रिय भावना

परम प्रेम के धाम को, भज ले मेरे आप ।
राम राम के शब्द से, पा ले प्रेम मिलाप ।।१।।
प्रिय वस्तु तू परम है, अमल प्रेम का स्रोत ।
प्रिय रूप तेरा विमल, रहे एक रस जोत ।।२।।
सुन्दर शोभा रूप तू, सोहे तू सब काल ।
तेरे प्रेम विकास में, है सौन्दर्य विशाल ।।३।।
प्रियता जो मुख नयन में, सुन्दर सभी शरीर ।
तेरा प्रेम विकास है, समझ यही बन धीर ।।४।।
अन्य वस्तु जो है प्रिय, प्यारे तुझे महान् ।
परम प्रिय निज रूप के, प्रतिबिम्ब ही जान ।।५।।
तेरे सागर प्रेम से, वायु वासना-संग ।
दीखें बाहर उछलते, सुन्दर प्रिय तरंग ।।६।।
जिस में अपने प्रेम को, दे तू आप बसाय ।
प्रतिमा परम प्यार तू, मंदिर वह बन जाय ।।७।।
मनोमोहक जो सुमधुर, तुझ को वस्तु लुभाय ।
तेरी माधुरी मूर्ति, प्रेममयी झलकाय ।।८।।
सुन्दर सूर्य शोभते, प्रेम किरण संचार ।
तेरा सुप्रिय कर रहा, पर को सुन्दर सार ।।९।।
महा मधुर तू आप है, महा मोहक रमणीक ।
समझो सुन्दर रूप निज, प्रेम भाव कर ठीक ।।१०।।

अपने पन में प्रेम लख, स्वपद में कर प्यार ।
स्वसत्ता प्रियतम समझ, लख कर प्रेम अपार ।।११।।

---

८. सफल भावना

मेरे आत्मा मान ले, एक देव आधार ।
राम सुमंगलमय प्रभु, सब सिद्धि सुखकार ।।१।।
सफल मनोरथ आप तू, अहो ! मेरे चिद्रूप ।
सर्व सिद्धि जय रूप तू, अजय विजय स्वरूप ।।२।।
सत्य मनोरथ तू कहा, सत् संकल्प विशेष ।
सत्य काम सद्भाव तू, तू है सिद्धि अशेष ।।३।।
अमोघ मनोरथ आत्मा, तू ही माना जाय ।
तेरी उत्तम कामना, सर्व सफलता पाय ।।४।।
सच्चे तेरे सुकर्म हों, सच्चे रहें आचार ।
सच्चा सुनिश्चय हो सदा, हो सत्य व्यवहार ।।५।।
सच्ची सत्ता तेरी तभी, विकसे सफला होय ।
तेरे सच्चे विचार में, विघ्न न आवे कोय ।।६।।
सफलता तेरे संग है, ज्यों छाया तन साथ ।
पावे जय जावे जहाँ, सफल रहे तव हाथ ।।७।।
तू पूर्ण है आप में, तुझे परम संतोष ।
तू तृप्त निज रूप में, है तू वर्जित रोष ।।८।।
विमल चित्त सुचंद्र में, तेरे नहीं कलंक ।
निष्फलता का रत्ती भर, और असिद्धि पंक ।।६।।
तेरे मानस जगत् में, सिद्धि मनोरथ लाभ ।
शोभें पूर्णता लिये, सहित सफलता आभ ।।१०।।

---

६. मनोबल भावना

मेरे चेतन राज तू, भज ले राम महान् ।
मानस बल को लाभ कर, चिंतन कर भगवान् ।।१।।
भाव शुद्धि से तू सदा, है बली महावीर ।
तेरे मानस भाव से, होवे सबल शरीर ।।२।।
मन, नस नस को पुष्ट कर, पट्ठों में भरे सार ।
अंग अंग में शक्ति बन, मन ही ले अवतार ।।३।।
मन के जीते जीत है, मन हारे से हार ।
सारे सफल सुकर्म में, मन का है संचार ।।४।।
तेरे मानस वेग का, बल है सीमातीत ।
तेरी मानस शक्ति में, बसे विजय शुभ जीत ।।५।।
संशय, भ्रम, विकल्पना, तुझे नहीं भटकाय ।
आत्म-इच्छा सुशक्ति ही, सदा सफलता पाय ।।६।।
शुद्ध मनोरथ में सदा, सब सिद्धि करें वास ।
आत्म-मानस कामना, है सुख सम्पत् रास ।।७।।
महावीर तू हो रहा, इच्छा-शक्ति भण्डार ।
तेरा मानस बल परम, करे सिंधु गिरि पार ।।८।।
जो तू जागे धीर बन, बल मानस के साथ ।
बाधा विघ्न विपत्ति में, रहे सबल तव हाथ ।।९।।
तेरी मानस शक्ति में, सब बल रहे समाय ।
तेरी सुसत्ता चेतना, बलरूपा कहलाय ।।१०।।

१०. वैद्युत भावना

मानस मन्दिर मे सदा, मेरे चेतन आप ।
मंगलमय श्री राम का, जप ले उत्तम जाप ।।१।।
तू तो विद्युत् कोश है, ओ ! मेरे निज रूप ।
प्र-भावित सब को करे, हो सुतेज स्वरूप ।।२।।
विद्युत् तेरी कर रही, सभी दिश में विस्तार ।
वैद्युत तरल तरंग हैं, तेरे विमल विचार ।।३।।
आत्म-विद्युत् से सदा, रहता तू भरपूर ।
बिजली मानस शक्ति तव, बहती ज्यों जलपूर ।।४।।
सब को वैद्युत-भाव से, है तू रहा लुभाय ।
तेरे मोहक कर्म से, जन मोहित हो जाय ।।५।।
तू आकर्षण रूप है, आत्मगत अयस्कान्त ।
आकर्षण अति शक्ति तव, है प्रबल शुभ शान्त ।।६।।
तू आकर्षण-पिण्ड है, वैद्युत बल का कोश ।
क्रिया वचन सुनयन तव, पर को दें सन्तोष ।।७।।
तव आकर्षक शक्ति शुभ, पर को ले अपनाय ।
मधुर सुमूर्ति मोहिनी, जन-मन मुग्ध बनाय ।।८।।
मधुर मिलाप अलाप तव, संगति कर्म कलाप ।
आकर्षित कर शान्ति भरें, सब जन में चुपचाप ।।९।।
मेरे मोहन आत्मन्, तेरा तू शुचि ज्ञान ।
आकर्षण सु-केन्द्र है, विद्युत्-बल का स्थान ।।१०।।

---

११. अनन्त भावना

अनन्त चेतन चमकता, है तेरे सब ओर ।
मेरे आत्म-रूप हे, सर्व दिशा सब ठौर ।।१।।
सूर्य ज्योति अनन्त ही, तेरे रहे समीप ।
तू उस में है शोभता, उज्ज्वल सुन्दर दीप ।।२।।
सागर सुख आनन्द का, अमीरस मय असीम ।
सुधा सुसिंचित कर रहा, तेरे मन की सीम ।।३।।
सत्ता सर्व आधार जो, पाल रही सब काल ।
तेरे आत्म-तत्त्व को, कर के परम निहाल ।।४।।
अनन्त प्रेम ही सुमधुर, रहा तुझे है खींच ।
अपने प्रेम तरंग से, रहा तुझे है सींच ।।५।।
उत्तम शक्ति अनन्त ही, रही तुझे है थाम ।
वही सहारा जान ले, सर्व घड़ी सब याम ।।६।।
महा-शक्ति तुझ में भरे, परम शक्ति का धाम ।
अनन्त चेतनामय प्रभु, शक्तिमान् श्री राम ।।७।।
दया अनन्त असीम ही, उमड़े तेरे पास ।
शान्त सुमंगल कारिणी, शक्ति-मयी सुखरास ।।८।।
जीवन परम अनन्त ही, रहा सर्व दिश छाय ।
अमृतमय है कर रहा, अमृत पद दिखलाय ।।६।।
शीतल छाया शान्ति-कर, सुख शम-मयी प्यार ।
शान्त मग्न तोहे करे, दे कर पावन प्यार ।।१०।।

---

१२. अहं भावना

मैं तो आत्मभाव हूँ, रहित विकार विनाश ।
जीवित जाग्रत चेतना, चित्त सुज्ञान विकाश ।।१।।
मैं दीपक हूँ दिव्य ही, जग को जाननहार ।
मेरे आत्म-ज्ञान का, है विस्तृत विस्तार ।।२।।
नित्य शुद्ध चैतन्य हूँ, उज्ज्वल ज्योतिर्मान ।
मेरे आत्म-भाव में, कभी न आवे हान ।।३।।
मेरे शुद्ध सुरूप में, नहीं पाप की मैल ।
मेरी निर्मल चेतना, रही देह में फैल ।।४।।
कारण कार्य रहित हूँ, चयोपचय से पार ।
मुझ में नाश उत्पत्ति न, नहीं परिणति विकार ।।५।।
मैं शक्ति का केन्द्र हूँ, ओज तेज बलवान् ।
मेरा आत्म-तत्त्व ही, है सुख सिद्धि निधान ।।६।।
लोह पिण्ड में आग ज्यों, पुष्प में ज्यों सुवास ।
वायु बोतल में रमे, तन में त्यों मम वास ।।७।।
दधि में घी जैसे रहे, तिल में जैसे तेल ।
ऐसे तन में हो रहा, मेरा मधुर सुमेल ।।८।।
विद्युत्-धार सुतार में, यथा बत्ती में तेज ।
देह में त्यों निवास मम, जो है मेरी सेज ।।९।।
तन में ऐसे मैं रहूँ, ज्यों मन्दिर में दीप ।
मश्क में वायु ज्यों रहे, मोती बीच सुसीप ।।१०।।
कोश में विद्युत् ज्यों रहे, घोंसले बीच विहंग ।
ऐसे तन में मैं रहूँ, वास्तव रूप असंग ।।११।।

जन्म मरण तन में कहा, मैं हूँ वर्जित काल ।
आत्म-जीवन ज्योति मम, रहे अमर त्रिकाल ।।१२।।
सूर्य होवे जब जहाँ, होवे वहाँ न रात ।
ऐसे होऊँ मैं जहाँ, वहीं जीवन सुप्रात ।।१३।।
तेज न होना रात है, बिन भानु अन्धकार ।
अनुपस्थिति मेरी तथा, मृत्यु नाम विचार ।।१४।।
जिस कोठड़ी में दीप हो, वहीं चाँदना होय ।
विद्यमानता मम जहाँ, जीवन होवे सोय ।।१५।।
जिस की जहां हि उपस्थिति, वहीं उसी का भाव ।
न होना किसी स्थान में, उस का वहाँ अभाव ।।१६।।
जहाँ न होऊँ मैं जभी, वहाँ कहाय काल ।
मेरे होने में सदा, जीवन रहे विशाल ।।१७।।
घर परिवर्तन सम कहे, बदलन वस्त्र समान ।
जन्म मरण दो नाम ये, मैं हूँ अमर महान् ।।१८।।
स्थानान्तर जाना यथा, मरना नहीं कहाय ।
मेरा गमनागमन भी, तद्वत् समझा जाय ।।१६।।
स्वप्न सुषुप्ति जागना, जरा युवा भी बाल ।
तन पर अवस्था ये फिरें, मैं एक त्रयकाल ।।२०।।
देही जैसे एक है, अवस्था बनें अनेक ।
जन्म मरण अनेक का, मैं साक्षी हूँ एक ।।२१।।
जैसे कपड़े बदलते, देह न बदली जाय ।
बदलते अवस्था भी त्यों, जीव नहीं बदलाय ।।२२।।
अवस्था सब में एक रस, अहं साक्षी अखण्ड ।
मेरे आत्म-भाव में, नहीं काल का काण्ड ।।२३।।

बन्धन में बदले न मैं, छोड़े नहीं सद्भाव ।
बालू में सोना मिला, तजे नहीं स्वभाव ।।२४।।
मैं अविनाशी आत्मा, अमृत सत्ता निरंश ।
मेरे चेतन-तत्त्व में, नहीं युगान्तर अंश ।।२५।।
कर्म बन्ध को काटना, पाप मैल को धोय ।
मेरे वश की बात है, संशय यहाँ न होय ।।२६।।
राम नाम को पकड़ कर, मैं हूँ निर्भय आज ।
मेरे आत्म-ज्ञान में, रहे सभी सुख राज ।।२७।।
देह तीन माने गये, कारण सूक्ष्म स्थूल ।
देही चेतन रूप मैं, हूँ जीवन का मूल ।।२८।।
पाँच कोश से ही ढकी, मेरी ज्योति अमन्द ।
बुझे नहीं त्रिकाल में, कभी न होवे बन्द ।।२६।।
पाँच तत्त्व से अति घिरी, मैं मेरी निराकार ।
सदा शुद्ध स्व-सत्ता में, बनी रहे शुभ सार ।।३०।।
कर्म-कोट में वास कर, अहं भाव अति-धीर ।
सत्ता में स्वतन्त्र है, अति बलि महावीर ।।३१।।
कोटि कर्म के केतु मिल, मेरा सुचित्त चन्द ।
माया छाया से कभी, सकें नहीं कर मन्द ।।३२।।
आँधी कुटिल कुकर्म की, पातक धूल उड़ाय ।
मेरी मैं के चाँद को, सकती नहीं छुपाय ।।३३।।
वासना बादल अति घिर, बने बहु घटा-टोप ।
मेरे मैं के भानु को, सकें नहीं कर लोप ।।३४।।
अहं सिंह मेरा सदा, वीर-भाव गर्जाय ।
कुसंस्कार सियार को, क्षण में दे कम्पाय ।।३५।।

अहं-भाव मेरा विमल, जभी निखरे निष्पाप ।
चमके चौगुना चांदवत्, लख कर अपना आप ।।३६।।
अहं भावना ज्योति जग, नाशे सकल अज्ञान ।
मेरा आत्म-तत्त्व है, सर्व सुखों की खान ।।३७।।
'मैं' मोहक है अति मधुर, अतिशय विमल विशेष ।
मेरी मैं में ही बसें, सुख सम्पत्ति अशेष ।।३८।।
राम राम सुमंत्र से, कर्म दिये सब कील ।
राम राम के पाठ ने, पाप दिये सब पील ।।३६।।
राम नाम के जाप ने, मैं को दिया जगाय ।
अहं भावना शुद्ध ने, अमृत दिया पिलाय ।।४०।।
साधो ! अब मैं हो गया, नाम सुधा कर पान ।
रहित कर्म के बन्ध से, चेतन शुद्ध सुज्ञान ।।४१।।

नारायण धर्म

यम

नृगण का अयन प्रभु, नारायण भगवान् ।
सूक्ष्म कारण जगत् का, आश्रय वह महान् ।।१।।
उस का प्रेरित जो धर्म, जो उस का आदेश ।
वह नारायण धर्म है, नाशक सारे क्लेश ।।२।।
उसी धर्म को मैं कहूँ, सहित सार विस्तार ।
यही वैदिक धर्म है, करता जन्म से पार ।।३।।
संयम साधन यम कहे, उत्तम आगम ग्रन्थ ।
आत्मा के कल्याण के, हैं ये पावन पन्थ ।।४।।

अहिंसा सत्य अस्तेय हि, ब्रह्मचर्य गुणखान ।
अपरिग्रह ही पांचवां, ये पांचों यम जान ।।५।।
अहिंसा वैर त्याग है, करे नहीं अपराध ।
निरपराधी मार कर, लेना नहीं उपाधि ।।६।।
मन वचन और कर्म से, तजना वृथा द्वेष ।
बिना अपराध दीन को, देना कभी न क्लेश ।।७।।
सताना निर्बल न कभी, अबला बाल अनाथ ।
निस्सहाय जन दीन का, मन से देना साथ ।।८।।
अकाल पीड़ा के समय, महा रोग के काल ।
दे सहायता दान से, यम यह लेवे पाल ।।६।।
कूप सरोवर वाटिका, धर्म-शाल चौपाड़ ।
रचना अहिंसा धर्म है, पाप ताप की बाढ़ ।।१०।।।
सदावर्त का खोलना, भूखे जन के काज ।
अधिकारी को पालिए, सेवे मनुज समाज ।।११।।
यही अहिंसा धर्म है, अन्य पन्थ की बात ।
कर्म योग को त्याग कर, पन्थ करें उत्पात ।।१२।।
हरिजन को हरि ने दिया, सुगम कर्म का योग ।
दीन हीन को पालना, और हटाने रोग ।।१३।।
परम प्रीति से राधना, प्रभु परम आधार ।
अपनी हिंसा टारना, यही धर्म का सार ।।१४।।
अपना आत्मा मारना, अन्ध मतों में जाय ।
झूठे निश्चय पन्थ में, देना राम भुलाय ।।१५।।
मिथ्या नास्तिकवाद में, आत्म-हिंसा जान ।
निश्चय श्रद्धा प्रेम में, आत्म-दया हि मान ।।१६।।

परम देव की देन है, दया दान संतोष ।
भक्ति सुश्रद्धा प्रेम से, पाना पदवी मोक्ष ।।१७।।
सत्य वचन को यम कहा, कहे यथा हो ज्ञान ।
झूठा वचन न कीजिए, सत्य धर्म सुविधान ।।१८।।
मन काया शुभ वचन से, सत्य सुपालन होय ।
जैसा जाने वह कहे, सत्य कहावे सोय ।।१६।।
मन में रख कर भिन्नता, कहे कपट से और ।
मिथ्या-भाषी वही कहा, उस की साख न ठौर ।।२०।।
द्रोह, धोखा अधर्म है, बहुत नीच है काम ।
द्रोही, घातक पतित का, कौड़ी पड़े न दाम ।।२१।।
मिथ्या साक्षी न दीजिए, धर्म-सभा दरबार ।
धर्म न छोड़े सत्य जो, तन धन देवे वार ।।२२।।
आपत्काल अपवाद को, कर्म सामायिक मान ।
धर्म देश जातीय हित, उस में लक्ष्य विधान ।।२३।।
सर्व सत्य का सत्य है, परमेश्वर अरूप ।
आश्रय सारे जगत् का, परम सत्य स्वरूप ।।२४।।
सर्व सत्य उस ईश को, भजिए, तजिए पाप ।
सिमरो अहर्निश प्रेम से, जपिए माला जाप ।।२५।।
सत्य नाम श्री राम है, सत्य धाम सत् लोक ।
जान सियाने सत्य यह, अन्य कर्म सब फोक ।।२६।।
चोरी करना पाप है, है कायर का काम ।
पर पूँजी को मारना, मरना यम के धाम ।।२७।।
धोखा छल बल कर्म से, कपट कला से चोर ।
हरते पर धन रात दिन, भूल धर्म की ओर ।।२८।।

स्वत्व पर का मारना, चौर कर्म कहलाय ।
हेर फेर व्यापार में, चोरी समझी जाय ।।२६।।
देना न अन्य वस्तु को, लड़ना जा दरबार ।
झूठ बनाना सत्य को, पाप कर्म है मार ।।३०।।
सच्चे सज्जन सन्त से, रखना वैर विरोध ।
तजना पक्ष में सत्य को, यह चोरी भी शोध ।।३१।।
छुपाना सच्ची बात को, पक्षपात में आय ।
कहना करना अन्यथा, चोरी कर्म कहाय ।।३२।।
करे अर्थ को खींच से, ग्रन्थ का मत अनुकूल ।
आत्म-चोरी यह कही, सब पापों का मूल ।।३३।।
खींचा-तान न कीजिए, ग्रन्थों को यों खोल ।
मत के वाद विवाद में, भरी पड़ी है पोल ।।३४।।
करना सुपुष्टि पन्थ की, झूठे अर्थ बनाय ।
ऐसे जन ने जानिए, आत्मा दिया चुराय ।।३५।।
सज्जन सीधे सरल जन, छल बल से हो पार ।
करें कमाई कर्म से, चोर कर्म को टार ।।३६।।
पुरूषार्थ से खाइए, रूखी सूखी आध ।
चिकनी चुपड़ी पाप से, है खाना अपराध ।।३७।।
चने चबा कर ही रहे, चोरी करे न भूल ।
माल पराया मारना, माने तीखी शूल ।।३८।।
मिथ्या पन्थ को मानना, हरि की चोरी जान ।
जग की चोरी अन्य सब, सन्तों करी बखान ।।३६।।
ब्रह्मचर्य चौथा यम, जिस को पालें लोग ।
कुमार काल में सुयुवक, यह साध हरें रोग ।।४०।।

भक्त लोग गृहस्थ जन, करते इस का ध्यान ।
रहें मर्यादा में सदा, देह रक्षा को मान ।।४१।।
योगी यति जन संयमी, सती गुणिवर सुशील ।
संयम में रहते सभी, लेते वृत्ति कील ।।४२।।
युवक काल में कीजिये, काया पुष्ट विशेष ।
मादक द्रव्य त्याग कर, तज कुव्यसन अशेष ।।४३।।
पुष्टि धाम व्यायाम कर, संगति दुष्ट निवार ।
पढ़ना तज उपन्यास का, सुव्रत लेवे धार ।।४४।।
खाना अति कटु उष्ण का, खट्टा बहुत दे छोड़ ।
कुसंस्कार कुविचार से, मन अपना ले मोड़ ।।४५।।
ब्रह्मचर्य पालें शुभ, युवक नियम को पाल ।
खान पान कर नियम में, कर सुनियम में चाल ।।४६।।
संयम में रह नारी नर, सभ्य गृहस्थी लोक ।
ब्रह्मचर्य को पाल कर, हरें वंश के शोक ।।४७।।
कामी वे जन जानिए, पढ़ें पोथियां कोक ।
काम ग्रन्थ कुपन्थ के, महा मलिन हैं फोक ।।४८।।
व्यभिचारी वही कहे, जो आसन से आप ।
सेवन वाजीकरण कर, करते पातक पाप ।।४६।।
औषध से उत्तेजना, होती बहु विपरीत ।
सामर्थ्य शक्ति मानुषी, खोती यही कुरीत ।।५०।।
वाजीकरण कुकोक से, सन्तति हो बिन जोड़ ।
कुलनाशक अपकर्म-रत, कुलकाया पर कोढ़ ।।५१।।
गृहस्थी का सुधर्म है, रहे नियम को साध ।
पत्नी पतिव्रत पाल कर, तजे अन्य अपराध ।।५२।।

जो जन रहते नियम में, तज दुष्ट व्यभिचार ।
ब्रह्म-चारी वे कहे, रखते शुभ आचार ।।५३।।
ब्रह्मचर्य सच्चा कहा, गृही धर्म विधान ।
अन्य सभी ही कल्पना, पन्थों की पहचान ।।५४।।
ऋषि मुनि प्रायः गृही थे, महर्षि सन्त सुजान ।
महाराजे सुधनिक जन, होते सिद्ध महान् ।।५५।।
परमात्मा को सिमरिए, है जो सब का ईश ।
व्रत ब्रह्म का है पति, है प्रभु धर्माधीश ।।५६।।
हो कृपा उस की यदि, अणुमात्र ज्यों रेख ।
होवे बेड़ा पार तब, बनें कुलेख सुलेख ।।५७।।
यम अपरिग्रह पाँचवाँ, करना न महा लोभ ।
स्वार्थ परता छोड़ कर, रहना सदा अक्षोभ ।।५८।।
सम्पदा संचय कपट से, कर मिथ्या व्यौहार ।
करे नहीं मन वचन से, कर्म से कुव्यापार ।।५९।।
धन-संग्रह को त्यागना, दीन धर्म के काज ।
पंचम यम की साधना, कही सन्त मुनिराज ।।६०।।
धन से दीनोद्धार कर, दुखिया के दुःख टाल ।
सज्जन गुरु जन पूज कर, सुयम लीजिए पाल ।।६१।।
धर्म अर्थ कर दान ही, गाय भूमि धन धान ।
धर्म-स्थान जन हेत रच, यम का पालन जान ।।६२।।
भगवद् अर्पण वस्तु कर, जान उसी का दान ।
भरोसा रख भगवान् पर, यम साधन सुविधान ।।६३।।
त्यागी वह जन मानिए, जो त्यागे निज मान ।
हीन दीन जन हेत ही, तन धन दे बलिदान ।।६४।।

मनसा वाचा कर्मणा, राम समर्पित जोय ।
कोटिपति हो कुबेर वा, है त्यागी जन सोय ।।६५।।
राम आश्रय छोड़ दे, अपना आप सुवीर ।
नाम राधना कर्म में, रत हो जा बन धीर ।।६६।।

नियम

नियम पाँच वर्णन किए, शौच तोष तप जान ।
सदा स्वाध्याय कीजिए, प्रणिधान गुणखान ।।१।।
मन को करिए शुद्ध ही, दया प्रेम उर धार ।
हित चिन्तन जन देश का, कर के शुद्ध विचार ।।२।।
जप रसना मन से करे, भक्ति भाव ले सार ।
सेवा-धर्म सुसाधिए, काया से उप-कार ।।३।।
मृतका जल से शोधिए, हाथ पांव को धोय ।
स्नान से शुद्धि जानिए, भानु वायु से होय ।।४।।
वस्त्र धारे स्वच्छ ही, धुले शुद्ध बिन मैल ।
शौच नियम को पालिए, बनिए नहीं कुचैल ।।५।।
घर आंगन को शोधिए, लीप पोत सुबुहार ।
सुथरे स्वच्छ सुहावने, रक्खें कोठरी द्वार ।।६।।
सभ्य सुसाधु वेश से, रहिए रख कर आन ।
शौच भीतर बाहर की, इसी नियम में जान ।।७।।
कर सन्तोष उद्योग से, काम काज कर जोय ।
पुरुषार्थ बहु यत्न से, जो कुछ प्राप्त होय ।।८।।
अपने ही शुभ कर्म से, अल्प बहुत जो आय ।
उसी में सन्तुष्टि करे, अधिक नहीं ललचाय ।।६।।

राम भरोसा धार ले, लिए विश्वास अटूट ।
अक्षय वही भण्डार है, उस का कोश अखूट ।।१०।।
सन्तोषी को राम दे, सामग्री अन्न पान ।
जन अनन्य को राम दे, सभी रत्न धन धान ।।११।।
अन्न है मेरे राम का, मैं मांगूँ क्यों भीख ।
गुड़ को तरसे मूढ़ जन, जिस के खेत में ईख ।।१२।।
चिन्तामणि मन में बसे, राम नाम यदि एक ।
टोटा घाटा हो नहीं, सम्पत् मिलें अनेक ।।१३।।
मेरा धन तो नाम है, शब्द मनोहर तान ।
अनहद वाणी माधुरी, परम प्रेम की खान ।।१४।।
तप सुनियम को साधिए, काया से कर काम ।
हित सेवा जन अन्य की, कर के हरि के नाम ।।१५।।
दीन दुःखी पर कर दया, करिए नहीं अन्याय ।
बिन अपराध न ताड़िए, क्रूर-कर्म मन लाय ।।१६।।
भूख तृषा न देखिए, शीत उष्ण दिन रात ।
सेवा पर-उपकार में, सूखा हो बरसात ।।१७।।
मात-पिता गुरु सुजन को, पूजे दे सन्मान ।
कायिक तप यह समझिए, जिस का बहुत विधान ।।१८।।
जपे जीभ से शब्द को, पढ़े धर्म का पाठ ।
स्तुति विनय भगवान् की, तपोमय सच्चा ठाठ ।।१९।।
सत्य वचन को कीजिए, प्रण प्रतिज्ञा पाल ।
हित मित सुमृदु बोलिए, वाचक तप सुविशाल ।।२०।।
वाणी का तप यह कहा, पाप निवारण हार ।
ऐसे तप से भक्त जन, पाते पाप से पार ।।२१।।

मन में मधुर प्रसन्नता, सरल शुद्ध हों भाव ।
भला भद्र सब का बसे, उत्तम सेवा चाव ।।२२।।
हित चाहे प्रत्येक का, भीतर लाय न खोट ।
द्रोह ईर्ष्या द्वेष से, करे न भारी पोट ।।२३।।
निर्मलता से चित्त में, हरि का चिन्तन जाप ।
मानस तप यह जानिए, हरे पाप सन्ताप ।।२४।।
स्वाध्याय शुभ नियम है, चौथा करना पाठ ।
पढ़ना उत्तम ग्रन्थ का, जान धर्म का ठाठ ।।२५।।
जपना राम सुनाम को, मन माला ले हाथ ।
माला मोती बन गई, दे मुझे मुक्ति पाथ ।।२६।।
धर्म ग्रन्थ के पाठ का, करिए बहुत विचार ।
स्वाध्याय व्रत पालिए, मन में निश्चय धार ।।२७।।
प्रणिधान भगवान् का, पंचम नियम सुयोग ।
राम नाम को राधना, सहज साधना योग ।।२८।।
अतिशय सुभक्ति राम की, प्रणिधान ही मान ।
परम भरोसा राम का, इस का अर्थ महान् ।।२६।।
महर्षि-जन यों कह गये, सन्त भक्त गुणवन्त ।
भक्ति से प्रभु सिमरिए, हो कर शुचि मतिमन्त ।।३०।।
वाचक राम सुनाम है, है वाच्य हरि आप ।
वाचक में मिलता प्रभु, हर कर सारे पाप ।।३१।।
वाच्य वाचक भेद जो, जन जाने सुविचार ।
सो समझे उस शब्द को, है जिस का संसार ।।३२।।
पर ब्रह्म नामी कहा, शब्द ब्रह्म सुनाम ।
नामी नाम अभिन्न हैं, देहात्मा सम साम ।।३३।।

अन्तर नामी नाम में, है न राई समान ।
नामी ध्याओ लगन से, पा कर शब्द सुज्ञान ।।३४।।
पकड़ नाम के तार को, चढ़िए पद निराकार ।
राम नाम को ध्याइये, सच्चा समझ के सार ।।३५।।
जो जपते हैं नाम को, पाय शब्द सुखकार ।
अनुग्रह देव दयाल की, उन को करती पार ।।३६।।
भक्तो, भजिए नाम को, भाव भक्ति में आय ।
आत्म-ज्ञान का है यह, उत्तम परम उपाय ।।३७।।
दर्शन देवाधिदेव के, होते विघ्न विनाश ।
प्रणिधान श्री राम का, करता बहुत विकाश ।।३८।।
चिदाकाश में चमकते, तारागण सह जोत ।
दीखें सिद्ध सुसन्तवर, खुलें शब्द के स्रोत ।।३६।।
मार्ग यह है मर्म का, मन-मुखी जन न पाय ।
गुरु मुख साधे नाम को, भीतर से धुन लाय ।।४०।।
कृपा अकारण हो तब, जब सिमरे भगवान् ।
मात-पिता सब जगत् का, नाम सुसाधित मान ।।४१।।
वह देवे निज नाम को, हो कर परम दयाल ।
राम भक्त सब जगत् में, होते सदा निहाल ।।४२।।
सन्तों का आधार है, प्रणिधान बलवान् ।
आश्रय भक्तों का सदा, राधन नाम निधान ।।४३।।
तरे नाम से बहुत ही, पापी जन भी रंक ।
नाम नाव को पकड़ कर, पावे पार निश्शंक ।।४४।।
नाम नाम में भेद है, भेदी भ्रान्ति भगाय ।
देवे मार्ग सरलतर, करुणा भाव बसाय ।।४५।।

देव कृपा करुणा जब, होवे उपजे नाम ।
महा मधुर मंगल परम, परम प्रिय श्री राम ।।४६।।
नामी देवे नाम जब, जन उतरे भव पार ।
नाम रत्न अमूल्य पा, जावे जन्म सुधार ।।४७।।
वारे जाऊँ भक्त के, जिसे भरोसा राम ।
मन-मुख में रख नाम को, करे कर्म से काम ।।४८।।

निष्काम कर्म

नारायण नर नारि का, है निर्मल शुभ धाम ।
उस के अर्पित कर्म जो, वही कर्म निष्काम ।।१।।
सब से ऊँचा धाम जो, पावन पद अभिराम ।
प्रभु आदित्य वर्ण है, सन्तों का श्री राम ।।२।।
उस से उतरे प्रेरणा, आशीर्वाद सुनाद ।
वह पद अमृत रूप है, उस में नहीं विषाद ।।३।।
ऋषि मुनि थे जानते, उस की लीला देख ।
समझा सन्तों ने उसे, ऐसे मिलते लेख ।।४।।
नियति सर्व संसार में, जान नियति फल भोग ।
मरना जीना नियति में, अति संयोग वियोग ।।५।।
नियन्ता नारायण हरि, उस की पूर्ण रेख ।
उस के नियम विधान में, होवे मीन न मेख ।।६।।
सारे कर्म के ही फल, जो देवे कर न्याय ।
अपने सुनियति नियम से, वही कर्ता कहलाय ।।७।।
उसी की इच्छा सर्व में, करे प्रेरणा आप ।
चलना इच्छा उस की में, जानो कर्म अपाप ।।८।।

जैसे तेज तरंग में, बनते नाना रंग ।
आपस ही की काट से, तथा कामना ढंग ।।६।।
तेजोमय की इच्छा का, बहता विमल बहाव ।
जैवी कल्पना कामना, रचती कर्म बनाव ।।१०।।
विद्युत् तो सम शक्ति है, जग में रही समाय ।
पड़ी कोश के बन्ध में, नाना खेल बनाय ।।११।।
रामेच्छा सम शान्त है, जैवी विषम कहाय ।
राग-द्वेष में ही मिली, विषम ही बनती जाय ।।१२।।
सकाम कामना विषम हि, सम है शुद्ध निष्काम ।
इच्छा समता में रहे, रमे जो मन में राम ।।१३।।
दोष मैल हरि में नहीं, इच्छा दैवी अदोष ।
मानुषी इच्छा हो मलिन, सहित दोष सह रोष ।।१४।।
दैवी अवस्था पाइए, मन में समता लाय ।
साधिए शुभ निष्कामता, अनुभव रहा बताय ।।१५।।
हरि की इच्छा में रहे, करे कर्म हित-धार ।
दान दया शुभ कर्म ही, सेवा हित उपकार ।।१६।।
कर्म कहे जो वर्ण के, जन-हितकर सुखरूप ।
उन को करिए ध्यान से, गिनिए शीत न धूप ।।१७।।
गृह-कर्म व्यवहार जो, करिए लगन लगाय ।
फल का भरोसा ईश पर, रखिए निश्चय पाय ।।१८।।
लाभ-हानि जय ही विजय, सम कर मान अमान ।
करे कर्म आराधना, यह पूजन भगवान् ।।१६।।
भगवद् भाना मान कर, सहिए सुख दुःख दोय ।
निष्काम कर्म सुधर्म के, चिन्ह जानिए सोय ।।२०।।

मनसा वाचा कर्मणा, करिए उस की कार ।
फल इच्छामयी कामना, मन से सर्व निवार ।।२१।।
अर्पण करना सर्व ही, ईश चरण में आप ।
अपने ज्ञान विचार को, अपना कर्म कलाप ।।२२।।
आशा रखनी देव की, तज भ्रामक मत टेक ।
सर्व व्यापी समझना, पूर्ण ज्ञानी एक ।।२३।।
शुभ में उस की प्रेरणा, फल भी उस की देन ।
श्रद्धा प्रेम विश्वास भी, जान उसी की सैन ।।२४।।
वही नियन्ता जगत् का, सुन्न वही है स्थान ।
महासुन्न भी है वही, वही अगम्य महान् ।।२५।।
लीला उस की जगत् है, महिमा कही अनंत ।
ऐसी रखते धारणा, महर्षि मुनिवर संत ।।२६।।
रमना उसके खेल में, उस का जान विधान ।
अहंभाव को दमन कर, उस की लीला मान ।।२७।।
कर्म योग यह भक्तिमय, यही समर्पण ज्ञान ।
निष्काम कर्म सुमर्म यह, धर्म नारायण जान ।।२८।।

चार वर्ण

धर्म नारायण में लख, चारों वर्ण विभाग ।
कर्म धर्म प्रबन्ध के, हैं सामाजिक भाग ।।१।।
वेदवित् ब्राह्मण कहा, दे ज्ञान करे दान ।
यजन करावे धर्म से, दे उपदेश महान् ।।२।।
राग-द्वेष को त्याग कर, करे धर्म-प्रचार ।
स्वार्थपरता छोड़ कर, जन का करे सुधार ।।३।।

विद्या की वृद्धि करे, धर्म-शास्त्र विस्तार ।
ऐसे सज्जन सभ्य को, ब्राह्मण कहा पुकार ।।४।।
क्षत्रिय का शुभ कर्म है, दान ज्ञान बलवीर ।
होना पालक सूरमा, न्याय शील अतिधीर ।।५।।
तेज ओज का धाम हो, बुद्धि सुमति भण्डार ।
निर्भय योद्धा धर्म-धर, नीति निपुण शुभकार ।।६।।
पालना भूमि की करे, हो रहे भूमिवान् ।
भूपति जन शुभ वीर है, ऐसा वेद विधान ।।७।।
साम दाम शुभ दंड से, भेद से अरि संहार ।
करे तुरन्त सुनीति से, कभी न पावे हार ।।८।।
व्यापारी सुवैश्य है, करे कृषि व्यौहार ।
भेड़ बकरियां पाल कर, गाय दूध व्यापार ।।९।।
सीखे सुविद्या ज्ञान को, करे सदा शुभ दान ।
सामाजिक यह धर्म है, मानते सब विद्वान् ।।१०।।
परिश्रमी का धर्म है, पालन सब जन लोक ।
करे परिश्रम घोरतर, सीखना विद्या अशोक ।।११।।
शूरवीर होना सदा, जाति देश के हेत ।
सेवा करना प्रेम से, पालन करने खेत ।।१२।।
कुशल कला के कर्म में, करे वस्तु निर्माण ।
चित्रकला में चतुर जन, शूद्र किया बखान ।।१३।।
शूद्र शब्द का अर्थ है, श्रम करे जो धाय ।
दौड़ धूप कर काम में, देवे शोक भगाय ।।१४।।
लहू पसीना एक कर, करे कमाई जोय ।
परिश्रमी सेवक भला, शूद्र जन है सोय ।।१५।।

शूद्र कहना नीच है, नीच भाव है बात ।
खींच तान का अर्थ है, केवल कहा उत्पात ।।१६।।
सभी राम के पूत हैं, है वही महाराज ।
अपने जन के वह प्रभु, सदा संवारे काज ।।१७।।
ऊँच नीच जन एक हैं, जानो उस के पास ।
जो जन सज्जन भक्त हैं, उन में उस का वास ।।१८।।
ऊँच नीच के कर्म की, कथनी सभी अमूल ।
कर्म बताना नीच है, यह भारी है भूल ।।१६।।
उपयोगी सब कर्म हैं, बन कर करे अदीन ।
देश जाति इन के बिना, हो जाते अतिहीन ।।२०।।
कर्म आवश्यक शुभ लख, ऊँच नीच हठ छोड़ ।
आत्मा सम ही जान ले, भ्रम तालिका तोड़ ।।२१।।
जन हैं मेरे राम के, चार वर्ण के लोग ।
उत्तम सब के कर्म हैं, भेद भाव है रोग ।।२२।।
साधारण जो धर्म है, वह है सब में एक ।
वही मोक्ष का धर्म है, लौकिक धर्म अनेक ।।२३।।
वर्ण धर्म है जाति का, है प्रबंध विधान ।
नैतिक कर्म विभाग यह, सामाजिक ही जान ।।२४।।
धृति सत्य संतोषता, कृपा क्षमा विश्वास ।
दान दया सहृदयता, शम दम ज्ञानाभ्यास ।।२५।।
श्रद्धा निश्चय धारणा, भक्ति विचार विवेक ।
आत्म-तत्त्व विचारना, कर अन्वय व्यतिरेक ।।२६।।
करना पर उपकार का, सेवा परहित साध ।
जाप ध्यान शुभ ज्ञान से, लेना हरि आराध ।।२७।।

यह साधारण धर्म है, मोक्ष धर्म सुख खान ।
स्मृति आदि ग्रन्थ में, हैं इस के व्याख्यान ।।२८।।
सब म सम ह धम यह, नहा वण का आन ।
ईश-पूत हैं जन सभी, करो नहीं अभिमान ।।२६।।
हाड मांस में एकता, एक सा मज्जा जाल ।
आत्मा सब में एक सा, मढ़ी एक सी खाल ।।३०।।
मिथ्या मतों का भेद है, हान खान दुःख रास ।
नहीं धर्म की बात है, भूल भरा विश्वास ।।३१।।
छल कपट सभी नीच हैं, कर्म कटु अहंकार ।
द्रोह दोष दुर्गुण सभी, असत्य वचन असार ।।३२।।
जानो इत्यादि नीच सब, कर्म बने स्वभाव ।
नीच कर्म ये जो करे, वह जन नीच कुभाव ।।३३।।
सन्तो, तजिए भेद को, जान राम के लोक ।
समता-दृष्टि मेल से, हरो भेद के शोक ।।३४।।
नारायण का धर्म है, समदृष्टि समभाव ।
कर्म समर्पण कीजिए, धार चौगुना चाव ।।३५।।
भावी हरि के हाथ है, भाना है बलवान् ।
परम भरोसा भक्त का, मान राम भगवान् ।।३६।।
ऊँचे जन हरि जन कहे, नीचे माया-वान् ।
समता, सन्तो, सार है, है समदर्शी महान् ।।३७।।

धर्म के दस लक्षण

दस लक्षण का धर्म बताया, मानव धर्म मनु ने गाया।
है यह धर्म सदा सुखदाई, जगत् सुधारक गुण अधिकाई ।।१।।

साधारण यह धर्म बखाना, भुक्ति मुक्ति का दाता माना ।
यह है मूल अन्य सब शाखा, धर्म मर्म यह मुनिजन राखा ।।२।।
पहला सुलक्षण धीरज धारो, धर्म कर्म में तन मन वारो ।
व्रत नियम सुदृढ़ कर पालो, सेवा जन-हित ही सम्भालो ।।३।।
रक्खे धृति राघव ज्यों राखी, जगत् मात सीता की साखी ।।४।।
सती यति-जन हुए बहुतेरे, कर सुधृति के कर्म घनेरे ।
धीर वीर जन जग में शूरे, धृति धर्म करनी में पूरे ।।५।।
दूसरा लक्षण सुक्षमा जाना, सहना सुख दुःख मान अपमाना ।
सहन-शील जन ही सुख पावे, सब अपराध क्षमा हो जावे ।।६।।
निन्दा वचन कठोर सहारे, क्षमा धर्म यह जग से तारे ।
हुआ शाक्य मुनि क्षमाधारी, गाली सुन न वृत्ति बिगाड़ी ।।७।।
बोला मीठी कोमल वाणी, सोम सोचिए मन में जानी ।
देवे वस्तु किसी को कोई, ले न वही तो किस की होई ।।८।।
गाली दाता बोला ऐसे, रहे उस पास दे जो जैसे ।
कहा मुनि ने, नहीं मैं लेता, जो तू वचन मुझे है देता ।।६।।
सुन प्यारे हित सार सुहाना, लहू से धुले न लहू का बाना ।
आग से आग बुझे न प्यारे, कुवचन नहीं कुवचन निवारे ।।१०।।
तीसरा लक्षण दम सुखखानी, बोले मन को वश कर वाणी ।
शुचि सब भाव भावना होवें, विमल विचार मलिन मन धोवें ।।११।।
वैर द्वेष कुवासना छोड़े, पाप ताप का नाता तोड़े ।
सर्वथा मन वश कर हि विचारे, ऊंच नीच सभी की सहारे ।।१२।।
और कर्म से दूर न जाना, आन बान को अन्त निभाना ।
दमन धर्म सुधुरा पहचानो, मन वश करना उत्तम मानो ।।१३।।

भीष्म ने यही व्रत पाला, पितृवंश का दुःखड़ा टाला ।
ब्रह्मचारी सब जग में जाना, सत्यवादी सभी ने माना ।।१४।।
चौथा लक्षण चोरी निवारो, अन्य अधिकार कभी न मारो ।
पराई वस्तु कभी न छीनो, उत्तम धर्म का लक्षण चीन्हो ।।१५।।
सभ्य सज्जन ने व्रत धारा, जन अनेक को जग से तारा ।
ग्रन्थ पाठ में ऐंचातानी, अर्थ उलटना चोरी मानी ।।१६।।
चौर कर्म तजिए दुःखदाई, साक्षी राम समझ मन लाई ।
पंचम लक्षण शौच ही गाया, बाहर भीतर भेद बताया ।।१७।।
हाथ-पांव काया को शोधो, स्नान आदि से तन मल धो दो ।
सूर्य सुवायु से तन शोधे, विमल भाव से मन को बोधे ।।१८।।
वस्त्र वास बर्तन शुचि होवें, शुचि आंगन घर रोग हि खोवें ।
राधन नाम राम गुण गाना, भीतरी शौच ध्यान सुज्ञाना ।।१६।।
धर्म का लक्षण षष्ठ विचारा, इन्द्रियनिग्रह नाम उच्चारा ।
रखना संयम है गुणकारी, उत्तम धर्म कहें गुण-धारी ।।२०।।
शुक ने संयम यथा निभाया, अन्तःपुर में नहीं घबराया ।
स्त्री संघ की शोभा निहारी, अचल रहा सुधारणा धारी ।।२१।।
सातवां लक्षण बुद्धि बखानी, धर्म कर्म गुण ज्ञान निधानी ।
ग्रन्थ पाठ सत्-संग लगाना, चर्चा ज्ञान से बुद्धि बढ़ाना ।।२२।।
ऊहापोह विचार विवेका, बुद्धि साधन कहे अनेका ।
राम विनय करे नित्य प्यारी, नाम जाप मन तामस हारी ।।२३।।
विद्या सुलक्षण आठवां धारो, परा अपरा सुभेद विचारो ।
आत्म-ज्ञान राम धुन लाना, ईश विचार परा ही जाना ।।२४।।
भगवद्भक्ति परा शुभकरणी, आत्म-मार्ग की अनुसरणी ।
विद्या लौकिक अपरा कहावे, कौशल कला इसी में आवे ।।२५।।

नववां लक्षण सत्य सुनाया, सुप्रण पालन इस में आया ।
त्यागे असत्य हरि अनुरागी, कर हरि पूजन बन बड़भागी ।।२६।।
दसवां क्रोध कर्म को त्यागे, कुटिल कठोर कथन से भागे ।
मधुर वचन शुद्ध कर्म द्वारा, सब से मेल करे हरि प्यारा ।।२७।।
दस लक्षण का धर्म जो पाले, वीर धीर हो कर्म निभा ले ।
कर्म-योगी ज्ञानी संन्यासी, है वही सुख धाम का वासी ।।२८।।
चार वर्ण का धर्म समाना, मानव धर्म सभी ने माना ।
है यह सार धर्म का सारा, जान शेष मत वाद पसारा ।।२६।।

वेद सार

वेद सार वर्णन करूं, सभी धर्मों का मूल ।
कर्म योग सुभक्ति धर्म, इस में जान नहिं भूल ।।१।।
सूक्त गीत हैं देव के, जिस के नाम अनेक ।
ईश्वर कर्ता जगत् का, प्रभु परम ही एक ।।२।।
वही नारायण ईश है, करे वेद तस गान ।
वर्णन कर्म सुधर्म का, पूजन श्री भगवान् ।।३।।
सब में रम रहा देवदयाला, सर्व समर्थ सर्व रक्षपाला ।
वही प्रेरक कर्ता जगस्वामी, इन्द्रादिक नामों से नामी ।।४।।
सब कर्मों में सहायक होवे, दुःखड़े भक्त जनों के खोवे ।
असुर दमन अरिगण संहारी, देव दयालु भ्रम-तम-हारी ।।५।।
शासक पालक पोषक राजा, ज्ञानमय सब का महाराजा ।
अन्न पान देवे वह नाना, धान धनादिक दाता माना ।।६।।
अश्व हस्ति गो पशु का दाता, समर शक्ति दायक जनत्राता ।
लाभ विजय शोभा सुख देवे, याजक जन की भेंटें लेवे ।।७।।

पुत्र पौत्र पत्नी सुखदाई, देवे सब हि होवे सहाई ।
सुने स्तोत्र पाठ यज्ञ में ही, जन यजमान को आशिष दे ही ।।८।।
सब का मात पिता शुभ नाता, सखा सुहृद् [illegible] ।
उस का पूजन है शुभ सारा, सुकृत करना ज्ञान विचारा ।।९।।
देव वही दुःख नाशक सोहे, महिमा से मानव मन मोहे ।
शुभ कर्म में आह्वान करना, है निकट यह भावना धरना ।।१०।।
छन्द श्रुति से उसे बुलाना, यज्ञ दान में नहीं भुलाना ।
यजन समर्पण करिए सारा, है वही दाता सर्वाधारा ।।११।।
यज्ञ का देव दयानिधि मानो, पालक यज्ञ कर्म का जानो ।
यज्ञ में जो कुछ कर्म कलापा, श्रुति पाठ सुर ताल अलापा ।।१२।।
जाने सुने करे स्वीकारा, सर्वशक्तिमय देव अपारा ।
चारों वर्ण के कर्म न्यारे, पारिवारिक सम्बन्ध प्यारे ।।१३।।
हवन दान शुभ दक्षिणा जानो, सेवा परहित शुभ पहचानो ।
ज्ञान ध्यान सुपाठ ही सारा, यज्ञ कहा सब कर्म पसारा ।।१४।।
इन में होता प्रभु सहाई, फल दाता सुखमय सुखदाई ।
मंगलमय से मंगल चाहो, ऋद्धि-सिद्धि जय समर मनाओ ।।१५।।
दस्यु दल छली खल हत्यारा, मांगो द्रोही जन संहारा ।
दूध पूत परिवार सुप्यारा, मांगो हरि का परम सहारा ।।१६।।
तन धन जन सुमोद भी चाहे, मुंह मांगे मधुमय फल पाये ।
संकट विकट कठिन दिन आवे, बादल विपद् जभी घिर जावे ।।१७।।
रोग सोग महा कष्ट क्लेशा, आवें जब तब सिमरो महेशा ।
निशा निराशा आशा तोड़े, हानि हार हृदय मन मोड़े ।।१८।।
सिमरो देव ईश मन देही, विघ्न विनाशक उत्तम स्नेही ।
अभाव अति जब जल के होवें, सूखें खेत भूखे जन रोवें ।।१९।।

याचिए मेघपति से पानी, सुखेतियां पाओ मन मानी ।
फैले जब व्याधि महामारी, नाना ईतियाँ हत्याकारी ।।२०।।
शांत करो भज कर भगवाना, औषध अन्न पान कर दाना ।
महा समर असुर संघ भारी, जीतो सिमर सदा सुखकारी ।।२१।।
पाप पंक हरि भज कर धोवो, मलिन वासना मन से खोवो ।
अघ नाशक हरि नाम सुध्याना, पाप पुँज करे भस्म समाना ।।२२।।
सारे पाप स्तुति से जायें, श्रुति पाठ से पास न आयें ।
पाप हरण हरि नाम कहावे, ईश-भजन सब विघ्न नसावे ।।२३।।
वैदिक देव है जग निर्माता, हर्ता पालक सब का विधाता ।
ज्ञाता सर्व, सर्व में राजे, कर्ता सर्व सृष्टि को साजे ।।२४।।
तेजोमय आदित्य समाना, बुद्धि बोध का दाता माना ।
पावन परम प्रभु आधारा, यजमानों का पालन हारा ।।२५।।
अपने जन को आप सुधारे, दाता शरण कुकर्मी उद्धारे ।
एक अखण्ड प्रभु अविनाशी, प्रेममय सब लोक प्रकाशी ।।२६।।
सब में है हरि सब से न्यारा, देवाधि देव दयालु भारा ।
न्याय शील शुभ धर्म सहाई, नियम नियन्ता अमृतदाई ।।२७।।
सच्चिदानन्द स्वरूप स्वामी, तेज रूप हरि उत्तम नामी ।
ब्रह्म वही अनन्त अपारा, सारा विश्व उसी ने धारा ।।२८।।
वेद धर्म शुभ कर्म कमाई, पुरुषार्थ करिए मन लाई ।
वर्ण धर्म शुभ नीति निभाना, रीति प्रीति शुभ कर्म चलाना ।।२६।।
कर्म धर्म का स्थान है ऊँचा, कर्म हीन जन जानिए नीचा ।
साहसमय हो जीवन सारा, यजन याजन का हो विस्तारा ।।३०।।
ईश पूजन सुपाठ बखाना, श्रुति गीत उत्तम ही माना ।
स्तुति सूक्ति सुछन्द सुहाने, प्रभु प्रेम के चित्त लुभाने ।।३१।।

स्वाध्याय यही धर्म कहाता, वेद सार सुन्दर मन भाता ।
वर्णन मुख्य ईश का दीखे, वेद से ईश सुभक्ति सीखे ।।३२।।
मात-पिता का आदर भारा, वेद सार में धर्म उच्चारा ।
आदर मान बड़े का करना, बन्धु प्रेम से मन सर भरना ।।३३।।
सखा सहोदर सुहृद सारे, परस्पर प्रेम पगे हों प्यारे ।
बान्धव वैर विरोध न जानें, पिरोये प्रेम तार में मानें ।।३४।।
गो वत्स से करे नेह जैसे, बन्धु प्रेम करें सभी ऐसे ।
पति की प्रिया सुपत्नी सोहे, मधुर वचन से पति-मन मोहे ।।३५।।
सती सुशीला हो गुणवाली, धर्मरता गुण गण की लाली ।
कर्मपरायण कुशला नारी, सुगृहिणी गुण-केसर क्यारी ।।३६।।
सास ससुर को आदर देवे, अन्न वस्त्र से निर्धन सेवे ।
घर आदि कर स्वच्छ संवारे, पशु पालना कर्तव्य धारे ।।३७।।
नाना पाक की सुविधि जाने, रचे पदार्थ सब मन भाने ।
गृह कर्म में हो हित करणी, निपुण सियानी पति अनुसरणी ।।३८।।
वीर सुतों की मात कहावे, सुता सुत को सुशील बनावे ।
सुसंस्कार से उन को पाले, दुष्ट कर्म अशुभ संग टाले ।।३९।।
सुत को वीर बनावे माता, कर्म कुशल निर्भय पर-त्राता ।
कथा कहानी भद्र सुनावे, विनीत सुशिक्षित ज्यों हो जावे ।।४०।।
पति हो वीर धीर गुणधारी, पत्नीव्रत पाले शुभचारी ।
धन अर्जन कर गृह चलावे, बन्धु धर्म में ही मन लावे ।।४१।।
गृह-धर्म सुमर्म को पावे, यज्ञ शेष अमृत को खावे ।
दान पुण्य हित कर्म कमाए, करे सुकर्म सुग्रन्थ बताए ।।४२।।
मेल धर्म को मन से पाले, जाति समाज सुगठित बनाले ।
हो संगति सम्वाद सुहाना, निर्णय करे प्रेम से नाना ।।४३।।

सम्मति संघ संगठन बनाना, जाति जीवन की जड़ जाना ।
राज्य विजय सफलता सारी, मनके, सूत एकता भारी ।।४४।।
जहां सम्मति सुमति शुभ पाई, वहां पर विपद कभी न आई ।
जहां सुगठन एकता राजे, राजलक्ष्मी वहां ही विराजे ।।४५।।
सम्मति बीच एकता लावे, वाद व्यर्थ कभी न बढ़ावे ।
विनय सहित सम्वाद चलावे, हठ कुतर्क के पास न जावे ।।४६।।
सभ्य सुशील विचारक होवे, बन गम्भीर पाप को धोवे ।
पक्षपात से रहित अविकारी, धर्मशील हो सुव्रतधारी ।।४७।।
ज्यों ऐक्य जनता में आये, त्यों उपाय से उन्नति चाहे ।
द्वेष विरोध कलह को टारे, जनहित में तन धन तक वारे ।।४८।।
पर उपकार करे सुख देवे, दीन दुःखी की सार हि लेवे ।
कूपादि शुभ शाला बनाये, धर्म स्थान जन हेत रचाये ।।४६।।
अनाथ रक्षा विद्यालय खोले, दान धर्म से कलिमल धोले ।
ऐसे काम करे मन लाई, जिन से हो जन जाति भलाई ।।५०।।
दान धर्म को सुख कर जाने, सब के सुख में स्वसुख माने ।
दीन अबल जन को प्रतिपाले, मन उदार से धर्म कमा ले ।।५१।।
भाव भरे शुभ भावुक ऐसे, भक्ति भावना भवन हो जैसे ।
नियम धर्मरत होय सदा ही, शुभ का लोप करे न कदा ही ।।५२।।
चार वर्ण के कर्म सुहाने, सदा करे शुभ फल उपजाने ।
वर्ण कर्म कर्तव्य ही जाना, राजनैतिक विभाग बखाना ।।५३।।
मोक्ष धर्म को समझे ज्ञानी, भक्ति ध्यान आराधना वाणी ।
सिमरन नाम सुध्यान रमाना, आत्म-चिन्तन में मन लाना ।।५४।।
यज्ञ अर्थ सब कर्म निभाये, इस में दोष दृष्टि न लाये ।
वेद आदेश धर्म हि धारे, वैदिक कर्म करे शुभ सारे ।।५५।।

म्लेच्छ अनार्य महा अन्यायी, पापी दस्यु जन आततायी ।
अत्याचारी महा हत्याकारी, दण्डनीय है धन तन हारी ।।५६।।
जो कुछ करना वेद बतावे, पाप लेश उस में न समावे ।
सर्व धर्म का मूल बताया, औषध रूप भृगु ने गाया ।।५७।।
सहज स्वाभाविक कर्म विचारे, वेद विहित हैं तारण हारे ।
शंका इस में मूल न लावे, आर्य धर्म धारणा पावे ।।५८।।
करना कर्म मुक्ति जो देवे, जन समाज को हित से सेवे ।
जनता देश समाज सुधारे, पापी पतित हि पार उतारे ।।५६।।
भक्ति धर्म को बहुत विस्तारे, मोक्ष धर्म यह कार्य सारे ।
यह है मोक्ष धर्म अति नीका, अन्य वाद जानो कटु फीका ।।६०।।
श्रद्धा भाव धर्म की धरणी, सत्य धारण की उत्तम करणी ।
करिए श्रद्धा हरि में ऐसी, आत्मपद में चाहिए जैसी ।।६१।।
श्रद्धा रहित धर्म से हीना, आस्तिक भाव पाय न दीना ।
बालू पर है सदन बनाना, शंकाजनक कुतर्क बढ़ाना ।।६२।।
श्रद्धा यज्ञ दान की माता, कहते सन्त सार के ज्ञाता ।
आगम में है श्रद्धा ऊँची, सारभूत सब जान समूची ।।६३।।
शान्ति धृति श्रद्धा से होती, श्रद्धा सरित पाप मल धोती ।
श्रद्धावन्त सभी शुभ पाते, नीति निपुण ज्ञानी बन जाते ।।६४।।
वेद सार भक्तिमय विचारा, देव-स्तुति भक्ति-नदी धारा ।
सर्व ऋचाएँ देव रिझातीं, सोहे सरस रस सरित बहातीं ।।६५।।
मोहें मन मन्त्र हरि गाते, निर्मल मधुर अमी बरसाते ।
सूक्त श्रुति सुसुन्दर सारे, कुसुमित सर सम सोहें प्यारे ।।६६।।
भक्ति सुगन्धि सुगन्धित भारी, शोभे शुभ श्रुति की फुलवारी ।
चमकें स्तुति के भाव न्यारे, विमल नील नभ में ज्यों तारे ।।६७।।

श्रुति ज्ञान भक्तिमयी गंगा, अगाध गम्भीर अभंग तरंगा ।
सार सरस जिस के मन भाया, वेद मर्म ही उस ने पाया ।।६८।।
कहा सार सुखकार सुहाना, आदिम धर्म मर्म पहचाना ।
देवता ज्ञान मिले अगाधा, लेखातीत उत्तम निर्बाधा ।।६६।।
बीज रूप समझे जन ज्ञानी, मौलिक धर्म मर्म को जानी ।
नमो नमः श्री हरि तुम ही को, दीजिए यह सुसार सभी को ।।७०।।

गीता सार

आत्म-ज्ञान

नमस्कार उस ईश को, जो नारायण एक ।
धारक सारे जगत् का, नाशक कष्ट अनेक ।।१।।
मंगलकर मंगल निधि, ज्ञान अनन्त अपार ।
नारायण सुख रूप है, सब का परमाधार ।।२।।
सब के भीतर है बसा, सर्व शक्तिमय राम ।
अखण्ड अजन्मा ईश है, परम पुरुष गुणधाम ।।३।।
युग युग में ही वह करे, सज्जन का प्रकाश ।
स्थापना हो सुधर्म की, पाप अधर्म का नाश ।।४।।
ईश भक्ति को मुख्य कर, ज्ञान प्रेम अनुकूल ।
है सुधर्म नारायणी, गीता का वह मूल ।।५।।
इस नारायण धर्म पर, गीता बनी अनेक ।
भगवद्गीता एक है, मर्म मधुरतम एक ।।६।।
नाना गीताएं कहीं, महाभारत के बीच ।
सभी ज्ञान की सरित् हैं, रहीं भक्ति-बन सींच ।।७।।

सार सभी का जानिए, भगवद्गीता सार ।
नारायण के धर्म का, जहां मिलता विस्तार ।।८।।
गीता का वर्णन करूँ, सरल स्वादुतम सार ।
सुन्दर सुखकर सरस सब, सदा सुधा संचार ।।६।।
यथा यथार्थ दीखता, तज कर मत की कार ।
भेद मर्म गम्भीरतर, शोभित करूँ निथार ।।१०।।
अर्थवाद की बात को, यहां नहीं अवकाश ।
है आशय को खोलना, करना तत्त्व विकाश ।।११।।
भगवद्गीता ज्ञान की, गंगा निर्मल नीर ।
भक्तों के मनोभाविनी, आत्म-दर्शन तीर ।।१२।।
गीता गागर में भरा, सागर ज्ञान महान् ।
कर्मयोग के पन्थ में, चमके सूर्य समान ।।१३।।
गीता सुबिन्दु में रहे, भक्ति सुसिन्धु अगाध ।
इस के नभ में प्रेम का, चमके चांद अबाध ।।१४।।
जितने ग्रन्थ मनुष्य के, मिलें मतों के आज ।
गीता उन पर कलश सम, शोभित रही विराज ।।१५।।
सांख्य योग वेदान्त के, कर वाद एक सार ।
भक्ति सुमाला को रचा, पिरो प्रेम की तार ।।१६।।
कर्म-योग शुभ ज्ञान में, समता भाव बसाय ।
आत्म-तत्त्व विवेचना, गीता दी चमकाय ।।१७।।
किया समन्वय भक्ति में, दर्शन-वाद को भेद ।
त्याग ज्ञान संन्यास के, सारे संशय छेद ।।१८।।
जन कर्मी संन्यासी है, है वह त्यागी एक ।
वृथा त्याग संन्यास की, नहीं वेद में टेक ।।१६।।

गीता मत में ज्ञान है, ईश राधना ज्ञान ।
आत्म-तत्त्व विवेक जो, चिन्तन मनन महान् ।।२०।।
परमेश्वर अखण्ड है, अजर अमर सुखरूप ।
सच्चिदानन्द समर्थ हि, पावन परम सुरूप ।।२१।।
व्यापक है सब में रमा, देश काल से पार ।
सुखमय ज्ञान अनन्त है, शक्तिमय निराकार ।।२२।।
वही प्रभु है सर्व का, ध्येय लक्ष्य सुखधाम ।
पूजा चिन्तन राधना, कर्म ध्यान जप नाम ।।२३।।
लीनता ही निर्वाण है, अकाल धाम निर्वात ।
प्राप्ति परमानन्द की, हानि पाप उत्पात ।।२४।।
जग में जीव अनन्त हैं, बन्धे अविद्या बीच ।
जन्म मरण के चक्र में, पड़े काल के कीच ।।२५।।
मुक्ति उन की बन्ध से, होती कही अशेष ।
आत्मा ईश सुबोध से, श्रद्धा सहित विशेष ।।२६।।
सारे अपने कर्म शुभ, वर्ण धर्म के जान ।
अर्पण अन्तःकरण से, आगे श्री भगवान् ।।२७।।
करना मन वच कर्म से, इच्छा फल की त्याग ।
निष्काम कर्म यह योग है, भक्ति यही वैराग ।।२८।।
हरि का यह आदेश है, वेद ग्रन्थ अनुसार ।
करना कर्म सुधर्म के, पाप रहित है सार ।।२६।।
विधि निषेध ही धर्म है, विधि में कहा न पाप ।
शास्त्र करना जो कहे, विधि है वही निष्पाप ।।३०।।
वैध कर्म का छोड़ना, बन्ध पाप को मान ।
मन्दमति का कर्म है, है वह जन अनजान ।।३१।।

विहित कर्म छोड़े नहीं, मान पाप वा दोष ।
विहित कर्म जो त्यागते, उन पर यम का रोष ।।३२।।
देखे दोष अपराध को, विहित कर्म में मूढ़ ।
वेद विहित सब धर्म है, यही सार है गूढ़ ।।३३।।
विधि विधान के कर्म में, साधन कर्ता कहाय ।
वही दायित्व से पार है, उस में लेप न आय ।।३४।।
कहा दायित्व ग्रन्थ का, जो देवे आदेश ।
कर्ता कहा निष्काम ही, उस में लेप न लेश ।।३५।।
राग द्वेष से रहित जो, पक्षपात से पार ।
सत्य ज्ञान का कोष जो, शास्त्र वही विचार ।।३६।।
उस की विधि को मानिए, चलिए तदनुसार ।
ऐसे विहित विधान से, होता सत्य विस्तार ।।३७।।
अजर अमृत है आत्मा, अभिन्न अछिन्न अखण्ड ।
कर्म बन्ध से भोगता, कर्म फलों के दण्ड ।।३८।।
जले नहीं वह आग से, उस को जल न भिगोय ।
सूखे न वायु से कभी, सूक्ष्मतम है सोय ।।३९।।
आत्मा चेतन जानिए, सत्ता-रूप प्रकाश ।
अप्राकृत चैतन्य है, रहित उत्पत्ति विनाश ।।४०।।
सत्ता अमर है चेतना, जिसमें रहे न काल ।
सम रस युवा सुरूप है, नहीं वृद्ध न बाल ।।४१।।
काया में व्यापक वही, सदा जागती जोत ।
अविद्या ढक्कन से ढकी, सर्व सुखों की सोत ।।४२।।
जन्म मरण है देह का, आत्मा अमृत रूप ।
सत्ता में है स्थिर सदा, अचल भाव स्वरूप ।।४३।।

आत्मा चेतन वस्तु है, साक्षी तन का देव ।
ज्ञान रूप सुख सदन है, सद्वस्तु सत्यमेव ।।४४।।
परिछिन्न है वस्तु वह, देही जीव पहचान ।
अगम्य अगोचर है वह, इन्द्रिय गण से मान ।।४५।।
उस की लीला देह में, है नाना प्रकार ।
कर्म वासना बन्ध से, उस में दिखे विकार ।।४६।।
सुख दुःख नाना भाँति के, कहे विषय संयोग ।
विषय इन्द्रिय मेल से, उपजे सुख दुःख भोग ।।४७।।
विषयों के हो साथ जब, इन्द्रिय गण सम्बन्ध ।
उपजे वृत्ति संग ही, उस से उपजे बन्ध ।।४८।।
अनुकूल प्रतिकूल में, राग द्वेष हो जाय ।
उस से आत्मा बद्ध हो, जन्म मरण फल पाय ।।४६।।
इन को सहना धीर हो, रखना समता भाव ।
कभी न डांवांडोल हो, है निष्काम स्वभाव ।।५०।।
श्रोत्र चक्षु रसना कही, घ्राण त्वचा हि पंच ।
ज्ञान इन्द्रिय जानिए, तन में आत्म मंच ।।५१।।
शब्द रूप रस समझिए, गन्ध स्पर्श हि जान ।
पांच विषय वर्णन किए, जग रचना की खान ।।५२।।
हस्त पाद वाणी कही, पायु उपस्थ हि और ।
कर्म इन्द्रिय जानिए, गति क्रिया की ठौर ।।५३।!
देह तीनों अनित्य हैं, देही नित्य कहाय ।
विषय-योग संस्कार से, जन्म जन्म में जाय ।।५४।।
संस्कार सब कर्म हैं, बने वासना गूढ़ ।
रहें गाढ़ तनु पटल हो, आत्मा पर आरूढ़ ।।५५।।

जीव जन्म के चक्र में, पाय कर्म के भोग ।
अपनी सुसत्ता समझ कर, नाश करे दुःख रोग ।।५६।।
नाश नहीं सद्वस्तु का, असत्य न करे विकास ।
निश्चित सत्य सिद्धान्त है, निश्चय सत्य विश्वास ।।५७।।
सत्य सुनित्य है आत्मा, इस का नहीं विनाश ।
देह देहान्तर गृह को, यह दे दीप विकाश ।।५८।।
वार्द्धक यौवन बाल ये, यथा देह में होय ।
देहान्तर भी हो तथा, ज्ञानी जाने सोय ।।५६।।
तन में अवस्था तीन हैं, साक्षी सब का एक ।
वही है चेतन आत्मा, भेद न जान अनेक ।।६०।।
वस्त्र पुराने त्याग कर, पहरें यथा नवीन ।
बदले देह यों आत्मा, हुआ कर्म से दीन ।।६१।।
चोला बने ही कर्म से, तन का देवाधीन ।
उस का निश्चित नियम है, नहीं मेख वा मीन ।।६२।।
प्रारब्ध भोगे बिना, छूटे नहीं शरीर ।
मार सके न जन कोई, निश्चय धारे धीर ।।६३।।
मरना जीना जन्मना, जन्म जन्मान्तर भोग ।
यह सब राम अधीन है, कभी न करिए सोग ।।६४।।
अविनाशी देह देव के, देह विनाशी देख ।
सत्ता अमर है आत्मा, ऐसा निश्चित लेख ।।६५।।
मरता मारता आत्मा, माने मूढ़ अजान ।
कर्म वासना में घिरा, धरता मन अभिमान ।।६६।।
जीवन मुक्त अलेप है, करे करावे काम ।
सुविधि नियति आदेश से, मन में रहे निष्काम ।।६७।।

भक्त भले भगवान् के, भ्रम भ्रान्ति को त्याग ।
वीतराग रहते सदा, लिये राम अनुराग ।।६८।।
उन के कर्म कलाप में, पातक दोष न आय ।
बने निमित्त सुकर्म में, रहें राम धुन लाय ।।६९।।
विश्व नियन्ता ईश को, जान कर्ता कहलाय ।
फल आशा को छोड़ कर, निष्कामी हो जाय ।।७०।।
यह सांख्य का मत कहा, तत्त्व भेद पहचान ।
आत्मा देह विवेचना, सांख्य ज्ञान विधान ।।७१।।
प्रकृति तथा पुरुष का, करे विवेक विचार ।
आत्मा को लख लीजिए, सांख्य ज्ञान सुसार ।।७२।।
कर्म योग का पन्थ जो, जानिए बुद्धि योग ।
दर्शक आत्म-तत्त्व का, हरता सारे रोग ।।७३।।
उसी को भक्ति योग भी, कहते भक्त पुकार ।
अणुमात्र भी धर्म यह, हरता पाप अपार ।।७४।।
संस्कार इस का एक हि, देता जन्म सुधार ।
भक्ति सभी कुकर्म को, करे तुरन्त असार ।।७५।।
चित्त में भक्ति अग्नि कण, पड़े यदि एक बेर ।
पाप पुंज के सब तृण, करे भस्म के ढेर ।।७६।।
भक्ति का नहीं नाश है, होय न विघ्न विकार ।
संकट पीड़ा व्याधि भी, देवे भक्ति निवार ।।७७।।
भोग फलों की कामना, रख कर मन में जोय ।
कर्म सकाम करे सभी, मतवादी है सोय ।।७८।।
फल के कारण जो करे, यज्ञ हवन पुण्य दान ।
वही सकामी जन कहा, धर्म में निपट अजान ।।७९।।

आसक्ति फल भोग में, अधिक इच्छा फल बीच ।
[illegible]
सर्व सार है वेद में, ज्ञानी जन के पास ।
जल-परिपूर्ण ताल से, लेवे जितनी प्यास ।।८१।।
इच्छा तज कर स्वर्ग की, करे जो विहित काम ।
लेवे जिज्ञासु वेद से, सभी कर्म निष्काम ।।८२।।
जितने मत के भेद हैं, हैं स्वर्गों के हेत ।
मोक्ष ब्रह्म में भेद न, देखें निर्मल नेत ।।८३।।
कृपण करे सकाम सब, कर स्वर्गों का ध्यान ।
लोक फलों का कर्म जो, बहुत तुच्छ वह मान ।।८४।।
सम हो सुख दुःख लाभ में, हानि में भी समान ।
रहे करे कर्तव्य को, कर्म कुशल वह जान ।।८५।।
सम रहना ही योग है, कौशल कर्म सुयोग ।
स्थिर बुद्धि मानस स्थिति, हरती मानस रोग ।।८६।।
सकल वासना वश करे, कर मन में सन्तोष ।
वीत कोप भय द्वेष से, स्थिर बुद्धि गत रोष ।।८७।।
हर्ष न माने मान में, द्वेष न मध्य अमान ।
रहे सदा सम कर्म में, स्थिरबुद्धि पहचान ।।८८।।
कछुए वत् इन्द्रिय गण, अपने करे अधीन ।
शान्त ही निर्मल आत्मा, सम सुबुद्धि प्रवीण ।।८९।।
विषयों के बहु संग से, बढ़े वासना जाल ।
संग हो उस से कामना, बने विकट वैताल ।।९०।।
उस से उपजे क्रोध अति, उस से हो संमोह ।
मोह से नष्ट हो स्मृति, करे बुद्धि लय मोह ।।९१।।

बुद्धि नाश से नष्ट हो, अपना चेतन भान ।
आत्म-ज्ञान अभाव से, बढ़े पाप दुःख खान ।।६२।।
राग द्वेष से रहित हो, करता जो जन काम ।
इन्द्रियों से शुभ सभी, वह प्रसन्न सब याम ।।६३।।
हो नाश आनन्द में, सर्व दुःखों का बीज ।
स्थिर बुद्धि हो सहज से, भक्ति-योग में रीझ ।।६४।।
कर्म इन्द्रियां रोक कर, चिन्ते विषय विचार ।
दम्भी वह जन जानिए, मन में भरे विकार ।।६५।।
आत्मा में सन्तुष्ट हो, आत्मा में ले मोद ।
आत्म-लीला जो लखे, वह स्थिर मति जित-क्रोध ।।६६।।
विविध विषय में विचरती, वृत्ति सहित विकार ।
मन अनुगामी को हरे, कर के बलात्कार ।।६७।।
खींचे बल से नाव को, यथा पवन मझधार ।
मन को वृत्ति त्यों हरे, लिये विषय संचार ।।६८।।
जिस समदृष्टि भक्त ने, रोकीं इन्द्रियां आप ।
स्थिरप्रज्ञ मतिधीर वह, उसे छुए न पाप ।।६६।।
आत्मा से सोते सभी, जो न करते विवेक ।
आत्म-चिन्तन रहित हो, पकड़ें पन्थ अनेक ।।१००।।
क्रोध कलह छल कपट कर, कर के कर्म कठोर ।
जो जागें सो, सो रहे, लिये नींद अति घोर ।।१०१।।
वह अध्यात्म रात है, जिस में न निजू बोध ।
पाप हत्या हो घोरतर, बढ़े कामना क्रोध ।।१०२।।
मुनिजन इस में जागते, लिये ज्ञान का दीप ।
अन्य जगें जिस काम में, आय न उन के समीप ।।१०३।।

स्व स्वरूप की भूल में, सोता है संसार ।
आत्म चिन्तन ज्ञान में, मुनि जागें गुणधार ।।१०४।।
मोह मान मद मार कर, कोप कामना जीत ।
स्व में पूर्ण हो सुखी, पावे शान्ति शुभ प्रीत ।।१०५।।
यही अवस्था सम कही, ब्राह्मी स्थिति सुनाम ।
अन्त समय भी जो मिले, पाय ब्रह्म सुधाम ।।१०६।।

कर्म योग

निष्ठा दो हैं कही पुरानी, सांख्यवाद भक्ति की मानी ।
सांख्यवाद विचार की माला, भक्ति योग है कर्म निराला ।।१।।
बिना कर्म कोई मुक्ति न पावे, ज्ञान त्याग भी पास न आवे ।
क्रिया रहित जन सुख न पाये, क्रिया बिना न अंग हिलाये ।।२।।
विवश कर्म करें सभी कोई, करना क्रिया सुनियति सोई ।
गति क्रिया परिवर्तन मूला, प्राकृत जग में विधि अनुकूला ।।३।।
गतिमन्त सभी तत्त्व बखाने, क्रिया गति कहें एक सियाने ।
सो गति प्रथम हरि की जानो, सृष्टि रचना उस से मानो ।।४।।
जग में गति जो समष्टि रूपा, तन में है वह व्यष्टि सुरूपा ।
मौलिक गति टले नहीं टाले, कहें तथा शुभ दृष्टि वाले ।।५।।
नियम नैसर्गिक हि मन धारो, गति कर्म को एक विचारो ।
गुण वैषम्य से सृष्टि मानी, विषमता गति कहें मुनि ज्ञानी ।।६।।
गति सुनिरोध असम्भव जाना, गति बिन कर्म असंभव माना ।
इस कारण शुभ कर्म कमावे, दया दान यज्ञ में मन लावे ।।७।।
नियत कर्म सब करना चाहे, मिथ्याचार न चित्त में लाये ।
श्वास प्रश्वास कर्म हि होवे, कर्महीन जन जीवन खोवे ।।८।।

पलक झपकना कर्म बखाना, खान पान क्रिया ही माना ।
कर्म त्याग कहें जो विकारी, व्यर्थवाद रत मिथ्याचारी ।।६।।
करना कर्म यजन हित जानी, हानि बंध की उस से मानी ।
यजन कर्म उपकार बताया, जन सुधार सेवा समझाया ।।१०।।
यजन दान से देव बढ़ाओ, इष्ट भोग फल उन से पाओ ।
आपस की बढ़ती को लाते, परम धाम पाओ सुख पाते ।।११।।
यज्ञ दान बिन अन्न जो खावे, पाप खाय वह चोर कहावे ।
यज्ञ शेष जो सन्त हैं खाते, पाप कर्म उन के कट जाते ।।१२।।
अन्न से प्राणी पालन पावें, वर्षा से सब अन्न उपजावें ।
वृष्टि कारण यजन बखाना, यजन कर्म से उत्पन्न माना ।।१३।।
कर्म विधि सभी वेद बखानी, वेद ईश की आज्ञा जानी ।
इस से हो जहां यज्ञ दाना, हो हरि के आशिष का आना ।।१४।।
जहां जप आदि शुभ हों सारे, दान पुण्य सुकर्म ही भारे ।
संगति साधन हित कर राजे, राम वहां स्वयमेव विराजे ।।१५।।
यह सुचक्र प्रभु ने चलाया, सेवा दान सुकर्म बताया ।
जो जन इस को नहीं घुमाते, पाप जीवन व्यर्थ बिताते ।।१६।।
स्व में तृप्त रति निज मांही, उस को करना कुछ है नांही ।
हो असक्त करे जो कमाई, पावे परम पुरुष सुखदाई ।।१७।।
सिद्ध हुए जनकादिक राजे, कर सुकर्म सर्व महाराजे ।
पाल कर्म सज्जन बहुतेरे, भव सिन्धु हुए पार घनेरे ।।१८।।
जगत् भला लख कर्म कमावे, मन में सर्व संग्रह लावे ।
परहित करना मन में धारे, कर्म में संग्रह धर्म विचारे ।।१६।।
कर्म बिना न निर्वाह होवे, कर्म त्याग का बीज न बोवे ।
जन अपना दायित्व विचारे, त्याग वाद कुपथ को निवारे ।।२०।।

नेता श्रेष्ठ करे जो करनी, वह ही अन्य जनों की वरणी ।
[illegible]
लोक जाति हित कर्म निभावे, उदाहरण बन कर दिखलावे ।
साधारण जन कर्म जो पालें, ज्ञानी जन भी वैसे निभालें ।।२२।।
मति भेद होने नहीं पावे, तर्क जाल में मन न लुभावे ।
सब को, चल कर आप चलावे, जोड़ कर्म में प्रेम बढ़ावे ।।२३।।
संशय-शील कुशील कुचारी, मति भेद करे जन अनचारी ।
संशय शत्रु प्रेम का नाशी, धर्म ऐक्य सुगठिन विनाशी ।।२४।।
अनर्थ बढ़ें इसी में भारे, होते लुप्त सुगण भी सारे ।
श्रद्धायुक्त सुगुणी विश्वासी, भक्ति योग का दृढ़ अभ्यासी ।।२५।।
अपने सुकर्मों में मन देवे, फल के अर्थ मूढ़ ज्यों सेवे ।
प्रेम भक्ति पथ पर हि चलावे, नाम ईश भज शुभ पद पावे ।।२६।।
सहज कर्म का त्याग न होवे, मूढ़ मति यों काल को खोवे ।
ज्ञानी वह करे जो कमाई, फल आशा तज मन तन लाई ।।२७।।
सार त्याग का मुनि मन भाया, तजना राग द्वेष बतलाया ।
विषयों में रहते ये दो ही, इन से विमल, विमल जन सोही ।।२८।।
ज्ञान सत्य स्वधर्म सुनाया, शुभ कर्म मनु वेद ने गाया ।
यही मुक्ति स्वर्ग का दाता, पाप ताप से है परित्राता ।।२९।।
कामना क्रोध पाप हि भारी, लोभ मोह बढ़े हत्याकारी ।
धूम्र यथा अग्नि शिखा घेरे, हों दर्पण मल मलिन बहुतेरे ।।३०।।
गर्भ जरायु में छुपे जैसे, ज्ञान आवरण करे यह तैसे ।
शत्रु कामना बहुत विरोधी, सत्य ज्ञान का सर्व-निरोधी ।।३१।।
इन्द्रियां मन बुद्धि में वासा, कर के, करे शुभ कर्म विनाशा ।
पाप वासना मार हटावे, आत्मा में वही शान्ति पावे ।।३२।।

सब से उत्तम आत्मा माना, शक्ति सत्ता सुज्ञान प्रधाना ।
अपने को ही आप उद्धारे, पाप कर्म से इस को तारे ।।३३।।
जब जभी हो धर्म की हानी, पाप बढ़े जन हों अभिमानी ।
धर्म-रक्षण को सन्त पधारें, पाप दुष्ट जन को संहारें ।।३४।।
नारायण का बरते भाना, राम कला का होवे आना ।
उपजें राम कला के धारी, स्थापें सुधर्म पाप निवारी ।।३५।।
दिव्य हों कर्म जन्म उन्हीं के, सर्व कर्म हों उन के नीके ।
करना सुकर्म भक्ति दर्शावें, कर उपदेश सुपन्थ बतावें ।।३६।।
कर्म धर्म उद्यम सुख खाना, सेवा सत्य कर्म शुभ माना ।
कर्म योग यह मार्ग चंगा, है यह ज्ञान-सुधा की गंगा ।।३७।।
यजन दान तप कर्म सुध्याना, इन को त्यागे जन अनजाना ।
पतित सुपावन ये सब गाये, बुद्धिमान् के भी मन भाये ।।३८।।
मात पिता बान्धव सब भाई, पूजन योग्य गुरु अधिकाई ।
सब गुणिजन को आदर देना, शिष्टाचार पालन कर लेना ।।३६।।
सुजन सगे बन्धु सब प्यारे, सुकर्मी चाहे सुधरें सारे ।
वीत राग कुकर्म का त्यागी, पावे मुक्ति गुणी बढ़ भागी ।।४०।।
कर्म में ज्ञान त्याग मन धारे, ज्ञान में करना कर्म विचारे ।
कर्म ज्ञान को सम ही जाने, बुद्धिमान नहीं भेद बखाने ।।४१।।
जिस ने त्यागे कुकर्म सारे, कर्म कुशल बन राम सहारे ।
ज्ञान अग्नि में पाप जलाये, बुधजन पण्डित उसे बताये ।।४२।।
जो जन रुचि इस पथ में लाते, पाप कर्म उन पास न आते ।
लोभ क्रोध का करें किनारा, पावें कर्म से जग निस्तारा ।।४३।।
फल इच्छा के संग का त्यागी, करे सुकर्म राम-अनुरागी ।
जन हित सेवा में मन लावे, उस का कर्म नाश हो जावे ।।४४।।

ब्रह्मार्पण कर्म कर के ही, मानस वाचक कायिक ये ही ।
यजन दान हित साधन सारा, ज्ञान ध्यान तप पाठ न्यारा ।।४५।।
करिए अर्पण हरि के आगे, पावे परम धाम फल त्यागे ।
निष्काम कर्म का सार सुहाना, कर्म मर्म मुनि जन ने जाना ।।४६।।
करे कर्म हरि आज्ञा मानी, सारी सृष्टि उस की जानी ।
कर्म करण तन धन तस देनी, यह है कर्म कुशल की कहनी ।।४७।।
मानस आदिक कर्म न्यारे, कहें धर्म स्व पर के सारे ।
संयम नियम साधना सारी, ये हैं यजन सदा सुखकारी ।।४८।।
इनका करना धर्म बताया, यजन शेष अमृत सम गाया ।
कर यजन जो जन अन्न खाते, अमृत भोजी सुर पद पाते ।।४९।।
सर्व साधन हैं कर्माधारा, कर्म बिना नहीं हो निस्तारा ।
क्रिया आधार हरि ही मानो, पूर्ण कर्म भक्ति में जानो ।।५०।।
विनीत जिज्ञासु कोमल होवे, सत्संगति से मन मल धोवे ।
पाय ज्ञान जो तत्त्व है सारा, उस से होवे पार उतारा ।।५१।।
गुरुजन का सेवक हो सीखे, विनय भाव में शुभ ही दीखे ।
ले उपदेश करे शुभ करणी, तीनों ताप पाप की हरणी ।।५२।।
उस से खिले ज्ञान की ज्योति, प्रतीति निज रूप की होती ।
हरि लीला अपने में देखे, कर दे दूर पाप के लेखे ।।५३।।
हो चाहे पापी अति भारा, नाम नाव चढ़ पाय किनारा ।
होवें भस्म आग में जैसे, सूखे ईन्धन, समझो तैसे ।।५४।।
सारे पाप ज्ञान से भागें, आत्म-देव तभी ही जागें ।
ज्ञान समान न पावन जाने, अन्य साधन कहें सुजन सियाने ।।५५।।
श्रद्धालु शुभ ज्ञान को पाता, प्रभु भक्त मन को वश लाता ।
शीघ्र ज्ञान से शांति आवे, अन्त परम सुधाम में जावे ।।५६।।

श्रद्धा विहीन मलिन अज्ञानी, संशय शील हो पाय हानी ।
दोनों लोक वही जन खोवे, पापों में निज रूप डबोवे ।।५७।।
जो जन कर्म भक्ति शुभ धारे, पाप नाश कर संशय मारे ।
आत्मवान् को कर्म न लागे, बुरी वासना उस से भागे ।।५८।।
कर्म संन्यास सुकर्म विचारो, कर्म योग उत्तम मन धारो ।
कर्म योग संन्यास से ऊँचा, सन्त कहें यह सार समूचा ।।५६।।
द्वेष कामना का जो त्यागी, संन्यासी है वह वैरागी ।
कर्म रहित संन्यास बहाना, मत पन्थों का ताना बाना ।।६०।।
कर्म योग में धर्म समाया, भक्ति में सब सार है आया ।
भक्त है कर्मी त्यागी ज्ञानी, भक्तिमय ऊँची गति मानी ।।६१।।

भक्ति

भगवद्-भक्ति उपासना, कर्म योग सुखकार ।
ध्यान धारणा प्रेम से, करता जन को पार ।।१।।
वृत्ति वश में कर जभी, बाहर करे विहार ।
भीतर अपने लाइए, मन से बारंबार ।।२।।
चंचल चित्त की चपलता, हरिए साध अभ्यास ।
राम राधना ज्ञान में, ध्यान में कर सुवास ।।३।।
आसन सीधे सुखद से, बैठ धारणा धार ।
भृकुटि बीच ध्याइए, नाम परम सब सार ।।४।।
घट को रीता कीजिए, बाहर काढ़ विकार ।
दुष्ट वासना कर्म सब, तथा सभी कुविचार ।।५।।
भरिए नाम अमोल को, घट भीतर दिन रात ।
राम नाम का ध्यान हो, प्रति सायं सुप्रात ।।६।।

ज्योतिर्मय जगदीश का, तेजोमय स्वरूप ।
[illegible]
अन्त समय भी जो मिले, यही भक्तिमय योग ।
शान्ति परम को पाइए, जन्म मरण तज रोग ।।८।।
ईश्वर सत्ता शुद्ध है, सब का जानी जान ।
प्रेरक सारे विश्व का, देव दयालु महान् ।।६।।
शरण उसी की पकड़िए, जान प्रेममय देव ।
निज जन को दे परम पद, सारमय सत्यमेव ।।१०।।
वह व्यापक है सर्व में, कर्ता पुरुष अकाल ।
वह हरि सदा निर्लेप है, करता भक्त निहाल ।।११।।
सर्वतः पाणि-पाद है, सब का देखन हार ।
सुने सर्व सर्वज्ञ प्रभु, निराकार आधार ।।१२।।
उस से सारा विश्व है, है सब में वह ईश ।
विद्यमान सर्व स्थान में, परम पुरुष जगदीश ।।१३।।
चमके सूर्य चाँद में, तारागण के बीच ।
ज्योति देवे सर्व को, जीवन बल से सींच ।।१४।।
वह सब का आधार है, उस ने धारे लोक ।
अगम्य गति उस की कही, बिना रोक ही टोक ।।१५।।
जो जो सुवस्तु शुभ बनी, आकर्षण कर जोय ।
सुन्दर शोभा शक्ति युत, उस में विकसे सोय ।।१६।।
विश्व सुरचना चित्रमय, अद्भुत लीला धाम ।
रची सुशोभित मोहिनी, अतिशय सुन्दर राम ।।१७।।
ईश्वर के संकल्प से, लीला है यह रास ।
विविध रंग वैचित्र्य में, उस का कहा निवास ।।१८।।

उस की इच्छा प्रकट है, बल शक्ति जहां जान ।
हो शोभा ऐश्वर्य हि, ओज तेज का स्थान ।।१६।।
ऐसी करिए धारणा, लिए श्रद्धा विश्वास ।
भक्ति प्रेम के धर्म में, राम रहे ही पास ।।२०।।
दैवी खेल कर्म की लीला, देखो दिव्य, हो भक्तिशीला ।
लखिए ईश उसी के मांही, हो भावना अन्य में नांही ।।२१।।
महिमा उस की जान अपारा, लीला विभूति जगत पसारा ।
प्रेममय प्रभु परम सहाई, सर्व शक्तिमय सब सुखदाई ।।२२।।
वस्तु सभी में उस को ध्यावे, प्रिय रूप अस्ति भाँति गावे ।
उस के वश में सब जग जानो, भाना उस का अविचल मानो ।।२३।।
क्रिया प्रधान विश्व रचाया, ग्रन्थ ऋषि मुनि जन ने गाया ।
जन्म मरण फल ही सब भोगा, माता पिता बन्धु संयोगा ।।२४।।
जन्मान्तर जाना दुःख नाना, पाना फल है राम विधाना ।
कर्ता कर्म का वह जन जाना, राग द्वेष में रहे लुभाना ।।२५।।
जो जन मन से राग हटावे, कर्म लेप उस पास न आवे ।
राग द्वेष से ऊपर जो ही, निरा निमित्त कहा जन सो ही ।।२६।।
राम प्रेम में जो मन लावे, वीतराग वह भक्त कहावे ।
पूजे राम नमे हरि आगे, अन्य देव पूजन को त्यागे ।।२७।।
चिन्तन कीर्तन कथन प्यारा, कर पावे भव जल निस्तारा ।
यज्ञ पति प्रभु ही को बूझे, साथी सभी सुशुभ में सूझे ।।२८।।
गति शरण पोषण प्रभु स्वामी, साक्षी सभी का अन्तर्यामी ।
उत्पत्ति स्थिति लय का कारी, विश्व पालक जगत का धारी ।।२६।।
ज्ञान कर्म से पूजा जावे, नाम जाप से मन में आवे ।
सिमरण ध्यान से शक्ति विकाशे, भक्त जनों के पाप विनाशे ।।३०।।

भक्त हरि के चार पहचानो, आर्त्त जिज्ञासु अर्थी जानो ।
ज्ञानी चौथा उच्च कहावे, परम भक्त का ही पद पावे ।।३१।।
दु:ख संकट में सिमरे जो भी, कष्ट निवारण कारण सो भी ।
आर्त्त भक्त कहा जन ऐसा, जन सकाम जो समझा वैसा ।।३२।।
जिज्ञासु जो ही जाना चाहे, आत्मपद पहचाना चाहे ।
लगन युक्त श्रद्धा रस रंगा, भावुक भक्त भाव का चंगा ।।३३।।
सुख संपद् सब अर्थ विचारे, भक्ति करे प्रयोजन धारे ।
ऋद्धि सिद्धि मांगे सुखदाई, अर्थार्थी जन चाहे बड़ाई ।।३४।।
ईश प्रेम में केवल भीना, आत्मिक ज्योति में लवलीना ।
करे कीर्तन चिन्तन सुज्ञानी, परम सुभक्त हो निरभिमानी ।।३५।।
भक्त सभी सुगुणी हरि प्यारे, पर ज्ञानी शोभें शुभ न्यारे ।
ब्रह्म आत्मा वे पहचानें, भीतर बाहर हरि को जानें ।।३६।।
भक्ति अनन्य जिन्हें मन भाई, प्रीति श्रद्धा जिन में समाई ।
सब को समझें एक समाना, विप्र श्वपच सम हि जिन जाना ।।३७।।
हरि आराधन साधन नीके, करें कर्म सब के सुख ही के ।
शुचि तन वचन मृदु मन ही के, तजें कर्म कटुतर ही फीके ।।३८।।
सब का हित उपकार ही चाहें, ऊँच नीच का भाव न लायें ।
ज्ञानी भक्त राम रस भीनें, आत्म-भेद उन्हीं ने चीन्हें ।।३९।।
कर्म समर्पण कर के सारे, भावों साथ हो राम द्वारे ।
एक निरंजन राम को मानें, भक्ति साथ आराधित जानें ।।४०।।
दीन दु:खी पर करुणा लावें, दानी सेवक बन दिखलावें ।
वैर रहित सब के ही स्नेही, प्रभु प्यारे प्रेमी हैं वे ही ।।४१।।
अहंकार मद मान को जीते, प्याले प्रेम जिन्हों ने पीते ।
कष्ट सहे सब हरिजन हेतु, राम भक्त वे सुख के सेतू ।।४२।।

मन वच काय बुद्धि से जो ही, हरि अर्पित हैं भक्त ही सो ही ।
अति प्यारे हैं राम दुलारे, प्रेम मय पुण्य-पुष्पित क्यारे ।।४३।।
निर्भय भाव भावना वाले, हरि भक्ति की कामना वाले ।
क्रोध द्वेष से रहित सुहाने, सो शुभ भक्त सभी ने माने ।।४४।।
विचारक चतुर शुचि सुविवेकी, चिन्ता रहित किये न किये की ।
सदा रहें जो राम सहारे, प्यारे भक्त प्रभु के भारे ।।४५।।
मेल शुभाशुभ बीच न डोलें, कटु कठोर कभी भी न बोलें ।
शत्रु मित्र को सम कर मानें, मानामान समान ही जानें ।।४६।।
स्तुति निन्दा में ही समचारी, राम प्रिय हैं सुभक्ति धारी ।
सब के सुहृद् सब के नेही, कर्म योग में जो रत वे ही ।।४७।।
तन धन अर्पण कर हितकारी, परम भक्त हैं सुख संचारी ।
राम रमे मन राम में राचे, राम रटें रसना से साचे ।।४८।।
ऐसे भक्त ईश के प्यारे, दीन हेत जिन सब कछु वारे ।
प्रेम पन्थ में पग को राखे, महा मधुर फल उन ने चाखे ।।४६।।
राम भरोसे काटें रातें, मधुर मृदु शुभ बोलें बातें ।
कोमल कर्म करें मन दे के, छके रहें हरि नाम को ले के ।।५०।।
रहना सहना जिन का सोहे, कहनी करनी जिन की मोहे ।
प्यारे भक्त राम गुण गाते, वे हैं भक्ति धर्म में माते ।।५१।।
स्नेह सने शुभ पाने वाले, प्रेम सुरस सरसाने वाले ।
परहित मेघ फिरें मण्डराते, भक्ति सुधा शुभ रस बरसाते ।।५२।।
राम भक्त हैं जाने ऐसे, जिन के कर्म हों ऊपर जैसे ।
हरि अर्पित मन धन निज देही, राम प्यारे जानिए वे ही ।।५३।।
पावें परम धाम सुखदाता, भक्ति धर्म का पालें नाता ।
पाप ताप उन पास न आवे, नाम रसायन जिन को भावे ।।५४।।

उपनिषत्सार

उपनिषदों का सार है, आत्म तत्त्व विचार ।
ब्रह्म ज्ञान विवेक से, तजना सर्व विकार ।।१।।
लखना आत्म-तत्त्व को, सूक्ष्म पाना भेद ।
हानि अविद्या अनर्थ की, करना पढ़ कर वेद ।।२।।
परा विद्या से जानना, ब्रह्म हरि भगवान् ।
आत्म तत्त्व विवेक को, कहना उत्तम ज्ञान ।।३।।
रहना समता भाव में, सब को सम ही जान ।
ईश अखण्ड उपास कर, करना अघ की हान ।।४।।
पार ब्रह्म उपासना, ध्यान धारणा संग ।
जाप पाठ हरि नाम का, करना धार उमंग ।।५।।
लीनता लाभ अनन्त में, कहा मुक्ति शुभ धाम ।
तीन गुणों को लांघ कर, पाना पद आराम ।।६।।
उपनिषद् का अर्थ यही, होना ईश समीप ।
बैठना ईश ध्यान में, लिए विवेक सुदीप ।।७।।
सार मर्म का कथन जो, वेद भेद जो सार ।
ब्राह्म भेद रहस्य जो, अर्थ यही मन धार ।।८।।
कहा समय रामायणी, राघव जनक सुकाल ।
जनक सभा में यह खुला, कोष परम सुविशाल ।।६।।
था भारत उत्कर्ष में, हर्षित थे सब लोग ।
पाप दोष थे दब रहे, न थे दुर्भिक्ष रोग ।।१०।।
ऐसे सुखमय समय में, मुनि मन पाते मोद ।
कर के वार्ता ईश की, अधिकारी को बोध ।।११।।

सीधे सच्चे सुसरल जन, कर्मी उपासक लोक ।
सत्संगों में बैठ कर, हरते संशय शोक ।।१२।।
राजे सज्जन साधु जन, सभी कहाते सन्त ।
आत्मा को जो खोजते, होते जो मतिमन्त ।।१३।।
कर्म योग था भक्तिमय, धर्म सभी का एक ।
जाति भेद की भावना, नहीं तब थी अनेक ।।१४।।
एक धर्म को मानते, पूजन करते ईश ।
गीत नृत्य सुध्यान से, ध्याते श्री जगदीश ।।१५।।
भक्ति सुशक्ति दोनों में, होते अति प्रवीण ।
वीर धीर बल बुद्धि युत, कभी न होते दीन ।।१६।।
मन मन्दिर में राधते, नारायण सब सार ।
ध्यान सुनाम उपासना, करते धैर्य धार ।।१७।।
लखते लीला अलख की, उत्तम पावन धाम ।
भीतर सूर्य चाँद सब, तारा गण अभिराम ।।१८।।
नाना खेल अगम्य के, नाना रूप सुरंग ।
नाना लोक सुनभ विमल, नाद सुरों के संग ।।१६।।
ऋषि जन जपते नाम को, धुन में रह एकान्त ।
सुनते वाणी अलख जो, परा नाम की, सन्त ।।२०।।
सूर्य लखते ईश जो, है तेजो भण्डार ।
ज्योतिर्मय जगदीश जो, सर्व सार का सार ।।२१।।
यह आदित्य उपासना, करते मुनि मन लाय ।
भीतर में सविता सभी, लखते ध्यान रमाय ।।२२।।
वह सूर्य है सर्व का, सब को देवे जोत ।
आदित्य विद्युत् में हरि, वही ओत है प्रोत ।।२३।।

गायत्री के गीत से, सदा पूजते देव ।
पूजन यह भगवान् का, था शुद्ध सत्यमेव ।।२४।।
नाम में कर सुधारणा, करते हरि का ध्यान ।
वाच्य वाचक को तथा, एक रूप ही मान ।।२५।।
वाचक में कर वाच्य मय, वृत्ति एकाकार ।
ऋषि मुनि भजते राम को, धृति धारणा धार ।।२६।।
उपासना का अर्थ है, अन्तर्मुख हो आप ।
बैठना हरि समीप ही, हरना मानस ताप ।।२७।।
भजना श्री भगवान् को, भाव भक्ति के साथ ।
जाप पाठ से पूजना, पतित सुपावन नाथ ।।२८।।
ऐसे नानोपासना, देखी सहित विधान ।
भक्ति धर्म ही जानिए, उन का सार बखान ।।२६।।

कर्म

उपनिषदों में धर्म बखाना, पूर्त इष्ट कर्म ही नाना ।
देव गुरु गुणी पूजन करणी, यज्ञ कर्म विधि इष्ट में वरणी ।।१।।
ध्यान ज्ञान उपासना सारी, इष्ट कर्म में जानो धारी ।
साधन सकल सुमंगल कारी, शुभ कर्म है भ्रम तम हारी ।।२।।
घाट कूप आराम बनाना, परहित सुख के स्थान रचाना ।
अन्न-सत्र रचना शुभ जानी, पूर्त कर्म कहें मुनि ज्ञानी ।।३।।
औषध दान से दुःख हटाने, सेवा से पर कष्ट भगाने ।
दीन हीन अनाथ उद्धारा, पूर्त कर्म सभी को प्यारा ।।४।।
मानव धर्म दान दया माना, दमन धर्म उत्तम ही जाना ।
प्रजापति ने यही बताया, सुधार सुमार्ग मुनिजन गाया ।।५।।

सत्य वचन स्वाध्याय निभाना, बाँधव सेवा में मन लाना ।
सदाचार शुभ कर्म सुहाने, धर्म के अंग मुनिजन जाने ।।६।।
निश्चय श्रद्धा सुभक्ति पूरी, सरल शीलता हो न अधूरी ।
आदर मान अतिथि को देना, सत्योपदेश गुणी से लेना ।।७।।
सन्तति सभ्य सुपठित बनानी, धर्म कर्म रत ज्ञान निधानी ।
यह है धर्म सन्त की वाणी, कह गये सर्व मुनिजन ज्ञानी ।।८।।
गुरुजन वे जो होवें ज्ञानी, ब्रह्म निष्ठ भक्त शुभ ध्यानी ।
श्रुति स्मृति शुभ पथ के ज्ञाता, पूजन योग्य पिता ज्यों माता ।।९।।
स्वार्थ रहित सहित सच ही के, कर्म विचार चरित के नीके ।
भ्रम तम संशय सब ही टारें, नाम सुनौका से जन तारें ।।१०।।
ऐसे सुगुरु पास ही जावे, विनय सहित निज सीस झुकावे ।
आदर दे कर करे जिज्ञासा, हरे नाम रस, चाख पिपासा ।।११।।
श्रद्धा भाव भक्ति को धारे, व्यर्थ वाद कुतर्क निवारे ।
पा आदेश करे शुभ करनी, पाप ताप संशय की हरणी ।।१२।।
प्रथम गुरु श्री माता माने, दूसरा गुरु पिता पहचाने ।
दे उपवीत जो शिक्षा देवे, दाता सुविद्या गुरु भी सेवे ।।१३।।
ईश सुनाम भक्ति का दानी, अध्यात्म गुरु जानिए ध्यानी ।
सत्य ज्ञान से हरे अन्धेरा, विमल भाव की करे सवेरा ।।१४।।
दे कर ज्ञान से हरे भय भारा, पाप कर्म का करे किनारा ।
नाम बीज हृदय में बोवे, जन्म मरण के बन्धन खोवे ।।१५।।
जैसे शाखा जीवित लागे, ऐसे जन गुरुवर से जागे ।
आत्मा बोधे समाधि दाता, शुभकारी भव भय से त्राता ।।१६।।
शिष्य पुत्र दोनों सम जाने, शुभ अधिकारी दोनों माने ।
अधिकारी उत्तम है सो ही, परम भक्त विनीत हो जो ही ।।१७।।

होवे ममक्ष मोक्ष को चाहे, शमता क्षमा दया मन लाये ।
सम सन्तोष सत्य शुभ पाले, स्वार्थ पाप दोष सब टाले ।।१८।।
भक्तिमान् भगवान् का प्यारा, कर्म बन्ध से करे निस्तारा ।
अपना आत्मा जाना चाहे, आत्मपद पहचाना चाहे ।।१६।।
प्रेम लीन शुभ मति सुविचारी, नेम धर्म सुव्रत का धारी ।
ऐसा जन जाना अधिकारी, परहित में रत पर उपकारी ।।२०।।

ब्रह्म ज्ञान

सत्य ही ज्ञान अनन्त स्वामी, सच्चिदानन्द हि अन्तर्यामी ।
त्रिगुणातीत अचल अपारा, उस का ही है विश्व पसारा ।।१।।
शुद्ध विमल हरि है अविनाशी, पूर्ण पुरुष प्रभु प्रकाशी ।
अखण्ड अतुल अगोचर सोई, सत्ता परम सदृश नहीं कोई ।।२।।
सकल जगत् में उस की जोती, चमके सुजीवन सत्ता होती ।
अमूल मूल ही सर्वाधारा, सब में रमा सभी से न्यारा ।।३।।
सब के पास दूर हरि जाना, भीतर बाहर एक समाना ।
कारण आदि जन्म जग का ही, है होगा पहले हरि था ही ।।४।।
ब्रह्म एक अद्वैत कहावे, वेद उसे निरपेक्ष बतावे ।
साक्षी रूप सर्व का ज्ञाता, कर्ता पुरुष सृष्टि का त्राता ।।५।।
परम धाम सब पालन हारा, सब में सब है न्यारा सारा ।
शासक धारक जग का जाना, दाता परम वही है माना ।।६।।
दया रूप वह देव दयाला, दिव्य रूप सुजन रखवाला ।
शून्य रूप वही है गाया, तेजोरूप कथन में आया ।।७।।
सभी ओर सब दिश में राजे, सभी लोक में एक विराजे ।
देश काल से न्यारा सोहे, प्रिय रूप प्रेमी मन मोहे ।।८।।

ऐसे हरि को मन से राधे, गुरु मुख से ले साधन साधे ।
वृत्ति नाम में खींच लगावे, सहज समाधि इसी से पावे ।।६।।
अरणी मथन से अग्नि जैसे, जगे ध्यान से आत्मा तैसे ।
बारम्बार मन को टिकाना, अर्थ मर्म अभ्यास का माना ।।१०।।
सुन कर शब्द मनन कर धारे, बार बार वह भेद विचारे ।
चिन्तन कर निश्चय में लावे, अचल धारणा ठीक जमावे ।।११।।
श्रवण बहुत मनन कर के ही, निदिध्यासन करे सत्य स्नेही ।
श्रुति वचन में निश्चय ला के, होवे तृप्त सुज्ञान को पा के ।।१२।।
भ्रम भित्ति को भेदन हारी, नाशक भव भय अविद्या भारी ।
पाप ताप सब मोचनकारी, ब्रह्म ज्ञान है विद्या सारी ।।१३।।
परम ज्ञान यह जो जन पाये, जन्म मरण उस पास न आये ।
हो मग्न राम रस ले के, पतित सुपावन में मन दे के ।।१४।।
ज्ञान वही दुःख हरण बताया, ब्रह्म ज्ञान तथा ही गाया ।
रहे तृप्त सदा इस में ही, विकसे ज्ञान यही जिस में ही ।।१५।।

ब्रह्म ज्ञानी

ब्रह्म ज्ञानी वह जन माना, सत्ता परम को जिस ने जाना ।
ब्रह्मनिष्ठ अविचल विश्वासी, ईश परायण दृढ़ अभ्यासी ।।१।।
हरि आश्रित सुकर्म कमावे, ध्यान समाधि में लय पावे ।
समझे सब में राम समाना, हरि को सब में जिस ने जाना ।।२।।
सम दृष्टि सुर सम जो सोहे, वीतराग जन मन को मोहे ।
पाप कर्म दुर्गुण से न्यारा, जितेन्द्रिय हरि जन का प्यारा ।।३।।
वृत्ति जीत वासना मारे, ब्रह्म ज्ञानी बहु जन तारे ।
राम भरोसे जीवन धारी, मद माया से हो न विकारी ।।४।।

सब द्वन्द्वों में जो सम राजे, जिस के मन में शान्ति विराजे ।
हठ अहंकार विवाद त्यागी, ब्रह्म ज्ञानी अति बड़भागी ।।५।।
संशय रहित भेद का वेत्ता, ब्रह्म ज्ञानी जन का नेता ।
वीतराग निश्चय का धारी, हरि जन का अहर्निश हितकारी ।।६।।
पर उपकार करे सुख माने, ऊँच नीच को सम ही जाने ।
हित मित भाषी सुविनय ज्ञाता, सभ्य सुशील दीन हित राता ।।७।।
निश्चल चित्त अमर पद भोगी, पुण्य रूप ही माना योगी ।
द्वेष रहित सभी से निराला, ब्रह्म लीन सुनिश्चय वाला ।।८।।
ब्रह्म ज्ञानी वही कहाया, आत्म-पद जिस जन ने पाया ।
दर्शी तत्त्व विमल मन का ही, शुचि कर्म सभी शुचि तन का ही ।।९।।

ब्रह्म पूजन

उपनिषद् में पूजन जाना, ध्यान आराधन चिन्तन माना ।
वृत्ति वश कर ध्यान रमाना, आत्म पद में चित्त टिकाना ।।१।।
पुण्य पाठ सुनाम का गाना, जपना जाप समाधि लगाना ।
सुख कर सुनना गीत सुहाना, उद्गीथ नाम सुनाद बखाना ।।२।।
हरि का नाम उद्गीथ बताया, साम रूप ऋषि मुनि मन भाया ।
शब्द सुनाद नाम ही जाना, वृत्ति सुरति उस में जमाना ।।३।।
ऐसे जो जन ध्यान लगावे, जीवन्मुक्त वही हो जावे ।
पाप धूल सुनाम से धो के, अमर बने निष्कर्मी हो के ।।४।।
होवे यदि कुछ सुकृत शेषा, पुण्य धाम पावे सुविशेषा ।
उत्तरोत्तर उन्नति पावे, परम धाम में अन्त समावे ।।५।।
करना संयम तन मन वाणी, करण विजय हरि पूजा जानी ।
श्रवण श्रुति शुभ पाठ प्यारा, हरि पूजन मुनि संघ उच्चारा ।।६।।

मात पिता गुरुजन को राधे, नियम कठोर सुसाधन साधे ।
त्याग तपस्या शील को पाले, यह पूजन दुष्कर्म को टाले ।।७।।
बार बार स्ववृत्ति मोड़े, नाम लक्ष्य में ऐसे जोड़े ।
ज्यों शर लक्ष्य में वीर लगावे, एक तार जैसे हो जावे ।।८।।
चिन्तन में वृत्ति हो ऐसी, शशि सूर्य में किरणें जैसी ।
लीन ध्यान में ऐसे होवे, ज्यों सुखी सुख नींद में सोवे ।।९।।
नल नाले ज्यों लय कर अंगा, गंगा में हो जाते गंगा ।
ब्राह्मी अवस्था त्यों जन पा के, परम सुरस ले ध्यान रमा के ।।१०।।
लीन राम में हो जन ऐसे, सरित् सिन्धु में होवे जैसे ।
मधु कोश में यथा रस नाना, बनें मधुरतम एक समाना ।।११।।
ब्राह्मी अवस्था ऐसी पावे, महा मधुर निज भाव बनावे ।
ज्योति में ज्योति हो ज्यों ही, रहे राम में भी जन त्यों ही ।।१२।।
अग्नि कण ज्यों कुण्ड में राजे, तथा राम में भक्त विराजे ।
अणु शिला में सोहे यथा ही, भक्त हरि में भी हो तथा ही ।।१३।।
पाँच तत्त्व की रचना जो ही, ब्रह्म इच्छा में होय सो ही ।
चिन्ते सब का एक सहारा, उस में लय उसी से पसारा ।।१४।।
यह पूजा दुःख हरिणी गाई, चिन्तन रूप महा सुखदाई ।
जो जन ऐसे ध्यान लगावे, विमल मुक्त वह ही हो जावे ।।१५।।

आत्म ज्ञान

आत्मा अजर अमर अविनाशी, ज्ञानरूप सद्रूप प्रकाशी ।
उस की सुसत्ता अमल बखानी, चेतन चित्त कहें मुनि ज्ञानी ।।१।।
सूक्ष्म भाव रहे अविकारी, प्रिय रूप सुन्दरता धारी ।
स्वतः प्रकाश सुज्योति गाया, अछिन्न रूप सुग्रन्थ बताया ।।२।।

काल से पार मरण न पाता, शुद्ध रूप चेतन है ज्ञाता ।
जले नहीं, न हनन ही होवे, चेतना जिस की कभी न सोवे ।।३।।
अक्षर अभय अखण्ड निरंशा, उस में भाव नहीं अंशांशा ।
निराकार ही तत्त्व कहावे, दिव्यरूप वर्णन में आवे ।।४।।
अस्ति रूप मुनि जन पहचाना, अनुभवी सन्त मुनि जन जाना ।
पाँच तत्त्व से कहा निराला, इच्छा रूप चित्त शक्ति वाला ।।५।।
नयन से देखे सुदर्शक प्यारा, छूए त्वक् से वही न्यारा ।
सुने वही वह ही है घ्राता, वह प्रमेय वही प्रमाता ।।६।।
वक्ता रूप वही शुभ माना, ज्ञान ज्ञेय का उस को जाना ।
मनन करे तब मन कहलावे, बोधन काल बुद्धि हो जावे ।।७।।
यह तो भेद देह में जाने, बद्ध जीव में ऐसे माने ।
जीव मुक्त की बात निराली, कहे वही जिस देखी भाली ।।८।।
विमल रूप ही वेद बखाने, अमल ज्ञानमय मुनिगण जाने ।
कही उसकी अगोचर वाणी, दृष्टि दिव्य सन्त जन जानी ।।६।।
लीला ललित अलख सुखकारी, अगम्य ज्ञान असंशय धारी ।
गति उस की निर्बाध विचारी, इच्छा रूप ही सूक्ष्म चारी ।।१०।।
बन्धन रहित सर्वथा गावें, मुनिवर सन्त भेद जो पावें ।
शक्तिमय शुद्धरूप बताया, सुखमय आत्मा ही समझाया ।।११।।
पूरा वर्णन किया न जावे, कर संकेत सुदेव बतावे ।
उस पद में शुभ मौन विचारा, वाणी विलास कथन ही धारा ।।१२।।
कहें विकार-जगत् को माया, चय उपचय सब इस में आया ।
पाकज है विकृत परिणामी, उत्पत्ति युत नाश अनुगामी ।।१३।।
जन्म मरण माया में जानो, काल काया में कल्पित मानो ।
दोष जन्म का कारण गाया, अज्ञान अविद्या भी समझाया ।।१४।।

अपने आप की भ्रांति भारी, यह ही अविद्या कही हत्यारी ।
आत्म ज्ञान विवर्जित जो ही, ज्ञानी कहें अज्ञानी सो ही ।।१५।।
वश अज्ञान कर्म करे ऐसे, जो हों, पाप दोष हों जैसे ।
उन से बढ़े वासना भारी, आत्मा हो तभी कुसंस्कारी ।।१६।।
बंध के कारण वे कहाते, आत्मा पर परदे बन जाते ।
इस से जन्म मरण की माला, पड़े कुगति का परदा काला ।।१७।।
जन्म जन्म में फिरता डोले, कर्म काल वश ही वह हो ले ।
पुण्य कर्म से नर तन पावे, स्त्री जन्म जो शुभ ही कमावे ।।१८।।
तन में सांस सहित ही आवे, प्रभु नियम से ही बस जावे ।
आय सांस हो उस का आना, जाय सांस हो जीव का जाना ।।१९।।
सांस साथ है उस की लीला, हरि का नियम नहीं है ढीला ।
प्राणापान सुताना बाना, चले जभी जब जीव बसाना ।।२०।।
सत्य सिद्धान्त सन्त जन देखा, जैवी जीवन का ही लेखा ।
आत्मा रमा देह में धारो, तिल में जैसे तेल विचारो ।।२१।।
घृत दधि में जैसे रमाया, तथा देह में जीव समाया ।
पाँच कोश में बसता ऐसा, विद्युत् वेग कोश में जैसा ।।२२।।
है पर तत्त्व कोश से न्यारा, नेति नेति कह संत पुकारा ।
पूले से तृण ज्यों निकाले, तत्त्व से भिन्न जीव ही भाले ।।२३।।
आत्म-ज्ञान जभी हो जाता, कर्म भोग का मिटता नाता ।
कर्म बंध विनाश हो भारी, दग्ध बीज वत् माया सारी ।।२४।।
ग्रन्थि भ्रम संशय की नाशे, विमल आत्मा आप प्रकाशे ।
यह है ज्ञान सार-मय सारा, इस को पा कर पाय निस्तारा ।।२५।।

उपदेश मञ्जरी

ग्रन्थ पाठ

श्री परमात्म-देव का, नाम चित्त में धार ।
कहूँ उपदेश मंजरी, शिक्षा रूप ही सार ।।१।।
प्रातः सायं सिमरिये, मंगल रूप सुनाम ।
मन मन्दिर में मधुर-तम, राम राम ही राम ।।२।।
नित्य सावित्री जाप ही, करिए सायं प्रात ।
मन तन से शुचि हो सदा, यही सार की बात ।।३।।
गायत्री के सुपाठ से, जगे ज्ञान की जोत ।
बुद्धि शुद्धि निर्मल बने, बहे प्रेम का स्रोत ।।४।।
पढ़े पाठ शुभ ग्रन्थ का, मन वाणी के साथ ।
आदर श्रद्धा भाव से, जान प्रेम का पाथ ।।५।।
सदाचार को दान कर, भक्ति भाव उपजाय ।
आत्म ज्ञान बढ़ाय जो, वह सुग्रन्थ कहलाय ।।६।।
वीतराग का ग्रन्थ जो, पक्षपात से हीन ।
अनुभवी जन का सुकथन, कहा अति समीचीन ।।७।।
जिस में होवे भजन रस, प्रेम भक्ति का भाव ।
करे पाठ उस ग्रन्थ का, मन में धर कर चाव ।।८।।
नित्य नियम से कीजिए, उस का पाठ विचार ।
उत्तम ग्रन्थ-सुपाठ से, मिटते सर्व विकार ।।९।।
उत्तम पुस्तक पाठ से, बढ़ें बुद्धि बल ज्ञान ।
नीति रीति विचार सभी, धर्म विवेक निधान ।।१०।।
जैसे पुस्तक पाठ से, शीघ्र ज्ञान बढ़ाय ।
दूसरा ऐसा और न, ज्ञान विज्ञान उपाय ।।११।।

भाव उत्तेजित हों भले, समझ विमल हो जाय ।
विलसे ऊहापोह भी, प्रतिभा कलि विकसाय ।।१२।।
ग्रन्थ कोश है रत्न का, हीरे विमल विचार ।
नित्य पाठ से लीजिए, दोनों हाथ पसार ।।१३।।
पाप पंक अज्ञान गली, निशा अविद्या घोर ।
ग्रन्थ सुदीपक ले चले, देखे चारों ओर ।।१४।।
अंधकार अविवेक का, गाढ़ रहा हो छाय ।
ग्रन्थ दीप की जोत से, सर्व-नाश को पाय ।।१५।।
महा रोग दुष्कर्म का, तन मन को दे पीर ।
औषध पुस्तक पाठ से, होवे शुद्ध शरीर ।।१६।।
नित्य सवेरे कीजिए, ग्रन्थ गंग में स्नान ।
भीतर बाहर विमल कर, जन हो संत समान ।।१७।।
बहुत जनों की खोज को, जाने एक तुरन्त ।
ग्रन्थ पाठ का महा फल, कह गये साधु सन्त ।।१८।।
अनुभवी ज्ञानी सुनिपुण, विरले मिलें महान् ।
चन्दन के न पेड़ सब, न सब रत्न की खान ।।१६।।
सज्जन ऐसे शिरोमणि, लिख गये सच्चे ग्रन्थ ।
उन के पाठ विचार से, मिलता उत्तम पन्थ ।।२०।।
सुनिए सुन्दर पाठ को, नित्य सन्त पै जाय ।
श्रुति मर्म को समझिए, ध्यान चित्त को लाय ।।२१।।
सुन कर उत्तम ग्रन्थ को, अर्थ समझिए गूढ़ ।
मर्म अर्थ जाने बिना, मानव माना मूढ़ ।।२२।।
तर्क खोज से मानिए, कर के मनन विचार ।
पूर्वापर के लेख का, समझे सुन्दर सार ।।२३।।

निदिध्यासन हो अति भला, सुदृढ़ निश्चय जोय ।
फल स्वाध्याय सुपाठ का, कहा स्वादुतम सोय ।।२४।।
श्रवण मनन निश्चय शुभ, ये तीनों फल मान ।
शास्त्र पुस्तक पाठ के, ऋषि जन किये विधान ।।२५।।

सत्संगति

जाइए शुभ सत्संग में, करिए निर्मल अंग ।
श्रद्धा भक्ति सुकर्म की, मन में लाय उमंग ।।१।।
साधु वही जन जानिए, जो साधन को साध ।
सेवा भक्ति मिलाप से, हरे पाप अपराध ।।२।।
जो जन कीर्तन कर्म में, भजन जाप कर ध्यान ।
रत रहते उपकार में, साधु सन्त पहचान ।।३।।
सज्जन सत्य-स्नेही जन, सभ्य सुशील सुजान ।
समदृष्टि सत्पुरुष है, सरल सच्चा गुणवान् ।।४।।
सन्त सुशीतल चांद है, चन्दन लेप समान ।
उस की संगति मानिए, धर्म कर्म की खान ।।५।।
सत्संगति तो वह कही, जिस में मीठा प्यार ।
होवे कीर्तन पाठ शुभ, भक्ति प्रेममय सार ।।६।।
श्रद्धा निश्चय मेल हो, विनय सत्य आचार ।
रीति नीति भी हो जहां, संगति वही विचार ।।७।।
उन्नति जीवन में बसे, बढ़े भक्ति का पूर ।
चित्त में चारु चांदना, हो दुर्मति सब दूर ।।८।।
संघ-शक्ति में पुष्टि हो, बढ़े एकता भाव ।
सत्संगति वही समझिए, हरती सकल कुभाव ।।९।।

साधों के शुभ संग में, झड़ी रहे दिन रात ।
बरसें बादल प्रेम के, शान्त करें सब गात ।।१०।।
सन्तों के सत्संग से, ज्ञान-नयन ले अन्ध ।
जीवन भरे समीर शुभ, चल कर मन्द सुगन्ध ।।११।।
दुर्जन ही सज्जन बने, सन्त संग को पाय ।
यथा सीप में सुगम से, शुभ मोती बन जाय ।।१२।।
ऊँच संग से नीच जन, बने उत्तम तत्काल ।
कोयला भूमि में पड़ा, बनता हीरा लाल ।।१३।।
सज्जन के शुभ संग से, नीच ऊँच कहलाय ।
कुसुम संग से सूत भी, शिर पर शुभ लहराय ।।१४।।
जिस से बहु बन्धन बनें, वह माला में आय ।
तागा उत्तम बन गया, कण्ठ में रहा सुहाय ।।१५।।
सन्तों के सत्संग में, जाय नित्य ही धाय ।
मज्जन गंगा ज्ञान में, करिए अवसर पाय ।।१६।।
जैसे शीतल सलिल से, शुचि शीतल हों अंग ।
शुचि शीतल मन को करे, ऐसे सन्त सुसंग ।।१७।।
ज्यों फूलों के संग से, होय सुगन्धित तेल ।
कुकर्मी धर्मी बने तथा, पा कर सज्जन मेल ।।१८।।
जंगम तीर्थ सन्त है, राम नाम है गंग ।
गोते बहुत लगाइए, निर्मल हो अन्तरंग ।।१६।।
चंदन सम ही संत है, सुगन्धि राम सुप्यार ।
पाओ पूजा जो करो, वा कुवचन प्रहार ।।२०।।
पुष्प को ज्यों निचोड़िए, निकले उस का सार ।
सन्तों को ज्यों सेविए, देवें ज्ञान विचार ।।२१।।

उत्तम सन्त किसान है, हित का हल हि चलाय ।
सोधे हृदय खेत को, बीज सुनाम रमाय ।।२२।।
धोबी सम शुभ सन्त है, साबुन कर्म लगाय ।
श्रद्धा शीतल सलिल में, मन को विमल बनाय ।।२३।।
काम धेनु सम सन्त है, चिन्ता-मणि सम जान ।
पूर्ण करे सुकामना, मुख-मांगा दे दान ।।२४।।
कर्म धर्म में हो भला, पावे जो शुभ संग ।
उस पर भक्ति प्रेम का, चढ़े कुसुम्भी रंग ।।२५।।
सन्त संग में बैठ कर, सोधे मन तन चाल ।
अश्व हस्ति जब ही सधे, सुन्दर चले सुचाल ।।२६।।
जावे सन्त समीप ही, पाय प्रेम प्रसाद ।
राम सुनाम पपोल कर, रसना लेवे स्वाद ।।२७।।
सत्संगति है धर्म की, ज्ञान भक्ति की खान ।
सेवा पर उपकार की, मेल प्रेम की प्राण ।।२८।।
कारण, वेश न सन्त का, पंथ नहीं पहचान ।
रहे रमा हरि नाम में, वही संत जन जान ।।२९।।

सज्जन

सज्जन वही सराहिए, जो देवे शुभ भाव ।
जिस के मेल मिलाप से, बढ़े गुणों में चाव ।।१।।
सत्यवादी सुकर्मी जन, कहना पालन हार ।
सदय हृदय जन ही कहा, सज्जन शुभ गुणकार ।।२।।

दान करे भली सम्मति, स्वार्थपरता तोड़ ।
मत देवे हितकर सदा, पक्षपात को छोड़ ।।३।।
अन्दर बाहर एक हो, सो सज्जन कहलाय ।
हार्द छुपावे जो जन, दुर्जन वही कहाय ।।४।।
पोने सम सज्जन कहा, पुने सार तज फोक ।
वार्ता कहे विचार कर, हरे मानसी शोक ।।५।।
सज्जन समझा न्यारिया, सुगुण स्वर्ण निथार ।
कण कण लेवे देख कर, अवगुण बालू टार ।।६।।
सज्जन स्वर्ण-कार सम, दोष निकाले खोट ।
बुद्धि सुमति कुन्दन करे, दे कर सम्मति चोट ।।७।।
सज्जन संगति पाय कर, बढ़े ज्ञान अनुराग ।
वनराजी जैसे खिले, पाय वसन्त सुफाग ।।८।।
बन कस्तूरी कपूर सम, सज्जन देत सुगन्ध ।
हरि सिमरन शुभ कर्म से, कर कुवासना मन्द ।।६।।
क्षीर नीर वत् भिन्न कर, सुजन दिखावे सांच ।
यथा परख दे जौहरी, रत्न मणि और कांच ।।१०।।
सज्जन जन के मेल में, द्रोह भय नहीं आय ।
जैसे सूर्य किरण में, तम न आश्रय पाय ।।११।।
सज्जन शुभ को सेविए, वृक्ष विशाल समान ।
दैव योग से फल नहीं, छाया अवश्य जान ।।१२।।
सदा संगति रहे भली, यदि सज्जन सहवास ।
मिले पुण्य शुभ कर्म से, सर्व सुखों की रास ।।१३।।

मित्र

[illegible]

मित्र दो अक्षर प्रेममय, मोद मंगल विश्राम ।।१।।

हितकारी हो विमल मति, शुभ मति दे जन जोय ।

अस्वार्थी हो साथी शुभ, मित्र कहावे सोय ।।२।।

सुख दुःख में जो साथ दे, कभी न खोले भेद ।

छिद्र छल से रहे परे, मित्र हरे सो खेद ।।३।।

देवे लेवे वस्तु जो, कहे सुने सब बात ।

खाय खिलाय सरल सुजन, रहे मित्र दिन रात ।।४।।

करिए उस से मित्रता, जो होवे गुणवान् ।

मूर्ख मित्र महा बुरा, करे प्राण की हान ।।५।।

जिस में होवे प्रेम रस, शुद्ध सरल स्वभाव ।

सेवक ज्ञानी मित्र है, जानो अन्य दिखाव ।।६।।

मुख विकसित आँखें विमल, वचन मधुर हितवान् ।

सच्चा स्नेही सुमित्र है, जो गुण करे बखान ।।७।।

भाषा भाव सुकर्म गुण, वेश खान भी पान ।

मिले देश उद्देश जहाँ, प्रीति वहीं पहचान ।।८।।

धर्म बसावे मित्र में, कहा मित्र का काम ।

दोष करावे दूर सब, बने प्रेमी निष्काम ।।६।।

गुप्त बतावे दोष जो, जन में गुणगण गाय ।

मधुर मित्र वह मानिए, काम कष्ट में आय ।।१०।।

जिन की आयु समान हो, धन पद सम हो ज्ञान ।

मैत्री उस की मधुर है, विषम, विषम में जान ।।११।।

अपने अवगुण दोष को, मित्र दर्श में देख ।
मित्र नयन से देखिए, अपने कर्म कुलेख ।।१२।।
कटुतर कष्ट क्लेश में, व्याधि विपद् के बीच ।
शरण भरोसा मित्र है, हर्ता कष्ट का कीच ।।१३।।
लाभ लोभ के मित्र बहु, स्वार्थ के हैं दास ।
सूखे तरु को पंछी ज्यों, तज दें मीत निवास ।।१४।।
क्षीण दीन जन पास ही, सगा स्नेही न आय ।
शुष्क सरोवर के निकट, प्यासा कभी न जाय ।।१५।।

गुणी

पूजें गुणी जन को सब, निर्गुण पाय न मान ।
बिके न घुँघरू से सज, घोड़ा अवगुण खान ।।१।।
गुण भीतर में चाहिए, बाहर रूप अकाम ।
मणि सम चमके कांच भी, पाय सम नहीं दाम ।।२।।
ऊँच नीच पद में सदा, शोभे जन गुणवान् ।
रत्न मुकुट में हार में, पग में रहे समान ।।३।।
गुण होवे यदि देह में, देवें सब सम्मान ।
थैली रजत सुवर्ण की, खाली रुलती जान ।।४।।
गुणी जन का ही मान है, अवगुण का अपमान ।
फूटा ढोल बजाइए, कोई धरे न कान ।।५।।
रोके रुकें न गुण कभी, बल से विकसें आप ।
कस्तूरी की सुगंधि को, सकता रोक न शाप ।।६।।
बार बार दुःख दीजिए, तदपि गुणी गुण देय ।
गन्ना छील के पेर के, मधुर स्वादु रस लेय ।।७।।

पावे गुण को यत्न से, संग गुणी के बैठ ।
सुशिष्य बन कर पाइए, पण्डित पन की पैंठ ।।८।।
मिलें रत्न गुण जहाँ से, लेवे हाथ पसार ।
काढ़े कंचन पंक से, हीरा मणि संवार ।।९।।
गुण की महिमा जगत् में, मिथ्या वंश अभिमान ।
कीट, कमल में जन्म कर, पा सके नहीं मान ।।१०।।
गुण से ऊँचा जन बने, नहीं वंश का काम ।
यादव कुल में जन्म ले, कंस गया यम धाम ।।११।।
पुजे नहीं आसन कभी, पुजे गुणी बड़ भाग ।
कल्प वृक्ष पर बैठ कर, रहे काग ही काग ।।१२।।
गुणियों से अनुराग कर, अवगुण का कर त्याग ।
सज्जन संगति में सदा, बसे प्रेम का राग ।।१३।।

निर्गुणी

अगुणी कपटी जन कहा, निन्दक मूर्ख मूढ़ ।
मुखर चुगल द्रोही बड़ा, हठ पर रहता रूढ़ ।।१।।
निर्गुण का संग न करो, भले मरो जग बीच ।
कपड़ा तो मैला भला, बिना डुबोया कीच ।।२।।
निन्दक काला कोयला, कालख का घर मान ।
उस के साथ मिलाप से, होत सवाई हान ।।३।।
निर्गुण जन की संगति, विष की विस्तृत बेल ।
छूने से हरती सदा, जीव प्राण का मेल ।।४।।
मूर्ख जन ही मानिए, विषधर काला नाग ।
प्राण हरे स्व-संग से, करे भस्म ज्यों आग ।।५।।

आडम्बर से मूढ़ को, सुगुणी कहे न कोय ।
सम पंखों से काक वक, कोयल हंस न होय ।।६।।
मूर्ख का मुख धनुष है, बाण विषैली बात ।
स्व पर जन की वह करे, इस से अहर्निश घात ।।७।।
मूर्ख जन जानो भला, जभी न बोले बोल ।
भूँडा लगता कान को, बजता फूटा ढोल ।।८।।
समझाना अति-मूढ़ को, मानी भारी भूल ।
वक पै मोती डालना, है सुमति प्रतिकूल ।।६।।

अधिकारी

अधिकारी जन चार हैं, नाम ध्यान के जान ।
प्रेमी मुमुक्षु धर्म धनी, जो माने भगवान् ।।१।।
सो ही जिज्ञासु जानिए, करे मोक्ष की चाह ।
प्रेम लगन में रत रहे, पाय धर्म की थाह ।।२।।
राम नाम में मधुरतम, जो माने सुख स्वाद ।
श्रद्धा निश्चय परम से, रत हो रहित विवाद ।।३।।
जन सो जिज्ञासु समझिए, राम नाम का मीत ।
अधिकारी ऐसा भला, जाय जन्म को जीत ।।४।।
जिज्ञासु को ही दीजिए, नाम रत्न अनमोल ।
अन्-अधिकारी सामने, पूँजी कभी न खोल ।।५।।
पा प्रथम अधिकार को, भूमि चित्त संवार ।
बीज पड़े पीछे तभी, पाय अंकुर विस्तार ।।६।।
सब ही साधन साध कर, पावे जन अधिकार ।
सिमरन ध्यान लगाइए, फल पाइए अपार ।।७।।

कम्बल काले पर नहीं, बसे वसन्ती रंग ।
अन-अधिकारी को कभी, मिले न मार्ग ढंग ।।८।।
बासन ककर से भरा, खाली कारिए शोध ।
पीछे मोती डालिए, ऐसे मन में बोध ।।६।।
लसुन हींग के घड़े में, कस्तूरी का न स्थान ।
दुष्ट भाव से मन भरा, पाय न नाम सुज्ञान ।।१०।।
खा कर खुर्चन अति जली, रुचे न मोहन भोग ।
पाप वासना से भरा, मन पाय नहीं योग ।।११।।
बर्तन में बालू भरा, कहां समावे खाण्ड ।
नाम बसे कैसे वहां, जहां हो कुमति काण्ड ।।१२।।
ऊसर भूमि में न कभी, सुबीज अंकुर लाय ।
प्रेम भक्ति से हीन जन, नाम सुमर्म न पाय ।।१३।।
सर्व कुसंगति छोड़िए, संशय कर के दूर ।
संगति शुभ में नाम ले, पाय प्रेम का पूर ।।१४।।
जो जन भटके स्थान सब, एक न निश्चयवान् ।
धोबी का कूकर बना, बिना घाट घर जान ।।१५।।
करे चटोरा चातुरी, सभी चाट को चाट ।
गुरु-जनों से न ले सके, मुक्ति धाम की बाट ।।१६।।
राम नाम को लाभ कर, फिर घर और न देख ।
व्यभिचारिन हो न सती, इस में मीन न मेख ।।१७।।

सेवक

सेवक श्लाघा योग्य है, जो साधे शुभ काम ।
मनसा वाचा कर्मणा, कर सेवा सब याम ।।१।।

सेवक में हों आठ गुण, उद्यम सहित अमान ।
भक्ति स्तुति शुभ चतुरता, सेवा विनय सुज्ञान ।।२।।
पांच प्रिय जन हैं कहे, धन तन मन दातार ।
उपकारी जन समझिए, पंचम सेवा-कार ।।३।।
शान्त विनीत सुशील हो, करे सभी शुभ काम ।
स्वार्थ तज सेवा करे, चाहे नाम न दाम ।।४।।
रहित कपट छल छिद्र से, कर्मी विश्वासी एक ।
सेवक सौ से है भला, जो पाले निज टेक ।।५।।
सेवक तो बहुते बनें, देख बनी की बात ।
सेवक सुजन सराहिए, जाने धूप न रात ।।६।।
आज्ञा माने हर्ष से, पा कर शुभ आदेश ।
रहे मर्यादा नियम में, शिष्ट बने सुविशेष ।।७।।
हाथ जोड़ वन्दन करे, उठ कर देवे मान ।
ऊंचा आसन त्याग दे, स्वामी सम्मुख जान ।।८।।
रक्खे हर्षित कमल मुख, कर्म कठिन को पाय ।
सेवा में न सड़े कुढ़े, मन में न पछताय ।।६।।
बोले वचन न कभी कटु, कभी न हो वाचाल ।
सुन आदेश न चुप रहे, राखे विकसित भाल ।।१०।।
सच्चा सुसेवक समझिए, न दे प्रभु का भेद ।
निन्दा करे न भूल कर, लाय न मन में खेद ।।११।।
छलनी सम सेवक बुरा, सार भेद दे खोल ।
पर घर का कूकर बने, द्रोही बन ले मोल ।।१२।।
मर जावे माने नहीं, करना स्वामी घात ।
निजू प्रभु की गुप्ततम, कभी न बोले बात ।।१३।।

सिर दे कर सेवा करे, सो सेवक सरदार ।
ऐसी सेवा सत्य ही, करे स्वर्ग सब पार ।।१४।।
सेवक मेरे राम के, सुगड़ सियाने लोग ।
भजन पाठ उपकार कर, हरते स्व पर सोग ।।१५।।
उत्तम सेवक राम के, रहते सदा निष्काम ।
सन्त जनों की जूतियां, बनें दिये स्वचाम ।।१६।।
भजन करें दिन रात ही, अपना राम रिझाय ।
मग्न रहें स्वकर्म कर, रूखा सूखा खाय ।।१७।।

सूरमा

शूर वही संसार में, जो स्वार्थ को छोड़ ।
अत्याचार ही पाप का, कोट किला दे तोड़ ।।१।।
वीरों पर निर्भर करे, देश धर्म धन मान ।
बल तेज स्वतन्त्रता, वंश व्यापार विधान ।।२।।
सूरमा जानो वह जन, जो जीवन कर दान ।
करे सुरक्षित जाति धर्म, बने बली बलिदान ।।३।।
अपने स्वार्थ मान को, तन मन धन को वार ।
बने सूरमा भक्त जन, करे राम की कार ।।४।।
सिर देवे सो सूरमा, सत्य धर्म के हेत ।
बीज गले जब खेत में, तभी फले शुभ खेत ।।५।।
अपना आप गलाइए, सत्य धर्म के बीच ।
हरे भरे जन देश हों, उपजे भाव न नीच ।।६।।
बलिदान बने यज्ञ में, जो है धर्म विचार ।
प्याला पी कर प्रेम का, बने सूरमा सार ।।७।।

शूर वीर का धर्म है, लड़े दीन के काज ।
सत्य सनातन धर्म हित, सजे सत्य का साज ।।८।।
अबल दीन को मारना, गिना पतित का काम ।
डरे अन्याय अपराध से, जाने स्वामी राम ।।६।।
डरिए अत्याचार से, करिए कर्म न घोर ।
महाराजा श्री राम है, रहिए उस की ओर ।।१०।।
पर पूँजी अधिकार को, जो मारे जन अन्ध ।
कायर कपटी क्रूर जन, भरा दुर्गुण दुर्गन्ध ।।११।।
स्वार्थी कुत्ता काक और, स्यार गीध हैं एक ।
इन के भीतर लोभ है, भरे विकार अनेक ।।१२।।
यथा बत्ती जन ही जले, पर के चाँदन हेत ।
कटवाय शिखा दीपवत, सीस सत्य के खेत ।।१३।।
केला कटने से बढ़े, बने सुकदली कुँज ।
शूरों के बलिदान से, बढ़े प्रेम का पुंज ।।१४।।
ज्यों तरु शाखा काटिए, पाय पेड़ विस्तार ।
सूरमों के सुत्याग से, बढ़े वीर व्यापार ।।१५।।
सूरमा सो सराहिए, राम भजे तज पाप ।
सेवा करे सुभाव से, सर्वथा हो निष्पाप ।।१६।।
सब जग मारा लोभ ने, द्रोह द्वेष ने जान ।
इन्हीं को मारे जो जन, वही सूरमा मान ।।१७।।
पाप वासना सब बुरी, ध्यान किले में घेर ।
राम नाम के वाण से, करे सूरमा ढेर ।।१८।।
अविद्या घोर अज्ञान के, गढ़ कोटों को गेर ।
ठीक सूरमा सम करे, नाम सुदर्शन फेर ।।१६।।

स्वामी

जो सेवा जाने नहीं, स्वामी न सत्यमेव ।।१।।
जितनी जन सेवा करे, उतना बड़ा कहाय ।
बिन सेवा जो हो बड़ा, वह छोटा बन जाय ।।२।।
आदर स्वामी दे उसे, कर के सेवा आप ।
आप तपे उस ताप से, सेवक को जो ताप ।।३।।
वाह वाह सम्मान सुख, श्लाघा दान उत्साह ।
देवे स्वामी प्रेम से, बढ़ा कर्म में चाह ।।४।।
सेवक सच्चा शरणागत, हित रत चतुर विनीत ।
स्वामी त्यागे उस को न, पाले उत्तम रीत ।।५।।
सेवक सुरक्षा हेत ही, हो जावे बलि-दान ।
उस के कारण भी सहे, बहुत कष्ट अपमान ।।६।।
ऐसा स्वामी है भला, जो ही कराय काम ।
सेवक के हित धर्म के, जिन से रीझे राम ।।७।।

नेता

नेता सुनीति में निपुण, न्याय नियम की आन ।
चतुर कुशल हो कर्म में, जाय काल पहचान ।।१।।
मार्गदर्शक ही बने, दिव्य ज्योति का स्तम्भ ।
जाति धर्म स्वदेश के, करे काम आरम्भ ।।२।।
करते चूके न सुचतुर, प्रतिपक्षी पर चोट ।
वचन कहे गिन तोल कर, लिये युक्ति की ओट ।।३।।
काल अनुकूल को ताक कर, करे युक्ति प्र-हार ।
तप्त सुधातु का खिंचे, इच्छित लम्बा तार ।।४।।

करे न ऐसी प्रेरणा, जो हो सके न मूल ।
बाहर बल से काम को, है करना अति भूल ।।५।।
नेतृत्व नेता करे, कर्म कुशल जो होय ।
देश काल बल देख कर, सम्मति देवे सोय ।।६।।
नेता वेत्ता काल का, जेता पर को वीर ।
भेत्ता पर बल दुर्ग को, बुद्धि-युक्त हो धीर ।।७।।
नेता नयन सुबैन हैं, जाति जनों के लोग ।
स्वार्थ हठ अभिमान का, जिन्हें न व्यापे रोग ।।८।।
नेता दें हि चढ़ा शिखर, जो हो सम्मति एक ।
पतन रसातल में करें, फूटे हुए अनेक ।।६।।
पथ मति सम्मति एक हो, एक उपाय उद्देश ।
तार एकता में बन्ध, नेता हरते क्लेश ।।१०।।
फूट कलह कर जो लड़ें, कर निन्दा दें दोष ।
आपस में भिड़ते रहें, वही बढ़ायें रोष ।।११।।
नेता मेरे राम के, हैं ये चतुर सुजान ।
जिन में प्रीति सुलगन है, जिन के मन भगवान् ।।१२।।

एकता

एक भाव भाषा जहां, वेश देश हो एक ।
भोजन सुधर्म एक हो, वहीं ऐक्य विवेक ।।१।।
स्वार्थ सांझे हों जहां, हो सुमिलित व्यापार ।
सम ही सुख दुःख हों जहां, वहां एकता प्यार ।।२।।
यथा राघव सुग्रीव का, सम दुःख में हो मेल ।
सम भय हानि विपत्ति में, बसे मेल का खेल ।।३।।

स्व-जातीय सधर्मी में, हो एक्य ही जाय ।
इन में हो जब विषमता, तभी फूट फल लाय ।।४।।
ज्ञान बढ़ावे एकता, धर्म जाति के भाव ।
सेवा पर उपकार भी, उन्नति प्रेम बनाव ।।५।।
एकता में सुगुण बसें, जन-हित प्रेम विशेष ।
विजय विद्या कौशल सभी, उन्नत होवे देश ।।६।।
तारें कच्चे सूत्र की, मिल बान्धें गजराज ।
तृण रस्से का रूप धर, रखते बान्ध जहाज़ ।।७।।
लोहे के कण खान से, निकलें रेत समान ।
मिल जुल कर संघट्ट हो, थाम्भे बोझ महान् ।।८।।
एक एक ही बूँद मिल, बने नदी नद सिन्ध ।
सुजन एकता में मिले, जीतें द्वेषी-वृन्द ।।९।।
नभ से गिर बून्दें मिलें, बने नदी का पूर ।
कोट किले ढाहे बड़े, पर्वत कर दे चूर ।।१०।।
वंश, कलह से नष्ट हो, कौरव रावण देख ।
फूट बिगाड़े देश को, जय-चन्द्र का लेख ।।११।।
कलह अग्नि सुलगाय कर, जन करते निज-नाश ।
घर में आग लगाय कर, कौन करे सुख आश ।।१२।।
अपने भीतर से हिले, उबल डूबते द्वीप ।
अपने घर को आग से, अपना जलाय दीप ।।१३।।
अपने घर की अति कलह, बढ़ी करे घर हान ।
अपने तन की उष्णता, बढ़ कर हरती प्राण ।।१४।।
आपस ही की फूट में, गये कोट गढ़ टूट ।
धन सम्पत् सब ले गये, चोर लुटेरे लूट ।।१५।।

शोभे मोती अखण्ड हि, फूटे का क्या दाम? ।
फूट में जाति हो रहे, पर पैरों का चाम ।।१६।।
बुरी घरेलू फूट है, खोल दिखावे पोल ।
कार्य सारे नष्ट कर, रखती नाम न मोल ।।१७।।
आपस में मिल कर रहो, राम भजो ले नाम ।
एकता बने अभंग तब, आत्मा पाय विश्राम ।।१८।।
सब से हिल मिल कर रहो, भक्ति प्रेम कर मेल ।
चार दिनों का खेल है, करो न ठेलम ठेल ।।१६।।
अपने सम सब समझिए, सभी राम के पूत ।
बनिए माला मेल में, काम मधुर हों सूत ।।२०।।

मूर्ख

मूर्ख मेल महा बुरा, है सर्प संग खेल ।
तृण ढका वह कूप है, कांजी दूध विमेल ।।१।।
मूर्ख के ये चिन्ह हैं, करे अकारण वैर ।
कुरीति कुनीति में चले, धरे धर्म पर पैर ।।२।।
शुभ सम्मति को त्याग कर, चले कुमति की चाल ।
मन माने कार्य करे, सोच समझ को टाल ।।३।।
कलह करे हठ धार कर, बोले वचन कठोर ।
मन-मुखिया द्वेषी बना, करे हत्या अति घोर ।।४।।
हानि लाभ की समझ से, धर्म कर्म से हीन ।
पुण्य पाप के भेद से, कोरा अकर्मी दीन ।।५।।
मूर्ख को समझाइए, सौ सियाने बुलाय ।
नहीं हो चिट्टा कोयला, सारा साबुन लाय ।।६।।

दुर्जन पूर्ण है बड़ा भीतर भरा विकार ।
अपना बन हानि करे, करे गुप्त ही वार ।।७।।
दुर्जन के मन में भरा, विषम वैर भरपूर ।
काल कूट सम समझ कर, करिए उस को दूर ।।८।।
दुर्जन जन वह जानिए, मुख पर करे बखान ।
फिरे पीठ निन्दा करे, करे समय पर हान ।।९।।
दोष लगावे आप ही, कहे और का नाम ।
हितकर बाहर से बने, छुपा बिगाड़े काम ।।१०।।
चापलूसी कर के अति, गाढ़ दिखावे प्रीत ।
छली कपट अति द्रोह से, चले सदा विपरीत ।।११।।
दुर्जन विष का कुम्भ है, ढका दूध से जान ।
मधु लिपटी तीखी छुरी, भुज के सर्प समान ।।१२।।
दुर्जन देखे दोष को, मक्खी यथा ही घाव ।
बिल्ली चीते सम चले, घोर घात के दाव ।।१३।।
मूर्ख मारे मित्र बन, बार बार सौ बार ।
मूर्ख कपटी वश पड़े, को राखे कर्तार ।।१४।।

चतुर जन

चार चिन्ह शुभ चतुर के, चीन्हे जन गुणवान् ।
चाल बचावे अन्य की, कर के ज्ञान विधान ।।१।।
पारख परले पार का, खरा खोट ले जान ।
हानि हत्या न होने दे, बने सजग गुणवान् ।।२।।
पर मन में प्रवेश कर, मित्र सखा बन आप ।
उस के अन्तःकरण में, जावे तुरत व्याप ।।३।।

मुख-मण्डल प्रसन्न हो, यथा गुलाबी फूल ।
मृदु मधुर संलाप से, जाने पर का मूल ।।४।।
द्रोह करे न औरों से, छल में कभी न आय ।
ऐसे चतुर सुजान का, संकट सब टल जाय ।।५।।
चिकनी चुपड़ी बात से, पर से नहीं ठगाय ।
चाल जाल में न फंसे, अपनी नीति चलाय ।।६।।
कई चतुर सम नारियल, बहुते बेर समान ।
द्राक्षा सम उत्तम चतुर, महा मधुर रस खान ।।७।।
सैन बैन मुख वर्ण से, चाल ढाल लख वेश ।
मेल जोल के ढंग से, दीखे पुरुष विशेष ।।८।।
बातों लम्बी में पड़ा, खोले मन का भेद ।
खान पान बहु मेल से, बने भेद में छेद ।।६।।
चतुर कहे सब सोच कर, बोले तोल सुबोल ।
मूढ़ चौक में हो खड़ा, बल से पीटे ढोल ।।१०।।
चर्वन करे सुकथन को, मनन जुगाली साथ ।
उस की पाचन शक्ति से, कभी न उछले बात ।।११।।
अल्प से जाने बहुत हि, समझे पर की सैन ।
रहे सजग ही काक वत्, गिन मिन बोले बैन ।।१२।।
तैल बिन्दु सम समझ हो, लेवे बहुत विचार ।
चतुर की विद्या बेल सम, फैले किये विस्तार ।।१३।।
घृत बिन्दु सम समझ जो, वह मध्यम ही होय ।
जल रेखा सम बुद्धि जो, अधम कही है सोय ।।१४।।
कहा, उचित है चतुर को, अपना लखे सुरूप ।
जीवन को कर सफल ही, बने सन्त अनुरूप ।।१५।।

हारी बाजी जन्म की, पाप सुखों के हेत ।
चतुराई से क्या बने, जब पशु खाया खेत ।।१६।।
चतुराई चूल्हे पड़े, यदि मन बसे न राम ।
राम राम भज चतुर जन, जान सियाना काम ।।१७।।

जागृति

जाग जाग जन बावरे, देख खोल कर नेत ।
तेरी गहरी नींद में, चुगया चिड़ियां खेत ।।१।।
जागते भय का भूत न, आय न भ्रांति पिशाच ।
दीखता हानि लाभ भी, दीखे हीरा काच ।।२।।
सोते भ्रम भय हो अति, तन धन की हो हान ।
छल बल सोते ही बने, माया दम्भ महान ।।३।।
जग जागे छल छिद्र में, तुम जागो शुभ बीच ।
माया द्रोह न ठग सकें, कर्म न होवें नीच ।।४।।
जागे जन के चार चिन्ह, जाने निज गुण दोष ।
जाने स्व-अपराध को, जन पर करे न रोष ।।५।।
जागा वह जन जानिए, जो जीवन में जोत ।
जगमगाय हरि प्रेम की, हो पर हित में प्रोत ।।६।।
जग में जागें चार जन, हरि के प्रेमी एक ।
सती सुयति सेवक भले, पाल धर्म की टेक ।।७।।
सोते गहरी नींद में, क्रोध मोह अभिमान ।
लूट पाट कर ले गये, धन सम्पत् गुण ज्ञान ।।८।।
अज्ञान अविद्या नींद है, माया रजनी जान ।
आत्मा निज को भूल कर, सोता सिंह समान ।।९।।

कृत्य-कर्म का बोध न, जिन्हें न हित का बोध ।
वे सब सोते समझिये, हठ से भरे अबोध ।।१०।।
मिथ्या मतों की खींच में, स्वार्थ-पर जो लोग ।
वैर विवाद बढ़ाय कर, भोगें सोते रोग ।।११।।
सोता सो जन समझिये, सत्य नहीं जो पाय ।
मिथ्या ज्ञान अभिमान में, यों ही जन्म गँवाय ।।१२।।
सोते खोते देश को, धन सम्पत् के ढेर ।
सब कुछ मिलता सहज से, जो जगें एक बेर ।।१३।।
जातीय ज्योति की कला, जगना जग में जान ।
देश धर्म के चरण में, करना अर्पण प्राण ।।१४।।
जगना जानो जानना, हितकर कर्म कलाप ।
सेवा धर्म सुकर्म में, मानना कुछ न पाप ।।१५।।
सोना इस में समझिए, भारी भूल अज्ञान ।
संशय करना कर्म में, बन्ध कल्पना मान ।।१६।।
भक्ति धर्म को छोड़ कर, करना विषम विवाद ।
श्रद्धा निश्चय हीन हो, पाना बहुत विषाद ।।१७।।
रे मन सोया क्या करे, जाग जपो भगवान् ।
आलस्य निद्रा त्याग दे, मान मान रे मान ।।१८।।
रे मन सो कर क्या करे, जग कर जप ले राम ।
परम पुरुष के नाम से, होवे पूर्ण काम ।।१६।।
हे मन सोय क्यों वृथा, जग कर सिमर सुनाम ।
एक एक तव साँस का, तीनों लोक न दाम ।।२०।।
रे मन अब तू सो नहीं, खोल हिये के नेत ।
जप ले माला राम की, चेत चेत अब चेत ।।२१।।

मेरे मना अब सो मत, जाग निरख निज रूप ।
लख ले राम अलख का, शुद्ध परम स्व-रूप ।।२२।।
रे मन अब तो सो नहीं, शब्द सरस रस चाख ।
पतझड़ पर कभी न मिले, महा-मधुर यह दाख ।।२३।।
प्रिय मन अब न सोइए, आत्म-ज्योति निहार ।
भज कर राम दयाल को, हो भव जल से पार ।।२४।।
सोते सोते रे मना, खोया काल अनन्त ।
जग कर भज ले राम को, कर अज्ञान का अन्त ।।२५।।
सोने में तेरे गये, कल्प कल्पान्तर बीत ।
राम राम अब सिमर ले, कर के गहरी प्रीत ।।२६।।
अविद्या घोर अज्ञान में, घूमा जन्म अपार ।
प्यारे ! राम सुनाम जप, परम प्रेम को धार ।।२७।।
ऊँचे नीचे जन्म सब, फिरे नीन्द के बीच ।
जाग मना अब मेरया, त्याग दे निद्रा नीच ।।२८।।
अवगुण हारा हीन जन, भीतर लिये विकार ।
सोवे आलस में पड़ा, कैसे पावे पार ।।२६।।
जन्म नदी भादों झड़ी, वेग वासना बाढ़ ।
अविद्या जल में डूबते, को लेवे हरि काढ़ ।।३०।।
अब के जग कर न सोऊँ, जपूँ राम का नाम ।
तज कर अविद्या नींद को, पाऊँ पद अभिराम ।।३१।।
अपने पन की लख परख, राम नाम का जाप ।
जगना रहे सदैव का, हरता भव भय ताप ।।३२।।

नाना उक्तियां

पांच चोर जिस के बने, साथी सब दिन रात ।
क्रोध वैर लालच घृणा, कलह करे जो घात ।।१।।
पांच पंच हैं जगत् में, नृप पुरोहित दोय ।
गुरु, रक्षक जो राज का, ऊंचा सेवक जोय ।।२।।
कोयल काक न एक हैं, यद्यपि रंग समान ।
समय बोलते जानिए, भिन्न उन्हीं का स्थान ।।३।।
जो जन होवे पारखी, निर्णय करे सुधीर ।
सत्यासत्य को बिलग दे, हंस दूध ज्यों नीर ।।४।।
गुणी जन का वह स्थान है, यदि संगति मिल जाय ।
मानसरोवर के बिना, सुख को हंस न पाय ।।५।।
निन्दक जन को निन्दना, नहीं साधु का काम ।
धोबी है वह जीभ से, धोवे आठों याम ।।६।।
यदि दो गाली सन्त को, वे लेते हैं दान ।
जिस के जो कुछ पास है, करे उसी से मान ।।७।।
बुरा न मानो मूढ़ का, जभी करे अपमान ।
जैसी जिस की भावना, वैसा उस का दान ।।८।।
जैसा जल हो कूप में, वैसा बाहर आय ।
जैसी जिस पै वस्तु हो, वैसी वही दिखाय ।।६।।
जैसे हो तुम आप ही, वैसा हो संसार ।
दर्पण में मुख वह दिखे, अपना जो आकार ।।१०।।
जगत् आरसी समझिए, मुख भौं नाक सिकोड़ ।
दान्त झखा कर देखिए, दीखे वह मुख मोड़ ।।११।।

जैसे जग में हो रहो, वैसा जग बन जाय ।
क्यारे में आ कूप जल, वह आकार बनाय ।।१२।।
पीली ऐनक से सब, दिखें पदार्थ पीत ।
अपने विषम विचार से, बने जगत् विपरीत ।।१३।।
मुँह चिढ़ाना और को, माथे त्योड़ी तान ।
अपना मुँह बिगाड़ते, जो जन निरे अजान ।।१४।।
बोली ठोली मार कर, मत बीन्धो पर देह ।
मन मोती को फोड़ती, तोड़े गहरा नेह ।।१५।।
मेल प्रेम वहां न रहे, यदि बोली की तान ।
रहे टूटती रात दिन, करती कड़वे कान ।।१६।।
घाव तीर तलवार के, पुराते हैं तत्काल ।
वचन वाण का घाव जो, पीड़ा दे सब काल ।।१७।।
बोली से हैं बीन्धते, शत्रु विरोधी दोय ।
बान बुरी बोली बनी, बरसे गोली होय ।।१८।।
ऊंचा वचन न बोलिए, पर को बोली मार ।
हरि का भय मन मानिए, करिए सब से प्यार ।।१६।।
स्व-ध्वनि की प्रतिध्वनि, जानो जग व्यौहार ।
आय कूप से वह ध्वनि, जो करिए संचार ।।२०।।
जैसे मिलिए और से, वैसा वह दे मान ।
करे, दूध निज भैंस का, दूर देश में पान ।।२१।।
कर्म करो ऐसे भले, जैसे फल की मांग ।
ईक्षु रस की मधुरता, मिले न बो कर भांग ।।२२।।
आम न आक पलाश में, लगें कभी त्रिकाल ।
अशुभ कर्म का फल बुरा, सकिए कभी न टाल ।।२३।।

पाप बीज को बोय कर, फल खाते मत खीज ।
खेती वैसी काटिए, जैसा बोया बीज ।।२४।।
कर्ता के संग ही रहे, किया कर्म जो आप ।
काया की छाया यथा, साथ पुण्य हो पाप ।।२५।।
प्रत्याघात के नियम से, कारक को है लेप ।
जो जन हरि का हो रहे, होता सदा निर्लेप ।।२६।।
कर्म करो शुभ भाव से, फल को हरि पर छोड़ ।
रूखा सूखा जो मिले, उस से मुख न मरोड़ ।।२७।।
अपनी रूखी खाइए, पर की चुपड़ी छोड़ ।
पराये परांठे हि तज, दें सुप्रीति जो तोड़ ।।२८।।
चने चबा कर नाम जप, यदि घी दूध न पाय ।
पर के मोहन भोग पर, लार नहीं टपकाय ।।२६।।
रूखी मिस्सी राम की, कर प्रसादी खाय ।
श्रम कमाई से मिली, अमृत समझी जाय ।।३०।।
वस्तु खाइए बांट कर, कर के अतिथि सत्कार ।
बढ़े भक्ति सह भोज में, प्रेम मेल का तार ।।३१।।
भ्रम न करिए अन्न में, अन्न अत्ता का भोग ।
भोजन में भय, पाप का, करना है अति रोग ।।३२।।
देव-यजन कर खाइए, भोज्य बहु सुखकार ।
रुचि आदर सम्मान से, निन्दा कलह निवार ।।३३।।
यौवन में कर कर्म वह, रहे जगत् में साख ।
बीते गये वसन्त में, कभी न फूले दाख ।।३४।।
कर ले कर्म सुधर्म के, जब तक पुष्ट शरीर ।
जरा जभी यौवन हरे, काया बने करीर ।।३५।।

मारो बाजी जीत की, बढ़ती में कर दान ।
[illegible]
चल रही चक्की में अभी, तू ले पीस पिसान ।
घूमना फिरना न रहे, तब अनशन ही मान ।।३७।।
कर ले बणिए बणिज यह, नाम ध्यान शुभ जाप ।
सौदा ऐसी वस्तु का, फिर फिर मिले न आप ।।३८।।
हीरे ये अनमोल हैं, पांच इन्द्रिय धार ।
कोड़ी कंकर भाव से, बेच न पाप बाज़ार ।।३९।।
मोती रत्न सुलाल हैं, तेरे विमल विचार ।
कुबुद्धि शूकर सामने, वाद में पड़ न डार ।।४०।।
क्षीर नीर के मेल में, कांजी जब पड़ जाए ।
टुक टुक वे जब हो गये, उन को कौन मिलाय ।।४१।।
छल की छलनी हाथ ले, दुर्गुण छाज हिलाय ।
सभी जनों को छानते, दुर्जन दोष दिखाय ।।४२।।
सार नहीं लेवें कभी, निन्दक दुर्जन लोक ।
रक्त चूसती दूध तज, थन पर लग कर जोक ।।४३।।
गुणग्राही आ दूर से, लेवे शुभ गुण ग्राम ।
कमल-सुगन्धि भ्रमर ले, मींडक लखे न नाम ।।४४।।
तिनका पर की आंख का, सब को दिखाय आप ।
निज नयनों के वाण को, सदा छुपावे पाप ।।४५।।
चन्दन केसर तिलक पर, टीका करें मलीन ।
जिन के मुख काले हुए, बनें कर्म से हीन ।।४६।।
निन्दा काजल रेख की, करे देख पर भाल ।
स्व-मुख को देखे नहीं, दर्पण में मुख डाल ।।४७।।

पर के गुण परमाणु सम, मानें शिखर समान ।
सज्जन सन्त सुसाधु जन, सभ्य सुशील सुजान ।।४८।।
धब्बा धोइए लगन से, मल मल साबुन लाय ।
ऐसे धब्बा न धोइए, कपड़ा भी फट जाय ।।४६।।
सी ले चोला कर्म का, सुई विवेक बनाय ।
फटा चरित्र सुगांठ ले, ले शुभ धर्म बचाय ।।५०।।
प्रेम लगन से काम कर, साहस उत्साह धार ।
तप्त लोह का चोट से, अधिक होता विस्तार ।।५१।।
बो सुनाम के बीज को, अन्तःकरण के बीच ।
फेर सुहागा मौन का, प्रेम भक्ति जल सींच ।।५२।।
जिन बोया हरि नाम को, पानी दे कर प्रेम ।
धर्म खेत उन का फले, यही मर्म है नेम ।।५३।।
वह धुनिया जन धन्य है, धुनी रुई जो देय ।
मन धुनिया धुन नाम की, वृत्ति को धुन लेय ।।५४।।
ताना तन कर कर्म का, बाना पुण्य विचार ।
तानी तन मन मेरया, संस्कार कहे तार ।।५५।।
बुन कपड़ा शुभ जन्म का, जो चोला है देह ।
राम नाम के रंग से, रंग धार कर नेह ।।५६।।
जन सुधारिए प्रेम से, ऊंच भावना लाय ।
ऐसा नहीं सुधार कर, सज्जन पास न आय ।।५७।।
सज्जन जन को शोधिए, निश्चय प्रेम बसाय ।
ऐसी औषध दे नहीं, रोगी प्राण गवाय ।।५८।।
दोष दिखाओ बन्धु बन, करो न वैर विरोध ।
नहीं निर्दोषी जन मिले, सब जग देखो शोध ।।५६।।

धूएं बिना न आग है, पवन बिना न तरंग ।
पाप दोष सब में मिले, समझिए कर सुसंग ।।६०।।
पतन-शील प्राणी कहा, पानीवत् लो जान ।
संग कला से ऊंच हो, पावे उत्तम स्थान ।।६१।।
पेरन से मिले ईख रस, तप्त सुवर्ण सुहाय ।
घिस कर चन्दन गन्ध ले, तप से मन सुख पाय ।।६२।।
खींच उबाल निकालिए, तत्त्व वस्तु का सार ।
कोश जीव को भिन्न कर, बन कर कुशल अत्तार ।।६३।।
मन को मारे लोभ अति, विषय वासना नीच ।
कुंडी में टुकड़ा लगा, लाय मच्छ को खींच ।।६४।।
आत्मा को परमात्मा, परम प्यार का धाम ।
मिले सिमरन सुध्यान से, जपते राम सुनाम ।।६५।।

शिष्टाचार

शिष्ट सुजन वह जानिए, करे कर्म सुविचार ।
नीति रीति विधि विनय से, करे सभी व्यौहार ।।१।।
शिष्टाचार को समझ कर, करिए कर्म कलाप ।
भली मर्यादा में रहे, परित्यागे सब पाप ।।२।।
मिले बड़े को विनय से, नम्र करे प्र-णाम ।
हाथ जोड़ कर के झुके, जावे उस के वाम ।।३।।
बीच वचन बोले नहीं, कहते जन को रोक ।
बिना बुलाये बोलना, हीन कर्म है शोक ।।४।।
बहुत बोलना वर्जिए, करिए खींच न तान ।
वक्रवाद की बहु बुरी, तजिए भूंडी बान ।।५।।

बक झक करना सभा में, पक्ष पोषण के काज ।
हठ धर्मी कलह वाद मिल, बने बिगाड़ें साज ।।६।।
जब आवे जन सामने, मिलिए लिये मुस्कान ।
मधुर मृदु मित वचन से, करिए पर गुण गान ।।७।।
पर से ले कर वस्तु को, धन्य कहे शुभ बोल ।
उपकारी का जगत् में, माना मान सुमोल ।।८।।
सुजन समागत का सदा, शुभ करे अभ्युत्थान ।
स्वागत आइए कह कर, करिए आसन दान ।।६।।
मृदु मधुर जी बोलिए, यही है शिष्टाचार ।
अभ्यागमन आते करे, जाते अनुगम धार ।।१०।।
मेली मित्र मिलाप में, कर पीड़न है जान ।
प्रेमी जन के मिल गले, मिलना सभ्य विधान ।।११।।
कुशल पूछना प्रेम से, मिलना दो कर मेल ।
आदर देना भाव से, सभ्य जनों का खेल ।।१२।।
आदर करना हो खड़े, अभ्युत्थान कहलाय ।
अग्र जाना अभ्यागमन, अनुगम जाते जाय ।।१३।।
विदा करे जब सुजन को, स्वस्ति कहो उच्चार ।
राम सुमंगल तव करे, यह शुभ अर्थ विचार ।।१४।।
प्रश्न पूछना हो जब, बड़े जनों से आय ।
हाथ जोड़ सुविनीत हो, पूछे सीस झुकाय ।।१५।।
मात पिता गुरु सुजन को, नत-शिर हाथ मिलाय ।
नमस्कार करे भाव से, अंजलि सीस लगाय ।।१६।।
दहिने बड़ा बिठाइए, यह है आर्य रीत ।
आदर अति सम्मान से, करिए उस से प्रीत ।।१७।।

पर घर में चुप चाप ही, जाय न भीतर लांघ ।
[illegible]
समय न लेवे अधिक कुछ, करे व्यर्थ न बात ।
काम बिना बैठे नहीं, शिष्टता है विख्यात ।।१६।।
धन्यवाद करना तभी, जभी अनुग्रह पाय ।
क्षमा मांगना भूल की, अपनी त्रुटि बताय ।।२०।।
लांघे दो के बीच से, बैठे आगे जाय ।
अवज्ञा करनी अन्य की, शोभा नहीं दिखाय ।।२१।।
बैठे आसन उचित पर, बोले वचन न बीच ।
धार भाव गम्भीर को, चेष्टा करे न नीच ।।२२।।
रहे सभा में विनय से, नियम मर्यादा पाल ।
युक्ति-युक्त मीठा कहे, हितकर वचन रसाल ।।२३।।
जाति देश की सभ्यता, सभा बीच चमकाय ।
सभा सुमुख है देश का, उस से सभ्य लखाय ।।२४।।
प्रण नियम को पालना, उत्तम कर्म कहाय ।
वचन निभाना अन्त तक, सभ्य धर्म समझाय ।।२५।।
करे नियम से कर्म सब, धृति धर्म अनुसार ।
वेश स्वच्छ सुसभ्य हो, यही है शिष्टाचार ।।२६।।
उच्च शिष्टता समझिए, विनय शील शुभ ज्ञान ।
मिल कर करना काम को, भ्रातृ भाव महान् ।।२७।।
शिष्ट वही हैं राम के, भक्त प्रेममय मीत ।
सेवक सज्जन सन्त जन, जो गावें हरिगीत ।।२८।।

भक्त-प्रकाश

सब का पालक ईश जो, जो सब का आधार ।
ईश्वर कर्ता जगत् का, परम पुरुष सुखकार ।।१।।
वही भक्तों का देव है, वह सब का भगवान् ।
जो जन हो भगवान् का, भक्त भागवत मान ।।२।।
नरों का अयन घर प्रभु, नारायण गुण-वान् ।
नारायण के जो जन, वे नारायण जान ।।३।।
भजते वैदिक काल में, नारायण, जन नाम ।
नारायण के भक्त जन, पाते ऊँचा धाम ।।४।।
नारायण यजमान शुभ, होते सुकर्मी लोग ।
भक्त भागवत नाम का, हुआ उन्हीं में योग ।।५।।
भक्त जनों का यहाँ पर, वर्णन गुण-प्रकाश ।
भक्ति प्रेम से मैं करूँ, कारक पाप विनाश ।।६।।
भक्ति आराधित है हरि, भक्ति जाप है ध्यान ।
स्तुति विनय शुभ कीर्तन, कर्म सुचिन्तन ज्ञान ।।७।।
अजर अमर जो राम है, निराकार सुख-खान ।
सभी देश में काल में, वह रहे विद्यमान ।।८।।
भक्तों पर वह प्रकट हो, नाना करे विकास ।
ज्योति सुनाद समाधि से, दे कर दृढ़ विश्वास ।।६।।
जी, जीवन से कर्म में, रहे भक्तजन लीन ।
नाम-ध्यान शुभ कर्म से, कभी न होवे हीन ।।१०।।
कोमल मीठे वचन से, कहे सत्य का बोल ।
करे कथा हरिजनों की, जिस का तोल न मोल ।।११।।

दीन दुःखी को देख कर, दान दया मन लाय ।
बने सहायक प्रेम से, दुःख को दूर भगाय ।।१२।।
अपना सब अर्पण करे, हरि आगे कर ध्यान ।
अन्न वस्त्र के दान से, करे दीन का मान ।।१३।।
ऐसे सज्जन धन्य का, भक्त सन्त है नाम ।
रक्खे भरोसा राम का, करे राम का काम ।।१४।।
ऐसे भक्त सुभागवत, उन की कथा कलाप ।
कथन मनन सुश्रवण से, हरती भारे पाप ।।१५।।

जनक

भक्तराज जनक महाराजा, हुआ गुणी विदेह का राजा ।
ब्रह्म ज्ञान में निपुण ज्ञानी, कर्म कुशल था आत्म-ध्यानी ।।१।।
राज काज में रत हो जाता, जन हित में अति कष्ट उठाता ।
दीन दुःखी के कष्ट हटा के, पर हित रत रहता लौ लाके ।।२।।
राज कर्म में चतुर सियाना, योद्धा वीर समर में माना ।
मन से विरक्त मुनि वैरागी, परम भक्त हरिजन अनुरागी ।।३।।
सुधन धान से शोभित सारा, देश उसे था निज से प्यारा ।
रत्नजड़ित मणि मण्डित मोहे, सिंहासन उस का शुभ सोहे ।।४।।
यह होते थी उच्च बड़ाई, रहता हरि में ध्यान रमाई ।
आत्म-पद में निपुण बताया, पूर्ण ज्ञानी मुनि जन गाया ।।५।।
लगे सभा जब गुणि जन आते, ज्ञान-गोष्ठी किये सुख पाते ।
चर्चा चलती ईश की प्यारी, हर्षित होते सब नर नारी ।।६।।
दान मान गुणी जन पाते, कर संगति सुखिया हो जाते ।
कहते सभी जनक है ज्ञानी, जीवन्मुक्त भक्त निर्मानी ।।७।।

रहा जनक-यश दश दिश छाई, जाती कीर्ति उस की गाई ।
हुआ विख्यात सुगुण गण धारे, धन्य धन्य कहते जन सारे ।।८।।
एक काल तापस ही आया, पूछा जो प्रश्न मन भाया ।
राजन् ! है तू सम्पत्-शाली, ऋद्धि सिद्धि है शोभा वाली ।।६।।
मणि मण्डित सुमुकुट को धारे, भूषण वस्त्र मोल के भारे ।
रखते हो सैनिक गण नीके, शूर वीर जन सुदृढ़ जी के ।।१०।।
ठाठ बाट सोहे मनोहारी, राजसी सज्जा है तव न्यारी ।
इस में मन कैसे वश कीना, आत्म-पद को कैसे चीन्हा ।।११।।
नृप ने कहा—मुनिवर मानो, राज काज श्री हरि का जानो ।
मैं हूँ दास राम का प्यारे, रहता हूँ श्री राम सहारे ।।१२।।
ईश ध्यान जप चिन्तन होना, नाम बीज मन ही में बोना ।
पालन कर्म धर्म है मेरा, नित्य कर्म कर साँझ सवेरा ।।१३।।
त्याग कामना कर्म निभाना, कर्म-योग यह सुख कर जाना ।
सब में हरि, हरि में ही सारे, सोहें ज्यों नभ में शुभ तारे ।।१४।।
हरि का काम करूँ दिन राती, तृष्णा मुझे न कभी सताती ।
वीतराग पद पाया ऐसे, हरि कृपा हुई हो जैसे ।।१५।।
जाना चाहो भेद निराला, लो सिर पर पारद का प्याला ।
मिथिला घूम यहीं पर आना, पारद बूँद न एक गिराना ।।१६।।
सार मर्म पाओगे सारा, यदि न गिराओ किंचित् पारा ।
क्षमा परीक्षा यह कर देना, इस में अवज्ञा समझ न लेना ।।१७।।
राज कथन मुनि मन धारा, जाना रहस्य उस में भारा ।
कर स्वीकार धरा सिर प्याला, पारद भरा छलकने वाला ।।१८।।
उसी समय सैनिक जन आये, चम चम करतीं खड्ग उठाये ।
आगे पीछे दहिने बायें, हुए खड़े मुनि के पड़ पायें ।।१६।।

आज्ञा कर कहा उन्हें ऐसा, चलो मुनि संग, जावे जैसा ।
[illegible]
बूँद गिरी पारद की पाओ, ग्रीवा इस की काट गिराओ ।
सुन आश्चर्य मुनि ने माना, कम्पित गात हिया थर्राना ।।२१।।
चला छोड़ सब ऐंचातानी, करी न कुछ भी आनाकानी ।
दृष्टि रख पथ से थे जाते, ऊँच नीच से पाँव बचाते ।।२२।।
कर दोनों से पकड़े प्याला, सावधान हो कर सम्भाला ।
राज पन्थ बाज़ार सुकूचे, फिरा पथों में ऊँचे नीचे ।।२३।।
फिरते जिन में बहु नर नारी, भीड़ भाड़ हुल्लड़ था भारी ।
राग रंग के साज समाजा, नाच गीत बजते बहु बाजा ।।२४।।
खान पान होते मन भाने, लेन देन होते मन माने ।
हाथी रथ घोड़े शुभ याना, जिन का था बहु आना जाना ।।२५।।
कन्धे से कन्धा टकराता, भिड़ जाता जन आता जाता ।
पर मुनि मन में बसता पारा, प्याले में जो था सिर धारा ।।२६।।
सभी ओर से नयन सिकोड़े, चलता पथ पर निज मन मोड़े ।
वृत्ति एकाकार से जाते, विषय न मन पथ में थे आते ।।२७।।
देखे सुने न कुछ भी सो ही, प्याले में वृत्ति थी होई ।
सायं समय सभा में आया, आदर अधिक जनक से पाया ।।२८।।
कहा, मुनि! कहो नगर कहानी, यथा सुनी देखी हो जानी ।
रंग राग शोभा शुभ नाना, विविध भांति का ठाठ सुहाना ।।२९।।
वह भी अद्‌भुत बात निराली, कहो सुनी जो देखी भाली ।
मुनि बोला—सूना था सारा, सर्व सुसज्जित नगर तुम्हारा ।।३०।।
मन में था प्याला यह तेरा, चित्त इसी में रहता मेरा ।
देखा सुना बिना मन जो ही, नास्ति सम हो जाता सो ही ।।३१।।

पाँच विषय इन्द्रियों में आवें, मनोरहित न कुछ भी लुभावें ।
कारण है मन साधन भारा, सूना साज बिना इस सारा ।।३२।।
राजा बोला—सुन मुनि ज्ञानी, त्याग कथा अब तू ने जानी ।
चले सुने देखे भी नाना, कर्म करे कर्तव्य विधाना ।।३३।।
मन से जो निर्लेप हो जावे, पाप कर्म उस पास न आवे ।
निष्काम कर्म का सुफल ऐसा, काटे पाप बन्ध हो जैसा ।।३४।।
त्रिविध कर्म करे हरि आगे, अर्पण, फल की आशा त्यागे ।
सेवा पर हित पर उपकारा, दान धर्म भी पाले सारा ।।३५।।
मानो ईश कर्म ये सारे, ज्ञान सहित हैं तारन हारे ।
कर्म में दोष कुबुद्धि माने, मुनि कर्म को ज्ञान ही जाने ।।३६।।
सुने वचन शुभ मुनि ने धारे, भ्रान्ति संशय सब ही निवारे ।
नाम ध्यान ले करी कमाई, ज्ञान नयन विकसे गुण पाई ।।३७।।

जनक ज्ञान

जनक ज्ञान की कथा सुहानी, सरस सार युत रस उपजानी ।
उस में लगन परम ही जागी, आत्म-दर्शन की लौ लागी ।।१।।
गुरु उपदेश की हुई आशा, सत्य ज्ञान की अति अभिलाषा ।
याज्ञवल्क्य गुरु घर पर आया, कल्प वृक्ष बन शोभा लाया ।।२।।
विनय भाव से सीस नवाया, चरण पूज उस ने सुख पाया ।
हाथ जोड़ विनती की भारी, ज्ञान दान दो, हूँ अधिकारी ।।३।।
ऋषि बोला—राजन् बड़भागी, वैरागी तू ही है त्यागी ।
ध्यान यजन अब आप रचाओ, दक्षिणा दे कर चित्त टिकाओ ।।४।।
दे वस्तु जो हो तुझे प्यारी, दक्षिणा में शुभ निश्चय धारी ।
प्रिय वस्तु सुदान से प्यारे, होंगे सफल मनोरथ सारे ।।५।।

भूमि अश्व हाथी रथ याना, मणि मोती हीरे भी नाना ।
वह बोला—ये ले लो स्वामी, दो दीक्षा सुनाम की नामी ।।६।।
मुनि बोला—न है वस्तु प्यारी, दक्षिणा अर्थ कही जो सारी ।
प्रिय वस्तु तो मन है तेरा, कर दे दान वह एक बेरा ।।७।।
शुभ भक्ति में जनक जी बोले, मेरे मन मुनि वर का होले ।
ऋषि बोला—आशिष हो मेरा, स्वीकृत किया दान ही तेरा ।।८।।
आत्म-ज्ञान हुआ अब जानो, सफल यजन राजन यह मानो ।
वह बोला—सुन गुरु वर प्यारे, उड़े वासना पंख पसारे ।।६।।
न स्थिरता मन में है आई, चंचलता की है अधिकाई ।
मुनि बोला—है दान अधूरा, इस से टिका न मन तव पूरा ।।१०।।
दिया दान मन अब न डुलाओ, मेरा मन न काम में लाओ ।
ध्यान लीन हुआ नृप ऐसे, जल तल लीन मीन हो जैसे ।।११।।
सन्त वचन से शुचि पद पाया, परम समाधि में ही समाया ।
मौन-मूर्ति स्थिर ही हो के, शान्त हुआ संशय सब खो के ।।१२।।
निश्चल मन अडोल थी काया, मिटी सकल ही मन की माया ।
अखण्ड विमल लखी शुभ ज्योति, आत्म पद में जो है होती ।।१३।।
कहा ऋषि ने—सुनिए राजा, करिए आँख खोल सब काजा ।
मन अपना मानो अब मेरा, राज काज करिए बहुतेरा ।।१४।।
पाप कर्म से इसे बचाना, अनर्थ अन्याय में न लगाना ।
नित्य कर्म करना शुभ सारे, रक्षण पालन कर्तव्य भारे ।।१५।।
समझो परन्तु हरि की लीला, करो नहीं विश्वास को ढीला ।
रहना धर्म कर्म में प्यारे, करो गृह के कार्य सारे ।।१६।।
गुरु दया से जनक ने पाया, विमल ज्ञान जो था मन भाया ।
करता कर्म असंग निराला, कमल पत्रवत् आत्मा वाला ।।१७।।

रह भोग उपभोग में योगी, चित्त से था अलिप्त अभोगी ।
राग द्वेष माया को जीते, रहता मग्न अमीरस पीते ।।१८।।
कर्म में त्याग, त्याग में करना, कर्म योग सुधर्म है वर्णा ।
ज्ञान कर्म सब सम कर जाना, त्याग कर्म भी एक बखाना ।।१९।।
समन्वय यह धर्म में जानो, सत्य सनातन इस को मानो ।
ऐसा सन्त भागवत पूरा, राज ऋषि राजा था शूरा ।।२०।।
सिद्ध एकदा उस पै आये, ज्ञान ध्यान में चित्त टिकाये ।
किये प्रश्न उन्हों ने चोखे, मिले उत्तर उन को अनोखे ।।२१।।
कहा जनक ने—महानुभावो, आत्मा में परमात्मा पावो ।
सार रहित समझो सब माया, मृग-तृष्णा यथा हो छाया ।।२२।।
जानो रचना सकल विनाशी, रहित चेतना कार्य राशी ।
बिगड़े बने बढ़े घट जावे, सम्पत् सर्व नाश को पावे ।।२३।।
ममता मोह मलिन ही माने, जन्म मरण के कारण जाने ।
जिस मार्ग सब जन हैं जाते, चलना उस में वेद बताते ।।२४।।
आत्म-ज्ञान सुज्योति जगाना, शुद्ध सत्ता प्रसुप्त उठाना ।
यह है धर्म कर्म सुखदाई, देता अविद्या सर्व मिटाई ।।२५।।
अपना आप जान कर जाना, जग से है यह तरना माना ।
यह सुन सार सिद्ध सुख पाये, विदा हुए शुभ सीस झुकाये ।।२६।।

भागवत शुकदेव

परम भागवत शान्तिमय, था शुकदेव कुमार ।
युवा काल में भक्त बन, अपना किया सुधार ।।१।।
चारु चरण गोरा वर्ण, अरुण तरुण का भाल ।
काया कदली कुँज में, लहके मानो लाल ।।२।।

कर कोमल ललित चरण, कमल नयन सुखकार ।
सुन्दर देह सुडौल शुभ, शोभे बन अवतार ।।३।।
शशि सम शान्त सुमधुर मुख, मृदु तेज का धाम ।
मधुमयी मोहक मूर्ति, बनी सुगुण का ग्राम ।।४।।
भर यौवन के काल में, लगी लगन यह जान ।
ईश भक्ति को पाइए, भजिए श्री भगवान् ।।५।।
करिए कार्य राम का, कर के साधन ध्यान ।
अजपा जाप जपिए शुभ, पा कर परम सुज्ञान ।।६।।
श्रद्धा सुभक्ति प्रेम से, आया जनक समीप ।
जो था आत्म-जगत् में, धर्म पोत का द्वीप ।।७।।
द्वारपाल को जा कहा, कहिए जा कर पास ।
राजन् ! शुक आया यहाँ, लिए प्रेम की प्यास ।।८।।
दर्शन दो कर के दया, तारो बेड़ा पार ।
नाम ध्यान को दान कर, भर दो मुझ में सार ।।६।।
अवस्था यौवन जान कर, दी आज्ञा मिथिलेश ।
ड्योढ़ी पर ही ठहरिए, तीन रात तक शेष ।।१०।।
कड़ी परीक्षा एक थी, लखने को मुनि-भाव ।
लगन भजन शुभ ध्यान का, परम धाम का चाव ।।११।।
सुन आज्ञा शुकदेव ने, किया पालन तत्काल ।
खड़ा रहा त्रिदिवस तक, पड़ी न त्यौड़ी भाल ।।१२।।
फिर माँगा शुकदेव ने, दर्शन का आदेश ।
कहला भेजा जनक ने, मानिए नहीं क्लेश ।।१३।।
अन्तःपुर में आय कर, रहिए त्रिदिन-रात ।
मिलना पीछे जानिए, यही भेद की बात ।।१४।।

शुक वृत्ति अवधूत में, कस केवल कौपीन ।
शीत काल उपवास में, ठहरा रहा अदीन ।।१५।।
आना जाना वहां बहु, नारि जनों का काम ।
शोभा भूषण वेश से, जो थीं लीला धाम ।।१६।।
शोभा की अवतार बन, फिरतीं वे स्व-छन्द ।
उस ही सुन्दर धाम में, भीनी भरी सुगन्ध ।।१७।।
राजवास में मोद अति, रहा चहुँ दिश राज ।
भक्ति लगन में मग्न था, वहां पर सुमुनिराज ।।१८।।
तीन दिवस के बीतने, पर हो जनक दयाल ।
आमंत्रित शुक को कर, मिला पाय शुभ काल ।।१६।।
शुक ने विनय सम्मान से, राजा को नमस्कार ।
चरणों को छू कर किया, झुक कर बारंबार ।।२०।।
सौम्य सरल वह मूर्ति, नृप देखी निष्पाप ।
आदर आसन अर्घ्य से, किया जनक ने आप ।।२१।।
पूछ कुशल बोला नृप, कारण कहो कुमार ।
क्या है आने का यहां, कौन करूं उपकार ।।२२।।
हाथ जोड़ कर जनक को, बोला शुक मुनिराज ।
आत्म-ज्ञान सुभक्ति पथ, मुझे दीजिए आज ।।२३।।
अधिकारी शुभ जान कर, तुष्ट हुआ जनराज ।
दीक्षा दे हरि नाम की, तारे उस के काज ।।२४।।
ध्यान राधना दान कर, ध्यान शब्द का मेल ।
नृप कराया कर दया, जो अगम्य का खेल ।।२५।।
जोत जगाय अगम्य की, विकसे सुन्दर नाद ।
वीणा मधुर सितार के, नाशक सभी विषाद ।।२६।।

लीला सूर्य धाम की, लखी निराला खेल ।
खोल सुषुम्ना द्वार को, खिली चक्र की बेल ।।२७।।
ब्रह्म समाधि का किया, शुक ने अनुभव आप ।
पाया पद शुभ सिद्ध का, किये दूर सब पाप ।।२८।।
ब्राह्मी अवस्था में मग्न, रहने लगा विशेष ।
पर कुछ संशय रह गये, देते जो थे क्लेश ।।२९।।
सन्त संग था परम सुहाना, जनक-सभा में हरि यश गाना ।
बैठे थे बहु ज्ञानी योगी, गृहकर्मरत राजे भोगी ।।३०।।
पर थे भक्त भागवत सारे, निश्चय भक्ति-धर्म में धारे ।
ऐसे समय अग्नि की ज्वाला, उठी प्रचण्ड अति विकराला ।।३१।।
उसी स्थान था शुक का डेरा, शुक को चिन्ता ने आ घेरा ।
दण्ड कमण्डल चल सम्भालें, जलती वस्तु अपनी बचा लें ।।३२।।
ऐसा सोच चले मुनिराई, संग सभा की सुध बिसराई ।
गया वहां जनक जहां सोहे, बोला—हो आज्ञा अब मोहे ।।३३।।
बोला जनक—मुनि, नहीं जाना, कारण हो तो अभी बताना ।
जो हो आवश्यक वह ही मंगाऊँ, जल आदि चाहिए दिलवाऊँ ।।३४।।
शुक ने सत्य कहा सुन प्यारे, पड़े भवन में वस्त्र हैं सारे ।
दण्ड कमण्डल है भी मेरा, जहां भवन जलता है तेरा ।।३५।।
जाऊँ सब उपकरण बचाऊँ, कर के काम अभी फिर आऊँ ।
हँसी से राजा यों बोले, शुक जी, हो सीधे अति भोले ।।३६।।
दो तीन उपकरण हैं तेरे, लाखों के जलते हैं मेरे ।
भृत्य वहां हैं आग बुझाते, हैं सन्त यहाँ हमें रिझाते ।।३७।।
वस्तु-नाश से मन न डुलाओ, ज्ञान-कथा में चित्त लगाओ ।
राज भवन हो भस्म जभी ही, सके न जल मम अल्प तभी ही ।।३८।।

हुई भारी हानि भी जानी, डांवांडोल न होवे ज्ञानी ।
आत्म-चिन्तन न कभी छोड़े, बिखरे भावों का मुख मोड़े ।।३९।।
यह सुन शुक मन धीरज आई, आत्म-ज्ञान में तुष्टि पाई ।
धारणा धृति ऋषि की जानी, तभी अवस्था परम पहचानी ।।४०।।
एक समय भोजन शुभ आया, सुवर्ण थाल में ही सजाया ।
षट्रस युत था भोजन सारा, स्वादु रसीला मन को प्यारा ।।४१।।
राजा ने शुक को बिठलाया, कोठड़ी में बहु मान दिखाया ।
कहा कीजिए भोजन स्वामी, बनिए तृप्त मुनिवर नामी ।।४२।।
ज्यों हि शुक ने ग्रास उठाया, छत से खड्ग लटकता पाया ।
लपलपाती तीखी धारा, देखी सिर पर जैसे आरा ।।४३।।
सटी तार पतली से ऐसे, अभी गिरी दीखे थी जैसे ।
भीत हुआ शुक कम्पित अंगा, उस को लगा न भोजन चंगा ।।४४।।
भूख भगी चिन्ता मन आई, खान पान की सुध बिसराई ।
यथा तथा कुछ भोजन पाया, समझा यही न क्या कुछ खाया ।।४५।।
जनक निकट आसन पर राजा, भक्ति भाव से पास विराजा ।
बोला वह, भोजन था कैसा, था वा न चाहिए था जैसा ।।४६।।
स्वादु पदार्थ उत्तम नाना, मन भाते थे मैं ने माना ।
बोला शुक, न स्वाद पहचाना, कितने पदार्थ थे न जाना ।।४७।।
बैठा खाने अन्न जहां ही, खड्ग लटक रही थी वहां ही ।
देख उसे मुझे कुछ न भाया, ज्ञात नहीं क्या कितना खाया ।।४८।।
मन लगा था खड्ग के मांहि, खान पान की सुध थी नाहीं ।
उस ने कहा—सुनो शुक प्यारे, भय वश भूले भोजन सारे ।।४९।।
ऐसे जो जन मरण विचारे, पाप कर्म वह सकल निवारे ।
जो जाने जग से है जाना, उस का कटे कर्म का ताना ।।५०।।

तुझे भोजन जैसे न भाये, भक्त पास त्यों पाप न आये ॥५१॥
तन धन मित्र बन्धु गण साथी, साथ न जायें घोड़े हाथी ।
छोड़ सभी जग झंझट जावे, काल खड्ग सिर पर लहरावे ॥५२॥
जो जन ऐसे है सुविचारी, उस की माया मिटती सारी ।
तन से भोगे भोग उदासी, जैसे बालक पाले दासी ॥५३॥
स्वादु खाय स्वाद नहीं जाने, भोगे भोग न सुख को माने ।
रक्खे दृष्टि कर्म के मांही, उलटे पथ पर जावे नांही ॥५४॥
ज्यों ही तू ने खड्ग निहारी, भोजन वस्तु मन से बिसारी ।
ऐसे जो जन आत्मा देखे, भूले पाप कर्म के लेखे ॥५५॥
कर्म करे दृष्टि न डुलावे, सहज से वह जन मुक्ति पावे ।
सो जन जानो हरि का प्यारा, कर्म कुटिल से करे किनारा ॥५६॥
वीतराग, शुक ! उस को मानो, शम दम उपरति जिस में जानो ।
शत्रु मित्र में एक समाना, मान अपमान में न डुलाना ॥५७॥
सम दृष्टि जन दीन सहारा, वीतराग पापों से न्यारा ।
ऊंच नीच में भेद न माने, समता आत्मा में ही जाने ॥५८॥
हरि में लीन वासना त्यागी, विषय-विरागी हरि अनुरागी ।
दीन हीन पर करुणा कारी, वीतराग पर पीड़ा हारी ॥५९॥
दुःखी देख पिघल जो जावे, पीड़ित पर करुणा जो लावे ।
सत्य विचारक दृढ़ विश्वासी, वीतराग काटे भय फांसी ॥६०॥
हानि लाभ जाने सम दो ही, सह ले उष्ण शीत सम हो ही ।
स्वार्थ रहित परम पद दाता, वीतराग भव भय से त्राता ॥६१॥
एक राम सुख धाम आराधे, परम नाम को मन में साधे ।
द्वेष को जिस ने मार मिटाया, वीतराग जन तारन आया ॥६२॥

वीतराग बोले शुभ वाणी, सच्ची मृदु सुखकरी कल्याणी ।
सौम्य शान्त सुसरलाचारी, वीतराग होवे न विकारी ।।६३।।
दीन को दे दु:खी को पाले, पीड़ित की पीड़ा को टाले ।
देवे दान भक्त हो ऊँचा, समय पर तन धन दे समूचा ।।६४।।
पापी देख घृणा न लावे, मात पिता बन उसे बचावे ।
सज्जन बन्धु सखा ही होवे, जिये जगे पर हित में सोवे ।।६५।।
करे कर्म समता शुभ पावे, ध्यान भजन में काल बितावे ।
पर का हाथ न देखे दानी, वीतराग बने निरभिमानी ।।६६।।
बूटी राम नाम की पीवे, मग्न रहे जन हित में जीवे ।
संगति वीतराग की ऐसे, पाप हरे सूर्य तम जैसे ।।६७।।
शुक, तू वीतराग है ज्ञानी, निज का ज्ञाता आत्म-ध्यानी ।
विचरो फिरो जगत् जन तारो, दीन पतित को पार उतारो ।।६८।।
हाथ जोड़ शुभ सीस नवा के, हुआ हर्षित प्रीति दिखला के ।
हुआ विदा शुक ज्ञानी पूरा, राम नाम में मग्न सुशूरा ।।६९।।

सुलभा

विरक्ता ब्रह्मवादिनी, सुलभा नाम्नी एक ।
ब्रह्मचारिणी अति शुभा, फिरती देश अनेक ।।१।।
वन जन पद में विचरती, देवी दिव्य सुरूप ।
सुन्दरी शान्ति धाम हो, फिरे देवता रूप ।।२।।
सघन वन घन घटा में, सोहे अशनि समान ।
अमल कमल मुख आभ से, बनी सौंदर्य स्थान ।।३।।
अवधूता सरला शुभा, ज्ञान ध्यान में लीन ।
रहती सुभक्ति में मग्न, जल में जैसे मीन ।।४।।

वनों में फिरते जो जन, महर्षि मुनि जन सन्त ।
कहते राजा जनक है, गुणी महामतिमन्त ।।५।।
उस की श्रद्धा धृति का, करते सभी बखान ।
कहते ऊँचा पुरुष है, ज्ञानी सन्त महान् ।।६।।
सुन कर कथा सुहावनी, कीर्ति गुण का गान ।
गौरव महिमा जनक की, मुनि मण्डल से जान ।।७।।
सुलभा मिथिला में गई, देखन जनक समाज ।
जो था जीवन्मुक्त हो, करता भारी राज ।।८।।
जनक सभा में जा खड़ी, सुलभा सम्मुख होय ।
देखा उस ने जनक को, हुआ खड़ा भी सोय ।।९।।
आओ स्वागत जनक ने, कहा विराजो आप ।
आदर आसन अर्घ्य दे, पूजा करी निष्पाप ।।१०।।
कुशल क्षेम शुभ पूछ कर, शिष्टाचार अनुसार ।
सुलभा मोहिनी मूर्ति, देखी उस ने विचार ।।११।।
सुयुवति यौवन भार से, सोहे लता अशोक ।
हुई विरक्त वसन्त में, तजा भोग का लोक ।।१२।।
कल्प लता सम शोभती, पुष्पित कोमल बेल ।
यौवन युग मधु मास में, सुमन राम में मेल ।।१३।।
चन्द्रमुखी मृग-लोचनी, गौरी गुण अवतार ।
शशि शोभा उतरी अभी, लिये सर्व ही सार ।।१४।।
निर्भय निर्मम दीखती, उज्ज्वल जैसे जोत ।
मोहक मुख शुभ नयन से, बहे प्रेम का सोत ।।१५।।
सोचा मन में जनक ने, यह देवी घर त्याग ।
रही अकेली विचर ही, धारण किये विराग ।।१६।।

कौन है कैसे हि फिरे?, कहाँ जन्म वा वंश? ।
सोहे सूर्य किरण सी, है दैवी शुभ अंश ।।१७।।
राजा के मन भाव को, सुलभा जान तुरन्त ।
आत्म बल प्र-भाव से, कहा सुनो मतिमन्त ।।१८।।
मन से हूँ मैं पूछती, आत्मा का बल धार ।
है कौन तू यही कहो, कैसा ज्ञान विचार? ।।१६।।
प्रा-भावित हो जनक ने, उत्तर दिया तत्काल ।
हो समाधि में मग्न, आत्म-बल संभाल ।।२०।।
दोनों लीन सुध्यान में, तज कर देहाध्यास ।
आत्मा से थे बोलते, सत्ता में किये वास ।।२१।।
मौन सुमुनि दोनों बने, मुख मूँदे चुप चाप ।
तन से अचल अकम्प थे, जीवन्मुक्त अपाप ।।२२।।
कहा जनक ने—यह मम काजा, हूँ मैं धनिक विदेही राजा ।
पंच शिख मुनि मिले वर ज्ञानी, सांख्य ज्ञान की रीति बखानी ।।२३।।
इस में निपुण उन्हीं ने कीना, बोध विवेक मुझे शुभ दीना ।
याज्ञवल्क्य ने नयन उघाड़े, मेरे संशय सर्व उखाड़े ।।२४।।
आत्म-ज्ञान दिया सुखकारी, बोध अध्यात्म मन तम हारी ।
एक अखंड अगोचर स्वामी, अनन्त ईश हरि अन्तर्यामी ।।२५।।
एक देव जाना अविकारी, परम ज्ञानमय लीला धारी ।
आशा तृष्णा रोग मिटाया, समाधान में ही मन आया ।।२६।।
द्वेष दुई की भित्ति गिराई, भीतर आत्म-ज्योति जगाई ।
सब में सम दृष्टि है मेरी, मिटी मोह की मेरी तेरी ।।२७।।
ज्ञान भानु का मिला उजाला, परम धाम का सूर्य वाला ।
जब चाहूँ तब स्व में आऊँ, आत्मा में सुस्थिर हो जाऊँ ।।२८।।

सभी विकल्प वासना सारी, वशीभूत हो हैं सुखकारी ।
हारे पाप दोष दुःख भागे, पूर्व पुण्य उदय हो जागे ।।२९।।
बढ़ा विवेक विचार सुहाना, चित्त चन्द्र चढ़ा चमकाना ।
अहर्निश काम करूँ रह न्यारा, राम भरोसा कर के भारा ।।३०।।
चलते फिरते चित्त न डोले, सर्व कर्म में समाधि हो ले ।
सुलभे आत्मा हूँ मैं जानो, ज्ञान कर्म में निष्ठा मानो ।।३१।।
बने बीज से अंकुर जैसे, संस्कार से कर्म हों ऐसे ।
भुना बीज न अंकुर लावे, दग्ध-पाप जन जन्म न पावे ।।३२।।
मुझ पर गुरुजन हुए दयाला, तोड़ी ममता माया माला ।
मोक्ष मार्ग का मिला द्वारा, भक्ति धर्म का सार सहारा ।।३३।।
मुझे न तन-धन-ममता होती, जागी मम सुशक्ति ही सोती ।
समता-भाव रहे मन माँही, सत्ता निज में विषमता नाँही ।।३४।।
सुलभे, भक्त राम अनुरागी, वह जानिए परम वैरागी ।
न त्यागी जो गृह को त्यागे, मात पिता पालन से भागे ।।३५।।
दण्ड कमण्डल कम्बल धारे, रक्खे आसन वस्त्र जो सारे ।
सो भी जान परिग्रहधारी, परिग्रह वस्तु हैं ये सारी ।।३६।।
घर में देख दोष वन जावे, रख उपकरण विभूति रमावे ।
परिग्रही वह भी जन जाना, गृह त्याग मूढ़ों ने माना ।।३७।।
न्यायशील राजा सुखकारी, दीन जनों के दुःख का हारी ।
सम दृष्टि संन्यासी माना, कारण नहीं धर्म में बाना ।।३८।।
भिक्षा कर पर भाग्य से जीना, जिये विवेक विचार विहीना ।
अथवा दीन अपाहिज प्राणी, वृत्ति अधम भिक्षा ही मानी ।।३९।।
सुलभे, करना शुद्ध कमाई, अन्न शुद्ध खाना सुखदाई ।
पर हित सेवा में मन लाना, कर्म भक्ति संन्यास समाना ।।४०।।

बोली सुलभा चतुर सियानी, जनक-वचन सुमर्म पहचानी ।
राजन् ! वचन अर्थमय सारे, स्वार्थ रहित लगें अति प्यारे ।।४१।।
सार वचन आत्मा की गाथा, सुन कर हर्षे हिया मन माथा ।
वचन मृदु सत्य सरल प्यारा, सुख दाता माना है भारा ।।४२।।
सो शुभ सार सुनो सुखदाई, मर्म कथन को ध्यान लगाई ।
अनित्य पदार्थ जग के सारे, बन्धु सगे न तारने हारे ।।४३।।
दैव-योग सम्बन्ध बखाने, आत्म-ज्ञान न इन से माने ।
पांच भूत हैं सर्व विकारी, आत्मा जानो इन से न्यारी ।।४४।।
नहीं विकार न कार्य देखा, सांख्य ज्ञान सार की रेखा ।
भिन्न पुरुष प्रकृति विचारे, आत्म-ज्ञान सार यों धारे ।।४५।।
निर्मल आत्मा जनक कहावे, मल विक्षेप वृत्ति में आवे ।
जल में उठें तरंग यथा ही, चित्त में हों विकल्प तथा ही ।।४६।।
करिए शमन साधना साधे, आत्मा में नारायण राधे ।
दीप शिखा पवन से ज्यों ही, मन विकल्प से कांपे त्यों ही ।।४७।।
वृत्ति में वृत्तिमय होवे, निज पद भूल भ्रान्ति में सोवे ।
हो निश्चल जब निज में आवे, ज्ञान रूप आत्मा बन जावे ।।४८।।
जो जन जाने अपना होना, स्व-पन का चमके सब कोना ।
अस्ति रूप शुभ बल को पा के, अमर बने सब कर्म खपा के ।।४६।।
चित्त रूप ही आत्मा ज्ञानी, उस की शक्ति देह में मानी ।
नयन कर्ण जिह्वा त्वक् घ्राणा, इन का वही चाँदना जाना ।।५०।।
पांचों ज्ञान एक है ज्ञाता, सब वस्तु का एक प्रमाता ।
पूर्वापर का ज्ञान मिलावे, बहु चिर की स्मृति सम्भलावे ।।५१।।
सो आत्मा चिद्रूप बताते, वेद श्रुति से मुनिवर गाते ।
मैं हूँ आत्मा अमर विचारे, ज्ञान शांतिमय निश्चित धारे ।।५२।।

देखी सुनी एक दिखलावे, यह वह का जो ज्ञान करावे ।
साक्षी अपना ही वह जाना, क्रिया कर्म करे जो नाना ।।५३।।
कर्म सभी पर दृष्टि हो ले, साक्षी उसे सन्त जन बोले ।
लक्ष्य में वाण झुकाय जैसे, वीर-दृष्टि टिकी हो ऐसे ।।५४।।
वृत्ति सुवाण आत्मा शूरा, साक्षी रूप मानिए पूरा ।
चेतन सो ही शुद्ध कहाता, तन मन मेधा का है ज्ञाता ।।५५।।
अंगुल से ज्यों चांद दिखावे, दृष्टि तदाकार हो जावे ।
दृश्य शशि है जानन हारा, साक्षी आत्मा समझो प्यारा ।।५६।।
जागृति आदि का जो ज्ञानी, पांच करण का जो अभिमानी ।
मैं सोया सुखी कुछ न जाना, साक्षी पन का ज्ञान बखाना ।।५७।।
बहु दृश्य स्वप्न में जाने, देश काल रचना के ताने ।
नींद त्याग जो सभी बखाने, वह साक्षी कहें मुनि सियाने ।।५८।।
सो साक्षी शुभ मेरा जागा, अज्ञान संशय मुझ से भागा ।
संशय सर्व भस्म कर डारे, पाप ताप ही सकल निवारे ।।५६।।
ज्ञान स्वरूप आत्मा मेरा, यहां 'कौन' प्रश्न यह तेरा ।
नहीं समुचित पूछना ऐसे, पूछा राजन् तू ने जैसे ।।६०।।
तुझ को अपना आप बताऊं, विमल साक्षी हूँ यह सुनाऊं ।
भासे राजन्! निज पद मोहे, ज्यों स्व सत्ता दीखती तोहे ।।६१।।
कहा उस ने, देवि! सुन लेना, मम प्रश्नों पर ध्यान न देना ।
सुलभे, अलभ्य लाभ ही पाया, तू ने जो निर्वाण है गाया ।।६२।।
सकल मनोरथ पूर्ण पा के, स्थिर हुई तू ध्यान लगा के ।
दीप शिखा वत् वृत्ति तेरी, है निश्चल यह सम्मति मेरी ।।६३।।
यथा रज्जु पर नट चढ़ नाचे, हंसे हिले खेल में राचे ।
परंतु ध्यान निरंतर ध्यावे, भार रहे सम विषम न पावे ।।६४।।

है ही सुस्थिर साक्षी तेरा, न भ्रम तम का उस पर घेरा ।
सुलभे, आत्मा सत्य कहावे, ज्योति रूप ही जाना जावे ।।६५।।
युवाकाल में यह पद पाया, सब सफल है तू ने बनाया ।
तू है धन्य पिता तव माता, सुलभे धन्य जाति तव नाता ।।६६।।
देवी दीप्ति दिव्य सी, हुई विदा कर मान ।
धन्य धन्य वह मानती, जान जनक का ज्ञान ।।६७।।
देश देशान्तर में फिरी, घूमी स्थान अनेक ।
लीन हुई निर्वाण में, आत्मा में हो एक ।।६८।।

अष्टावक्र

नृप जनक की सभा में, आते मुनि यति लोक ।
चर्चा ज्ञान में भाग ले, हरते संशय शोक ।।१।।
पण्डित ज्ञानी अन्त के, तर्क-ग्रन्थ प्र-वीण ।
पहुँचे हुए राम को, आते स्व में लीन ।।२।।
सभा एकदा थी जुड़ी, बैठे थे सब लोग ।
ज्ञानी ध्यानी महात्मा, मन से विमल अरोग ।।३।।
वहां अचानक आ गया, वेद अगम-विद्वान् ।
ज्ञाता विद्या ब्रह्म का, अष्टावक्र प्रधान ।।४।।
टेड़े मेड़े सर्व थे, उस के आठों अंग ।
था कुरूप कुढब गठित, गाढ़ सांवला रंग ।।५।।
पाँव घिसटते आ गया, जब वह सभा समीप ।
जाना जनक तुरन्त ही, दीप्ति युक्त सुदीप ।।६।।
नृप उठा तत्काल ही, जड़ित सुखासन छोड़ ।
अभि-गमन किया मान से, लिये हाथ दो जोड़ ।।७।।

बोला, मुने ! पधारिये, यहां विराजो आय ।
दया करो उपदेश दे, ज्ञान दान बरसाय ।।८।।
उठा जनक को देख कर, उठे सभा के लोग ।
मुनि कुरूप को देख कर, मन में लाये सोग ।।९।।
बैठे सभी तुरन्त वे, समझे यह उपहास ।
किया जनक ने ढंग से, इसे बुला कर पास ।।१०।।
काला अधिक कुरूप यह, चले विहंगम चाल ।
उलटे इस के अंग सब, फूटा सा है भाल ।।११।।
मूर्ति ऐसी मलिन को, मन से देना मान ।
पूरा यह उपहास है, अथवा है अपमान ।।१२।।
सभासदों के भाव को, लिया ऋषि ने जान ।
सोचा उस ने ये सभी, मद में हैं अनजान ।।१३।।
सभा स्थान से लौट कर, चला वही मुनिराज ।
जैसे सम्पत् का भरा, त्यागे तीर जहाज ।।१४।।
पूछा कारण जनक ने, मुनि ने दिया बताय ।
राजन्, कीचड़ कुण्ड में, मुझ से पड़ा न जाय ।।१५।।
दर्शन को आया यहां, जान संत गुणवन्त ।
मुनिवर ज्ञानी महात्मा, ज्ञान निपुण मतिमन्त ।।१६।।
पर ये सभी चमार हैं, मिले सभा के बीच ।
हंस न आता ताल में, जहां भरा हो कीच ।।१७।।
भ्रमर तजे वह वन सब, जहां आक हो डाक ।
चर्म परीक्षक जनों में, मैं हो रहूँ अवाक् ।।१८।।
अष्टावक्र की सुन कर वाणी, मद मातों का मान मिटानी ।
बोला जनक, मुनि, नहीं जाना, अपने मुख से भेद बताना ।।१९।।

चर्मकार सब को ही ऐसे, तू ने कहा अभी मुनि कैसे ।
ये सब हैं कुलीन आचारी, ज्ञानी महा मान के धारी ।।२०।।
हुए गम्भीर मुनि यों बोले, हित मित वचन सत्य से तोले ।
राजन्! सब को पूछ अभी ही, बैठ गए क्यों देख तभी ही ।।२१।।
सभ्य धर्म की सुरीति तोड़ी, सब ने सभी मर्यादा छोड़ी ।
नृप हो खड़ा खड़े हों सारे, यह ही विनय कही है प्यारे ।।२२।।
पर मर्यादा सभा ने लोपी, विनय धर्म की शैली गोपी ।
सभासदों ने सत्य बताया, देख के इस की कुढब काया ।।२३।।
जाना यह है मत्त नकारा, ज्ञान रहित ही रहित विचारा ।
इस कारण सब बैठे ज्ञानी, कुरूपाकार मुनि को जानी ।।२४।।
मंद मधुर हंसी मुख ला के, बोला मुनि सब भेद बता के ।
देख चर्म कुरूप यह मेरा, समझे सूना तन का डेरा ।।२५।।
विवेक विचार ज्ञान न जाना, सब कुछ चर्म इन्हों ने माना ।
जांचे चाम चमार कहावे, चाम पारखी ज्ञान न पावे ।।२६।।
सभासदों की रीति अनोखी, इन्हों ने तजी सुरीति चोखी ।
देखा वर्ण चाम का काला, आत्म-ज्ञान न देखा भाला ।।२७।।
माना मुझे इन्हों ने खोटा, ज्ञान कर्म सुधर्म में छोटा ।
राजन्, कठिन सुपण्डित होना, भक्ति ज्ञान से मन मल धोना ।।२८।।
बोले सभी सुविनय दर्शा के, आओ मुने सुशोभा पा के ।
दे उपदेश सभी को तारो, मलिन मनों को आप सुधारो ।।२९।।
मुनिवर लौट सभा में आया, सभी जनों ने मान दिखाया ।
बोला वह शुभ वचन सुहाने, प्रेम पगे अमृत बरसाने ।।३०।।
मुक्ति पन्थ जो वेद बताते, महर्षि मुनिवर जो समझाते ।
वह शुभ सार सुनो मन दे के, अमृत बनो भक्ति रस ले के ।।३१।।

जो जन मोक्ष पन्थ को चाहें, विषवत् विषय सुदूर भगायें ।
क्षमा भक्ति सन्तोष सुसाधें, राम नाम अहर्निश आराधें ।।३२।।
ज्ञान सुध्यान विचार बढ़ावें, मन में सदा सरलता लावें ।
राम भजन भव जल से तारे, पावन कर सब काज सुधारे ।।३३।।
सिमरन ईश ध्यान सुखदाई, करे उपासना कर्म सहाई ।
जो जन मग्न ध्यान में होवे, दुष्ट कर्म वह जन सब खोवे ।।३४।।
शांति विवेक विराग विचारे, दमन तितिक्षा उपरति धारे ।
श्रद्धा हो विश्वास भी भारा, अष्टक है यह तारन हारा ।।३५।।
मोक्ष की इच्छा अति ही होवे, लगन परम में जागे सोवे ।
अनुराग हो राम में पूरा, अविद्या मान करे सब चूरा ।।३६।।
राम नाम को मन से ध्यावे, पुण्य रूप हरि गुण को गावे ।
कर हरि कथा सुयश मन लावे, मुक्ति सप्त सोपान दिलावे ।।३७।।
जाने सम सब को हितकारी, ऊंच नीच का भेद निवारी ।
सब का ईश राम को माने, एक निरंजन उस को जाने ।।३८।।
व्यापक हरि सर्व-शक्ति धारी, उस की रचना सृष्टि सारी ।
चिन्तन कर निजपन पहचाने, आत्म-सत्ता सुविमल बखाने ।।३९।।
कर्म करे जैसे जन कोई, गति वैसी पावे जन सोई ।
वर्ण गोत्र हरिजन न देखे, भेद भाव के तज दे लेखे ।।४०।।
सब में राम लखे सम ऐसा, भानु सब स्थल चमके जैसा ।
करे कर्म सुधर्म को पाले, कर्मयोग से सर्व दुःख टाले ।।४१।।
हरि रस सने स्निग्ध सुहाने, सुन्दर स्वादु सभी मन भाने ।
सुन कर वचन सभा तब सारी, साधु-सुर एक जीभ पुकारी ।।४२।।
सुन उपदेश मर्म मय सारा, धन्य धन्य सभी ने उच्चारा ।
विदा हुआ मुनि-स्थान पधारा, उस ने सुभक्ति से जग तारा ।।४३।।

याज्ञवल्क्य का आत्म-दर्शन

याज्ञवल्क्य था महामति, सागर ज्ञान अगाध ।
यति योगी भगवद्भक्त, शान्त रहता निर्बाध ।।१।।
नर अद्वितीय वेद का, ज्ञाता था गुणवान् ।
स्मृति श्रुति उपदेश से, हरता सभी अज्ञान ।।२।।
निपुण ब्रह्म विवेक में, था ज्ञानी असमान ।
उस के भीतर था भरा, भावुक भाव महान् ।।३।।
उस के आश्रम स्थान में, रहते शिष्य अनेक ।
पढ़ते वेद वेदांग हि, सत्य सनातन एक ।।४।।
गोष्ठी ब्रह्म ज्ञान में, पाता परमानन्द ।
देता दीक्षा धर्म की, राम भजन सुखकन्द ।।५।।
भजन नारायण नाम का, जाप गायत्री पाठ ।
करता दोनों काल वह, नित्य-कर्म का ठाठ ।।६।।
जनक सभा में जाय कर, उस में लेता भाग ।
उस के शुभ उपदेश से, बहु जन जाते जाग ।।७।।
चर्चा करता ब्रह्म की, कर्म-योग संन्यास ।
ज्ञान त्याग शुभ भक्ति की, जो हैं सुख की रास ।।८।।
उस का उत्तम मान था, राज-भवन दरबार ।
पण्डित वर्ग सुसंघ में, सन्त जनों में प्यार ।।९।।
देश में वह विख्यात था, सूर्य किरण समान ।
विमल बुद्धि शुचि ज्ञान से, सब में पाता मान ।।१०।।
निश्चल था हरि ध्यान में, स्थिर मति वह सुजान ।
परमात्मा के प्रेम से, था वह भक्त निधान ।।११।।

उस के धर्मोपदेश से, होते बहु जन पार ।
नाम सुध्यान उपासना, धारणा पा ये चार ।।१२।।
यद्यपि था बड़ा धनपति, धरणी-पति श्रीमान् ।
पर त्यागी था भाव से, सभी राम का मान ।।१३।।
चन्द्र घटा में रह कर, तजे न अपना रूप ।
धन सम्पत् संसार में, भक्त न बने विरूप ।।१४।।
भानु-तेज घिर धूल में, तजे न अपना आप ।
सम्पत् पा कर भक्त जन, रहते सदा अपाप ।।१५।।
भगवदर्पित जो भक्त, पा कर सब धन मान ।
त्यागी सच्चे समझिए, सच्ची धारणा-वान् ।।१६।।
याज्ञवल्क्य ऐसा हुआ, परम भागवत धीर ।
ऊंचा भक्ति सुप्रेम में, ज्ञान कर्म में वीर ।।१७।।
ब्राह्म सभा एकदा भारी, लगी शोभती अति ही प्यारी ।
उस में याज्ञवल्क्य मुनि आया, शिष्य संघ से शोभा लाया ।।१८।।
उस ने शुभ उपदेश सुनाया, आत्म-दर्शन उत्तम गाया ।
ज्ञानरूप चेतन है जाना, स्वयं ज्योति सुविमल बखाना ।।१९।।
उस की सुज्योति आत्मा धारो, ज्योति रूप निज रूप विचारो ।
पर प्रकाशक जो भी होवे, वही ज्योति सब तम को खोवे ।।२०।।
घट पट का जो कहा उजाला, आत्मा जो चित्त शक्ति वाला ।
है प्रकाशक सब का ऐसा, सौर लोक का सूर्य जैसा ।।२१।।
देश काल को जिस ने जाना, वह यह को जिस ने पहचाना ।
चन्द्र सूर्य को नापे तोले, ज्ञाता उसे सन्त गण बोले ।।२२।।
नाना लोक को जो दर्शावे, एक अनेक का भेद लखावे ।
ज्योति स्वरूप वह चित्त कहावे, वेदागम में ऐसा आवे ।।२३।।

अपने पन को जो जन जाने, स्व-सत्ता शुद्ध जो पहचाने ।
जैसे तिल से तेल निकाले, आत्मा को यों देखे भाले ।।२४।।
पूले में से तिनका ज्यों ही, खींच निकाले, स्व को त्यों ही ।
तत्त्व पांच से भिन्न बतावे, निरख परख पर को समझावे ।।२५।।
द्रष्टा आत्मा जाने जो ही, सत्ता रूप लखे जन सो ही ।
देखे सुने नयन बिन काना, दर्शक श्रोता आत्मा माना ।।२६।।
आत्म-दर्शन अन्हत वाणी, बोले आत्मा निज को जानी ।
"मैं हूँ आत्मा" उत्तम प्यारी, बोले वाणी निज बल धारी ।।२७।।
जो सुने ध्वनि शब्द सुखदाई, आत्मा-पदवी उस ने पाई ।
शेष जीव जीवन के धारी, मुनि जन देखे नयन पसारी ।।२८।।
आत्म-दर्शन कह कर ऐसे, शान्त हुआ मुनि सागर जैसे ।
यह सुन सब ने मोद मनाया, सभा जनों ने सब सुख पाया ।।२९।।

भागवती गार्गी

ब्राह्म सभा थी सुशुभा, रही जनक की राज ।
पावन तीर्थ धर्म का, थी जन तारन काज ।।१।।
तत्त्वदर्शी आ कर वहां, नित्य कर ज्ञान स्नान ।
अहो ! पुण्य जन मानते, पा कर सभा महान ।।२।।
शत शत पंडित वहां मिल, करते ज्ञान विचार ।
एक समय उस में जुड़े, विद्या ज्ञान भण्डार ।।३।।
उन में देवी दिव्य थी, बुद्धिमती गुणखान ।
अवधूता अति सुन्दरी, रूप रंग की स्थान ।।४।।
ज्ञान सुसागर को लिये, गागर गार्गी आप ।
गौरव गरिमा गुणों की, आगर गिनी अपाप ।।५।।

शत्रु सम्मुख वीर हो जैसे, दो प्रश्न मेरे हैं ऐसे ।
पूछो कहा मुनि ने अभी ही, विनय से बोली वह तभी ही ।।३०।।
कहो मुने! जो नभ से ऊँचे, जो हैं पदार्थ भूमि नीचे ।
भूमि सूर्य लोक जो तारे, भूत भविष्यत् जो भी सारे ।।३१।।
किस में ओत प्रोत हैं माने, सभी आश्रित किस के जाने? ।
ओत प्रोत आकाश में मानो, कहा मुनि ने सत्य यह जानो ।।३२।।
नमस्ते कर देवी फिर बोली, मेरी सुतुष्टि इस से हो ली ।
प्रश्न अन्य सुनो मन धारो, उत्तर उस का मुने! विचारो ।।३३।।
सर्वाधार आकाश बखाना, उसे आश्रित किस के माना ।
लोक काल को कौन सहारे, किस में नभ भू रहते सारे ।।३४।।
बोला मुनि, यह गार्गि ! तेरा, अति प्रश्न है यह मत मेरा ।
अक्षर परम कहें ऋषि ज्ञानी, सूक्ष्मतम कहते हरि ध्यानी ।।३५।।
पांच तत्त्व से है वह न्यारा, उस में ओत प्रोत जग सारा ।
सब के भीतर बाहर राजे, सब में व्यापक राम विराजे ।।३६।।
पावन परम विकाशक स्वामी, पार ब्रह्म है अन्तर्यामी ।
वही आत्मा अनन्त बखाना, सभी में वर्ते उस का भाना ।।३७।।
उस के शासन में हि विचारे, सूर्य चाँद ग्रह गण तारे ।
लोक सभी लोकान्तर भारे, उस के शासन में हैं सारे ।।३८।।
जीव जन्तु जड़ जंगम जो भी, उस के शासन में है सो भी ।
जन्म जन्मान्तर फल को पाना, योग वियोग नियम तस जाना ।।३६।।
उस का सुनियम टले न टाले, कर्ता प्रभु सब ही को पाले ।
गार्गी ! अलख अगोचर त्राता, सब का ईश पिता है माता ।।४०।।
हरि है सुख में पूर्ण प्यारा, शासित विश्व उसी से सारा ।
उस को जान जगत् से जाना, सफल जन्म है पूर्ण माना ।।४१।।

जितने जन उस को आराधें, वे ही मोक्ष की सिद्धि साधें ।
कृपण वह जो उसे न जाने, अफल मरे यह कहें सियाने ।।४२।।
अफल जन्म उसी ने बिताया, परमेश्वर न जिस ने ध्याया ।
जन्म कर्म गति उस ने जीती, जिस ने हरि से करी सुप्रीति ।।४३।।
उत्तर सुन गार्गी सुख पाया, हाथ जोड़ कर शीश नवाया ।
प्र-शंसा कर बोली वाणी, पण्डित गण को सुधा समानी ।।४४।।
याज्ञवल्क्य से वाद निवारो, ब्रह्म-ज्ञानी इस को धारो ।
कर सन्तोष इसे बहु मानो, उत्तम पुरुष इसी को जानो ।।४५।।
गार्गी जीत सभा में राजी, तारों पर ज्यों उषा विराजी ।
भक्ति धर्म में रहती राती, ज्ञान ध्यान में काल बिताती ।।४६।।
शुचि जीवन उस ने ही पाया, गई हरि धाम में तज कर काया ।
हरिजन की जो ऐसी गाथा, वह सुन हर्षे हिया मन माथा ।।४७।।

मैत्रेयी

नमो नमः श्री राम को, जो एक निराकार ।
जस सिमरन से भक्त जन, उतरें जग से पार ।।१।।
जो जन उस के हो गये, किये समर्पण आप ।
दोष दूर उन के भगें, उन्हें छूए न पाप ।।२।।
राम समर्पित था गुणी, याज्ञवल्क्य मुनि सन्त ।
उस ने चाहा छोड़ना, धन सम्पत् एकान्त ।।३।।
अन्तिम अवस्था के समय, की उस ने यह सोच ।
है मैत्रेयी उपरता, करे अधिक संकोच ।।४।।
बनी विवाहिता भार्या, पर है केवल नाम ।
भर्ता भार्या वाक्य दो, उसे न जग से काम ।।५।।

विरक्ता ब्रह्म-वादिनी, ईश रता है एक ।
रहती ज्ञान विचार में, तज कर विषय अनेक ।।६।।
देह की है न सुध इसे, ले न सार सम्भार ।
सूना हो वा जगमगा, इस का ही घरबार ।।७।।
रहे राम में ही रमी, जप अमृत कर पान ।
ईश भक्ति है मानती, ऊँचा धर्म सुज्ञान ।।८।।
इस के मन में मोद है, नाम मधुर की तान ।
पर है कोरी कर्म में, योग क्षेम अनजान ।।९।।
भोली भाली सरल है, सीधी साधु-सुभाव ।
धन सम्पत् का नहीं इसे, यत् किंचित् भी चाव ।।१०।।
मेरे पीछे यह कभी, नहीं दुःखिता होय ।
धन में इस का भाग जो, मुझ से पावे सोय ।।११।।
कात्यायनी रहे बनी, कुशल कला की खान ।
इन में कलह न हो कभी, ऐसा करूँ विधान ।।१२।।
मन मुटाव न कभी करें, रहें सदा कर प्यार ।
इन्हें बाँट दूँ सम्पदा, इस से रहे सुधार ।।१३।।
गृहिणी है कात्यायनी, घर को ले सम्भार ।
मैत्रेयी ले भाग निज, जपे नाम शुभ सार ।।१४।।
कहा, मैत्रेयि ! आइए, उस ने उसे पुकार ।
धन सम्पत् का भाग यह, तेरा है ले धार ।।१५।।
रहूँगा वन में मैं अब, छोड़ गृह के काम ।
सन्तति को सब सौंप कर, जपूं राम का नाम ।।१६।।
तेरी चिन्ता चित्त में, रहे नहीं लव लेश ।
धन के कभी अभाव से, हो नहीं तुझे क्लेश ।।१७।।

इस कारण धन राशि यह, तेरा ही है भाग ।
कर कात्यायनी से शुभ, प्रेम प्रीति अनुराग ।।१८।।
स्नेह सनी पति की सुन वाणी, हित से भरी प्रीति उपजानी ।
उस ने नम्र विनय यह कीनी, ज्ञान प्रेम से जो थी भीनी ।।१६।।
मुने! यदि यह भूतल भारा, भरा विभूति से मिले सारा ।
क्या उस से अमृत हो जाऊँ, जन्म बन्धन मैं फिर न पाऊँ ।।२०।।
क्या धन से हो जाय निस्तारा, भव सागर का मिले किनारा ।
उत्तर में मुनिवर तब बोले, धन नहीं मुक्ति के पट खोले ।।२१।।
जियेगी तू यथा धनशाली, जिये न उन से कभी निराली ।
मोक्ष का साधन धन न माना, अमर जीवन न इस से जाना ।।२२।।
बोली वह, पति ! मुझे बताना, अपने जैसी लगन लगाना ।
तुझे प्रिय-पद जो ही भाता, मुझे न तू वह क्यों समझाता ।।२३।।
इष्ट वस्तु में मुझ को जोड़ो, प्रिय पति नहीं नाता तोड़ो ।
तू मम प्राण नाथ है प्यारे, आप बिना सुख फीके सारे ।।२४।।
कहा मुनि ने, सुन प्रियरूपे, आप प्रेम है विमल सुरूपे ।
प्रेम भरी बोले तू वाणी, अपनी प्रियता को दर्शानी ।।२५।।
वास्तव का सुन सार सियानी, आत्मा प्रिय रूप है ज्ञानी ।
उस के अर्थ सभी शुभ लागे, जिन से जग में नाता जागे ।।२६।।
धन है साधन सुख का भारा, इस से आत्मा को है प्यारा ।
यदि सुख में न हो वह सहाई, वह लगता है अति दुःखदाई ।।२७।।
आत्म रक्षा हेतु ही प्यारे, धन सम्पत् लगते हैं सारे ।
पति पत्नी सुत सुता सब कोई, जग के नाते माने सोई ।।२८।।
आत्मा का है प्रेम पसारा, इस से मधुर बन्ध है भारा ।
जिस से पलटें भाव हि जी के, लगें सम्बन्ध अति वे फीके ।।२६।।

जिस में मन सुप्रेम फैलावे, धन जन आदि प्रिय हो जावे ।
जिस को मन मेरा कर माने, ममता-ताना जिस में ताने ।।३०।।
जिस में अपना आप पसारे, प्रेम रूपता वहां विस्तारे ।
सो प्रिय रूप आत्मा देखा, है निज में शुभ प्रेम सुरेखा ।।३१।।
इस को जान ज्ञान से प्यारी, प्रेमरूप निजू सत्ता सारी ।
अपना आप सभी को प्यारा, लगता है ज्ञानी जन धारा ।।३२।।
खोज देख निज रूप सुहाना, श्रवण मनन आदि कर नाना ।
ज्ञान मनन से आत्मा जाने, प्रेम रूप वह कहें सियाने ।३३।।
उस ने पति का कहना माना, परम प्रेममय आत्मा जाना ।
याज्ञवल्क्य हो हरि अनुरागी, कर्म योग में हुआ सुत्यागी ।।३४।।

मैत्रेयी पराशर सम्वाद

याज्ञवल्क्य उपदेश से, ले मैत्रेयी बोध ।
संयम साधन साध कर, तजा मान सब क्रोध ।।१।।
बसी पराशर स्थान में, करने लगी सत्संग ।
ज्ञान ध्यान में स्नान कर, धोये उस ने अंग ।।२।।
साधन उस के देख कर, मुनि ने कहा विशेष ।
मैत्रेयी को त्याग कर, जान यही उपदेश ।।३।।
साधन करती वह रही, पर्ण कुटी के बीच ।
संगति शुभ में बैठ कर, धोती मानस कीच ।।४।।
बोला मुनिवर, मैत्रेयि! कर ले जन्म सुधार ।
त्याग धर्म को धार कर, हो जा जग से पार ।।५।।
एक त्याग से पाइए, अमृत पद सुख खान ।
त्याग परम है साधना, सत्य रूप ही मान ।।६।।

दिन बीते जब बहुत से, आ कर मुनि उस पास ।
बोला, मैत्रेयी कहो, तू क्यों रहे उदास ।।७।।
क्या मन में तू शान्त है?, क्या हुआ समाधान ।
लख कर अपनी ज्योति क्या?, तेरा हुआ कल्याण ।।८।।
बोली मैत्रेयी, मुने!, हूँ मैं बहुत अशान्त ।
मिला न मार्ग भेद का, बस कर भी एकान्त ।।९।।
चंचल मन की बात है, चपलावत् सब ओर ।
चमके वृत्ति चंचला, ठहरे एक न ठौर ।।१०।।
हृदय नद में हे मुने !, दौड़ें दुष्ट तरंग ।
इस से उपजे कल्पना, करे ध्यान को भंग ।।११।।
मेरे मानस ताल में, नहीं हंस है शान्त ।
वासना वायु से हिले, इस का सारा प्रान्त ।।१२।।
कर कृपा समझाइए, हो यथा समाधान ।
ब्रह्म-समाधि ही मिले, पाऊँ आत्म-ज्ञान ।।१३।।
बोला मुनि, सुन सती सियानी, ऊँचा त्याग सुकर्म कहानी ।
त्याग-कर्म से सब सुख आवें, अमृत पद जन निश्चय पावें ।।१४।।
त्याग करो मन निश्चल होगा, इस से मुनि जन ने सुख भोगा ।
मुनि वचन को उस ने विचारा, करना सर्वत्याग मन धारा ।।१५।।
आभूषण धन जो था भारा, कुटि पराशरी में हि डारा ।
कहा—यह वस्तु अब मैं त्यागी, सारी माया मुझ से भागी ।।१६।।
मन्द हास से मुनिवर बोले, त्याग न जानें बहु जन भोले ।
जो तू जाने त्याग यही है, वस्तु मात्र तव यह पड़ी है ।।१७।।
बीते दिन मुनि फिर चल आया, मैत्रेयी को आय बुलाया ।
देखी वह उदास ही नारी, जल बिन शुष्क ज्यों पुष्प क्यारी ।।१८।।

बोला वह, स्व दशा बताना, मन की अवस्था आप सुनाना ।
[illegible]
उस ने उत्तर दे कर ऐसा, कहा—मुने! वह सुख है कैसा? ।
चिदाकाश में रहे अन्धेरा, रहता अशान्त अति मन मेरा ।।२०।।
निज शक्ति से चित्त ठहराओ, भक्ति धर्म में भाव बढ़ाओ ।
वह बोला—जब त्याग करेगी, निश्चल हो तब जगत् तरेगी ।।२१।।
उस ने वस्त्र सभी तब छोड़े, अंगरक्षा हित रख कर थोड़े ।
समझी त्याग हुआ अब पूरा, अब तो कुछ भी नहीं अधूरा ।।२२।।
मुनि पराशर फिर वहां आया, मैत्रेयी देख अति हर्षाया ।
हुई कहा क्या पूर्ण आशा, मिटी घोर क्या निशा-निराशा? ।।२३।।
वह बोली—कुछ भेद नहीं है, शान्ति की नहीं रेख कहीं है ।
उठते विकल्प अब भी ऐसे, फुरते थे पहले भी जैसे ।।२४।।
मेरे मन में जोत जगाओ, ईश प्रेम की रीति सिखाओ ।
शेष त्यागना है जग जीना, रहना सोना खाना पीना ।।२५।।
कहो यदि तो यह सभी छोड़ूँ, जीवन लड़ी अभी ही तोड़ूँ ।
हंसते कहा मुनि ने—मैंने, जाना त्याग किया जो तै ने ।।२६।।
माना त्याग समर्पण भारा, धन सम्पत् सुकर्म भी सारा ।
मानामान राम के आगे, त्यागे जो ही सो जन जागे ।।२७।।
त्यागे पाप कर्म ही भारे, ईर्ष्या द्वेष विकार जो सारे ।
वैदिक-त्याग धर्म अनुसारी, कहते सन्त मुनि व्रतधारी ।।२८।।
भक्ति धर्म में त्याग बखाना, अर्पण हरि आगे हो जाना ।
मान मोह मद ममता मारे, यही त्याग जग सागर तारे ।।२६।।
जानिए है न वह जन त्यागी, प्रेम भक्ति वर्जित वैरागी ।
त्यागी कहा कर्म का योगी, शक्ति शीलयुत स्वसुख भोगी ।।३०।।

सेवा करे दीन को देखी, यह शुभ त्याग न जाने भेखी ।
त्याग मर्म ऐसा समझाया, उत्तम त्याग समर्पण गाया ।।३१।।
हरिजन सेवा में मन देना, भाग सुधार सभी में लेना ।
त्याग स्वार्थ पर हित ला के, सेवा कर के पुण्य कमा के ।।३२।।
नाम जाप में चित्त लगाना, प्रेम हरि का मन में रमाना ।
भक्ति भावना होवे ऐसी, राम जनों में जानी जैसी ।।३३।।
कर सुभक्ति में त्याग सियानी, मैत्रेयी शुभ धाम-समानी ।
जो जन ऐसे पथ को पावे, परम धाम में अन्त समावे ।।३४।।

भारद्वाज

भक्ति धर्म में लीन मन, कर्म-योग में लीन ।
भागवत भारद्वाज था, आगम में प्र-वीण ।।१।।
पुर प्रयाग का सुपुरुष, था पहला गुणवान् ।
भक्ति शक्ति शुभ नीति का, था वह परम निधान ।।२।।
करता था वह कर्म शुभ, बहुत भांति के याग ।
इस से उस के ठाम का, नाम पड़ा प्र-याग ।।३।।
राजे पुर प्रयाग में, भारद्वाज मुनि-राज ।
नारायण को सिमरता, कृषि कर्म कर काज ।।४।।
गोपालन होता वहां, नाना विध के धान ।
आश्रम की सुसीम में, होते अन्न महान् ।।५।।
वेद ग्रन्थ के पाठ का, होता विधि से गान ।
देश देशान्तर के जन, पाते सुविद्या दान ।।६।।
कर्म-काण्ड के धर्म का, होता अधिक विधान ।
विद्या-पीठ प्रयाग की, चमके चाँद समान ।।७।।

पण्डित पण्डा के धनी, बने परम प्र-माण ।
प्रान्त प्रान्त के राजते, पाय प्रतिष्ठा मान ॥८॥
उस आश्रम की कीर्ति, बढ़ी चढ़ी थी एक ।
यशोगान मुनि-राज का, गाते देश अनेक ॥९॥
आश्रम भारद्वाज का, था गंगा के तीर ।
शीतल विमल सुहावना, जिस में बहता नीर ॥१०॥
नीली निर्मल गंग के, अमल अभंग तरंग ।
शीतल नीर समीर मिल, भीतर भरें उमंग ॥११॥
शोभें मन्द सुगन्धि से, बेल लता सह फूल ।
फल थे नाना भांति के, पुष्कल सुकन्द मूल ॥१२॥
प्रात समय समीर संग, सिर नत कर के बेल ।
गंगा पूजन पुष्प से, करतीं सहित सुखेल ॥१३॥
सुन्दर मोती ओस के, ले कर लीला साथ ।
बेलें पूजें गंग को, मानो झुकाय माथ ॥१४॥
हरियाली अति शोभती, चहूँ ओर सब ठौर ।
गंगा बन में राजती, वनराजी घनघोर ॥१५॥
सायं सवेरे आरति, गर्जे आश्रम बीच ।
वेद श्रुति के गीत से, सुर नृत्य से सींच ॥१६॥
पूजें जन जगदीश को, नारायण ले नाम ।
सावित्री के सुजाप से, होते पूर्ण काम ॥१७॥
पंछी गण भी बोलते, ऋषि गणों के गीत ।
शुक सारस मैना शुभा, कर के गहरी प्रीत ॥१८॥
मोहक नाच मयूर भी, होता मुनि जन संग ।
श्रुति गान होता जभी, चुटकी ताल सुरंग ॥१९॥

ऐसे शोभन धाम में, भारद्वाज था आप ।
नेता, वेत्ता वेद का, हरता जन के ताप ।।२०।।
दो गंग थीं बह रहीं, संग संग कर रेख ।
भक्ति तथा भागीरथी, सुख पाते जन देख ।।२१।।

भारद्वाज ने देश सुधारा, गंगा पार सुधर्म पसारा ।
दुष्ट असुर जन जो थे पापी, लूट मार कर आपाधापी ।।२२।।
करते कर्म कलंकित प्राणी, उन्हें सुधारा दे कर वाणी ।
धर्म कर्म उन में फैलाया, नीति न्याय का पथ दिखलाया ।।२३।।
दूर देश से ही जन आते, उस के पास से सुसुख पाते ।
पाते भोजन सब सुखकारी, जो आते साधु व्रत धारी ।।२४।।
अतिथि-कर्म वह आप कमाता, अभ्यागत जन भोजन पाता ।
आदर मान सभी का होता, सेवा बीज ऋषि ही बोता ।।२५।।
यजन शेष प्रसाद बखाना, अमृत नाम अन्न वह खाना ।
राघव अनुज सिया सह आये, भारद्वाज ने चरण धुलाये ।।२६।।
आसन दे कर सुविनय कीनी, बोला वाणी शुभ रस भीनी ।
वन के दिन सब यहीं बिताओ, गंगा तट पर कुटी बनाओ ।।२७।।
वन उद्यान सभी हैं सुहाने, कन्द मूल हैं बहु मन भाने ।
मृग आदि वनचर सब सोहें, वन उपवन जन-मन को मोहें ।।२८।।
रघुपति ने कहा, मुनि तुम्हारी, कृपा अति है मुझ पर भारी ।
कहें अयोध्या पास यहां से, मिलने आयें मित्र वहां से ।।२६।।
इस से होगा विघ्न बखेड़ा, यह तो कष्ट न जाय सहेड़ा ।
अनुमति ले रघुवर ही जा के, चित्रकूट बसे कुटी बना के ।।३०।।
रघुपति को लेने जब आया, भरत, तभी मुनि मान दिखाया ।
सेना सहित सुभोज्य दे भारी, उस की पूजा की उस सारी ।।३१।।

आदर कर मुनिवर तब बोले, भावुक भव्य भरत हो भोले ।
भ्रातृप्रेम भारत में भारी, वेद धर्म सुसार है सारी ।।३२।।
शुचि भाव से भ्रात पै जाना, दु:ख देने को न पांव बढ़ाना ।
बन्धु वैर वध करें विरोधी, असुर अनार्य अतिशय क्रोधी ।।३३।।
धर्म सनातन आर्य ही का, भ्रातृ-भाव जानिए नीका ।
भोले! बन्धु बड़ा बहु माना, स्मृति ग्रन्थ में पिता समाना ।।३४।।
भारद्वाज की सुन यह वाणी, भरत की सब काया थर्रानी ।
उस के नयन से अश्रु धारा, तब बही ज्यों बहे फव्वारा ।।३५।।
हाथ जोड़ कहा—सुनो ज्ञानी, जीते जी मृत्यु मैं मानी ।
दशरथ का सुत सूर्यवंशी, ऐसा बने न कभी कुअंशी ।।३६।।
मोहे रघुपति अर्पित मानो, अनुचर आज्ञाकारी जानो ।
बोला मुनि, है न मुझे शंका, पर मुनियों में है उत् टंका ।।३७।।
तव कथन से सब भ्रम भागे, मुनि जन ने संशय सब त्यागे ।
स्वस्ति हो, जा रघुपति लाना, बन्धु भावना में रम जाना ।।३८।।
ऐसे शुभ कर्मों को निभाते, भक्तों के भ्रम कष्ट हटाते ।
अन्त समय सुर धाम सिधारे, राम नाम में रमते प्यारे ।।३६।।

भक्त निषाद

प्रेम भक्ति सुधर्म का, दान दक्षिणा वीर ।
धैर्य धरणी का धनी, राघव सखा सुधीर ।।१।।
गुह नाम से नामी था, श्रृंगबेर पुर-पाल ।
ओज तेज से राजता, राजा शूर दयाल ।।२।।
रामचन्द्र का था वह, बाल काल का मीत ।
दोनों मधुर मिलाप में, रखते गहरी प्रीत ।।३।।

योद्धा वीर विख्यात था, बरसाने में वाण ।
उस का लघुतर हाथ था, बांकी सहित कमान ।।४।।
ईश नाम अनुरक्त था, भक्त सुशक्त विशेष ।
रघुपति वन में देख कर, पाया उस ने क्लेश ।।५।।
जाते दण्डक वनों को, वहाँ बिताई रात ।
राघव ने पुर पास ही, धारे व्रत विख्यात ।।६।।
मीठी मैत्री भाव की, अधिक अनोखी एक ।
तब दर्शाई निषाद ने, राघव को सिर टेक ।।७।।
मिलने आया वह उसे, देखा उस का वेश ।
वल्कल छाला हिरण की, दुःखित हुआ नरेश ।।८।।
रघुपति बोले लखन को, सखा आय सुखकार ।
है प्रिय मुझे प्राण सम, आत्मा सम ही धार ।।६।।
राघव उस को ही मिले, उठ कर भुजा पसार ।
गले लगा कर गाढ़तर, कर के उस से प्यार ।।१०।।
गुह बोला रघुनाथ जी, भोजन करिए आज ।
सुख के साधन लीजिये, मुझ से हि महाराज ।।११।।
श्रृंगबेर के बन नृप, शासन करो अखण्ड ।
अपना जन मानो मुझे, सेवक रहित घमण्ड ।।१२।।
मेरा जो कुछ है यहाँ, अपना ही लो जान ।
तेरे कारण हे सखे, अर्पित हैं मम प्राण ।।१३।।
सजल नयन शुभ बैन से, राघव कण्ठ लगाय ।
बोले, सुन मम मित्रवर, लिया सभी मैं पाय ।।१४।।
प्रेम प्रसादी पा कर, मैं हूँ अति आनन्द ।
परिग्रह तज कर बन मुनि, खाऊँगा वन-कन्द ।।१५।।

प्रीति भोजन सभी तजे, तजे राजसी भोग ।
निमन्त्रण का अन्न तज, बना वनी ले योग ।।१६।।
स्नेह सने शुभ वचन सुन, सखा स्नेह में लीन ।
बोला श्री रघुनाथ को, विनय सहित हो दीन ।।१७।।
मेरे मोहन मित्रवर, राम-चन्द्र सु-देव ।
अपनी सेवा दान दो, तन मन से लूँ सेव ।।१८।।
पर अब तो तुम हो बने, तापस मुनि प्रधान ।
कन्द मूल आहार तव, होगा दया निधान ।।१६।।
भाग्य मेरे मन्द हैं, पुण्य कर्म हैं मन्द ।
तुझ से बिछड़ा मैं रहूँ, राज काज में बन्द ।।२०।।
अगले दिन चलते समय, रघुपति राज निषाद ।
छाती लग कर ही मिले, भरे वियोग विषाद ।।२१।।
चित्रकूट पर जा बसे, राघव, सिया सभ्रात ।
सब दिन कर्म उपासना, करते सायं प्रात ।।२२।।
ऐसे रहते ही वहाँ, जब बीते कुछ मास ।
उन को लाने भरत जी, आये कर के आस ।।२३।।
गुह राजा ने जब सुना, आया भरत सुजान ।
सेना ले कर साथ ही, दल बल बली महान् ।।२४।।
सावधान वह हो गया, सैन्य सुसज्जा संग ।
दल बल कर के ठीक सब, सभी समर का ढंग ।।२५।।
शूरवीर उस ने सभी, धनुष वाण सह वीर ।
भील बुलाये भय-जनक, सज्जित शस्त्र-शरीर ।।२६।।
बोला उन को वह तभी, वन सह गंगा तीर ।
व्यूह रच सुरक्षित करो, सभी पन्थ सब नीर ।।२७।।

राघव सुहृद् है परम, मेरा जीवन प्राण ।
उस के वध के ही लिए, करी भरत यदि यान ।।२८।।
हिंसा जीवी वीर हो, कर जी-जीवन त्याग ।
ऐसे लड़ना भरत से, जावे पीछे भाग ।।२६।।
मार मारना सबल बन, ऐसा देना दण्ड ।
जिस से उस का दल कटे, टूटे सर्व घमण्ड ।।३०।।
है पतन अपना यही, करने को नद पार ।
सुरक्षित नौका सब करो, भरत रहे इस वार ।।३१।।
सजे नाव एकैक पर, पांच पांच सौ वीर ।
शस्त्र सुसज्जित हों खड़े, जानें कष्ट न पीर ।।३२।।
सज्जा कर सब सैन्य की, गया भरत पै आप ।
बोला रघुपति पास क्या, जाते हो ले पाप ।।३३।।
टप टप टपके अश्रु तब, भरत के ही तत्काल ।
कहा उस ने, न मानिए, मोहे क्रूर कपाल ।।३४।।
राघव मम सिर मुकुट है, तन का है रक्षपाल ।
पाओं पड़ पीछे वही, लाऊं दीन दयाल ।।३५।।
भोजन दे कर भरत को, गुह ने दिया सु-मान ।
रघुपति-सखा समीप रह, पाया उस ने मान ।।३६।।
राघव संगति पाय कर, ले कर नाम सुध्यान ।
भक्त राज वह बन गया, कर के हरि का गान ।।३७।।
एक अगोचर राम में, वृत्ति चित्त लगाय ।
पाया पद पावन परम, भीलराज ने जाय ।।३८।।

शबरी

हुआ मातंग मुनिवर भारा, श्वपच वंशज गुण का क्यारा ।
अति तप कर स्व जन्म सुधारा, उस ने बहु द्विजों को तारा ।।१।।
शिष्या उस की सुभक्ति वाली, शबरी हुई अति शक्ति वाली ।
गुरु वचनों पर चलती नारी, सत्यवती सुकर्म की क्यारी ।।२।।
एक भरोसा हरि का भारा, रखती वह दुःख नाशन हारा ।
पढ़ती वह शुभ वैदिक वाणी, करती जप तप ध्यान सियानी ।।३।।
वहां एकदा राघव आये, आदर दे उस ने बिठलाये ।
अर्घ्य दान से पूजा कीनी, भक्ति भावना से थी भीनी ।।४।।
बोली कोमल मधुर सुवाणी, धन्य घड़ी मैं ने यह मानी ।
मेरे कर्म धर्म अब जागे, रघुपति-दर्शन से भय भागे ।।५।।
हूँ हि भीलनी भोली भाली, प्रेम भक्ति से वर्जित काली ।
जानूँ न रीति सुप्रीति तेरी, तुम जानो गति मति सब मेरी ।।६।।
वस्तु नहीं कुटी में अनोखी, भेंट करूँ जो होवे चोखी ।
हैं ये बेर वनों के मेरे, भेंट धरे आगे अब तेरे ।।७।।
करुणा सागर भोग लगाओ, मेरा भोजन यह तुम पाओ ।
चुन चुन वही प्रेम से देती, मीठे मीठे जो चख लेती ।।८।।
भक्त दिये राघव ने खाये, अनुज सहित शुभ भोग लगाये ।
बोले—शबरी बेर तुम्हारे, चखे हुए हैं मीठे सारे ।।६।।
इन में स्वाद सुप्रेम तुम्हारा, श्रद्धा भाव भरा है भारा ।
कभी न ऐसा भोजन पाया, जब से वन में हूँ मैं आया ।।१०।।
हो वृद्धा शुभ मति गुण धारे, रहती हो श्री राम सहारे ।
साग पात हो तेरा चाहे, मोहन भोग मधुर बन जाये ।।११।।

शबरी सुरस प्रेम रसीला, जाने स्वादुतम प्रेम सुलीला ।
भक्ति प्रेम रस जो जन लेवे, उस का रस युत हो जो देवे ।।१२।।
शबरी जग में नाम सुनाता, है सच्चा यही जाना जाता ।
भक्तों की है एक ही जाति, जाति पाति उस में न समाती ।।१३।।
नाम रूप के भेद न मानें, जो जन राम जपें रस जानें ।
शबरी ! शुद्ध है आत्मा तेरा, आशीर्वाद लो भवति ! मेरा ।।१४।।
रामचन्द्र-सुपद को पा के, शबरी जगी सुध्यान लगा के ।
नाम जाप की धुन को धारे, उस ने कर्म भस्म कर डारे ।।१५।।

परम भागवत शरभंग

दण्डक वन के भाग में, था बसता शरभंग ।
वयोवृद्ध सुज्ञान युत, योग-युक्त गुण गंग ।।१।।
उस के सुभक्ति भाव की, चर्चा थी चहुँ ओर ।
साधना योग ध्यान की, कीर्ति थी सब ठौर ।।२।।
शान्त दान्त स्वभाव वह, करता कर्म कलाप ।
मृदु मधुर मोहक महा, था तस वार्तालाप ।।३।।
आर्य कार्य में निपुण, असुरों का मथ मान ।
रहता निर्भय वनों में, धनुष वाण को तान ।।४।।
भक्ति शक्ति को एक सम, रखता पुरुष सुवीर ।
जाति देश निज धर्म हित, लड़ता समर सुधीर ।।५।।
आर्यपन की रक्षा हित, वन में कर के वास ।
असुर बल को हनन कर, शान्त करी जन-त्रास ।।६।।
प्रेम पगे प्र-भाव युत, भक्ति भरे शुभ गीत ।
गाता वह सुर ताल से, धारे गहरी प्रीत ।।७।।

उस के शुभतर संग में, नाम जाप का योग ।
करते ध्यानी संयमी, ज्ञानी सुकर्मी लोग ।।८।।
आते यति मुनि जन वहां, संघ ले साधु सन्त ।
गृही तापस भी सभी, ऋषि जन भी मतिमन्त ।।६।।
लेते उस से योग को, राम ईश का ध्यान ।
नारायण आराध कर, पाते अनुभव ज्ञान ।।१०।।
रम्य स्थान शरभंग का, सुन्दर रहा सुहाय ।
उस में होते पथिक जन, सुखी आश्रय पाय ।।११।।
आश्रम मुनि का था शुभ, साधुओं का विश्राम ।
योगाश्रम सुध्यान का, ज्ञान कथा का धाम ।।१२।।
उस के जीवन से तरे, बहुते मुनि जन लोक ।
जिन के मन में ही बसा, राम नाम आलोक ।।१३।।
रघुपति सीता अनुज सह, गये सन्त के पास ।
अंत समय जब वह गुणी, तजता था तन-वास ।।१४।।
चढ़ रहा था सुवेग से, देव-यान पथ पाय ।
ऊँचे धाम अकाल को, आप रहा था जाय ।।१५।।
मुनि संघ वहाँ आ जुटे, राघव दर्शन काज ।
स्वागत अभिनंदन कर, कह उसे महाराज ।।१६।।
जय जय कह कर ही सभी, मुनि मण्डल दें मान ।
पथ में सब जन पूजते, कर राघव सम्मान ।।१७।।
पुष्प वर्षा से पूजते, अर्पण करते हार ।
अंजलि सुन्दर कुसुम की, फल देते उपहार ।।१८।।
रामचन्द्र सुचांद के, दर्शन कर शरभंग ।
कृत कृत्य हुआ तभी, पा कर प्रेम उमंग ।।१६।।

बोला—मेरी आश थी, जब आवे गुणवान् ।
मेरा होगा ही तभी, महा निर्वाण कल्याण ।।२०।।
तेरे दर्शन से अभी, मेरे सुधरे काम ।
मन मेरा अब हो गया, तृप्त अति सुख धाम ।।२१।।
वन के राजा आप हैं, तापस पालो आप ।
मैं पाता हूँ मुक्ति पद, अहो ! राजन् निष्पाप ।।२२।।
जग मग करती जोत सा, आत्मा मुनि का शान्त ।
अनंत सुज्योति में टिका, हो कर अति प्रशान्त ।।२३।।
जय जय हो शरभंग की, कह कर सब गुणवन्त ।
राघव पूजन में लगे, महर्षि मुनि मतिमन्त ।।२४।।

सती अनसूया

अनसूया शुभ सरला नारी, भक्ति परा थी पति को प्यारी ।
अत्रि ऋषि की भार्या भोली, विद्यावती थी गुण गण झोली ।।१।।
जप तप पाठ सुसाधन साधे, ध्यान रता सुनाम आराधे ।
वेद गीत वह पति सह गाती, सूक्त स्तोत्र से राम रिझाती ।।२।।
पतित पावनी परम पुनीता, वेद पाठ की पढ़ती गीता ।
स्वर सहित सुर तान सुहाने, सुन्दर स्वादु सार के गाने ।।३।।
होते सायं प्रात सुरीले, हरि गायन अत्रि के रसीले ।
भजन पाठ युत संग लगाना, भक्ति प्रेममय होता गाना ।।४।।
अत्रि करता कर्म ही सारे, सर्व धर्म पसार के भारे ।
दम्पति वन में रहते ऐसे, हंस सरोवर में दो जैसे ।।५।।
वन वासी जन की जो नारी, अनसूया की शिष्या सारी ।
सीखें उस से शील सुहाने, गृह कर्म सब जन मन भाने ।।६।।

अनसूया का यश था भारा, जप तप का था अधिक हि पसारा ।
राघव सह सिया वहां आई, अत्रि ने दी उन को बधाई ।
पूजे अरुण चरण सुख देने, दर्शन किये ताप हर लेने ।।८।।
बोला—तुझ को सिये बुलाये, मम पत्नी तुझे मिलना चाहे ।
रघुपति अनुमति ले कर देवी, अनसूया जा उस ने सेवी ।।६।।
कर प्रणाम मात कह बोली, आदर से पूजी वह भोली ।
अनसूया ने मान दिखाया, सिर चूमा उसे कण्ठ लगाया ।।१०।।
कहा—सीते सुशील सियानी, धर्मवती सुपिया मन भानी ।
पुण्य कर्म से तू वर पाया, रघुपति सुन्दर सब जन गाया ।।११।।
धर्म धुरीण धृति धर जाना, ज्ञान का सागर वही बखाना ।
वीर धीर शुभ गुण को धारे, शशि सम चमके जग में सारे ।।१२।।
नाम दान से वन जन तारे, उसने आसुर संघ सुधारे ।
कर उपकार वनों में भारे, जांगल जन वनचर संवारे ।।१३।।
धर्म रूप की है तू नारी, आत्म समा उसे ही प्यारी ।
तज सब हार सिंगार प्यारे, तजे भोग सुख तू ने सारे ।।१४।।
फिरे पति संग जैसे छाया, राघव की बन मानो काया ।
तेरे कर्म सिया हैं नीके, रहे संग ही राघव जी के ।।१५।।
धर्म सनातन तू ने पाला, पति का देखे देश निकाला ।
तज सब बान्धव जो तू आई, पातिव्रत की आन निभाई ।।१६।।
सती वही जो पति सह जावे, सुख दुःख सहे न कष्ट मनावे ।
खान पान सुवेश जो देवे, पति से भार्या वह ही लेवे ।।१७।।
धन निर्धन पन में मन दे के, रहे पति संग तज कर मेके ।
कष्ट क्लेश में साथ निभावे, सेवा कर सुसती सुख पावे ।।१८।।

कल्पना कलह कभी न लावे, सड़ कुढ़ कर न पति को दुखावे ।
विपदा आय न वह घबरावे, सम्पदा में वह न ललचावे ।।१६।।
सिये ! प्रीति दम्पति की ऐसी, क्षीर नीर में होती जैसी ।
पति पत्नी का मेल हो ऐसा, चांद चांदनी का है जैसा ।।२०।।
रहें मेल में दोनों ज्यों ही, जीव देह मिल रहते त्यों ही ।
एक दूसरे पर बलि जावें, अंगांगी सम्बन्ध दिखावें ।।२१।।
सिये ! सदा राघव हो जैसे, सुखी स्वस्थ कर्म कर ऐसे ।
देखे दिन जो मेके पेके, न कर स्मरण कभी जी दे के ।।२२।।
कन्द मूल फल ही जो पाओ, साग पात जो कभी पकाओ ।
रघुराज को पहले जिमाना, बचा खुचा तू ने फिर खाना ।।२३।।
पति को भार्या प्राण समाना, होती प्यारी है सब जाना ।
पत्नी कली जभी कुम्हलाती, पति में तब व्याकुलता आती ।।२४।।
ऐसा न हो देख ही तोहे, चिन्तित दुःखित रघुपति होये ।
ऐसे अपने भाव बनाना, निज दुखड़ा न पति को दिखाना ।।२५।।
सीते ! सिमरन में मन देना, नाम निरंजन का रस लेना ।
हरि पूजन हरि नाम सहारा, सब दिन संगी बने तुम्हारा ।।२६।।

अनसूया के ज्ञान का, समझी सीता सार ।
करना काम सुधर्म के, मान ईश आधार ।।२७।।
ऐसी विदुषी पण्डिता, अनसूया वन बीच ।
बसती सुविद्या घर बनी, तारती अधम नीच ।।२८।।
नारायण में थी रमी, अनसूया गुण गेह ।
भक्ति कर्म को साध कर, अमर हुई तज देह ।।२६।।

अगस्त्य ऋषि

ज्ञान का भानु चमकता, तेजो धाम सुनाम ।
अगस्त्य ऋषि था भागवत, करता उत्तम काम ।।१।।
आदि, ब्राह्मण वीर बन, विकट वनों को लांघ ।
विन्ध्याचल पर से गया, धर्म कर्म की मांग ।।२।।
दण्डक वन में जा बसा, रहते जहां उद्दण्ड ।
दस्यु दैत्य भयावने, कर्म क्रूर प्रचण्ड ।।३।।
जो जाते सुसभ्य वहां, उन को लेते लूट ।
निर्दयपन से हनन कर, नस नस देते कूट ।।४।।
दूर द्वीप से आ बसे, लंका में वे लोग ।
मानव लहू मांस का, करते अहर्निश भोग ।।५।।
ऐसे वन का नाम था, दण्डक-वन अति घोर ।
लम्बा चौड़ा बीसियों, कोसों में सब ओर ।।६।।
उस वन में ही भाग था, नाम कहा जन स्थान ।
बसते उस में असुर थे, सहस्त्र चतुर्दश जान ।।७।।
कहे अनार्य वे सभी, अत्याचारी लोग ।
बसे विदेशी आ वहां, भारत पर बन रोग ।।८।।
धर्म मर्यादा हीन थे, सभ्य शील से हीन ।
रीति न्याय से हीन थे, सदाचार में दीन ।।६।।
आ कर उन के सामने, बसा अगस्त्य सुवीर ।
विविध वाण बल अस्त्र से, सजा शस्त्र से धीर ।।१०।।
असुरों की वह रोक था, आर्य जन का मान ।
धर्म प्रचारक था वह, सभ्य-शील का प्राण ।।११।।

बल बुद्धि सुतेज से, चल कर ऊंची चाल ।
क्रमण आसुरी वह सब, क्षण में देता टाल ।।१२।।
परदेशी जन पूर में, बान्ध बना कर रोक ।
उस के सम्मुख तो कभी, होती रोक न टोक ।।१३।।
अगरत्य आश्रम था सुहाना, विद्या शक्ति का परम ठिकाना ।
सेवा ज्ञान कर्म की बातें, रहें वहां सब दिन सब रातें ।।१४।।
योगिजन मिल उस पै आते, नाम सुदान भक्ति रस पाते ।
उस वन में जो मुनि थे सारे, प्रायः शिष्य थे उस के प्यारे ।।१५।।
जप तप से उस ने मल मारे, हिंसक असुर समाज सुधारे ।
जब से गया दक्षिण को ज्ञानी, दिक् हो शान्त मिटे अभिमानी ।।१६।।
मार काट का मिटा बखेड़ा, उस ने बल से वैर निबेड़ा ।
शान्त हुए रजनीचर भारे, निर्भय फिरते मुनि सुख कारे ।।१७।।
उस के ओज तेज का भारा, हुआ प्रभाव संगति द्वारा ।
ज्ञान ध्यान की चर्चा चलाई, सभ्य रीति उस ने फैलाई ।।१८।।
था सुवृद्ध राघव जब आये, मुनि ने फल मुख मांगे पाये ।
स्वागत सहित उन्हें बिठलाया, मुनि गण सह उस मान दिखाया ।।१६।।
अभिनन्दन कर के वह बोला, राजन् राघव! अब तन चोला ।
निकट समय तजने का आया, शेष मनोरथ रहा समाया ।।२०।।
हो शुभ शान्ति स्थापित सारे, मिटें विदेशी असुर हत्यारे ।
देश मुक्त इन से हो जावे, आसुर यहां रहने न पावे ।।२१।।
है तू वन जन-पद का राजा, सुमुनि मण्डल का महाराजा ।
बनिए आर्य गण का नेता, रक्षा करो नीति के सुवेत्ता ।।२२।।
राघव ने सुन वचन करारे, भेद भरे सुतेज भण्डारे ।
कहा, मुने ! शुभ स्थान बताना, जहां रहूँ कर सेवा नाना ।।२३।।

संगति कर के मुनिवर तेरी, होगी निश्चय शुभ गति मेरी ।
[illegible]
पंचवटी में राघव ! जाना, बसना निर्भय कुटि बनाना ।
दृश्य वहां रसिक मन मोहें, कन्द मूल फल फूल हि सोहें ।।२५।।
जांगल भोज मिलें बहुतेरे, हिरण आदि के झुण्ड घनेरे ।
पंछी गण उस वन में खेलें, हरित भरित पुष्पित हैं बेलें ।।२६।।
वहां पर रह सभी सुख पाना, आर्य गण की आन निभाना ।
हो समर्थ मुनि गण को पालो, असुर रूप संकट को टालो ।।२७।।
आज्ञा सम्मति को सिर धारे, रघुपति ने जा असुर सुधारे ।
चमका आर्यपन का तारा, असुर संघ उस ने संहारा ।।२८।।
मुनि संगति उसी स्थल आई, रामचन्द्र को दे बधाई ।
राघव की जय जय ही गा के, हर्षित हुई कुसुम बरसा के ।।२६।।
अगस्त्य मुनि तब आगे आया, कुसुमाञ्जलि दे उसे रिझाया ।
जय माला उस ने पहराई, राघव की कीर्ति शुभ गाई ।।३०।।
ऐसे शुभ मुनि कर्म कमाये, अन्त समय हो सिद्ध समाये ।
ऐसे मुनि का चरित सुहाना, सुन पढ़ मंगल हो मन माना ।।३१।।

मन्दालसा

धन्य नाम मन्दालसा, हुई सती सुविख्यात ।
आलस को कर मन्द अति, कर पुरुषार्थ बात ।।१।।
कर्म-योग में कुशल थी, प्रेम भक्ति भरपूर ।
संशय सब उस के हुए, नाम ध्यान से दूर ।।२।।
सुरति शब्द के मेल से, लिया मलिन मन धोय ।
उस ने हरि के प्रेम से, दिये पाप सब खोय ।।३।।

आत्मा के सुख के लिये, पूर्ण किये उपाय ।
ब्रह्म समाधि ध्यान में, रहती सदा समाय ।।४।।
उस के ये शुभ भाव थे, करना पर उपकार ।
नाम ध्यान धन-दान से, देना पर को तार ।।५।।
हरि-मार्ग में निपुण थी, रखती ज्ञान विशेष ।
मानी जाती जगत् में, रहित ही कर्म क्लेश ।।६।।
उन्नत उस का ज्ञान था, आत्म-तत्त्व विवेक ।
परमेश्वर को पूजती, जो है ज्ञाता एक ।।७।।
सभी प्रबुद्ध किये सुत, उस ने सब गुणवन्त ।
पर हित में वे लग गये, कर्म-शील मतिमन्त ।।८।।
देश देशान्तर विचरते, करते वे उपकार ।
भक्ति बताते ईश की, करते देश सुधार ।।६।।
वीत राग वे हो गये, नारायण-जन आप ।
नहा कर भक्ति गंग में, पवित्र हुए निष्पाप ।।१०।।
सब से लघु सुत जो था प्यारा, राज काज का एक सहारा ।
नृप ने कहा सुनो सुराणी, इस को बनाना नहीं ध्यानी ।।११।।
राज-कर्म का हो अनुरागी, गृह में रहे यह बड़भागी ।
पति का कहना उस ने माना, उसे दिया न त्याग का बाना ।।१२।।
अन्त समय राणी का आया, उस ने सुत को पास बुलाया ।
कहा—प्रिय सुत, सब सुन लेना, बात का भेद कभी न देना ।।१३।।
यह लो पत्र इसे सम्भालो, बिना संकट न देखो भालो ।
कष्ट घोर जब तुझ पर आवे, विघ्न विषम जब तुझे सतावे ।।१४।।
उस समय पढ़ना पत्र प्यारे, पाओगे सुख वांछित सारे ।
राजा तू है युवक अजाना, कौन कहे क्या बने विधाना ।।१५।।

उस ने वह ले कर सम्भाला, पेटी में धर जड़ा सुताला ।
सती ने अपनी गति सुधारी, कर सुकृत हरि-धाम पधारी ।।१६।।
कालान्तर में बन कर राजा, पितृ आसन पर वह विराजा ।
फंसा कुकर्मों में वह ऐसे, पड़े जाल में मछली जैसे ।।१७।।
पापों में वह उलझा ऐसा, घिरे पुष्प में भौंरा जैसा ।
कुल की रीति नीति सब टारी, खोई सम्पत् उस ने सारी ।।१८।।
निशि दिन रहे मद्य में माता, खेल भोग में काल बिताता ।
उस का अपयश फैला सारे, उस में दोष बसे अति भारे ।।१६।।
क्रान्ति देश में ऐसी फूटी, राज-व्यवस्था सारी टूटी ।
उस के भाई हो कर नेता, उस पर चढ़े नीति के वेत्ता ।।२०।।
किला कोट उन घेरा सारा, दल बल ले कर अति ही भारा ।
जीवन जब संकट में आया, राजा तब मन में घबराया ।।२१।।
पेटी खोली पत्र निकाला, उस ने पाठ पढ़ा गुण वाला ।
उस में था—प्यारे सुत मेरे, सुगुण वास्तव में ये तेरे ।।२२।।
है निज रूप शुद्ध शुभ तेरा, चेतन-तत्त्व सुखों का डेरा ।
पाप कर्म की रज से न्यारा, आत्मा है तव उत्तम प्यारा ।।२३।।
तेरा पद अमृत है ऊँचा, प्रिय रूप है शुद्ध समूचा ।
एक टेक श्री राम सहारा, समझ आश्रय अपना भारा ।।२४।।
तेरा धन सुख साधन नाना, राम जगत् का पालक जाना ।
मेरे सुत यह निश्चय जानो, अमर स्वरूप आत्मा मानो ।।२५।।
पढ़ कर पत्र शान्ति मन लाया, सीधा वह सेना में आया ।
कहा—यह अब राज सम्भालो, न्याय नीति से जन पद पालो ।।२६।।
अर्पण जन हित है मम काया, लो उपयोग यथा मन भाया ।
सुधरा जान सभी जन बोले, राजन् हो तुम इतने भोले ।।२७।।

कारण क्रान्ति सुधार कराना, था सब के मन न्याय चलाना ।
यदि तुम अपने कर्म विचारो, न्याय करो कुव्यसन निवारो ।।२८।।
तब तुम राजा हो जग जाने, जाति देश के मुखिया माने ।
राज्य करो नीति में आओ, न्याय धर्म की रीति चलाओ ।।२९।।
नृप बना वह गुणधर न्यायी, भक्त राज प्रजा-सुखदाई ।
माता के मत में चलते ही, शुभ गति ली उस शुभ करते ही ।।३०।।

हनुमान्

पम्पा के शुभ वनों में, बसते वानर लोक ।
सुजन सभ्य थे वीर जन, हरते सज्जन शोक ।।१।।
लक्ष्य वेध में निपुण थे, चतुर चपल शुभ चाल ।
दल में वे संगठित थे, मित्र बन्धु प्रति-पाल ।।२।।
निर्भय रहते असुर से, जो था रावण नाम ।
मार पीट कर ही उसे, करते सीधे काम ।।३।।
सब से वीर विख्यात वर, हनुमान् गुणवान् ।
रघुपति-भक्त अनन्य था, सेवा-कर्म निधान ।।४।।
रामचन्द्र जी से मिल, ले नारायण ध्यान ।
जाप अधिक उस ने किया, हो कर शुद्ध समान ।।५।।
विनय से पूजा रघुपति, गुरुवर मन में मान ।
धृति-धर्म-अवतार को, परम भक्त ही जान ।।६।।
ऋष्यमूक सुगिरी पर, राघव किया निवास ।
चार मास वृष्टि समय, शिष्य रहा गुरु पास ।।७।।
अंगद भी उस साथ था, राघव शिष्य सुजान ।
वानर जनता का युवक, महा-वीर बल खान ।।८।।

अन्य सैकडों भक्त वर, भक्ति भाव का भार ।
हृदय मे भारी लिये, रखते राघव-प्यार ।।९।।

परन्तु दोनों वीर वर, सब में थे सुविशेष ।
हनुमान् अंगद बली, हरते सब के क्लेश ।।१०।।

उन सब में हनुमान् था, परम भागवत एक ।
नाम निरंजन सिमरता, ले कर उस की टेक ।।११।।

रंगा था हरि रंग में, लिये अभंग उमंग ।
उस के हृदय सिन्धु में, उठते प्रेम तरंग ।।१२।।

मनमुखियों के संग को, तज कर महा विद्वान् ।
गुरु मुख हरि का भक्त बन, बना गुणों की खान ।।१३।।

गुरु सेवा हरि ध्यान से, निज मन को चमकाय ।
वह निज आत्म-ज्योति लख, हुआ सुखी फल पाय ।।१४।।

लख कर अलख अलेख को, संशय कर सब दूर ।
उस ने गुरु महिमा लखी, प्रेम भक्ति भरपूर ।।१५।।

पी कर प्याले प्रेम के, परम भक्त वह आप ।
परम प्रभु को पूजता, जप कर जाप अपाप ।।१६।।

अहर्निश राघव सेव कर, किया उस ने सुराग ।
अनन्य भाव सुप्रेम से, शीत उष्ण को त्याग ।।१७।।

राम निरंजन में रमा, जो एक आधार ।
भक्त-वत्सल भगवान् है, सब सारों का सार ।।१८।।

हनुमान् अंगद मिले, करते बहु उपकार ।
उन्हों ने जाति देश ही, अपना दिया सुधार ।।१९।।

राघव शिष्य वे सुगुणधारी, उपकारी सब के सुखकारी ।
थे वे भक्त अनुरक्त प्यारे, पाप-विरक्त सशक्त सारे ।।२०।।

देश वंश सुधार के सारा, उन्हों ने आर्यपन विस्तारा ।
महाराष्ट्र के दोनों नेता, भक्त हुये वे युग में त्रेता ।।२१।।
लाखों जन में नाम बसाया, जांगल जन को सभ्य बनाया ।
विद्या-वृद्धि सुज्ञान बढ़ाया, दोनों ने उत्तम पद पाया ।।२२।।

जड़ भरत

भरत हुआ भारत में भारा, दीप्तिमान चमकता तारा ।
सम्मानित राजा सुखकारी, उसे प्रजा थी प्राण प्यारी ।।१।।
जनता का मन रंजक हो ही, था निर्बल का पालक सो ही ।
कूपाराम उद्यान बनाये, उस ने जन हित देश बसाये ।।२।।
औषध पथ्य दीन जन पाते, अन्न जहां सहस्त्रों जन खाते ।
ऐसे स्थान अनेक रचाये, धर्म स्थान उस ने बनवाये ।।३।।
व्यसन रहित सुगुण सब धारे, करता कर्म वीर वह सारे ।
सब ने उस को इतना माना, ऊँचा उत्तम इतना जाना ।।४।।
सर्वश्रेष्ठ पद उस को दे के, जन हुए सुखी सुप्रीति ले के ।
अन्त में भरत अति सुखदाई, विभूति सुभक्ति जिस ने पाई ।।५।।
राज पाट से होकर न्यारे, धर्म हेतु विचरे गुणधारे ।
देश विदेश में विचरता ज्ञानी, नाम रंग में मग्न सुध्यानी ।।६।।
जीवन्मुक्त राग से न्यारा, हरि रस रमा राम का प्यारा ।
प्रेम सुधा पी कर मतवाला, योगी बना सुगुण गण वाला ।।७।।
अन्तर्दृष्टि बाहर निहारे, अर्द्ध सम्मीलित नयन सुतारे ।
मुद्रा शाम्भवी यह शुभ साधे, फिरते नाम ध्यान आराधे ।।८।।
शीत उष्ण सुख दुःख हो जो ही, निन्दा स्तुति सम लखता सो ही ।
सम मानापमान ही माने, जड़वत् रहता हरि के भाने ।।६।।

जड़ भरत जग में गया जाना, परम सिद्ध सभी ने बखाना ।
बन में रहता नदी किनारे, निर्जन स्थान में मुद्रा धारे ।।१०।।

मुनि मेल को एक नृप, हो कर शिविकारूढ़।
जाता था वन बीच से, लेने ज्ञान सुगूढ़।।११।।
पालकी वाहक थे जो, उन में एक अजान।
पग-पीड़ा से थक गया, लिया नृप ने जान।।१२।।
नृप ने यह कहा उसे, नौकर ले आ ढूँढ़।
जड़ भरत को पकड़ वहां, ले आया वह मूढ़।।१३।।
शिविका में जोड़ा गया, नाम-मग्न मुनिराज।
धुन में धारे धारणा, चले वह महाराज।।१४।।
पथ बिखड़ा था बहुत ही, विषम वनों के बीच।
ऊंचा नीचा था अधिक, था उस में जल कीच।।१५।।
पग पगडंडी पर पड़ें, मुनि के विषम विशेष।
हचकोलों से हो दुःखी, बोला तभी नरेश।।१६।।
तेरा, मूर्ख ! क्या अभी, कन्धा गया है दूख ?।
कोस मात्र भी बिन चले, गया मुँह तव सूख।।१७।।
नाम महा रस पान से, मतवाला मुनि-देव।
बोला, हां मैं थक गया, समझ यह सत्यमेव।।१८।।
कहा नृप ने, बावरे ! क्यों बोले है झूठ।
इतना थोड़ा ही चले, पैर गये तव रूठ।।१६।।
मुनि बोला—सच मानिए, मार्ग चला अनन्त।
फिरा बहुत संसार में, हुआ अभी है अन्त।।२०।।
मार्ग का कर अन्त अब, कर्म बन्ध को तोड़।
अविद्या सारी नष्ट की, संशय सारे छोड़।।२१।।

तू तो चलता जायगा, लिये भरत को संग ।
यह संगी है राम का, जिस का रूप न रंग ।।२२।।
मेरे प्यारे पालकी, भारी बहुत न मान ।
कर्म-बोझ से हूँ थका, मर्म भेद यह जान ।।२३।।
नयन मुड़े भीतर झुके, देखें जोत अखण्ड ।
मार्ग देखे कौन अब? सच है रहित घमण्ड ।।२४।।
कैसे पग सीधे पड़ें? जब सुरति किसी ओर ।
नयनों को लौ लग रही, देखें पन्थ न ठौर ।।२५।।
जिस के मन में और है, नयनों में है और ।
उस को कैसे यह दिखे, वन का पथ अति घोर ।।२६।।
सुने ध्वनि जो राम की, भीतर जोत निहार ।
उस को सूझे यह नहीं, मार्ग विषम अपार ।।२७।।
प्रेम पगे जो पुरुष हैं, प्रेमी उन के पास ।
नयन बैन में बस रहा, पुष्प में ज्यों सुवास ।।२८।।
देखें आंखें उलट कर, जो अपने को आप ।
पथ पर कैसे पग पड़ें, उस के समझ अपाप ।।२६।।
नाम सुबूटी पान कर, मत्त रहें जो लोग ।
उन को ऐसी चाल का, कैसे घेरे रोग ।।३०।।
अपने राम में जो रमे, निज में करें कलोल ।
उन के पग कैसे नहीं, पड़ते डांवांडोल ।।३१।।
जिन्हें लगन है राम की, मन में राम रमाय ।
उन से ऐसे पन्थ में, सीधा चला न जाय ।।३२।।
जो रसिया है नाम का, उस की ऐसी चाल ।
टेढ़ी मेढ़ी समझिए, होती है जनपाल ।।३३।।

सुन कर वचन सुहावने, मर्म भेद की बात ।
शिविका से उतरा नृप, किया बहु प्रणि-पात ।।३४।।
मुनि को माना मान दे, उस ने सीस झुकाय ।
नामाराधन उस लिया, सन्त शरण को पाय ।।३५।।
सर्व मनोरथ सिद्ध कर, पाया धाम अबाध ।
जड़ भरत ऋषि राज ने, नाम ध्यान आराध ।।३६।।

सनत्कुमार

हुआ सुयुग में भक्त वर, ज्ञानी सनत्कुमार ।
बाल काल से ईश में, हो लीन एक तार ।।१।।
फिरता जन पद वनों में, यति सुगुणी मतिमान् ।
ब्रह्म-चारी धर्म धर, धारे हरि का ध्यान ।।२।।
मुनि जन में अति मान था, उस का अति अनुराग ।
उसे गुणी सब मानते, सन्त मुनि महा भाग ।।३।।
लगे लगन जिस को भली, बसे सुप्रेम अपार ।
उस में भक्ति भाव की, नदी पावे विस्तार ।।४।।
पूर आय जब प्रेम का, परा प्रीति का पूर ।
सफल मनोरथ हों सभी, पाप ताप हों दूर ।।५।।
लगी लगन तब समझिए, तन धन मन दे आप ।
अग्नि जलों में कूद कर, उसे न हो अनुताप ।।६।।
सनत्कुमार का यह पद, था निश्चल ही एक ।
उस के भीतर से मिटे, भ्रम संशय अनेक ।।७।।
युवक दीखता वह बली, आयु बड़ी भी पाय ।
इस से नाम कुमार ही, उस का बोला जाय ।।८।।

सुन्दर गठित शरीर था, शोभित भाल विशाल ।
लाल गाल मुख वर्ण था, उन्नत कमल कपाल ।।६।।
उस ने बोधे बहुत जन, दे कर उत्तम ज्ञान ।
तारे नारी नर घने, दे कर नाम सुदान ।।१०।।
नारद ऋषि को ज्ञान दे, उस ने किया सचेत ।
दे कर भूमोपासना, उस के खोले नेत ।।११।।
ऐसे कर के कर्म शुभ, प्राप्त किया निर्वाण ।
उसने आत्म-ज्ञान से, पाया पुरुष महान् ।।१२।।

नारद

नारद हुआ गुणी शुभ ज्ञानी, भक्त राज मुनि उत्तम ध्यानी ।
दीन दुःखी के दुखड़े धोता, अबल जनों का संगी होता ।।१।।
भक्ति भाव में था बड़ भागी, उच्च कोटि का हरि अनुरागी ।
सुन्दर सुर से हरि यश गाता, प्रेम पदों से राम रिझाता ।।२।।
गाता वह लिये एकतारा, भरता भक्ति प्रेम रस भारा ।
उस के मधुर मनोहर गाने, होते प्रेम भक्ति उपजाने ।।३।।
कोमल कण्ठ से जब हि गाता, बादल बन अमृत बरसाता ।
उस के पद सुनता जन जो ही, प्रेम मग्न हो जाता सो ही ।।४।।
यद्यपि था वह उत्तम रागी, था निर्लेप भक्त महा त्यागी ।
राम शरण में अर्पित हो के, कर्मी बना सब संशय खो के ।।५।।
नाम सुमहिमा उस ने गाई, प्रेम भक्ति की विधि सिखलाई ।
नाम ध्वनि में लय हो जाता, ध्यान-योग में अति सुख पाता ।।६।।
ज्ञान से बड़ी भक्ति उस मानी, प्रेम भक्ति उस एक बखानी ।
बिना प्रेम के ज्ञान न होवे, लगन विहीन समय ही खोवे ।।७।।

मुनि ने कहा पढ़े जो प्रेमी, ज्ञानी बने प्रेम का नेमी ।
ज्ञान में जो प्रीति कहलावे, वही धर्म में भक्ति कहावे ।।८।।
अकारण करे सुभक्ति जो भी, उत्तम भक्त कहा जन सो भी ।
परा प्रीति हरि में पहचानी, उत्तम भक्ति वह कहें ज्ञानी ।।६।।
फल इच्छा जिन जनों ने त्यागी, सर्व कामना उन से भागी ।
भक्त वे ही निष्काम बखाने, ज्ञानी सुकर्मी वे ही जाने ।।१०।।
फल चाहें धन सम्पत् भारी, संकट हरण कामना धारी ।
वे भी भक्त उदार बताये, प्रेम भरे जन वे भी गाये ।।११।।
बिना हेतु जो हरि को ध्यावें, प्राकृत सुख मन में न लावें ।
भक्त परम वे वेद बताते, कर्म बंध उन के कट जाते ।।१२।।
सनत्कुमार से शिक्षा पा के, भक्ति सूत्र सरस ही गा के ।
नारद ने नर नारी तारे, पापी पामर पतित उभारे ।।१३।।
शुभ पद पाया नारद जी ने, भक्तों के शुभ काज भी कीने ।
हरि पद पा कर उस में राजे, परम धाम में जाय विराजे ।।१४।।

विभीषण

भक्त विभीषण भक्ति युत, भया भाव भण्डार ।
भव भय भ्रम भारी हर, भीतर भर कर सार ।।१।।
सरस हृदय सदय सुगड़, सज्जन सरल सुजान ।
हो गया सच्चा साधु जन, सौम्य सबल विद्वान् ।।२।।
धर्म भीरु था पुरुष वह, आत्म-भीरु उदार ।
वह था लंका द्वीप में, सदाचार अवतार ।।३।।
रावण से वह लड़ पड़ा, वाक्य कटुतर बोल ।
लिये सीता के पक्ष को, लड़ा भक्त जी खोल ।।४।।

बोला वह निज बन्धु से, नहीं धर्म शुभ नीत ।
पर-भार्या पर वश पड़ी, से करना यों प्रीत ।।५।।
अनाचार दुराचार है, अत्याचार है घोर ।
हरना राघव पत्नी को, है दुःख चारों ओर ।।६।।
ऐसे पातक में पड़ा, खोवेगा निज मान ।
धन सम्पत् भूमि स्व जन, अपने प्यारे प्राण ।।७।।
रावण ने आ कोप में, उस पर कर प्र-हार ।
अपने ही उस द्वीप से, उसे निकाला पार ।।८।।
आया राघव पास वह, शरण पड़ा हो दीन ।
यथा सताई धूप से, जल में जावे मीन ।।९।।
शरणागत हो कर तभी, हुआ शान्त गुरु पाय ।
शील तुष्टि को लाभ कर, रहा सुलगन लगाय ।।१०।।
दीक्षित धार्मिक हो गया, रघुपति शिष्य सुजान ।
पाया उस ने नाम शुभ, नारायण का ध्यान ।।११।।
झुका विभीषण राघव आगे, बना विनीत भाग जब जागे ।
ज्ञान ध्यान की उस धुन धारी, पाप कल्पना सर्व विसारी ।।१२।।
आत्मा का पद उस ने पाया, वेद श्रुति ने जिस को गाया ।
नाना लीला उस ने जानी, सन्त जनों ने यथा बखानी ।।१३।।
उस ने माया मैल उतारी, देखी जोत जगत् से न्यारी ।
परम प्रीति राघव में जागी, उस का भक्त बना अनुरागी ।।१४।।
राज्य उस ने जब ही पाया, धर्माचार सुधार फैलाया ।
सभ्य बने लंका के वासी, आस्तिक हुए उस देश निवासी ।।१५।।
असुर सभी सुर बने सुहाये, राघव पथ पर सब ही आये ।
अत्याचार को सब ने छोड़ा, अधम कर्म से मुख को मोड़ा ।।१६।।

राम चन्द्र की सुजय गाजे, जय जय वहां सिया की राजे ।
[illegible]
यों भक्ति उपकार फैलाये, भक्त विभीषण ने फल पाये ।
हो कर पाप कर्म से न्यारा, भक्त राज शुभ धाम सिधारा ।।१८।।

सावित्री

सावित्री सती धार्मिका, सत्य शील की खान ।
धर्मरता थी गुणवती, जाने गृह विधान ।।१।।
बाल काल से भक्ति में, शिक्षित की पिता आप ।
नाम ध्यान को दान कर, और गायत्री जाप ।।२।।
सत्यवाहन को सुप्रिया, थी वह प्राण समान ।
पत्नी सदा की संगिनी, चतुरा ज्ञान निधान ।।३।।
पतिपरा थी शुभ व्रता, स्नेह प्रेम की धाम ।
रक्षा पति की करती वह, अहर्निश सारे याम ।।४।।
गृह कर्म में थी रता, पति अनुचरी सुशील ।
अनुरक्ता अति भक्ता शुभा, विरता सकल कुशील ।।५।।
भजन यजन में लीन वह, ध्यान ईश में लीन ।
सुख दुःख में वह सम सदा, रहती सती अदीन ।।६।।
सुनी वाणी सुदिव्य ही, मुनियों ने धर कान ।
''सत्यवाहन के भय में, होंगे प्यारे प्राण'' ।।७।।
अकेला रहना न भला, आना जाना जान ।
साथी इस को चाहिए, जो होवे बलवान् ।।८।।
काल गाल में है पड़ा, मुनि जन माना लाल ।
राम भरोसे है यही, वह है इस की ढाल ।।९।।

रक्खे राम ही जब जिसे, दे कर सुरक्षा हाथ ।
बाल न बांका कर सके, उस का यम सुर नाथ ।।१०।।
सावित्री शुभ विश्वास में, आशा हरि पर लाय ।
पति संग रहती अहर्निश, गहरा प्रेम बसाय ।।११।।
ज्यों चाँदनी चाँद संग, प्रभा सूर्य साथ ।
बनी तथा वह संगिनी, पति का बांया हाथ ।।१२।।
काया की छाया यथा, डोले तन के संग ।
फिरती पति के साथ वह, मन में भरे उमंग ।।१३।।
सायं समय ही एकदा, दम्पति वन के बीच ।
समिधा लेने को गये, रहे प्रेम को सींच ।।१४।।
मधुर वचन संलाप में, प्रेम कथन में आय ।
भूल समय पहुँचे वे, दूर वनों में जाय ।।१५।।
धीरे धीरे रात ने, किया अपना विस्तार ।
धरती पर ही छा गया, अति घोर अन्धकार ।।१६।।
सत्यवाहन को नींद ने, लिया वहीं पर घेर ।
भूतल पर वह सो गया, होती देख अबेर ।।१७।।
सावित्री सुपति की ही प्यारी, पति सिर गोद लिये सुखकारी ।
चिन्तन करती रात अन्धेरी, सोचे मृगी ज्यों सिंह ने घेरी ।।१८।।
सांस सांस में राम विचारे, निर्भय थी भगवान् सहारे ।
भक्ति भाव से भरी भवानी, ज्ञानवती सती सुगुण खानी ।।१६।।
ध्यान में लय हुई गुण वाली, तब देखी उस मूर्ति काली ।
स्वप्न समान अवस्था में ही, निर्भय बोली वह उस से ही ।।२०।।
कहो, कौन तू है यहां आया? क्या करना तेरे मन भाया ।
यहाँ पर काम क्या है तेरा, सुख से सोता है पति मेरा ।।२१।।

कड़ी क्रीड़ा काल की भारी, वह प्राण प्रयाण की सारी ।
कांप गई जागी उठ बोली, जीवन जड़ क्या मैं ने खोली ।।२२।।
अचेत पति जब उस ने पाया, तभी भूमि पर सीस नवाया ।
की प्रार्थना गद् गद् हो के, निज मुख आंसू से ही धो के ।।२३।।
नारायण निर्मल हे मेरे, विस्मय जनक भेद हैं तेरे ।
ये नारी नर राम ! तिहारे, हैं आश्रित सुदेव ! हमारे ।।२४।।
सर्व शक्तिमय हाथ पसारो, डूब रही नौका को तारो ।
तेरे जन की है यह काया, यथा कमल कोमल कुम्हलाया ।।२५।।
दे हरि दान प्राण जो जाते, साँस फिरे तन में ही आते ।
तेरी लीला तू ही जाने, हम दोनों हैं निपट अजाने ।।२६।।
यदि ऐसा है तेरा भाना, पति संग तो मुझे ले जाना ।
पति वियोग का है जो जीना, मिले नहीं मुझ को अति हीना ।।२७।।
दोनों जग अटूट हो जोड़ी, कर कृपा हरि मुझ पर थोड़ी ।
मिल कर दोनों तव यश गावें, हम सदा तव जय ही मनावें ।।२८।।
यजन करें मिल कर ही सारे, दया दान दे दीन सहारे ।
वह हुई लय लगन में ऐसे, होवे समाधि में मुनि जैसे ।।२९।।
उस ने दैवी तेज निहारा, सुदिव्य सूर्य सम चमकारा ।
दिव्य सुनी वाणी सुखदाई, बाले ! तेरी सुनी दुहाई ।।३०।।
मूर्छित है प्रियतम तेरा, आशीर्वाद तुम्हें हो मेरा ।
नियति सुनियम न्याय है सारा, नारायण सुख रूप तुम्हारा ।।३१।।
इस की आयु की दृढ़ डोरी, न इस काल में टूटे कोरी ।
तू सुभक्ता भाग्य की राणी, है अखण्ड जोड़ी तव जानी ।।३२।।
देवि! सब शुभ कर्म हैं तेरे, जान भक्त जन मन्दिर मेरे ।
भक्ति भरे हरि नाम-बसेरे, देव दया के दिव्य सुदेहरे ।।३३।।

यह सुन ध्वनि सती शुभ जागी, पति को ले वन से उठ भागी ।
चिन्तन करती ईश सुलीला, उसे न सूझा कांटा कीला ।।३४।।
लांघ घना वन ही वह आई, आश्रम को वेग से धाई ।
मुनि मण्डल चिन्तित था सारा, नारी गण दुखिया था भारा ।।३५।।
सोचें सभी न दम्पति आये, रात रही तम घोर बढ़ाये ।
देखी तब सब ने वह आती, लिये पीठ पर पति को लाती ।।३६।।
मुनि जन ने तस कीर्ति गाई, दे कर सावित्री को बधाई ।
बोले सभी, सती है ऐसी, कही वेद आगम ने जैसी ।।३७।।
धन्य धन्य हो भगवति ! तोहे, तेरा यश सब जन में सोहे ।
पति को तू ने आप बचाया, जप से संकट मार भगाया ।।३८।।
तू उपमा होगी जग मांही, तुझ सी सती देश में नाहीं ।
उस ने मन से धर्म कमाया, नाम जाप से शुभ पद पाया ।।३६।।

सुतीक्ष्ण

सुतीक्ष्ण गुणी बहुत था, भक्ति शक्ति का धाम ।
दण्डक वन में वह बसा, करता उत्तम काम ।।१।।
जप तप से कर साधना, पर हित पर उपकार ।
जांगल जन को ज्ञान दे, करता देश सुधार ।।२।।
आर्य जन उन वनों में, करते जप तप योग ।
सब के सुविधा दान से, हरते आत्म-रोग ।।३।।
लंका तक यह रीति थी, आर्य करते राज ।
असभ्य जातियों में मिल, उत्तम करते काज ।।४।।
वनी मुनि वहां जाय कर, कर सुज्ञान प्रचार ।
सभ्य बनाते जनों को, धर्म का कर विस्तार ।।५।।

विंध्याचल से पार जा, वन में बस्ती बसाय ।
रहते आश्रम में मुनि, रीति नीति फैलाय ।।६।।
वीर धीर बल बुद्धि युत, न्याय निपुण शुभ खान ।
ज्ञान ध्यान में मग्न हो, करते ज्ञान सुदान ।।७।।
उन में तीक्ष्ण तेज युत, कहा सुतीक्ष्ण एक ।
देश जाति हित में लगे, बसते अन्य अनेक ।।८।।
चाहें आर्य सभ्यता, फैले सागर अन्त ।
दक्षिण दिशा का प्रांत वह, होवे सारा शांत ।।६।।
राघव राजा मान कर, मुनि करते शुभ काम ।
असुर दलों को दूर कर, तभी लेते विश्राम ।।१०।।
असुर विदेशी देश से, देते सभी निकाल ।
कर्म भक्ति के योग की, करते बहुत सम्भाल ।।११।।
नेता राघव ही बना, उन का शुभ गुणवान् ।
उस ने फिर कर देश में, पाले सन्त सुजान ।।१२।।
सुतीक्ष्ण-सत्संग में, आते वनचर लोग ।
ज्ञान दान को लाभ कर, करते अमृत भोग ।।१३।।
वन में उस ने ही किया, परिश्रम अति उद्योग ।
सुधरे नारी नर घने, उस का पाय सुयोग ।।१४।।
जांगल जन में भक्त ने, भक्ति सुज्योति जगाय ।
पाप कर्म उन के हरे, अमृत नाम पिलाय ।।१५।।
रघुनाथ महाराज से, कर के मेल मिलाप ।
उस ने रक्षण के लिये, किया बहुत संलाप ।।१६।।
राम चंद्र सुचंद्र हि, मुनि मन के आकाश ।
चढ़ा चमकता चारुतम, असुर तिमिर कर नाश ।।१७।।

ऐसे उत्तम कर्म कर, सुतीक्ष्ण गुणी सन्त ।
आप तरा जन तार कर, संकट का कर अंत ।।१८।।

देवहूति

देवहूति हरि नाम में, रमी कपिल की मात ।
आत्म-तत्त्व सुज्ञान से, जग में हुई विख्यात ।।१।।
प्रेम भक्ति के पंथ में, अधिक उसका विश्वास ।
था ही योग विचार में, उस का निश्चल वास ।।२।।
परम देव का ध्यान में, उस ने पाया भेद ।
पुरुष प्रकृति तत्व का, भेद सुवर्णित वेद ।।३।।
विवेक विचार ज्ञान का, सांख्य नाम कहाय ।
तत्त्व सुगणना अंत में, आत्मा समझा जाय ।।४।।
नेति नेति ही वचन से, अन्य तत्त्व कर बाध ।
ज्ञाता साक्षी जो रहे, वही आत्मा निर्बाध ।।५।।
पांच तत्त्व नहीं आत्मा, प्राणादिक भी जान ।
पुरुष भिन्न है ज्ञानमय, यही सांख्य सुज्ञान ।।६।।
बन्ध बुद्धि में है बना, आत्मा कहा निर्बन्ध ।
उस का कर्म विपाक से, वास्तविक न सम्बन्ध ।।७।।
दीखे दर्पण में यथा, कुसुमों का प्रतिभास ।
ऐसा माना बुद्धि में, कर्म बन्ध का वास ।।८।।
यह रहस्य ही समझ कर, देवहूति ले ज्ञान ।
भक्ति धर्म में दीक्षिता, हुई गुणों की खान ।।६।।
आत्मा से परमात्मा, जाना उस ने एक ।
भिन्न रूप स्वरूप से, आत्मा कहे अनेक ।।१०।।

देवहूति ने ज्ञान दे, निज सुत दिया जगाय ।
नामी कपिल सुनाम से, ज्ञानी दिया बनाय ।।११।।
सांख्य योग का सुमधुर, अमृत भोग लगाय ।
खिला तत्त्व की बेल में, आठों कमल खिलाय ।।१२।।
जाग जाग दे लोरियां, उस को किया सचेत ।
वृत्तिमय से पार कर, खोले उस के नेत ।।१३।।
भाग्य त्याग के न्याय से, आत्मा लिया निकाल ।
दधि से माखन ही यथा, जाना पुरुष अकाल ।।१४।।
ऐसे तारे बहुत जन, देवहूति ने आप ।
सांख्य योग विवेक से, दे कर भक्ति सुजाप ।।१५।।
पाया पद अपवर्ग का, मिटा सर्ग का खेल ।
ज्ञान ध्यान में मग्न हो, उखाड़ अविद्या बेल ।।१६।।

विदुर जी

विदुर भक्त था प्रेम युत, वर्जित पाप विकार ।
धर्म परायण वह हुआ, कर के सुकृत कार ।।१।।
सत्यवादी था निर्भय, खरी सुनाता बात ।
काँपता न अन्यायी से, चाहे करे उत्पात ।।२।।
सत्य कथन से तो कभी, झिझका वही न वीर ।
स्पष्ट वार्ता कथन से, वह बन्धाता धीर ।।३।।
धृतराष्ट्र सुबुद्ध कर, किया उस ने सचेत ।
दुर्योधन को शिक्षा दी, जाति वंश के हेत ।।४।।
कृष्ण सखा नीति निपुण, था भीष्म का हाथ ।
युधिष्ठिर का हितकर अति, दीन जनों का साथ ।।५।।

नृप का था बन्धु सगा, था पर वह निर्लेप ।
दुई द्वेष से दूर हो, रहता रहित विक्षेप ।।६।।
परम भक्त था व्यास का, नीति ज्ञान का स्थान ।
भक्ति प्रेम से वह सदा, भजता श्री भगवान् ।।७।।
चंचलता उस की मिटी, कर नारायण जाप ।
शान्ति क्षमा में रम गया, हर कर तीनों ताप ।।८।।
शिष्य थे उस के जन बहु, राम नाम के मीत ।
अहर्निश हरि को राधते, कर के पूरी प्रीत ।।६।।
कुन्ती पाया बोध शुभ, विदुर चरण में बैठ ।
पाये मोती प्रेम के, गहरे पानी पैठ ।।१०।।
शक्ति रता वह हो गई, सीख के नीति सार ।
जिस से उस ने सुत सभी, किये सुयोग अपार ।।११।।
नीति गुण और न्याय में, सविनय निपुण विशेष ।
सब ही जन-नेता हुए, धारक शक्ति अशेष ।।१२।।
था प्रभाव सुहावना, उस का सारी ओर ।
देता शिक्षण रात दिवस, करता काम न और ।।१३।।
भ्रातृ सुत उपदेश से, करता सभी सुबोध ।
उन को द्वेष विरोध से, वर्जता कर अनुरोध ।।१४।।
उस ने लाख निवास से, राखे कुन्ती-पूत ।
उस भवन में सुरंग रच, रचा शुभ नीति सूत ।।१५।।
उस का ही यह कर्म था, गुप्त भेद का काम ।
चुपके से उस ने किया, जाना गया न नाम ।।१६।।
नीति सो ही सराहिए, खुले सुभेद न मूल ।
कार्य सीधे हों सभी, विषम बने अनुकूल ।।१७।।

देह धन जन हानि जहां, बहुत अल्प ही होय ।
होवें कार्य सिद्ध सब, नीति कहावे सोय ।।१८।।
प्रतिपक्षी की हानि हो, बहुत से बहु अपार ।
अपना आप बचाय कर, करे अचूक सुवार ।।१६।।
नीति वेत्ता सुजन सभी, कहें नीति पहचान ।
रखना भेद सुगुप्त तर, कोई न जाय जान ।।२०।।
ऐसी सुनीति राज में, सब पाण्डव प्रवीण ।
किये विदुर ने प्रेम से, भर कर भाव नवीन ।।२१।।
धर्म धृति की दी धुरा, धर्मपुत्र को आप ।
विदुर ने परम प्यार से, यथा पुत्र को बाप ।।२२।।
अविचल श्रद्धा सत्य में, थी उस में ही जोय ।
विदुर के शिक्षण का सभी, सुफल समझिये सोय ।।२३।।
पाण्डव में जो प्रेम था, मेल अखण्ड विशेष ।
करना कर्म विचार कर, कहा विदुर उपदेश ।।२४।।
शुभ भावना नेम व्रत, जप तप पूजा पाठ ।
राजवंश में विदुर से, था सुकर्म का ठाठ ।।२५।।
राजवंश का स्तम्भ था, नीति नियम का सार ।
विनय-धर्म की नींव था, विदुर ज्ञान अवतार ।।२६।।
काल न कारण राज का, नहीं कर्म का जान ।
पुरुषार्थ ही मानिए, उन्नति में प्र-धान ।।२७।।
राजा हो जो वीर वर, करे उद्यम उद्योग ।
राज्य पालन वह करे, हर कर आलस रोग ।।२८।।
मानो कारण कर्म को, सुख दुःख में दे ध्यान ।
पुरुषार्थ से पाइए, ऋद्धि सिद्धि गुण ज्ञान ।।२६।।

छोड़िए न निज कर्म को, जो पुरुषार्थ नाम ।
वर्णन करता वेद जो, मान सुखों का धाम ।।३०।।
नीति में है राज्य सब, नीति काम का ढंग ।
राजनीति के नाम से, आती चली अभंग ।।३१।।
सुनीति से खोया मिले, देश कोश जन मान ।
होवे अनीति से सदा, पग पग पर अति हान ।।३२।।
पण्डित वह जन जगत् में, करे नीति से काम ।
चाल न चूके एक भी, लेवे नहीं विश्राम ।।३३।।
ऐसी सुनीति दान कर, विदुर योगी निष्काम ।
करता तन से कर्म शुभ, जपता मन से राम ।।३४।।
स्वर्ग सीढ़ी पर हुआ, रूढ़ महा मतिमान् ।
उस ने हरि के धाम में, पाया पद सुमहान् ।।३५।।

ध्रुव

धृति धर्म में ध्रुवता, ध्रुव धार कर आप ।
धारणा धार ध्यान में, हुआ सुधीर अपाप ।।१।।
सुनीति सुत सुन्दर बली, लीला करता बाल ।
बैठ पिता की गोद में, मोद मानता लाल ।।२।।
सौकन सुत को देख कर, ला सौतीला डाह ।
मन में तब ही सुरुचि के, लगी द्वेष की दाह ।।३।।
बोली—तू अयोग्य है, पितृ गोद के जान ।
मेरे सुसुत के स्थान में, तेरा नहीं विधान ।।४।।
सुनीति सुत के भाग में, नहीं लिखी यह गोद ।
सुरुचि-पुत्र के स्थान में, मत माने तू मोद ।।५।।

अभागे भज भगवान् को, राज-भाग तज भाग ।
मन उतरी का पुत्र है, खोल आंख जा जाग ।।६।।
नियम विधाता का बना, तू आया उस कूख ।
जिस के सुख का स्रोत सब, गया सर्वथा सूख ।।७।।
उठ अभागे शीघ्र कर, जा माता के पास ।
सुख सम्पत् की सर्वथा, तज दे मन से आस ।।८।।
तिरस्कार को प्राप्त कर, ध्रुव भागा तत्काल ।
देखा आता मात ने, रोता अपना बाल ।।९।।
सुनीति व्याकुल हो गई, देख पुत्र की चाल ।
फूट फूट जो रो रहा, कर के आंखें लाल ।।१०।।
बोली प्रेममयी वह वाणी, ढारस देती मात स्यानी ।
मम सुत सुन्दर ! कारण बोलो, रोना छोड़ो, मुखड़ा धो लो ।।११।।
सिसक सिसक कर रोना बेटा, अच्छा नहीं, दुःखी होना बेटा ।
तुझे कहा किस ने कुछ खोटा, वचन कटु तुच्छ व अति मोटा ।।१२।।
बांह खींच कर कंठ लगाया, मुख सिर चूमा प्यार दिखाया ।
आँसू पूँछ कहा उस ने ही, कहो सुत जो कहा जिस ने ही ।।१३।।
कथा कटु जो कर्ण को भारी, माता को वह कह कर सारी ।
बिलख बिलख कर बोला, माता, अब घर रहना मुझे न भाता ।।१४।।
भज भगवान् तजूँ सब माया, जिस से ऐसा दिन है आया ।
भक्ति भजन की रीति बताना, मंगल पथ में मुझे लगाना ।।१५।।
एक भरोसा अब है मेरा, मात! इष्ट हरि जो है तेरा ।
सुन कर ऐसे वचन सियाने, वह बोली, सुत हो अनजाने ।।१६।।
सुत ! सौकन का कार्य ऐसा, विष से भरा कुम्भ हो जैसा ।
राम राम भज सब सुखकारी, ध्रुव मेरे ध्वनि सुन प्यारी ।।१७।।

भुवन पति भगवान् है तेरा, वही भरोसा भारा मेरा ।
सो हरि शरण आश्रय जानो, राम भजो मन में सुख मानो ।।१८।।
निश्चय से श्री हरि आराधो, विष्णु पूज स्व कार्य साधो ।
उस ने कहना मां का माना, निराकार शुभाश्रय जाना ।।१६।।
ले कर नाम सुध्यान लगाया, स्थिरता से विष्णु पद पाया ।
गुरु उस ने मानी निज माता, ले कर राम नाम जन त्राता ।।२०।।
दृढ़ता से भक्ति को धारा, उस ने अपना आत्मा तारा ।
मानव बहुत मुक्ति पथ डाले, ध्रुव ने बहु पतित सम्भाले ।।२१।।
जग में भक्ति नाद गुँजाया, सब जन में हरि नाम बसाया ।
सुरुचि सह सुत शरण में आई, उस ने वह भव पार लगाई ।।२२।।
अपना पिता नाम से बोधा, राज काज राजा ने शोधा ।
सभी सगे राजा शुभ राणी, भक्त बने सुन उस की वाणी ।।२३।।
नाम भरोसा उस ने धारा, समझा धर्म में नाम प्यारा ।
ऐसा नाम अमोलक पाया, उस ने जीवन सफल बनाया ।।२४।।

प्रह्लाद

हिरण्यकशिपु नामी वर, हुआ असुर बलवान् ।
करता कर्म कठोर अति, क्रूर कर्म की खान ।।१।।
कृपण कुकर्मी काल बन, रहे धर्म से दूर ।
नास्तिक अधम कपट घर, कलि की काया क्रूर ।।२।।
था वह राजा देश का, पर अन्याय का धाम ।
हो कर रीति नीति रहित, करता काले काम ।।३।।
उपजा उस की पत्नी से, भक्त राज प्रह्लाद ।
जिस से पाया सर्व ने, बहुत हर्ष आह्लाद ।।४।।

धीरे धीरे वह बढ़ा, ज्यों अशोक की बेल ।
[illegible]
पिता ने पण्डित सुकुशल, बुलवाये गुणवन्त ।
पुत्र की शिक्षा के लिए, ज्ञानी शुभ मतिमन्त ।।६।।
सब साधारण जनों में, वही निराला बाल ।
पढ़ता रहता लगन से, नियम विनय को पाल ।।७।।
पहुँचा सोलह वर्ष को, मन में जागी जोत ।
अचानक हि प्रह्लाद में, खुला नाम का स्रोत ।।८।।
राम नाम अभिराम को, सुना कान में आप ।
बिन बाहर की प्रेरणा, होने लगा सुजाप ।।६।।
मानो ऊँचे धाम से, उतरा आ कर नाम ।
पूर्व किये सुपुण्य से, राम राम श्री राम ।।१०।।
उस ने माना जग गया, आत्मा निज सुख रूप ।
सफल मनोरथ हो गये, लख कर हरि स्वरूप ।।११।।
भजन पाठ जप ध्यान में, अहर्निश रहता लीन ।
राम कीर्तन काम को, करता सदा अदीन ।।१२।।
हिरण्यकशिपु ने सुना, सुत का ऐसा ठाठ ।
मानो उसे तत्काल ही, गया सांप हो काट ।।१३।।
अधिक क्रोध में तिलमिला, बोला वह, हे पूत ।
हरि पूजन को छोड़ दे, यदि है वंश सुपूत ।।१४।।
यह है झूठा ढोंग सब, तप पूजा जप पाठ ।
पण्डित बहु पुरोहित जन, बन ठग लूटें बाट ।।१५।।
ईश्वर कहीं है नहीं, उसे नहीं तू मान ।
परम ईश मुझ को सदा, मेरे प्यारे जान ।।१६।।

मेरी पूजा छोड़ कर, तू भजे अन्य देव ।
भारी तेरी भूल है, यह समझ सत्यमेव ।।१७।।
वह तब बोला—हे पिता, तू है मेरा बाप ।
ईश तुझे भी मानना, कहा घोर तम पाप ।।१८।।
उस का नाता जीव सब, माने तीनों काल ।
देवे अपना धाम वह, हो कर देव दयाल ।।१६।।
उस को निज में पूजिए, कर अन्तर्मुख ध्यान ।
सच्चिदानन्द मान कर, निश्चित पा कर ज्ञान ।।२०।।
कैसे छोड़ूँ नाथ जो, राम सदा का साथ ।
आनन्द रूप हरि ईश है, सर्व शक्तिमय हाथ ।।२१।।
वह तो अति झुंझला कर, बोला कटुतर बोल ।
सटपटा कर सर्प यथा, रहे घोर विष घोल ।।२२।।
सुत ने सब कुछ सह लिया, हो कर शान्त अवाक् ।
उत्तर तक उसे न दिया, समझा कर्म विपाक ।।२३।।
असुर राज आदेश से, पण्डित गये बुलाय ।
कहा उस ने, इस से तुम, ईश्वर दो छुड़ाय ।।२४।।
सीधा इस को तुम करो, पितृ-पूजा बताय ।
राजा ईश्वर है शुभ, ऐसा दो समझाय ।।२५।।
यही तुम्हारा आज है, उचित धर्म ही काम ।
इस को शीघ्र कीजिए, नहीं उधेड़ूँ चाम ।।२६।।
थर थर कांपे वे सभी, बोले—सुन प्रह्लाद ।
त्याग राम के जाप को, तज दे यह अपराध ।।२७।।
झट पट बोला युवक वह, कैसे छोड़ूँ राम ।
राम बिना बिन काम है, जीना जग आराम ।।२८।।

मेरे मन में राम है, तन मस्तक में राम ।
नाड़ी नाड़ी में रमा, राम नाम अभिराम ।।२६।।
बाहरी वस्तु छोड़िए, यदि वह छोड़ी जाय ।
आत्मा में जो रम रहा, कौन उसे छुड़वाय ? ।।३०।।
वह मेरा है चांदना, राम राम है प्राण ।
राम न छोडूँ मैं कभी, निश्चय कर लो जान ।।३१।।
सब खिसयाने हो गये, सुन कर उस की बात ।
बोले जा कर असुर को, तव सुत करे उत्पात ।।३२।।
बात न सुनता कान दे, सुने न देवे ध्यान ।
हरि अपराधी का कभी, करे नहीं वह मान ।।३३।
असुर राज ने भय दिखा, समझाया बहु बार ।
अति भयभीत उसे किया, दे कर गहरी मार ।।३४।।
डांट डपट को देख कर, ताड़न तर्जन देख ।
मार पीट को सह वही, लखता कर्म कुलेख ।।३५।।
पीटा जाता वह जभी, मुख से कहता राम ।
तेरा भाना बीतता, भगवन् आठों याम ।।३६।।
भावे तोहे जो हरे, है वह सब स्वीकार ।
भाने में प्रसन्न हूँ, हे मेरे आधार ।।३७।।
जीवन में हो वाह तव, मरण में होय वाह ।
सुख दुःख दोनों में हरे, तेरी वाह सुवाह ।।३८।।
तेरे जन के काज सब, तू संवारन हार ।
निज जन कारण है खड़ा, तू शुभ हाथ पसार ।।३६।।
भला है भाय जो तुझे, भाना भला महान् ।
होता भाना राम का, तर्क करे अनजान ।।४०।।

राम रचा होवे सदा, नियत किया जो राम ।
रत्ती घटे न तिल बढ़े, अटल राम का काम ।।४१।।
हो कुपित तब दैत्य ने, अपना सुत पिटवाय ।
वाण नुकीले, खड्ग से, डरवाया धमकाय ।।४२।।
उसे गिरा कर शिखर से, भीत किया बहु बार ।
पर वही तो नहीं डरा, सह कर गहरी मार ।।४३।।
बोला उन से वह तभी, है यह सब जंजाल ।
मारो काटो जो करो, मैं न हटूँ त्रिकाल ।।४४।।
हनन करे मम देह को, राजा कर के कोप ।
तो भी राम सुनाम का, मुझ से होय न लोप ।।४५।।
मेरा आत्मा सत्य है, अजर अमर चित् रूप ।
इस का हनन न कर सकें, सर्व जगत् के भूप ।।४६।।
नाश न हो सद् वस्तु का, अल्प हो वा महान् ।
सद् वस्तु के नाश से, नाश सर्व का जान ।।४७।।
सत्य सनातन धर्म है, पूजन हरि का एक ।
आत्मा को ही जानना, तज कर भ्रान्ति अनेक ।।४८।।
भीषण भय से भीत कर, हो न भक्त की हान ।
भय हारक उस का सदा, होता है भगवान् ।।४६।।
प्राण वेदना हो जभी, हों भक्त स्थिर धीर ।
भय उन्हें नहीं मरण का, जो हरि जन हैं वीर ।।५०।।
राम भजो शुभ भाव से, तज कर सर्व कुभाव ।
दुर्लभ मानुष जन्म का, अच्छा मिला है दाव ।।५१।।
एक घड़ी आधी घड़ी, आधी से भी आध ।
राम नाम के जाप से, कटें कोटि अपराध ।।५२।।

टुक टुक कर के काटिए, मेरा सर्व शरीर ।
तो भी तजूँ न राम को, होऊँ नहीं अधीर ।।५३।।
देख सत्य का आग्रह, चकित हुए सब लोक ।
हिरण्यकशिपु कुकर्म वश, चला गया परलोक ।।५४।।
जय ध्वनि हुई राम की, दश दिश चारों कूट ।
नास्तिक मत का कुदुर्ग, गया सर्वथा टूट ।।५५।।
नाम मग्न प्रह्लाद था, जपता राम सुनाम ।
भज कर उत्तम नाम को, हुआ सुपूर्ण-काम ।।५६।।
लीला जानी राम की, उस ने ऐसी अन्त ।
भक्ति प्रेम में रम गया, जपता राम अनन्त ।।५७।।

भीष्म

भीष्म, शान्तनु सुत बली, शक्ति बुद्धि भण्डार ।
हो गया नीति ज्ञान का, वह पूर्ण अवतार ।।१।।
वह प्रतापी धीर बन, था पालक निज वंश ।
ब्रह्मचर्य अखण्ड धर, भजता ईश निरंश ।।२।।
राग द्वेष से दूर था, कृष्ण शिष्य विद्वान् ।
गुरु सा ज्ञानी सन्त था, शूर वीर बलवान् ।।३।।
योगी वह था उच्च ही, ज्ञाता आत्म-भेद ।
तत्त्व दर्शी शुभ भक्त था, वेत्ता दर्शन वेद ।।४।।
तीन ताप को जीत कर, जीते सारे दोष ।
उस ने समता धार कर, दूर किया सब रोष ।।५।।
था प्रमाण सद्धर्म में, सर्व गुणों की खान ।
राजा जन भी मानते, उस की पूरी आन ।।६।।

सर्व-मुख्य वह हो गया, अपने अन्तिम काल ।
उसे पितामह मानते, सभी सुजन भूपाल ।।७।।
उस के ज्ञान विचार का, नीति न्याय का लेख ।
सभी वर्णों के धर्म का, शान्ति पर्व लो देख ।।८।।
ज्ञान सुसागर मानिए, कर्म धर्म का कोष ।
शान्ति पर्व ही शान्तिकर, दाता शुभ सन्तोष ।।६।।
भीष्म प्रतिज्ञा पालता, वचन न करता लोप ।
दृढ़ कर्मी शुभ सत्य को, कभी न लेता गोप ।।१०।।
उस का सुन्दर कथन है, अग्नि शीत हो जाय ।
पश्चिम से उदय भानु हो, महा मेरु कम्पाय ।।११।।
शिला में उपजे पद्म हि, तो भी पुरुष महान् ।
प्रण सच्चा पालन करे, दे कर भी निज प्राण ।।१२।।
दण्ड कर्म प्रसंग में, उस ने किया बखान ।
शक्ति जाग्रत हो जहां, वही सुखों का स्थान ।।१३।।
शक्ति सत्ता में बसे, उन्नति शोभा सार ।
बल है जग में सर्व कुछ, ऋद्धि सिद्धि व्यापार ।।१४।।
सत्य धर्म उपदेश में, भीष्म वचन कहाय ।
जिस सुकर्म का फल भला, वही सत्य कहाय ।।१५।।
दया दान सन्तोष शम, क्षमा धृति उपकार ।
पुण्य कर्म सब सत्य हैं, नियम सभी सुखकार ।।१६।।
निरा सत्य ही वचन का, जिस का फल हो पात ।
जाति वंश शुभ धर्म का, माना झूठ उत्पात ।।१७।।
मौलिक नियम बखानते, वाण शय्या पर रूढ़ ।
बोला भीष्म वीर वर, दर्शन तत्त्व सुगूढ़ ।।१८।।

भोज सबल का अबल है, सबल अबल को खाय ।
सबल जनों को जगत् में, ऋद्धि सिद्धि मिल जाय ।।१६।।
हैं सब सबलता में सुख, अबलपने में पाप ।
शक्ति बुद्धि बल वीरता, नष्ट करें सब ताप ।।२०।।
शूल शय्या पर ही लिटे, बोला ज्ञान निधान ।
धर्म राज को वह तभी, हो सजग सावधान ।।२१।।
है जग में उत्थान धर्म, मान धर्म का मूल ।
सजग चतुर हो उद्यमी, भ्रम न करना भूल ।।२२।।
पुरुषार्थ उद्योग से, बल साहस से काज ।
करना सदा सचेत हो, है सुपथ महाराज ।।२३।।
उत्थान से जाति सचेत हो, जनता जाती जाग ।
वैरी मिटें उत्थान से, जाय दासता भाग ।।२४।।
रहना उद्यम कर्म में, जी जोखों में डाल ।
वीर धीर पन धार कर, देना भय को टाल ।।२५।।
शीत उष्ण गिनना नहीं, सुख दुःख मानामान ।
करना कर्म तुरन्त ही, कहते इसे उत्थान ।।२६।।
विघ्न विपद् के ही लिये, रहना सदा तैयार ।
आती भीषण विपद् पर, करना झटपट वार ।।२७।।
शत्रु विरोधी से सदा, रहना दाव बचाय ।
निष्फल करना चाल पर, यही उत्थान कहाय ।।२८।।
शान्त-स्वरूप महात्मा, भीष्म दे उपदेश ।
वह सिधारा स्वर्ग को, जप कर नाम महेश ।।२६।।
ज्ञान ध्यान भण्डार था, मानव मण्डल सार ।
उस के मंजे अमोल हि, मिलते मधुर विचार ।।३०।।

शान्ति पर्व के घाट पर, कीजिये पाठ स्नान।
सारे मन मल धोइए, पा कर उत्तम ज्ञान।।३१।।

युधिष्ठिर

कुन्ती पुत्र सुभक्त वर, धर्म राज गुणवान्।
धृति सत्य का था धनी, ज्ञान-पूर्ण विद्वान्।।१।।
भक्ति प्रेम के रंग में, रहता लालो लाल।
ईश्वर भजन ध्यान से, हो कर वही निहाल।।२।।
व्यास विदुर भीष्म आराधे, उस ने उत्तम साधन साधे।
कृष्ण संगति में सुख पाया, उस ने ज्ञान विचार बढ़ाया।।३।।
विपत् काल में धर्म न छोड़ा, धैर्य सत्य से न मुख मोड़ा।
वन में फिरा भ्रात सह माता, साग पात वन्य वस्तु खाता।।४।।
शुभ सत्संग सुधूम का भारा, था उस को सुखकार सहारा।
अनेक मुनि जन वन में आये, धर्म राज ने शुभ फल पाये।।५।।
दे उपदेश उन्हों ने भारी, वन बसने की विपत् निवारी।
एक बार वहां व्यास पधारे, बोले, राजन् सुनिए प्यारे।।६।।
सुख दुःख दोनों जन के संगी, संचित के फल हैं बहु रंगी।
भोगो फल मन में सुख मानो, सब से उच्च राम को जानो।।७।।
नारायण को मन से ध्याओ, ध्यान योग से शुभ फल पाओ।
है तू साधु भला गुणधारी, तुझ को संगति हो शुभकारी।।८।।
पक्षपात नहीं मुझे सतावे, न्याय सत्य में पक्ष हो आवे।
गुण में पक्ष है सब को ऐसा, हो वस्तु प्रत्यक्ष में जैसा।।६।।
तू है सत्य धर्म अनुरागी, कर्म परायण मन से त्यागी।
विपत् घोर में डोल न जाना, आन बान निज धर्म निभाना।।१०।।

नमस्कार उसे कर के ही, पद वन्दन कर मुनिवर के ही ।
शान्त हुआ मन चय आइ, समता मन न उस न पाइ ॥११॥
दुर्जन दे यदि दूषण भारी, धर्म राज न होता विकारी ।
समता शम वह कभी न खोता, द्वेष वैर का बीज न बोता ॥१२॥
समर विजय कर के ही सारा, यात्रा ले वह पुर में पधारा ।
पथ में भीड़ लगी थी भारी, शोभा देखें सब नर नारी ॥१३॥
विप्र वेश में एक विरोधी, बोला कुवचन अति हो क्रोधी ।
तुझे धिक् बान्धव गण हत्यारे, तू ने पाप किये अति भारे ॥१४॥
धर्म राज तब नत शिर बोला, अपराधी है मेरा चोला ।
विप्र, मुझे शुभ आशिष देना, शाप पाप मेरा हर लेना ॥१५॥
विप्र, गणों ने तभी पुकारा, विप्र नहीं यह कपटी भारा ।
चारवाक दुर्योधन संगी, विप्र वेश में है बहु ढंगी ॥१६॥
हम सब राजन् ! भक्त तुम्हारे, हैं मन तन से सुप्रीति धारे ।
राजा बोला—उस ने जो ही, कहा सत्य है जानो सो ही ॥१७॥
निन्दा नहीं वही जो बोला, सत्य भेद है ऐसे खोला ।
नृप-शांति धैर्य को जाना, सब ने उत्तम सुनृप माना ॥१८॥
सत्य कहा उस ने जब आधा, हुई उसे तब मानस बाधा ।
योद्धा द्रोण युद्ध में ऐसा, और न था कोई उस जैसा ॥१९॥
हार न खाता सेना मारे, वीर धीर उस ने संहारे ।
सर्वनाश होने को आया, तब कृष्ण ने गुर बतलाया ॥२०॥
सत्य वही जो शुभ फल लावे, जिस से बहु जन सुख को पावें ।
राजन्, विजय धर्म ही मानो, जन रक्षा ऊँचा सत्य जानो ॥२१॥
अत्याचारी अकरुण कुकर्मी, जाति विनाशक कपटी अधर्मी ।
जैसे मरे वह सत्य सारा, नैतिक जन ने सार निथारा ॥२२॥

सर्प मारिए दाव बचा के, सीधा टेढ़ा वार चला के ।
शुभ हो लक्ष ढंग हो कैसा, कर्म देखिए फल हो जैसा ।।२३।।
अन्त में शुभ वह शुभ कहावे, सज्जन सन्त सुभेद बतावे ।
अश्वत्थामा हस्ति गया मारा, द्रोणपुत्र का करो विस्तारा ।।२४।।
द्रोण जीव है भारा मोही, सुत मरा सुन मरे ही सो ही ।
इस से कोटि सुजन बच जावें, सज्जन सब सुख सम्पत् पावें ।।२५।।
फैला यह सैन्य में सारे, अश्वत्थामा हत है किनारे ।
द्रोण दुखी हो आगे आया, धर्म राज से ही पुछवाया ।।२६।।
कौन मरा यह मुझे बताना, अश्वत्थामा मरा समझाना ।
उसने समाचार पहुँचाया, अश्वत्थामा नर हस्ति गिराया ।।२७।।
द्रोण ने पुत्र मरा यह जाना, धृति छोड़ स्व मरना ठाना ।
उसी समय द्रुपद सुत धाया, द्रोण को वह हनन कर पाया ।।२८।।
इस से भी सुनृप पछताया, अर्ध सत्य समझ भ्रम खाया ।
धर्म राज था सुसत्य धारी, ईश भक्ति थी उस को प्यारी ।।२६।।
नारायण भज कर उस पाया, उत्तम पद जो भी मन भाया ।
राज काज से पुण्य कमाया, उस ने निज पद अमर बनाया ।।३०।।

मुद्गल मुनि

व्यास स्थान पर जाय कर, किया प्रश्न विचार ।
धर्म राज ने भाव से, दान में प्रीति धार ।।१।।
कौन सुदानी देश में, है उच्च महाभाग ? ।
क्या सुदान उस ने दिया?, कर हरि का अनुराग ।।२।।
व्यास देव बोला तभी, सुजन ध्यान से जान ।
भारत में दानी लखा, मुद्गल मुनि प्रधान ।।३।।

महात्मा मुद्गल शुभ मुनि, मन में रटता राम ।
वन में कुटी बनाय कर, करता उत्तम काम ।।४।।
जप तप संयम साधना, ज्ञान ध्यान शुभ योग ।
चिन्तन पूजन पाठ कर, हरता मानस रोग ।।५।।
भक्ति धर्म प्रचार कर, शुभ संगति में बैठ ।
देता नाम सुदान वह, ध्यान-योग में पैठ ।।६।।
उस के शुभ सत्संग में, करते सुजन विचार ।
जप तप साधन सीखते, ध्यान धारणा धार ।।७।।
उस की शोभा वनों में, नगर ग्राम पुर घाट ।
होती जनता में भली, घर घर हाट सुबाट ।।८।।
रहता ध्यान समाधि में, महा मग्न दिन रात ।
उस के उत्तम संग में, रमे राम की बात ।।९।।
दिवस तीसरे अन्न का, वह करता आहार ।
अपनी भार्या सहित ही, कर पूजन उपचार ।।१०।।
दो दिन का उपवास कर, अगले दिन वन जाय ।
वन्य वस्तु कन्द मूल शुभ, धरे पत्नी पै लाय ।।११।।
पहले भोजन काल से, पूज अतिथि-जन देव ।
पीछे अमृत भोगता, महा-मुनि नित्यमेव ।।१२।।
भोजन वेला एकदा, आया मुनि गुणवान् ।
सन्त कुटी में मोद वश, दुर्वासा शुभ निधान ।।१३।।
राम रंग में मत्त वह, रमा राम के नाम ।
मुस्कराता सुमधुर मुख, महा-मुनि गुण-ग्राम ।।१४।।
देखा मुद्गल सन्त ने, भक्त कमण्डलवान् ।
मृग छाला कन्धे धरे, आया उस के स्थान ।।१५।।

अभ्यागमन अभ्युत्थान हि, कर पूजा मुनि राज ।
स्वागत कर आसन दिया, उस ने सब सज साज ।।१६।।
कहा पधारो आइए, जाओ यहां विराज ।
दया करी दर्शन दिये, दिवस घड़ी शुभ आज ।।१७।।
हाथ जोड़ विनती करी, करिए भोजन आप ।
भोजन का है ही समय, तेरा यही अपाप ! ।।१८।।
दुर्वासा ने कहा उसे, दो अन्न महाराज ।
अतिथि भाग जो तू धरा, हो पर्याप्त आज ।।१९।।
उस ने वह अर्पण किया, भाव से अतिथि भाग ।
तीव्र उस को उस समय, भूख रही थी लाग ।।२०।।
तृप्त हुआ न वह गुणी, उस पत्तल को पाय ।
मुद्गल बोला पत्नी को, भोजन लाओ धाय ।।२१।।
मेरी पत्तल है धरी, मुनि को ला दे और ।
पत्नी ने आग्रह किया, जान दान की ठौर ।।२२।।
वह बोली, पति मानिए, दूँ मैं अपना भाग ।
तरने का तीर्थ यही, यही धर्म अनुराग ।।२३।।
कन्द मूल वन वस्तु है, लाना तेरा काम ।
भूखे कैसे लायगा, मान वचन गुण धाम ।।२४।।
मुद्गल ने माना नहीं, पत्तल अपनी लाय ।
मुनि के आगे ही धरी, भक्ति भाव में आय ।।२५।।
उसे तृप्ति भी न हुई, दोनों पत्तल खाय ।
पत्नी-भाग भी ला दिया, आदर मान दिखाय ।।२६।।
तीनों पत्तल पाय कर, तापस तृप्ति पाय ।
प्रीति पाय प्रस्थान कर, छुपा वनी में जाय ।।२७।।

[illegible] में [illegible] और [illegible] ।
पत्नी संग मुनि यश कथन, करता रहा अदीन ।।२८।।
पंच दिवस भूखे रहे, वे कर ध्यान सुजाप ।
वर्णन करते मुनि दया, उस का कर संलाप ।।२९।।
उन के सुचित चाँद पर, उदासी की न रेख ।
आई न पश्चात्ताप की, ऐसा मिलता लेख ।।३०।।
मुनि-माना शुभ कर्म की, भद्र घड़ी है काल ।
पुण्य उदय का जानिए, जो मिलें मुनि दयाल ।।३१।।
इस मेरे आतिथ्य को, मुनि ने कर स्वीकार ।
अपने चरण स्पर्श से, दिया मुझे है तार ।।३२।।
ईश परम तू धन्य है, लीला तेरी वाह ।
तेरे अनुग्रह की हरि, सकिए जान न थाह ।।३३।।
तेरा यह प्रताप है, दास कुटी पर आज ।
भिक्षा रूखी सूखी को, पाय गया मुनि राज ।।३४।।
व्यास ने कहा, वह जानिए, ऊँचा दानी वीर ।
मुद्गल मुनिवर मानिए, भक्त राज शुभ धीर ।।३५।।
ऐसे उत्तम भाव से, दे कर उत्तम दान ।
राम नाम आराध कर, मुद्गल हुआ निर्वाण ।।३६।।

अश्वपति

नृप कैकेय देश का, अश्वपति महाराज ।
हुआ भक्त भगवान् का, कर सुधर्म से राज ।।१।।
दानी ज्ञानी संयमी, क्षत्रिय वीर विशेष ।
निज पराक्रम कर्म से, था नृप रहित क्लेश ।।२।।

दूर अन्याय अनर्थ से, हो कर करता काम ।
जन पालन कर नित्य ही, जपता राम सुनाम ।।३।।
एक समय ऐसा हुआ, असुर एक बलवान् ।
वन में उस को घेर कर, हरने लगा सुप्राण ।।४।।
क्रूर असुर के वश पड़ा, बोला जनपति बोल ।
है व्यर्थ वध बहु बुरा, देख नयन को खोल ।।५।।
हिंसक जन को मारिए, दुर्जन डाकू चोर ।
दस्यु असुर संहारिए, देश द्रोही कठोर ।।६।।
व्यभि-चारी हि ताड़िए, जाति देश की घात ।
करे उसे भी दण्डिए, जो भी करे उत्पात ।।७।।
मेरे तो सब देश में, नहीं तस्कर न चोर ।
है नहीं लम्पट कृपण, व्यभिचार रत ढोर ।।८।।
मदिरा सेवी है नहीं, मिलता मेरे देश ।
पतिव्रता हैं नारियां, सतियां सर्व विशेष ।।६।।
हैं क्षत्रिय सब सूरमें, देश जाति के हेत ।
तन धन सिर तक दान दे, जीतते शत्रु-खेत ।।१०।।
दान पुण्य होते सदा, वेद पाठ के गान ।
ब्राह्मण त्यागी हैं सब, लेते नहीं कुदान ।।११।।
पढ़ते सुविद्या सर्व जन, रखते मेल मिलाप ।
वैर विरोध विद्वेष का, नहीं देश में ताप ।।१२।।
आपस में ही प्रेम से, सभी लोग सुख रूप ।
बसते सारे देश में, जिस का हूँ मैं भूप ।।१३।।
मन मुखी अधम मैं नहीं, धर्म-हीन अनजान ।
जन पीड़न करता नहीं, जन हैं मेरे प्राण ।।१४।।

विषय व्यसन विकार वश, करूँ नहीं मैं राज ।
कारण वध का है नहीं, सोच समझ ले आज ।।१५।।
धर्ममय ऋषि राज को, तजा असुर ने जान ।
ज्ञानी आत्मा का बली, भक्त राज शुभवान् ।।१६।।
इस के मन में काल का, भय मिले नहीं लेश ।
महा असम्भव है यहां, देना इस को क्लेश ।।१७।।
राम-भक्ति से बन बली, हुआ नहीं भयभीत ।
आत्म बल से वह नृप, गया असुर को जीत ।।१८।।
सुयुग सत्य था बीतता, उस के बीच समाज ।
नीति न्याय शुभ धर्म से, रहा स्वर्ग विराज ।।१९।।

शौनक

शुद्ध कर्मी शौनक हुआ, जान सांख्य सुज्ञान ।
भक्ति धर्म में रत हुआ, योगी गुणी महान् ।।१।।
मान-सरोवर में यथा, निर्भय विचरे हंस ।
ऐसे वन में विचरता, कर के दोष विध्वंस ।।२।।
उस के मन आकाश में, पाप की न थी धूल ।
हरि आराधन जाप से, उस में रही न भूल ।।३।।
मन मन्दिर में मग्न हो, वह शुभ जपता नाम ।
कर्म योग से धर्म के, करता अहर्निश काम ।।४।।
उस का यह उपदेश है, सार रूप सुखकार ।
वश में करिए करण सब, हरिए सर्व विकार ।।५।।
लोभी लम्पट पाप में, अग्नि में ज्यों पतंग ।
दग्ध करे शुभ भाव ही, धर्म न्याय के अंग ।।६।।

मोह लोभ में मग्न हो, भटकें भूले लोक ।
घूमें चक्र कुलाल वत्, पावें संकट शोक ।।७।।
पाठ स्वाध्याय जाप शुभ, सत्य शील सन्तोष ।
क्षमा सुदान उदारता, संयम और अरोष ।।८।।
यही कर्म हैं मोक्ष के, करते परम कल्याण ।
समता रखना सर्वथा, जानिए पथ निर्वाण ।।६।।
सम्यक् दृष्टि राखिए, व्रत नियम आचार ।
भाव कर्म संकल्प सब, शुभ आहार विचार ।।१०।।
नव, सम्यक् ये हों जभी, वही जानिए योग ।
नाशक पाप विपाक का, सभी भीतरी सोग ।।११।।
जीता जिस ने जगत् को, वह जग में जयवान ।
मानस-वृत्ति कर विजय, पावे मोक्ष निधान ।।१२।।
ऐसे शुभ उपदेश से, शान्ति साम कर दान ।
शौनक को शंकर मिला, कर पापों की हान ।।१३।।

मारकण्डेय

मारकण्डेय गुणी मुनि, मौनी मोहन रूप ।
रहता निमिषारण्य में, सहता छाया धूप ।।१।।
भक्ति भजन से राम को, भजता जो है एक ।
सर्वाधार भगवान् जो, ले कर उस की टेक ।।२।।
पूछा कुन्ती पुत्र ने, उसे, कहो मुनि राज ।
शुद्धि शौच के भेद को, हो कृपामय आज ।।३।।
मुनि बोला—यह शौच है, सत्य वचन को धार ।
हित प्रीति पर सेवा हो, राम भजन सुखकार ।।४।।

सुजन सच्चा शुचि समझिए, करे शुद्ध व्यौहार ।
[illegible]
जल आदिक से शुद्ध हो, रक्खें स्वच्छ निवास ।
घर आंगन सब शुद्ध हों, यही शुद्धि सुखरास ।।६।।
सायं प्रातः सिमरिए, गायत्री का सुपाठ ।
वेद ग्रन्थ का पाठ भी, समझ शुद्धि का ठाठ ।।७।।
इस से आत्मा मन सभी, शुचि हो जावें अंग ।
श्रद्धा हो भगवान् में, भक्ति रहती अभंग ।।८।।
राम जाप जो जन करे, नगर गाम वन बीच ।
तीर्थ हो जहां हो वह, तारे अधर्मी नीच ।।६।।
वह वन बने सुनगर ही, बसे भक्त जिस स्थान ।
पावन वह प्रदेश हो, जहां करे वह ध्यान ।।१०।।
पवित्र पानी पवन में, करे नित्य शुभ स्नान ।
पुण्य पाठ हरि नाम का, सन्त सुभाषण जान ।।११।।
ये तीनों हैं कर्म शुभ, तथा सत्संगति एक ।
सत्य मृदु हित बोलना, पावन कर्म अनेक ।।१२।।
जिस का मन मैला रहे, निर्मल हो न विचार ।
उस के तप संयम कर्म, समझो सर्व असार ।।१३।।
देह सुखाना तप नहीं, भूखा रहे न जान ।
जाप दान उपकार शम, सेवा को तप मान ।।१४।।
दया सुभक्ति उदारता, निर्भयता के काम ।
आत्म-शोधक तप कहे, कर्म करना निष्काम ।।१५।।
ऐसे सदुपदेश से, उत्तम मुनि गुणवान् ।
उत्तम पद को पा गया, उच्च धाम सुख खान ।।१६।।

कौशिक

कौशिक नाम तपोधन ज्ञानी, विधि वैदिक जिस ने सब जानी ।
बसता वन में तरु के नीचे, करता कर्म धर्म के ऊँचे ।।१।।
पर था मान कोप ने घेरा, रहता बना क्रोध का डेरा ।
उस तरु पर पंछी की जोड़ी, रहती निशा भर पक्ष सिकोड़ी ।।२।।
एक समय जब बैठी आई, घोंसले से उस बींठ गिराई ।
मुनि सिर पर पड़ी वही आ के, उठा तपोधन ही घबरा के ।।३।।
घूर उसे देखा उस ने ही, मूर्छित हुए सुपक्षी वे ही ।
तड़फड़ाते हुए गत प्राणा, कौशिक ने वह निज बल जाना ।।४।।
समझा यह मैं हूँ बलधारी, मोहन हनन उच्चाटनकारी ।
चाहे जिसे हनन कर डारूं, मूर्छित कर प्राण से मारूं ।।५।।
चमत्कार यह है अति भारा, मरे वे ज्यों मैं ने निहारा ।
दिव्य सुनी उस ने तब वाणी, है अजान तू अति अभिमानी ।।६।।
काशी में बसती है नारी, गृहरता पति को अति प्यारी ।
है वह ज्ञानवती गुण राणी, पढ़ती वाणी परम पुरानी ।।७।।
कौशिक चला देखने को ही, कैसी ज्ञानवती है सो ही ।
चलता उसी नगर में आया, आंगन में आ अलख जगाया ।।८।।
कहा उस ने भिक्षा दो मोहे, यदि अवकाश हो, भवति ! तोहे ।
विनय भाव से वह तब बोली, जो थी गुणवती सरला भोली ।।६।।
पति सेवा में रत हूँ ऐसी, कर्मरता भी होवे जैसी ।
किंचित्काल ठहर ही जाना, मुनि ! विलम्ब से रोष न लाना ।।१०।।
औषध पथ्य सुपति को देते, श्रान्त थकित की सार हि लेते ।
उस ने बहुता काल लगाया, आंगन स्थित सुमुनि घबराया ।।११।।

होते देर क्रोध में आया, उस के मन में वैर समाया ।
वह पति सेवा कर सुखदाई, मुनि के लिए शुभ भिक्षा लाई ।।१२।।
वह बोला—क्यों देर लगाई, मूढ़े ! मान अति है बुराई ।
तू ने सिद्ध मुनि नहीं जाने, भस्म करें जो कथन न माने ।।१३।।
देवी देख नयन मुनि जी के, लाल वर्ण शम दम से फीके ।
बोली—मुझे पंछी न जानो, धर्म परायण हूँ मुनि मानो ।।१४।।
घूरने से न गिरे सुनारी, मोहे उसे न आंख करारी ।
मेरा कुछ न कोप से जाता, तू अपना सुतेज गंवाता ।।१५।।
देखी मुनि ने नारी न्यारी, मनोभाव को जाननहारी ।
शान्त हुआ वह परिचय पा के, नम्र बना सब मान मिटा के ।।१६।।
बोला—देवि ! यह विद्या कैसे, आवे जिस के हैं फल ऐसे ।
जान जाय पर मन की लीला, मुझे सिखाइए यह सुशीला ।।१७।।
वह बोली—यह फल है सारा, गृह धर्म का जो है प्यारा ।
कर्म-योग की करना करणी, यही विद्या है मन मल हरणी ।।१८।।
आय न निश्चय मिथिला जाओ, वृद्ध व्याध शरण को पाओ ।
है वह आत्म-ज्ञानी योगी, भक्ति प्रेम अमृत रस भोगी ।।१६।।
चलता वह मिथिला में आया, स्थान व्याध का उस ने पाया ।
हाड चाम का था व्यापारी, वृद्ध व्याध शुभ भक्ति धारी ।।२०।।
स्वागम उसे मुनि ने सुनाया, उस ने कहा, अभी मैं आया ।
उसे प्रिय थे सुपिता माता, उन की सेवा में था राता ।।२१।।
चिर कर बाहर शोभा लाया, मुनि ने उस को सीस नवाया ।
दे कर आसन अर्घ्य सुपानी, कुशल पूछ बोला वह वाणी ।।२२।।
धन्य कर्म मेरा है ऐसा, मिला सुजन मुनिवर तुझ जैसा ।
कहो, हुआ किस कारण आना, दास-द्वार पर दया दिखाना ।।२३।।

मुनि बोला—मैं सुन कर तेरी, महिमा भक्ति की ही घनेरी ।
आया सीखने हूँ यहाँ ही, साधूँ साधन कहो जहां ही ।।२४।।
दे कर दान विधान बताओ, बांह पकड़ सुपथ में चलाओ ।
उस ने वचन कहे सुखदाई, व्याध नाम की गीता गाई ।।२५।।
कर्म-धर्म का मर्म हि खोला, अन्य धर्म दिखलाया पोला ।
महाभारत में है यह गाथा, जिसे जान हर्षे हिया माथा ।।२६।।
बोला व्याध—सुनो मुनि मेरी, कर्म कथा जो हो रुचि तेरी ।
कर्म धर्म मैं ने है जाना, पूजन जननी जनक बखाना ।।२७।।
है मम वृद्ध पिता सुमाता, उन्हें सेव कर हूँ सुख पाता ।
उन को कष्ट न होने देता, मैं संभार सार हूँ लेता ।।२८।।
स्नान आदि मैं सभी कराऊँ, उन्हें खिला कर पीछे खाऊँ ।
मूर्ति-मान देव हैं मेरे, पूजूँ उन को सांझ सबेरे ।।२६।।
मैं ने सब कुछ मन धन काया, उन के पैरों पर ही चढ़ाया ।
ईश दया है जो ही पाया, मैं ने नित्य सुतेज सवाया ।।३०।।
नित्य सुकर्म करे जन जो ही, भक्ति से ज्योति पावे सो ही ।
कर्म योग को जो जन साधे, पाले सुजन राम आराधे ।।३१।।
सब शुभ उस में ही आ जावें, विमल भाव अहर्निश विलसावें ।
यह सुन कौशिक का मन जागा, भ्रम अज्ञान सर्वथा भागा ।।३२।।
वही व्याध उस ने गुरु माना, दीक्षा ले सुसत्य पहचाना ।
तथा बहु जन व्याध ने तारे, कर्मी जनों के जन्म सुधारे ।।३३।।
हुआ वह सन्त सुशक्ति वाला, पाप बीज उस ने भुन डाला ।
राम नाम में लगन लगा के, शान्त हुआ पावन पद पा के ।।३४।।

श्रवण

भला भक्त श्रवण गुणधारी, हुआ ध्यान जप का अधिकारी ।
माता पिता का भक्त प्यारा, श्रुति स्मृति का जाननहारा ।।१।।
बूढ़े मात पिता उसके ही, थे वे पुत्र के परम स्नेही ।
अंग करण उन के ही सारे, थे दुर्बल अशक्त ही भारे ।।२।।
देखन सुनन की शक्ति सारी, उन की थोड़ी थी अति भारी ।
सेवा उन की सुत सुखदाई, करता अहर्निश मन तन लाई ।।३।।
रहते सरयू निकट वनी में, वे तापस उस घोर घनी में ।
शीत उष्ण दु:ख विघ्न सहारे, शम दम में रहें शान्ति धारे ।।४।।
तपोभूमि में तप जप पालें, पाठ ध्यान से संकट टालें ।
करते कर्म सभी सुख ही के, उन के व्रत नियम थे नीके ।।५।।
ग्रीष्म घोर तपा दु:खदाई, हुई उष्णपन की अधिकाई ।
ऐसे समय रात को बोला, पिता पुत्र को प्यासा भोला ।।६।।
सुत ! सताती तृषा हत्यारी, मां तव दु:खी प्यास की मारी ।
उसे प्यास से नींद न आती, मेरी जीभ ही सूखी जाती ।।७।।
जाओ घट पानी का लाओ, शीतल जल ही हमें पिलाओ ।
आज्ञाकारी उठ कर धाया, ले कलश नदी तट पर आया ।।८।।
थी वह काली रात अन्धेरी, दशरथ युवक फिरे था फेरी ।
शब्दबेधी विद्या को साधे, नदी समीप वह सुगुण राधे ।।९।।
ज्यों श्रवण ने कलश डुबाया, डब डब ध्वनि युवक सुन पाया ।
वह समझा हाथी है आया, उस ने जल में सूंड बढ़ाया ।।१०।।
शब्द सीध पर ध्यान लगा के, धनुष वाण कस लक्ष टिका के ।
दशरथ ने जो वाण चलाया, लगा श्रवण के वह चिल्लाया ।।११।।

निरपराध को हा ! किस मारा, मैं ने किस का क्या हि बिगाड़ा ।
पाय अधर्म वनी को मारे, दोष बिना जो यों संहारे ।।१२।।
आ कुमार ने उस को देखा, लहु लुहान लत पत तन पेखा ।
बहते बड़ी रक्त की धारा, कहा उस ने सुवचन करारा ।।१३।।
है अनीति कुमार ! यह तेरी, तू ने हत्या करी यों मेरी ।
शर एक से तीन हैं मारे, मात पिता भी मेरे प्यारे ।।१४।।
हैं दोनों सुगुणों की चोटी, उन की मैं हूँ रोटी सोटी ।
मरें तभी मरा मुझे जानी, मरती मीन बिना ज्यों पानी ।।१५।।
दोनों वे हैं अति ही प्यासे, जल ले जाओ अभी यहां से ।
तुम जा कर जल उन्हें पिलाओ, घोर शाप से प्राण बचाओ ।।१६।।
हुआ उदास युवक ही भारा, भूल गया वन-रमणा सारा ।
घट सीस पर उस ने उठाया, तापस कुटिया पर वह लाया ।।१७।।
उस ने ज्यों ही पीठ फिराई, तभी श्रवण ने सुगति पाई ।
अन्त समय सुनाम को ध्याते, राम राम शुभ मन से गाते ।।१८।।
लीन ध्यान में वह तब हो ही, ज्योति रूप हुआ तभी सो ही ।
पाप कर्म से किये किनारा, भक्त राज शुभ धाम सिधारा ।।१६।।

तुलाधार

जाजलि तापस था वनवासी, तप में रत रहता गुण रासी ।
तप से उस ने देह सुखाई, दिव्य शक्ति तब उस में आई ।।१।।
अहंकार वश बन अभिमानी, समझा मैं हूँ परम सुज्ञानी ।
निज सम वह न किसी को जाने, ऊंचा सब से निज को माने ।।२।।
दिव्य ध्वनि उस ने सुन पाई, जाजलि, तज अभिमान बड़ाई ।
तुलाधार उत्तम व्यापारी, बसे काशी में शक्तिधारी ।।३।।

रहे योग बल ऊंचा धारे, तुझ सा वचन न वही उच्चारे ।
मौन रहे अभिमान हि मारे, अपने को न योगी पुकारे ।।४।।
ऐसा सुन आश्चर्य मनाया, दर्शन को वह काशी आया ।
मिला ढूँढते हाट लगाये, काठ किवाड़े अधिक सजाये ।।५।।
जाजलि ने उसे कहा–ज्ञानी !, कह मुझे तू अपनी कहानी ।
कौन किया जप तप मन से ही, जिस से सफल हुआ तव देही ।।६।।
करे हाट पर सौदा सारा, लकड़ी आदिक का अति भारा ।
यही कर्म कर कैसे पाया, भक्त राज पद जो है गाया ।।७।।
सिद्ध हुआ तू ऐसे कैसे, काठ बेचते गिनते पैसे ।
तेरा दीखे योग अनोखा, कोरा दम्भ रूप हो धोखा ।।८।।
तुलाधार बोला–शुभ ध्यानी, व्रत नियम युत निरा अमानी ।
जाजलि धर्म सुना सुखदाई, ईश भक्ति है परम सहाई ।।६।।
जो जन यत्न करे हरि राधे, वही मनोरथ अपने साधे ।
राम राम जो मन से ध्यावे, सो जन परम धाम को पावे ।।१०।।
पर को कभी भी दुःख न देना, दया भाव मन में भर लेना ।
है यह धर्म सनातन प्यारे, भक्ति प्रेम से जन्म सुधारे ।।११।।
पाप कर्म को दूर भगाना, दुई द्वेष को चूर बनाना ।
वेद का सच्चा धर्म कहाता, सम हो रहना जिस में आता ।।१२।।
शुभ हित करना सब दिन राती, शुभ चाहना रक्षित कर जाती ।
धर्म परम सुख साधन जाना, करना जप तप कर्म बखाना ।।१३।।
समझे धर्म वही नर नारी, सर्व मित्र जो हो सदाचारी ।
आप न डरे न अन्य डरावे, धर्म सनातन वह समझावे ।।१४।।
निर्भय रखना निर्भय होना, ईश प्रीति से भय मल धोना ।
निर्भय भाव धर्म है पूरा, वीर धीर हो सुधर्मी शूरा ।।१५।।

जो जन कलह न वैर बढ़ावे, द्वेष क्रोध का मूल मिटावे ।
द्रोह निन्दा से रहे न्यारा, वह जाने सद्धर्म ही सारा ।।१६।।
ब्राह्मी पद में वह जन जावे, ब्राह्म भाव में वह समावे ।
शान्ति पद को वही जन सेवे, सेवा में जो धन तन देवे ।।१७।।
क्रूर कुटिल कपटी हो कोई, ईर्ष्या युक्त जनों का द्रोही ।
त्रास फैलाये भय उपजावे, वह नहीं शान्ति पद में जावे ।।१८।।
गुण विचार विवेक को धारे, कर्म करे शुभ वेद विचारे ।
जाजलि धर्म यही है जाना, वेदागम ने तथा बखाना ।।१६।।
कथन सत्य मुनि के मन भाया, सुध्यान उस ने उस से पाया ।
जाप ध्यान कर जन्म सुधारा, वह सुधाम में जाय पधारा ।।२०।।
तुलाधार कर शुद्ध कमाई, राम नाम में रहा समाई ।
सुजन भक्ति से उस ने तारे, राम भरोसे राम सहारे ।।२१।।

रामानन्द

रामानन्द सुसन्त वर, हुआ भक्ति का स्रोत ।
कलियुग में अवतार ले, की निर्मल उस जोत ।।१।।
नाना मत के वाद से, ऊब गये थे लोक ।
मुसलमान होने लगे, रही न कोई रोक ।।२।।
जन बहुते अनजान थे, ग्रामवासी अबोध ।
आपस में थे लड़ रहे, कर के वैर विरोध ।।३।।
छुआ छूत के भूत ने, बढ़ा रक्खी थी फूट ।
हिन्दू संख्या की लड़ी, अधिक रही थी टूट ।।४।।
क्षात्रपन की हान थी, बल का था अपमान ।
शक्ति धर्म से रहित थे, सब ही जान अजान ।।५।।

भक्ति शक्ति की हीनता, करती थी जन नाश ।
अबल जनों का आये दिन, होता गया विनाश ।।६।।

बल था तब तलवार का, जो तन करती पार ।
अन्याय अनीति साथ मिल, होते पाप अपार ।।७।।

धर्म अन्धता थी कड़ी, करती पातक घोर ।
मतवादी थे कर रहे, सर्व हनन सब ओर ।।८।।

सिन्धु नदी को लांघ कर, पश्चिम के जन आय ।
भ्रूण हत्या थे कर रहे, हिंसा लूट मचाय ।।९।।

ककड़ी खीरे की तरह, कटते सज्जन सन्त ।
नारी नर मरते घने, गुणी ज्ञानी शुभवन्त ।।१०।।

सहस्त्रों तजते धर्म को, प्राणों का भय देख ।
मिले विदेशी दलों में, यह थी कर्म कुरेख ।।११।।

आये दिन था घोर तर, हो रहा अत्याचार ।
हिन्दू हत्या होती थीं, राज-सुपथ बाज़ार ।।१२।।

मन्दिर मिलते मिट्टी में, यात्रा थीं सब बंद ।
उत्सव सब त्यौहार भी, धर्म कर्म थे मंद ।।१३।।

ऐसे भीषण काल में, ईश ने हो दयाल ।
भावुक आत्मा भेज कर, हिन्दू किये निहाल ।।१४।।

भक्त शिरोमणि धर्मधर, जन्मा रामानन्द ।
काशी धाम समीप ही, बंधु हुए आनंद ।।१५।।

बाल काल को लांघ कर, हुआ पण्डित विद्वान् ।
जाना आगम वेद को, उस ने भक्ति निधान ।।१६।।

संगति हुई सुसाधु की, जो था भक्त विशेष ।
संन्यासी योगी परम, देता शुभ उपदेश ।।१७।।

रामानन्द को दे तब, उस ने सत्योपदेश ।
राम नाम के भजन का, नाशक सारे क्लेश ।।१८।।
बताई युक्ति भजन की, सुरती शब्द मिलाप ।
सुरती वृत्ति ध्यान की, शब्द नाम का जाप ।।१६।।
सुरती नाम सुध्यान को, ध्येय शब्द के बीच ।
बार बार ही लाइए, लगन प्रेम से खींच ।।२०।।
एकाकारता ध्येय में, सुरति शब्द का मेल ।
कहता संत सुजान वह, दर्शक सूक्ष्म खेल ।।२१।।
गुरु चरणों में बैठ कर, उस ने किया अभ्यास ।
संशय उस के सब मिटे, हुए मनोरथ पास ।।२२।।
अल्प काल में खुल गये, सभी चक्र के धाम ।
लखा उस ने निज आत्मा, जपता राम सुनाम ।।२३।।
सुषुम्ना नाड़ी खुल गई, खुले ऊपरी कोश ।
राम ध्वनि उपजी तभी, हुए दूर दुःख दोष ।।२४।।
सहस्त्र कमल दल जो कहा, है शीर्ष का स्थान ।
इस में घर हैं सैंकड़ों, वही कमल दल जान ।।२५।।
सिर तो कमलाकार है, रीढ़ कमल की नाल ।
कहते मेरुदण्ड इसे, योगी संत दयाल ।।२६।।
सब से ऊँचा धाम जो, वह ब्रह्म का धाम ।
उस में रामानन्द को, उपजा नाम सुनाम ।।२७।।
दशम द्वार से पार हो, राम ध्वनि को पाय ।
ध्यानी रामानंद तब, उस में रहा समाय ।।२८।।
प्राप्त सब ही स्थान में, शक्ति ज्ञानमय राम ।
योगी मुनि जिस में रमें, वही राम सुख धाम ।।२६।।

वही इष्ट था संत का, शुद्ध बुद्ध भगवान् ।
कहता उस के ध्यान से, होय तुरंत कल्याण ।।३०।।
यौवन युग में यवन के, विचरा निर्भय संत ।
भक्ति धर्म का सार बन, महामना मतिमंत ।।३१।।
उपनिषदों के ज्ञान को, शब्द पदों में गाय ।
देता भाषा लोक में, शुभ उपदेश बसाय ।।३२।।
उस की साधु भाषा में, था शुभ रस प्रधान ।
आकर्षणकर शक्ति थी, चुम्बकवत् ही जान ।।३३।।
सर्व जनों में बांटता, राम नाम प्रसाद ।
ऊँच नीच का भेद तज, तज कर पंथ विवाद ।।३४।।
सुशांत मूर्ति मधुर मुख, मन को मोहक रूप ।
था वह सन्त सुजान शुभ, सुन्दर सर्व सुरूप ।।३५।।
आकर्षण का कोष था, विद्युत कोष समान ।
चुम्बक परम सुप्रेम का, सिद्ध संत गुणवान् ।।३६।।
गुरु था भक्त कबीर का, वही संत मुनिराज ।
गंगा तट पर नाम दे, उस का बना जहाज ।।३७।।
रामानंद ने कर दया, देखा भक्त कबीर ।
नाम सुदीक्षा दान कर, उस का छुआ शरीर ।।३८।।
पूरा उस के कान में, राम राम शुभ नाद ।
आशीर्वाद दे कर तब, उस के हरे विषाद ।।३९।।
उत्तम गुरु को लाभ कर, भज कर राम सुनाम ।
हर्षित हुआ कबीर तब, योगी पूर्ण काम ।।४०।।
रामानन्द समीप ही, बैठ तरे बहु लोक ।
राम नाम के ध्यान से, हुए अनेक अशोक ।।४१।।

महा स्रोत वह भक्ति का, यवन काल में एक ।
था दाता शुभ नाम का, लिये राम की टेक ।।४२।।
धुन में रहता राम की, करता उस का काम ।
रमता योगी राम में, सब दिन सारे याम ।।४३।।
मग्न नाम के नाद में, नाम ध्वनि में लीन ।
अन्तर्मुख ही ध्यान में, रहता पुरुष अदीन ।।४४।।
प्रान्त प्रान्त में अटन कर, देता नाम सुजाप ।
गाम गाम में घूम कर, हरता मानव शाप ।।४५।।
जाप नाम शुभ ध्यान का, अमृत पान कराय ।
संगी को वह सन्तवर, देता वीर बनाय ।।४६।।
राम नाम के रसिक जन, हुए नहीं भयभीत ।
शक्ति भक्ति के कर्म में, करते गहरी प्रीत ।।४७।।
जो जन थे तब दब रहे, देख धर्म की हान ।
भक्ति शक्ति को धार कर, हो गये सावधान ।।४८।।
स्थान स्थान में जग गये, जाट क्षत्रिय वीर ।
राजपूत मरुदेश के, उठे वीर अतिधीर ।।४९।।
राम राम शुभ नाम जप, मिल जुल करते काम ।
पश्चिम शासन से लड़े, तज कर सुख विश्राम ।।५०।।
पर राज्य के चाँद को, राम-भक्त बलवान् ।
ले गये अस्ताचल परे, दे कर कष्ट महान् ।।५१।।
बल प्रताप विदेश का, भय प्रभाव विचार ।
राम नाम के रसिक जन, करते नित्य असार ।।५२।।
यह था कर्म सुकर्मी का, जो था रामानन्द ।
उस ने बांटा सर्व में, राम नाम सुखकन्द ।।५३।।

नाम जगाता कथन से, छू कर आशिष साथ ।
शक्ति जगाता जनों में, चिन्तन कर जगनाथ ।।५४।।
आते उस के पास जो, मिल करते सत्संग ।
उन में भक्ति प्रेम का, बस जाता शुभ रंग ।।५५।।
उस के शुचि शुभ संग में, बढ़ते उत्तम भाव ।
बरस सुबादल प्रेम का, उपजाता शुभ चाव ।।५६।।
आज जो भक्ति धर्म है, गंग यमुन के देश ।
पंचनद बंग विहार में, दक्षिण में भी विशेष ।।५७।।
मारवाड़ भी मालवा, गुर्जर में भी जान ।
उस के प्रेम सुबीज का, महा वृक्ष यह मान ।।५८।।
उस ने कर प्रचार ही, बोये बीज विचार ।
वे ही नाना देश में, बने वृक्ष सुखकार ।।५९।।
सन्त साधु सब भक्तवर, नारी नर गुणवन्त ।
मानस पूत उस मुनि के, थे सब सन्त महन्त ।।६०।।
सन्त मतों का आदि गुरु, सन्तों का सिरमौर ।
हुआ प्रेम पथ स्रोत ही, रामानन्द न और ।।६१।।
उस के शिष्य प्रशिष्य सब, थे ज्ञानी गुणवान ।
निर्भय सेवक वीरवर, करते कर्म महान् ।।६२।।
अन्तेवासी सन्त के, विचर देश भूभाग ।
भारत भर में नाम की, गये लगा शुभ जाग ।।६३।।
होते जो नहीं सन्त वर, रामानन्द मुनिराज ।
हिन्दू बिन्दू विसर्ग का, पता न मिलता आज ।।६४।।
ग्रन्थ न मिलता भक्ति का, जन भाषा में एक ।
राम राम के अति मधुर, होते सुर न अनेक ।।६५।।

वारे जाऊं सन्त के, बार बार सौ बार ।
जिस ने सुभक्ति धर्म रख, करी राम की कार ।।६६।।

समर्थ राम दास

राम दास ज्ञानी संन्यासी, शिवा का गुरु दक्षिण का वासी ।
युवाकाल में घर को छोड़ा, उस ने जग का नाता तोड़ा ।।१।।
फिरता देशों में वह आया, काशी में ही शोभा लाया ।
रामानन्द को मिला प्यारा, उस को उस ने दिया सहारा ।।२।।
लिया नाम स्वदेश पधारा, राम दास हरि भजने हारा ।
जाय शिवाजी को समझाया, उस ने उस को नाम बताया ।।३।।
राम ध्यान दे शक्ति जगाई, राम नाम में सुरति रमाई ।
कर्म-योग के भेद बताये, धर्म तत्त्व सब ही समझाये ।।४।।
उसे कहा समर्थ ने ऐसे, कर सुकर्म कहूँ मैं जैसे ।
रहो सदा भगवान् सहारे, करो कर्म जो वेद उच्चारे ।।५।।
म्लेच्छ मोह में कभी न आना, कुटिल नीति का दाव बचाना ।
देश भक्ति मन में ही धारे, समर लड़ो तज संशय भारे ।।६।।
धर्म कर्म की रक्षा विचारो, तीर्थ सुरक्षण मन में धारो ।
रक्षण करो निज हिन्दू जाति, दूर करो अरि घोर उत्पाती ।।७।।
दान मान गुणिजन को देना, कर कठोर न किसी से लेना ।
देश करो स्वतंत्र सारा, पाओ पुण्य कर्म अति भारा ।।८।।
ज्ञान सुविद्या बल को बढ़ाना, जगाना लोग विधि कर नाना ।
द्वेषी विदेशी लोग हैं भारे, दक्षिण के सरदार ही सारे ।।९।।
कूट नीति के दाव चलाते, बल से जन अनार्य बनाते ।
करिए सुरक्षण बान्ध कटी को, हिन्दु शक्ति लाओ हटी को ।।१०।।

रीति संस्कृति सम्पत् सारी, उठती जाती हैं यह भारी ।
संस्कार सारे नृप ! जानो, बदल रहे हैं राजन् मानो ।।११।।
मन्दिर मूर्ति मिटते जाते, नित्य विदेशी ग्रन्थ जलाते ।
कटते हैं अहर्निश नर नारी, कटें जनेऊ चोटी धारी ।।१२।।
कस कर कटी खड्ग को धारो, देश में राम राज विस्तारो ।
पालो बाल अबल जन को ही, जिस से प्रजा सुरक्षित हो ही ।।१३।।
निरपराधी दुःखी न होवे, हत्यारा कभी सुखी न सोवे ।
ऐसी नीति तार फैलाओ, जनपद का राजा बन जाओ ।।१४।।
शठ जन को शठता से टारे, नाना विधि से दुष्ट निवारे ।
मिलिए जैसे को हो वैसा, ऐसे पथ में भय हो कैसा ।।१५।।
सच्चा लक्ष्य जब ही बन जावे, कच्चा कर्म नहीं वह कहावे ।
अन्त भला भला वही जाना, फल से जाय कर्म पहचाना ।।१६।।
चले चाल ज्यों पापी हारे, दाव पेंच से सर्व निवारे ।
पर से अपना आप बचाना, अपना वार अचूक बनाना ।।१७।।
राज धर्म का सार बखाना, सब साधन से शत्रु भगाना ।
ऐसे पथ पर चलते जाना, नैतिक पथ पर पांव टिकाना ।।१८।।
दीन जनों को कभी न सताना, दुखियों के सब कष्ट मिटाना ।
मात पिता बन जन को पालो, बन्दी जन के बन्धन टालो ।।१६।।
प्यारे राम नाम धुन लाओ, कर्म योग से सब सुख पाओ ।
ऐसी सुशिक्षा दी सुखकारी, राम दास ने बहुत विचारी ।।२०।।
उस ने भक्त बनाये प्यारे, राम नाम से दे शुभ सारे ।
पतित अधम जन उस ने तारे, पर दल दलित सुदेश उभारे ।।२१।।
वह रहता निर्लेप ही ऐसा, कमल पत्र जल में हो जैसा ।
समदृष्टि जन था जग मांही, उस में वैर द्वेष था नांही ।।२२।।

केवल कर्म धर्म में राता, रहता सदा भक्ति में माता ।
एक ईश को उस ने माना, शक्ति ज्ञानमय उस को जाना ।।२३।।
श्रद्धा भक्ति प्रेम से भीना, संशय पाप कर्म से हीना ।
था वह, उस ने धर्म बताया, स्मृति श्रुति ने जो ही गाया ।।२४।।
था शिवा एक गढ़ बनवाता, काम जनों से था करवाता ।
देखा उस ने गुरुवर आता, राम राम की धुन में राता ।।२५।।
आदर दिया बहु मान दिखाया, उत्तम आसन पर बिठलाया ।
वह बोला—इतने जन ये ही, पालन पाते हैं सुख से ही ।।२६।।
निर्धन थे अति पीड़ा पाते, दुर्भिक्ष कारण कष्ट उठाते ।
मैं ने गढ़ का काम रचाया, जिस से जनता ने सुख पाया ।।२७।।
हो दया से मैं ने सहाई, भूखों की अति भूख मिटाई ।
मैं इन को यदि अन्न न देता, मर जाते यदि सार न लेता ।।२८।।
बोला मुनि—सुनो शिवा प्यारे, हैं जीव सब तेरे सहारे ।
तू सभी का है अन्न दाता, तुझ से जग है पालन पाता ।।२६।।
राजा ने यह भेद न जाना, व्यंग वचन जो सन्त बखाना ।
पास पड़ा पत्थर मंगवाया, मुनि ने उस को ही तुड़वाया ।।३०।।
निकला उस में से कुछ पानी, मींडक गई निकलती जानी ।
नृप बोला—समर्थ सुज्ञानी, कथं जिया पत्थर में प्राणी ।।३१।।
यहां इसे किस ने है पाला, यह संशय है अधिक निराला ।
मुनि बोला—राजन् तू जाने, सब का पालक जो तू माने ।।३२।।
हो लज्जित वह ही तब बोला, भारी सुभेद गुरु तू खोला ।
बोला मुनि—मन मान न लाओ, कर्म सभी शुभ करते जाओ ।।३३।।
राम सभी का देने हारा, पालक पोषक है रखवारा ।
तोहे मोहे पाले जो ही, जान जगत् का पालक सो ही ।।३४।।

है तू कहता मैं ने पाले, सहस्त्रों जन ये कार्य वाले ।
[illegible] ।।३५।।
एकदा दक्षिण से ही ज्ञानी, एक वैष्णव आया मानी ।
गुरु ने कहा उसे ही जाना, राम दास का रहस्य लाना ।।३६।।
कैसा वैष्णव रहे जानो, रीति धर्म उस का पहचानो ।
चुप चाप उस पास ही जाओ, ज्ञान विद्या बल उस का पाओ ।।३७।।
मार्ग चलता वह जब आया, देश देख उस ने सुख पाया ।
एक स्थान दोपहरी वेला, वह आचारी चक्रांकित चेला ।।३८।।
स्नान शुद्धता अधिक सजा के, भात चपाती दाल बना के ।
जलाभाव वह देखते चौंका, अब मैं कैसे लांघूं चौका ।।३६।।
कैसे पीने का जल लाऊँ, चौके बाहर मैं कैसे जाऊँ ।
उस ने चारों ओर निहारा, देखा जन न देखने हारा ।।४०।।
चौका लाँघ गया जल लेने, उसे पड़े लेने के देने ।
पानी ले कर लौटा ज्यों ही, कूकर देखा उस ने त्यों ही ।।४१।।
रोटी चौके बीच उठाता, मुख में लिये भागता जाता ।
उस ने सोच कहा मन में ही, भूख रही लग है तन में ही ।।४२।।
भोजन करूँ यही है जैसा, कौन कहेगा खाया कैसा? ।
भोजन कर के चलता आया, राम दास को सीस नवाया ।।४३।।
आदर उस ने भी बहु पाया, उचित स्थान में गया टिकाया ।
अगले दिन भोजन की बारी, सामग्री दी सन्त ने सारी ।।४४।।
पर घी देना भूले वे ही, गये देने घी आप स्नेही ।
जाय धरा चौके में दोना, उस ने भरा जो न था पौना ।।४५।।
देख उसे चौके में आया, अतिथि वैष्णव अति घबराया ।
राम दास को बोला ऐसे, तू आया चौके में कैसे ? ।।४६।।

हुई भ्रष्ट अब यह रसोई, खाता नहीं मैं छुई होई ।
पक्का यही आचार हमारा, पालन करे ही दक्षिण सारा ।।४७।।
अन्य का छुआ नहीं हम खाते, चौके की हैं छूत निभाते ।
सुनो, कहा समर्थ ने प्यारे !, एक धर्म हैं वंश हमारे ।।४८।।
विप्र वैष्णव हम हि समाना, आत्म-पद में भेद न माना ।
फिर क्यों छुआछूत विचारो, करो भोजन भ्रान्ति को टारो ।।४६।।
वह बोला—सुनिए यह स्वामी, वैष्णव मत में हूँ मैं नामी ।
पर का छुआ कभी न खाऊँ, विपत् पड़े तो प्राण मिटाऊँ ।।५०।।
ऊँचा ब्राह्मण हो विदेशी, पण्डित ज्ञानी सन्त विशेषी ।
आचारी तस अन्न न खावे, खाय नहीं यदि हाथ लगावे ।।५१।।
यही धर्म निश्चित है मेरा, खाऊँ कभी न छुआ तेरा ।
यह सुन कर समर्थ यों बोले, भ्रम में हो पड़े तुम भोले ।।५२।।
कहो कुत्ते से हूँ मैं नीचा, क्या तू है सब से ही ऊँचा ।
कुत्ते छुआ तू ने हि खाया, दम्भ यहां यह आज दिखाया ।।५३।।
धर्म न बिगड़ा तब तो तेरा, लोक लज्जा ने अब क्यों घेरा ।
छुआछूत न धर्म कहावे, छूने से कुछ भेद न आवे ।।५४।।
भेद भाव में भूले भारी, सत्य धर्म न कहें आचारी ।
चौका सब कुछ तू ने जाना, प्रेम भक्ति का मर्म न माना ।।५५।।
सभी मनुष्य राम के प्यारे, ऊँच नीच जो जन हैं सारे ।
जानो पूत सभी हरि के रे, राम नाम के उत्तम देहरे ।।५६।।
घृणा घोर पाप है देखा, है ही भूल भेद की रेखा ।
सब को सम समझे जो ज्ञानी, वही विप्र वैष्णव सुध्यानी ।।५७।।
राम नाम का ऊँचा नाता, इस सा पावन समझ न आता ।
राम नाम का मन्दिर जो ही, परम शुद्ध जन जानों सो ही ।।५८।।

विप्र सुबुद्ध हुआ सुनते ही, मुनि चरण पड़ा सिर धुनते ही ।
निजू कर्म पर वह पछताया, उस ने दोष क्षमा करवाया ।।५६।।
एक एकदा मायावादी, पूरा पण्डित बहुत विवादी ।
शांकर मत में घुटा घुटाया, राम दास को मिलने आया ।।६०।।
मुनि को उस ने सीस झुकाया, मुनि से उस ने आदर पाया ।
निज मत की उस कही कहानी, मायामत की मोहक वाणी ।।६१।।
ब्रह्म-भिन्न सभी है माया, भ्रान्तिमय सब दृश्य बताया ।
गर्दभ श्रृंग स्वपुष्प समाना, सर्व जगत् है झूठा माना ।।६२।।
तीन काल जग है सब झूठा, सच्चा ज्ञान है यही अनूठा ।
जो जन जगत् को सच्चा मानें, अज्ञानी सब गये वे जाने ।।६३।।
मुनि ने कहा—सुनो जी भाई, क्यों तू ने यह बात दृढ़ाई ।
क्या तू जाने ही जग सारा, भ्रम है मिथ्या रूप पसारा ।।६४।।
वह बोला निश्चय है मेरा, सर्व जगत् असत्य ने घेरा ।
संशय रहित यही मैं जानूँ, दृश्य जगत् सब मिथ्या मानूँ ।।६५।।
उस समय ही सपेरा आया, मुनि को उस ने सर्प दिखाया ।
मुनि बोला—लो पण्डित प्यारे, सर्प हाथ पर धैर्य धारे ।।६६।।
उस ने ज्यों ही सर्प उठाया, उसे नाग ने दान्त लगाया ।
वह मरा कह यों चिल्लाया, सांप पटक कर अति घबराया ।।६७।।
मुनि बोला -क्यों है घबराता ?, कहो तू क्यों इतना चिल्लाता ।
वह बोला—यह सर्प डसा है, नस नस में विष जाय बसा है ।।६८।।
बोला मुनि—जब जग है माया, झूठा सांप कहां से आया ? ।
मिथ्या सर्प कहां कहो आये, कौन डसा किसे कौन बताये ? ।।६६।।
सुन कर पण्डित युक्ति सियानी, लज्जा में हुआ पानी पानी ।
उस ने दो कर जोड़ उच्चारा, कथन रूप है ज्ञान हमारा ।।७०।।

वाक्य जाल की विद्या मेरी, मुने ! करी सब तू ने ढेरी ।
अनुभव रहित विवाद बढ़ाना, है वैदान्तिक ताना बाना ।।७१।।
कोरी कल्पना की है काया, शांकर वाद की सारी छाया ।
वचन जाल है कोरी क्रीड़ा, सच्चा सर्प है सच्ची पीड़ा ।।७२।।
सच्चा है सद्भाव सुहाना, सत्य वस्तु का होना माना ।
अनुपम तेरा है समझाना, भक्ति धर्म का सार दिखाना ।।७३।।
कर्म-शील मुनि आत्मवेत्ता, राम दास था जन का नेता ।
दीपक दक्षिण का गया माना, हिन्दू जाति की ज्योति जाना ।।७४।।
कर्म-योग से लोग उभारे, भक्त नाम से उस ने तारे ।
राम धाम में जाय समाया, राम दास कर काम सवाया ।।७५।।

श्री शिवा जी

राम दास का शिष्यवर, शिवा हुआ अवतार ।
नीति सेना राज्य का, वीर पुरुष सुखकार ।।१।।
पक्का हिन्दू सुधीर था, लिये देश अनुराग ।
निर्भय सच्चा सुकर्मी था, चतुर अति महा भाग ।।२।।
नीति नयन से निरखता, स्व पर के सब काम ।
नेता निपुण सुजान वह, कर्म योग का धाम ।।३।।
योद्धा निश्चल स्थिर मति, जनता का था नेत ।
सहता कष्ट अनेक ही, हिंदू रक्षण हेत ।।४।।
सुनता जब अवहेलना, हिंदू जन की आप ।
जीवन जोखम में किये, हरता जन जो पाप ।।५।।
साधु सन्त के संग से, लेता लाभ महान् ।
भजता श्रद्धा प्रेम से, राम राम भगवान् ।।६।।

निश्चयवान् सुशिष्य था, राम दास का वीर ।
[illegible]
शासक नाशक न्याय के, मत मदिरा में चूर ।
महा हत्यारे हो रहे, थे ही कुकर्मी क्रूर ।।८।।
होता हाहाकार था, घोर अति हत्या हान ।
हिंदू हित को हनन कर, हरते धन तन मान ।।६।।
गो ब्राह्मण का वध बहु, शास्त्र वेद विनाश ।
विविध वेदना देख कर, हिंदू हुए निराश ।।१०।।
परदेशी दे कष्ट अति, लेते कर अति घोर ।
दे सकता जो कर नहीं, हनते उसे कठोर ।।११।।
ऐसे कुसमय विषम में, हिंदू जन का हाथ ।
बन कर उतरा समर में, शिवा शक्ति का नाथ ।।१२।।
बाहू बल से वीर ने, चल कर ऊँची चाल ।
करते हत्या सुघोर जो, उन्हें दिखाया काल ।।१३।।
रक्षा की सब तीर्थ की, किये घोर कर दूर ।
मार हटाये क्रूर जन, शासक मद में चूर ।।१४।।
साँस मिला हरि जनों को, मिली म्लेच्छ से त्राण ।
शांति धर्म स्थापित हुए, निर्भय जान अजान ।।१५।।
कहते उन्हें मलेच्छ हैं, जो यों ही दें मार ।
मारें बूढ़े बाल को, लूटें धन परिवार ।।१६।।
तोड़े देवालय भले, धर्म स्थान दें तोड़ ।
मतांध हो पक्षपात में, लें पर प्राण निचोड़ ।।१७।।
करें जान अपमान जो, पर नारी को देख ।
आग लगायें क्रूर जो, किये मलेच्छ उल्लेख ।।१८।।

ऐसे जन सब काल में, होते हैं भू-भार ।
ऐसों के ही सुजन ने, कहे अधम आचार ।।१९।।
बने शिवा जी बांध वर, पर बल छल नद बीच ।
बिखरे बली बुलाय कर, चूर किए नर नीच ।।२०।।
पर सेना की बाढ़ को, बाहू बांध बनाय ।
रोका उस ने देश में, बन्धु बल को बढ़ाय ।।२१।।
बढ़ती हुई सुधर्म की, शत्रु दल गया भाग ।
नारी नर में आ गया, वीर कर्म अनुराग ।।२२।।
कर्म धर्म होने लगे, पूजन जप तप स्नान ।
कीर्तन कथा सत्संगति, मधुर रसीले गान ।।२३।।
तीर्थ यात्रा खुल गई, शोभे सब त्यौहार ।
फिर से होने लग गया, हिंदू शक्ति विस्तार ।।२४।।
उस ने अपने तेज से, जन बल लिये महान् ।
सुदेश जाति की रक्षा की, कर के नीति विधान ।।२५।।
ऐसा धार्मिक था नर, बल में सिंह समान ।
शिवा जी शिव कारक शुभ, नीति ज्ञान का स्थान ।।२६।।
जप तप संयम कर भला, हिंदू जनता पाल ।
आर्यपन को पाल कर, हिंदू किए निहाल ।।२७।।
लिया आश्रय राम का, किया राम का काम ।
उस ने शुभ गति सिद्ध की, जपते राम सुनाम ।।२८।।

श्री चैतन्य

बंग में विप्र वंश सुहाना, बसता नदिया में सब जाना ।
चैतन्य ने जन्म शुभ धारा, उस में, हुआ विद्या में न्यारा ।।१।।

व्याकरण नव न्याय में पूरा, पंडित कुशल हुआ वह शूरा ।
पितृ निमित्त गया को आया, रीति विधि से श्राद्ध कराया ।।२।।
उस को वहां पर मिला प्यारा, राम नाम का जपने हारा ।
उस ने उस को नाम जपाया, राम नाम ऊँचा समझाया ।।३।।
योग सहज से सुशक्ति जागी, उस की भ्रांति भटकना भागी ।
दैवी दर्शन उस ने पाये, मुद्रा आसन आप ही आये ।।४।।
रेचक पूरक कुम्भक होते, अपने आप दोष मल खोते ।
उपजीं क्रिया आप ही नाना, त्राटक आदिक का हो जाना ।।५।।
मधुर मनोगम सुमनोहारी, मोहक मूर्ति अति सुखकारी ।
दिव्य नयन से उस ने निहारी, लीला सहित परम ही प्यारी ।।६।।
दिव्य वाद शुभ गीत सुहाने, बजते बाजे मन को भाने ।
नाना नाद आरती होती, सुने जभी जगी शक्ति सोती ।।७।।
मन से हुआ तभी वैरागी, राम भक्त वह हरि अनुरागी ।
उस का तन साधन से सारा, शक्ति सुकोश बना ही भारा ।।८।।
उस ने देखी लीला सारी, योगमयी शक्ति ने पसारी ।
वह हरि जपता मुख मन से ही, राम ध्वनि विकसे तन से ही ।।९।।
सुकीर्तन करता दिन राती, उस में शक्ति सबल हो आती ।
जब आवेश वेग से आता, नाच गीत में वह रम जाता ।।१०।।
उस के पास सुजन जो आते, हरि बोल की ध्वनि गूँजाते ।
राम राम कह कर वे गाते, नाच गीत में मग्न सुहाते ।।११।।
जिस पथ से शुभ यात्रा जाती, लीला सहित नाचती गाती ।
मोहित होते देखन हारे, भक्त लोग यों लगते प्यारे ।।१२।।
जाति पांति के भेद न होते, ऊँच नीच पन सब जन धोते ।
बजती एकपने की भेरी, भेद भीत हो जाती ढेरी ।।१३।।

उस ने अन्य धर्मी भी तारे, राम नाम के दिये सहारे ।
सब को दिया नाम सुखदाई, बहुत जनों की प्यास बुझाई ।।१४।।
बंग देश में नाम विस्तारा, भक्ति प्रेम का किया पसारा ।
राम भजन सब को सिखलाया, मंगल मार्ग ही दिखलाया ।।१५।।
चार वर्ण के जो जन आये, अति शूद्र भी जो कहलाये ।
एक किए उस ने तब सारे, राम नाम दे कर ही तारे ।।१६।।
उन में बढ़ा मेल अति भारा, सुगठित हुआ सुमण्डल सारा ।
जहां जाते भक्ति बरसाते, सब को एक तार में लाते ।।१७।।
यात्रा आदिक साधन पाये, एकता में सब जन समाये ।
सूत रूप वह था गुण वाला, उस में भक्त बने शुभ माला ।।१८।।
भक्त-शक्ति जब देखी भारी, कांपी मुगल शक्ति तब सारी ।
जितने थे सरदार सुहाने, चालों के तन ताने बाने ।।१६।।
चाहें, कहीं ऐक्य न होवे, भक्त कोई सुख में न सोवे ।
मिलने ये कहीं नहीं पावें, बल में नहीं कभी ये आवें ।।२०।।
मार पीट त्रास पहुँचाते, प्राण हरण धमकी दिखलाते ।
वध बन्धन कर बहुत डराते, सर्व हनन का हुक्म सुनाते ।।२१।।
था प्रताप नाम का ऐसा, सब ने सहा हुआ दुःख जैसा ।
जीवन भय पर धर्म न छोड़ा, भक्तों ने नहीं मुखड़ा मोड़ा ।।२२।।
चैतन्य के कर्म थे ऐसे, हुए शांत वैरी जन जैसे ।
सब में सुभक्ति प्रेम बसाया, उस ने उन को शिष्य बनाया ।।२३।।
यवन दलों में नाम सुनाता, यात्रा से बहु प्रेम बसाता ।
गीत राग से लगन जगाता, फिरता वह सुनाम में माता ।।२४।।
छूता जिसे भाव से प्यारा, मिले इसे हरि नाम सहारा ।
वह जन मग्न भजन में होता, धुन में हंसे गाता रोता ।।२५।।

नाच गीत से देव रिझाता, भक्तिमय आवेश में आता ।
ऐसा सन्त गुणी था सो ही, ऐसा राम नाम सब का ही ।।२६।।
वीत राग मुनि जग ने जाना, भक्त राज सब जन ने माना ।
समदृष्टि वह सन्त कहाता, सर्व-प्रिय था माना जाता ।।२७।।
भक्ति धर्म का रखता नाता, भक्ति धर्म का पूर्ण ज्ञाता ।
भक्ति प्रेम उस ने फैलाया, राम धाम ही उस ने पाया ।।२८।।

हरिदास

हरि दास हुआ शुभ योगी, पहले था सुयवन अयोगी ।
बंग देश का बसने हारा, चैतन्य ने उसे ही तारा ।।१।।
हरि बोल हरि बोल ही गाता, फिरता मस्त विभूति रमाता ।
भक्त बना सुनाम का संगी, पाई उस ने सब विधि चंगी ।।२।।
कहता, राम नाम है ऊँचा, शेष सभी मतवाद समूचा ।
मुसलिम चिढ़े सभी अधिकारी, मुगल दलों के कुकर्मचारी ।।३।।
उसे उन्होंने अधिक सताया, बान्ध पकड़ कर पास बुलाया ।
क्रूरपने से मारा पीटा, डांट डपट कर बहुत घसीटा ।।४।।
पिटा जभी मुख से हरि बोला, राम भक्ति से अल्प न डोला ।
अविचल निश्चय उस ने धारा, निर्भय हो कर कष्ट सहारा ।।५।।
जितनी ही वह पीड़ा पाता, उतना दृढ़ अधिक हो जाता ।
द्वेषी जितना उसे सताते, उतना पक्का दृढ़ वह पाते ।।६।।
अन्त द्वेषमय वे जन सारे, उस को मार पीट कर हारे ।
शान्त हुए सब द्वेष त्यागे, अग्नि बुझे ज्यों जल के आगे ।।७।।
उस ने भक्त अनेक बनाये, राम ध्यान के भेद बताये ।
अन्य धर्मी सुधरे बहुतेरे, त्यागे सब ने हठ के डेरे ।।८।।

राम नाम के मन्दिर हो के, विमल बने हठ कीचड़ धो के ।
हरि दास के पास जो आये, राम-प्रेम से वे चमकाये ।।६।।
राम राम भज वह उपकारी, कर कमाई प्रेम की सारी ।
उत्तम गति उस ने ही पाई, नाम नाद में अन्त समाई ।।१०।।

सदना कसाई

सूदन नामी जन्म से, सदना कुकर्मी घोर ।
बुद्ध-काल में हो गया, करता कर्म कठोर ।।१।।
सदने के थे शुभ कर्म, किसी जन्म के लेख ।
जिस से उस के पुण्य की, उदय हुई शुभ रेख ।।२।।
उस को एक सुसन्त ने, दिया नाम अनमोल ।
मन उस का निश्चल हुआ, पा कर ध्यान अडोल ।।३।।
नाम मधुर रस पान कर, सदने का विष पाप ।
उतरा ज्यों ले महौषधि, उतरे ज्वर उत्ताप ।।४।।
मैला कपड़ा हो यथा, धो कर ही शुचि श्वेत ।
नाम सरित् में स्नान कर, वह हुआ शुचि सचेत ।।५।।
सदना शुभ का सदन बन, स्नान शुद्धि कर आप ।
करता निश दिन साधना, नाम ध्यान शुभ जाप ।।६।।
कहा सन्त ने भक्त वर, अब तू हुआ निर्दोष ।
एक राम को राधना, पाप वैर तज रोष ।।७।।
भक्त भला भगवान् का, भक्ति भावना धार ।
बन, पड़ कर उस द्वार पर, संशय मन से टार ।।८।।
चार सुसाधन साध ले, सिमरन साधु सुसंग ।
स्नान दान को समझ कर, निर्मल कर ले अंग ।।६।।

कलि में करिए कर्म ये, जप पूजा शुभ पाठ ।
सेवा पर हित ध्यान भी, मान धर्म का ठाठ ।।१०।।
जिन ध्याया पाया उन्हीं, जो ढूंढे ले पाय ।
करता जिज्ञासा जो जन, सो ही मिलता जाय ।।११।।
जो रसिया हरि प्रेम के, करें राम का ध्यान ।
उन्हें भक्त जन समझ लो, उन को त्यागी जान ।।१२।।
सदना सुधरा भक्ति से, जप कर नाम सुनाम ।
जन्म सफल वह कर गया, पा कर उत्तम धाम ।।१३।।

कुसुम्भी वेश्या

नामी कुसुम्भी वेश्या, बसती काशी बीच ।
रूप रंग की ले छटा, रही कर्म कर नीच ।।१।।
युवति सुयौवन युग रमी, कर सोलह सिंगार ।
पुष्प लता सम शोभती, शोभा लिये अपार ।।२।।
पास महा पथ के वही, रही सुन्दरी राज ।
ज्योत्स्ना सागर श्वेत पर, जैसे रहे विराज ।।३।।
सुशिष्य रामानन्द का, उस मार्ग से सन्त ।
निकला मार्ग लाँघता, ध्यान किये एकान्त ।।४।।
उस ने देखी मोहिनी, गौरी रही निहार ।
रूप रंग लावण्य से, बनी वह सोमाकार ।।५।।
करुणा कर कृपा धनी, ठहर गया कर ध्यान ।
बोला—कुसुम्भी ! जा समझ, यौवन जाता जान ।।६।।
मानव-देह सुदिव्य को, भोली भागों पाय ।
अग्नि व्यसन विलास में, इसे न भस्म बनाय ।।७।।

तन वन पर यौवन भरा, तेरे बसा वसंत ।
कुसंग दावानल से न, कर तू इस का अन्त ।।८।।
सुधा-सिंधु निज चित्त में, नहीं विषय विष घोल ।
राम नाम रस पान कर, फल जिस का अनमोल ।।६।।
रंग रलियां अनुराग हि, राग रंग हो भंग ।
रमणी ! रमणा छोड़ दे, पाप-जनों के संग ।।१०।।
चारु चरित की चांदनी, जब चटके चहुँ ओर ।
चतुरे ! चमके चित्त की, तभी सुनहली कोर ।।११।।
मान मान री मान ले, मन की बागें मोड़ ।
मूर्खे ! पर जन वश पड़ी, जीवन लड़ी न तोड़ ।।१२।।
छोड़ छोड़ री छोड़ दे, छटकीली यह चाल ।
छैल छबीलों से मिल, फिरना तू दे टाल ।।१३।।
चेत चेत री बावरी, चित्त में हो सुचेत ।
चिंतामणि इस जन्म को, फैंक न चिड़ियाँ हेत ।।१४।।
सोच समझ कुछ तो सही, अवसर गया न आय ।
मानव मन तन सार को, ऐसे क्यों गंवाय ।।१५।।
उत्तम हीरा जन्म है, महा मोल हरि नाम ।
भज ले भोली भाव से, राम राम श्री राम ।।१६।।
बीता हाथ न आयगा, समय सियानी जान ।
पड़ी जाल में पंछनी, तज देगी यों प्राण ।।१७।।
बनी में तू बनाय ले, यौवन में कर जाप ।
बिगड़ी काया कोमला, तब होगा अनुताप ।।१८।।
गई सो गई अब हि रख, रही भजन कर राम ।
चार दिनों की चाँदनी, सदा न आवे काम ।।१६।।

भज भज भद्रे सुभाव से, भक्ति सहित भगवान् ।
छोड़ भय भ्रम भाव को, होर को ऊचा मान ।।२०।।
अपना कर्म सुधार ले, अपना जन्म सुधार ।
नौका पकड़ सुनाम की, हो जा भव जल पार ।।२१।।
सुन कर सद् उपदेश को, सर्व गई वह कांप ।
उस ने पाप तथा तजे, यथा केंचुली साँप ।।२२।।
चोला लिया कुसुम्भी ने, राम नाम में रंग ।
सुधरी ले उपदेश शुभ, पा कर उत्तम संग ।।२३।।
राम नाम ले सन्त से, वेश्या हुई निहाल ।
राम भजन जप ध्यान से, उस ने जीता काल ।।२४।।
सुगृहणी बन वह बसी, एक युवक के साथ ।
मनसा वाचा कर्मणा, पकड़ा उस ने हाथ ।।२५।।
दीपक शुभ हरि नाम का, सहित निराली जोत ।
उस के जगा सुचित्त में, बहा प्रेम का सोत ।।२६।।
नाद गीत उत्तम सुने, उस ने निज के देश ।
लीला लख श्री राम की, हुई वह रहित क्लेश ।।२७।।
साध भक्ति भगवान् की, राम राम सुन नाद ।
कुसुम्भी उस पद में गई, जो है रहित विषाद ।।२८।।

तुका राम

दक्षिण में एक गृह में, उपजा भक्ति-निधान ।
कुणबी सुवंश शिरोमणि, तुका राम गुणवान् ।।१।।
एक सन्त ने मिल उसे, हो कर बहुत दयाल ।
राम नाम का दान दे, कीना अधिक निहाल ।।२।।

युवाकाल में भजन में, रमा रिझाता राम ।
चलते फिरते काम में, जभी पाता विश्राम ।।३।।
ध्यान सुधुन में धारणा, धारे धैर्य ठीक ।
करता सब व्यौहार भी, हो कर सदा निर्भीक ।।४।।
मग्न ध्यान में एकदा, बैठा लगन लगाय ।
फले खेत के पास ही, आसन ठीक जमाय ।।५।।
खेत धनी ने आ वहाँ, देखा युवक अकाम ।
कहा खेत को देखिए, दूँगा तुझ को दाम ।।६।।
चिड़ियाँ तोते आदि सब, चुगें न मेरा खेत ।
पशु चरें नहीं खेत को, लो लाठी इस हेत ।।७।।
तुका राम ने हाँ करी, किया न पर कुछ काम ।
पंछी उड़ाता कौन जब, वह था रटता राम ।।८।।
पक्षी हिरण आ खा गये, फला खेत सह पात ।
ढोर यथेच्छा चर गये, किसी न पूछी बात ।।६।।
उजड़ा देखा खेत जब, आया वहाँ किसान ।
बोला उस को खीज कर, कहो हुई क्यों हान? ।।१०।।
तुका राम ने कहा सब, है मेरा यह दोष ।
जो चाहो दो दण्ड अब, मुझे न होगा रोष ।।११।।
उस किसान ने पंच सब, लिये तुरंत बुलाय ।
हानि कथा उन को सभी, उस ने कही सुनाय ।।१२।।
अपराधी वह बन गया, भरी सभा में आप ।
माना देना हानि सब, उस ने बिन अनुताप ।।१३।।
पंच-कथन अनुसार ही, सिर को दिया नवाय ।
तुका राम वर भक्त ने, देना दिया चुकाय ।।१४।।

उस के ऐसे काम से, चकित हुए सब लोक ।
दश दिश उस के नाम का, चमका शुभ आलोक ।।१५।।
तुका राम ने ध्यान में, सन्त शिरोमणि देख ।
सीखी उस से साधना, ऐसा मिलता लेख ।।१६।।
गूँजा उस के कान में, राम नाम शुभ आप ।
आत्मा उस का हो सजग, करने लगा सुजाप ।।१७।।
राम भरोसे विचरता, करता उत्तम काम ।
मुख मन में था गूँजता, उस के राम सुनाम ।।१८।।
भजन कीर्तन प्रतिदिन, करता वह मन लाय ।
सुनते अभंग सुरसमय, नारी नर सब आय ।।१६।।
जाता मन्दिर में सदा, करने दर्शन जाप ।
समागत, साधु भक्त से, करता मेल मिलाप ।।२०।।
उस मन्दिर के पास ही, बाबा मम्बा नाम ।
बसता लघुतर बाग में, लेता वहाँ विश्राम ।।२१।।
उस ने अपनी वाटिका, को घेरा कर बाड़ ।
कांटों तीखों की बड़ी, रोक टोक कर आड़ ।।२२।।
आते यात्री जो वहाँ, चलते नंगे पैर ।
चुभते उन के पाँव में, कांटे बन कर वैर ।।२३।।
भक्तों को दुःखी देख कर, अवसर उत्तम ताड़ ।
तुका राम ने आप वह, सब दी बाड़ उखाड़ ।।२४।।
मम्बा बाबा चिड़ गया, कर सोटी प्र-हार ।
पीटा उस ने हाथ से, तुका राम को मार ।।२५।।
तुका राम के विमल शुभ, मन में बसा न रोष ।
गया हँसता वहाँ से, भरा प्रेम सन्तोष ।।२६।।

सायं कीर्तन सुसमय, बाबा लेता भाग ।
पर उस दिन सत्संग को, उस ने दिया हि त्याग ।।२७।।
तुका राम ने देख कर, न आया महा-भाग ।
भेज सुसज्जन को कहा, लाना कर अनुराग ।।२८।।
बुलाने से बाबा वह, वहां न आया आप ।
उस ने जा कर ही निजू, क्षमा कराया शाप ।।२६।।
हाथ जोड़ विनती करी, उस को लाया संग ।
भजन पाठ होता जहां, गाते जहां अभंग ।।३०।।
तुका राम की विनय का, हुआ बहुत प्रभाव ।
राम भक्तों में भक्ति का, बढ़ा चौगुना चाव ।।३१।।
भार्या उस की थी कड़ी, कड़वी वाणी बोल ।
दुःख देती दयावान् को, हृदय के पट खोल ।।३२।।
तुका राम का मन सदा, सुन कर वचन कठोर ।
समता में रहता रमा, बना शान्ति की ठौर ।।३३।।
ऐसे कटु सम्बन्ध में, भजन पाठ शुभ काम ।
करता वह निर्विघ्न बन, जपता जगपति-राम ।।३४।।
सेवा सज्जन सन्त की, करता प्रेम बढ़ाय ।
अतिथि अभ्यागत साधु जन, पाते आदर आय ।।३५।।
कहता कथा सुहावनी, देता शुभ दृष्टान्त ।
उपमा देता उचित ही, वह मोहक अति शांत ।।३६।।
उस की कविता-सुकीर्ति, फैल गई सब ओर ।
चिढ़े कथक्कड़ विप्र गण, पंडित मंडल और ।।३७।।
लगे सताने भक्त को, मत के ठेकेदार ।
शासक पास उसे लिये, गये दिलाने मार ।।३८।।

बोले, घोर अनर्थ है, गुरु बनता यह जाय ।
अब्राह्मण कैसे भला, जन में आदर पाय ।।३६।।
विप्र बिना नहीं इतर जन, गुरु पद का शुभ स्थान ।
पा सकता है जगत् में, दे न सके व्याख्यान ।।४०।।
इस के सुन्दर रस भरे, सुनें सभी जन गान ।
इस से जग में विप्र का, नहीं रहेगा मान ।।४१।।
दण्डित करना चाहिए, इस को ऐसा आज ।
गाना तजे अभंग का, छोड़ कथा का काज ।।४२।।
अधिकारी ने यह उसे, दिया तभी आदेश ।
तुका राम ! तू निकल जा, तज कर अपना देश ।।४३।।
देश निकाला मिल गया, किये बिना कुछ दोष ।
तुका राम पर शान्त था, कर शम दम सन्तोष ।।४४।।
अपयश अपना देख कर, बढ़ता देख विरोध ।
छुड़ाया विप्रों ने उसे, कर पीछे अनुरोध ।।४५।।
उस के सुन्दर छन्द सब, बसते मन तन बीच ।
उन को सुन सुधरे सभी, लोग ऊँच अति नीच ।।४६।।
भक्ति भाव से ही भरे, भक्त के सब अभंग ।
राम-भक्ति का भक्तों में, भरते भारी रंग ।।४७।।
छोटे बड़े सुबोध जन, अपढ़ मूढ़ गंवार ।
सुन कर गीत सुप्रेम के, लेते शुभ रस सार ।।४८।।
भक्त ठठेरा एक था, उस का बहुत विनीत ।
उसे गृह पर ले गया, कर के उत्तम प्रीत ।।४६।।
भार्या उस की थी बड़ी, कड़ी कठोर विख्यात ।
उस के आने की उसे, मूल न भायी बात ।।५०।।

माथे पर बल डाल कर, टेढ़ी त्योड़ी तान ।
होठ फर्कने साथ-ही, मार कुवचन कुवाण ।।५१।।
बुड़बुड़ाई बहुत वह, बांकी आंख तिरेर ।
उस ने देखा निज धनी, रह रह कर बहु बेर ।।५२।।
उठी तब वह उतावली, जलता जल तत्काल ।
तुका राम की देह पर, उस ने दिया हि डाल ।।५३।।
खौलता जल देह पर पड़ा, जली सन्त की खाल ।
पड़े फफोले देह पर, हुआ सभी तन लाल ।।५४।।
घबराया नहीं वह मुनि, रहा शान्त सुख मान ।
अपने घर पर आ गया, रक्खे वृति समान ।।५५।।
अच्छी रहनी करनी से, पड़ी सन्त की धाक ।
उस के विरोधी सब जन, हुए सुमौन अवाक् ।।५६।।
एक सुअवसर में गया, शिवा जी साधु पास ।
कीर्तन गायन सरस सुन, कर बहु दिन तक वास ।।५७।।
प्रति दिन उस सत्संग में, वह लेता आनन्द ।
तुका राम का भक्त बन, सुनता मीठे छन्द ।।५८।।
ताली बजा गाता जब, प्रेम से भक्ति राग ।
सुनने वालों में तभी, खिलता प्रेम सुफाग ।।५६।।
लेते जन हरि नाम को, सभी ओर से आय ।
होते तृप्त ध्यान कर, भक्ति सुधा रस पाय ।।६०।।
ऐसे शुभतर कर्म कर, तुका राम गुणवान् ।
तरा सिन्धु संसार से, भज कर राम महान् ।।६१।।

महाराणा प्रताप सिंह

मेवाड़पति सुमति महाराणा, महा मना सब जन ने जाना ।
हिंदू रक्षक शत्रु संहारी, जाति-रक्षण महा व्रत धारी ।।१।।
शूरवीर था वह प्रतापी, सज्जन योद्धा अरि-संतापी ।
धर्म हेतु चमका वह ऐसा, समर भूमि में अर्जुन जैसा ।।२।।
हिंदूपन में था वह पूरा, धृति धर्म धर उत्तम शूरा ।
नस नस में हिंदू हित धारे, करता था सुकर्म भी सारे ।।३।।
संकट में जीवन को डाले, फिरता वन वन बल सम्भाले ।
उस ने पक्का प्रण दिखलाया, विपदा घोर में न घबराया ।।४।।
वन जंगल में फिरता जाता, गिरि गुप्त में सेना छिपाता ।
घने वनों में सोया रातें, स्थान विषम सम की तज बातें ।।५।।
सिंह आदि हिंसक भय देने, फिरते प्राण जहाँ हर लेने ।
सर्प विषैले जहां हि होते, अभय वहां हो राणा सोते ।।६।।
धृति धर्म में मेरु समानी, उसमें थी सब जन ने जानी ।
उस ने कष्ट क्लेश ही पाये, धर्म हेतु महा दु:ख उठाये ।।७।।
मुगल शक्ति सारी कम्पाई, देहली दल की रीढ़ झुकाई ।
हटा नहीं रत्ती और राई, पूरी कुल की रीति निभाई ।।८।।
मंगल ग्रह मुगल का भारा, अकबर नाम था चमकन हारा ।
ऐसी उस ने रीति चलाई, राजपूत लड़की दें ब्याही ।।६।।
देवें मुगलों को यह नाता, पुत्री बहन का जो मन भाता ।
अपना नाता सुदृढ़ जोड़ें, साले सुसर बनें हठ छोड़ें ।।१०।।
बहुतों ने भय से यह माना, पर अधर्म राणा ने जाना ।
नकार किया शक्ति को धारे, चकित हुए तब राजा सारे ।।११।।

अकबर की गहरी थीं चालें, राजपूत बने सुसरे साले ।
इस बन्धन से सब ये मेरे, वीर रहेंगे बन कर चेहरे ।।१२।।
इन में ऊँचा भाव न होगा, हिन्दूपन का चाव न होगा ।
धर्म सनातन नाश हि होगा, शाही का प्रकाश हि होगा ।।१३।।
कूट नीति राणा ने जानी, अकबर की वह बात न मानी ।
धन तन प्राण मान से ऊँचा, माना उस ने धर्म समूचा ।।१४।।
सिर देवे पर धर्म न देवे, संकट अति में पाप न सेवे ।
प्राण जाय पर आन न जाये, जोखों में पड़ धर्म बचाये ।।१५।।
धारणा यह राणा ने धारी, बेची नहीं मर्यादा प्यारी ।
अकबर ने ले दल बल भारा, राणा पर जा छापा मारा ।।१६।।
हत हो लौटा लम्पट लोभी, जीत सका उसे नहीं सो भी ।
बार बहु चढ़ आया हठीला, हुआ क्रोध में काला पीला ।।१७।।
सेना सर्व सुसज्जित ही ला, घेरा उस ने वन वन टीला ।
पर उस को वह पकड़ न पाया, बल एड़ी तक सर्व लगाया ।।१८।।
अपने धर्म-बन्धु सब भाई, जो नौकरी करते पराई ।
वे सब उसे घेरने आये, राजपूत ही सजे सजाये ।।१६।।
यह थी पीड़ा मन में भारी, उस के तन में वेदना सारी ।
छा रहा सब ओर अन्धेरा, जब अकबर ने सब वन घेरा ।।२०।।
अपने जन जब बने पराये, राणा पास भील मिल आये ।
राणा ने वे सभी सजाये, रण-दीक्षा दे वीर बनाये ।।२१।।
उन को ले पर दल संहारे, अकबर के योद्धा बहु मारे ।
राणा के बली भील प्यारे, वाण वर्षा बरसाने हारे ।।२२।।
दाव पेंच चल घेरें सेना, कर देते लेने का देना ।
निडर हठीले शूर करारे, हिन्दूपन के थे रखवारे ।।२३।।

भील दलों के लिये सहारे, राणा ने दिन काटे भारे ।
वन वन फिर कर घरी टारे, राज धर्म से शत्रु निवारे ॥२४॥
खान पान का स्वाद न जाना, भूख प्यास का कष्ट न माना ।
साग पात खा दिवस बिताये, रातों तक बहु अनशन आये ॥२५॥
एक दिवस रोटी बच पाई, बान्ध वस्त्र में वह लटकाई ।
बच्चों के लिये भोजन राखा, बान्धा दृढ़ पेड़ की शाखा ॥२६॥
वन बिल्ली ने कपड़ा उठाया, देखते बालक ही चिल्लाया ।
जाना उस ने निज मन मांही, खाने को अब भोजन नाहीं ॥२७॥
ऐसे उस का दुखिया होना, टुकड़े हेतु पुत्र का रोना ।
इस से उस का मन डोलाया, हृदय उछल मुँह को आया ॥२८॥
टूक टूक हो भीतर में ही, कम्पित दुःखित हुआ इस से ही ।
पर निज लाज धर्म को विचारे, उस ने उलटे भाव सुधारे ॥२९॥
बट्टा वंश को नहीं लगाया, आन बान को अन्त निभाया ।
मान मर्यादा कुल की पाली, विपदा भारत भर से टाली ॥३०॥
महाराणा ने जपा प्यारा, राम नाम सुसार ही भारा ।
उस के मन में विकसी ज्योति, अभय सबल पद में जो होती ॥३१॥
उस ने युद्ध किये अति भारे, जाति देश के घातक मारे ।
अत्याचारी लताड़ भगाये, द्वेषी द्रोही दूर हटाये ॥३२॥
राजपूत और भील प्यारे, राम राम कह दौड़े सारे ।
मुगल दलों पर धावा बोले, करते उन्हें बाण से पोले ॥३३॥
राणा के भी वीर सियाणे, खेत में रहे बहु गुण खाने ।
बरसों का वन बसना होना, बन्धु जनों का रोना धोना ॥३४॥
इस से सेना ने मन हारे, आये दिन के कष्ट निहारे ।
कोष समाप्त हुआ हि पाया, दृष्टिगत जन दुःख भी आया ॥३५॥

दुखिया थी जनपद की नारी, आय मुगल महा अत्याचारी ।
धन आदि सब लूट ले जाते, खेत घरों को आग लगाते ।।३६।।
जो जन पाते दास बनाते, उन से निन्दित कर्म कराते ।
महिला सुन्दर जो भी पाते, घर से उसे उठाये लाते ।।३७।।
लाज धर्म वश सतियां ऐसे, चढ़ीं चिता पर सीता जैसे ।
राम राम जपतीं मुख से ही, लिपटीं लपटों से सब वे ही ।।३८।।
राम ध्वनि में ध्यान जमाये, कोमल तन पर आग टिकाये ।
सहस्त्रों जल कर भस्म समाना, शान्त हुईं अन्य मत न माना ।।३६।।
प्राण दिये निज धर्म न छोड़ा, जलती आग से न मुख मोड़ा ।
कालख का दे कर के टीका, शाही का कर गईं मुख फीका ।।४०।।
सूने घर बहुत हुए ऐसे, शेष बचे कर जैसे तैसे ।
सहस्त्रों हिन्दू थे वन वासी, बन कर सपरिवार प्रवासी ।।४१।।
सूना सा सभी देश प्यारा, राणा ने निज नयन निहारा ।
रेख निराशा मुख पर आई, बोला वह, हो राम सहाई ।।४२।।
भक्त जनों के परम सहारे, सत्य धर्म के हे रखवारे ।
हम तेरे सुकर्म यह तेरा, तव अर्पित सुव्रत है मेरा ।।४३।।
राम राम मेरे ओ स्वामी, घट घट के हरे अन्तर्यामी ।
भला सभी जो तेरा भाना, तेरे अर्पित है यह राणा ।।४४।।
करो दया स्व हाथ बढ़ाओ, निराशा में आशा चमकाओ ।
हो वह काम तुझे जो भावे, तेरे जन की विधि बन आवे ।।४५।।
धैर्य धर हरि नाम सहारे, निज नगर में राणा पधारे ।
पुर के जन सुहर्ष के मारे, विकसित हुए सुनयन पसारे ।।४६।।
भामा शाह राम अनुरागी, राम भक्त धनिक बड़भागी ।
हाथ जोड़ राणा से बोला, है भेंट धन सहित यह चोला ।।४७।।

चरणों पर अर्पित है माया, जाति धर्म हित ही मम काया ।
कर ग्रहण स्वदेश बचाओ, नारी नर के कष्ट मिटाओ ।।४८।।
राणा ने ले धन बहु सारा, सेना सजा शत्रु-दल मारा ।
महा विजय का नाद बजाया, जय जय राम शब्द गुंजाया ।।४६।।
देश सेवक जाति हित कारी, हुआ प्रताप सुशक्ति धारी ।
रीति नीति से निपुण कहाया, मर्यादा को उस ने निभाया ।।५०।।
राम भजन से धाम पधारा, जो है सब भक्तों का सहारा ।
अमर काम निज नाम बनाया, हिन्दू छत्रपति गया गाया ।।५१।।

हकीकत राय

हकीकत राय हुआ सुकर्मी, बाल काल से उत्तम धर्मी ।
अपने धर्म में प्रीति धारे, नियम पालता संयम सारे ।।१।।
मात पिता को था वह प्यारा, पंजाबी शुभ उज्ज्वल तारा ।
विवाहित था सुव्रतधारी, हिन्दू रीति थी उसे प्यारी ।।२।।
मुख मण्डल शुभ सोहे ऐसे, उदय समय का सूर्य जैसे ।
कमल कलि सम कोमल काया, थी उस की सह रूप सवाया ।।३।।
रसिक नयन मृदु गात सुहाने, बन्धु गण के चित्त लुभाने ।
सर्वांग सुन्दर लगता प्यारा, जैसे पुष्पित केसर क्यारा ।।४।।
क्रूर तभी था शासन सारा, भयभीत पंजाब था भारा ।
हिन्दू जन विपदा को पाते, वध बन्धन बहु कष्ट उठाते ।।५।।
लूट मार होती दिन राती, महा हत्या करते उत्पाती ।
न था रक्षित धन तन कोई, शासक मारते शत्रु होई ।।६।।
दमन दलन मर्दन की नीति, चलते शासक कुटिल कुनीति ।
अन्याय अनर्थ किये विस्तारा, धर्म-अन्धता ने बल धारा ।।७।।

मतवादी हो कर मतवाले, हिन्दू जन को हनने वाले ।
मन माने उन्हें दुःख दिलाते, घेर घोट कर ही कटवाते ।।८।।
उस समय में हिन्दू कहाना, था जीते जी ही मर जाना ।
हिन्दू मत को कहना सुसच्चा, कटवाना था बच्चा बच्चा ।।६।।
यवन युवक से करते बातें, निर्भय हकीकत न घबराते ।
हिन्दू-सुइष्ट को उस दी गाली, सुन कर उस पर आई लाली ।।१०।।
हकीकत ने बदला चुकाया, वह शब्द उस को ही सुनाया ।
करी पुकार युवक ने जा के, धरना शासक पास लगा के ।।११।।
गया पकड़ा हकीकत प्यारा, राज जनों ने पीटा मारा ।
मत मुसलिम के नेता बोले, तन चाहे तो मुसलिम हो ले ।।१२।।
काफर कतल नहीं तो होगा, सब कुटुम्ब तेरा ही रोगा ।
छोड़ धर्म को मुसलिम हो जा, अथवा जीवन यौवन खो जा ।।१३।।
मतवादी का निर्णय ऐसा, हुआ मृत्यु रूप हो जैसा ।
सुवीर हकीकत न घबराया, जब निर्णय उस ने सुन पाया ।।१४।।
बोला वह, सुनिये अधिकारी, अन्याय परायण शक्ति धारी ।
धर्म तजूँ न प्राण जो जावें, विधर्मी चाहे मार मिटावें ।।१५।।
धर्म मुझे है प्राणों प्यारा, उसे तजूँ न व्रत मैं धारा ।
माता पत्नी थीं वहां रोतीं, विपद् देख कर व्याकुल होतीं ।।१६।।
एक मात्र जो था सहारा, चाँद चित्त का नयन सुतारा ।
जाता था दोनों को त्यागे, अन्त में प्राण ज्यों ही भागे ।।१७।।
मोह भरी काँपी वे ऐसे, वायु-कम्पित लता हो जैसे ।
उमड़ मेघ नयनों में आया, दोनों घटा ने जल बरसाया ।।१८।।
पर वह वीर धीरता धारे, अचल रहा श्री राम सहारे ।
मेरु शिखर सम सब ने जाना, शान्त रहा यह सब ने माना ।।१६।।

क्रूर कर्म से उस को मारा, कर अपराध जनों ने भारा ।।२०।।
मतवादों की है यह माया, घोर पाप है जहां समाया ।
धर्मी हकीकत तजते चोला, राम राम निज मुख से बोला ।।२१।।
अर्पण कर सिर राम सुद्वारे, भक्ति भाव से कर्म सुधारे ।
वीर पुरुष ने शुभ गति पाई, सीस दान की साख जमाई ।।२२।।

वन्दा

लक्ष्मण देव सुनाम से, राजपूत गुणवान् ।
जन्मा प्रान्त पंजाब में, बन कर भक्ति निधान ।।१।।
वैरागी बन राम का, जप तप कर के घोर ।
आसन मुद्रा सुसाधना, उस ने करी कठोर ।।२।।
बरसों बस एकान्त में, जपा उच्च शुभ नाम ।
वैरागी ने लगन से, मंगलमय श्री राम ।।३।।
शक्ति जगी उस में तभी, सब साधन ही साध ।
पाप कर्म उस के कटे, मिटे सभी अपराध ।।४।।
माधो दास सुनाम से, वह फिर हुआ विख्यात ।
जनता योगी मानती, उस को वीर सुगात ।।५।।
गोदावरी तट पर शुभ, रम्य नादेर स्थान ।
रच कर आश्रम भी वह, वहां रहा बल खान ।।६।।
जन बहु आते दूर से, झुक करते प्रणाम ।
गुरु सिद्ध उसे मानते, लेते उससे नाम ।।७।।
सीखते साधु योग आ, नाना कर्म कलाप ।
उन्हें सिखाता वही शुभ, मुद्रा ध्यान विधि जाप ।।८।।

दक्षिण में सुप्रसिद्ध था, ऋद्धि ही सिद्धिवान् ।
राजों में भी था उसे, मिलता आदर मान ।।६।।
आते सन्त महन्त सब, साधु भक्त गुणवन्त ।
आदर पाते वे वहां, योग क्षेम एकान्त ।।१०।।
अन्न वस्त्र मिलते उन्हें, भोजन बहु प्रकार ।
माधो दास समीप रह, सभी पाते सत्कार ।।११।।
ऐसे शोभन कर्म से, जन हित का कर काम ।
वन्द्यः नाम मिला उसे, पूजनीय उपनाम ।।१२।।
वन्द्यः का वंदा बना, वन्दनीय मतिमान् ।
अपने सिद्धि शौर्य से, था ही वह असमान ।।१३।।
उस के कीर्ति कर्म की, चमत्कार की छाप ।
दक्षिण देश में थी लगी, नाम रहा था व्याप ।।१४।।
समझा जाता वीर वह, धृति धर्म अवतार ।
भक्त सन्त शुभ सिद्ध वर, ध्यानी बल भण्डार ।।१५।।
लोभ रहित दानी बड़ा, मोह मान से पार ।
कपट क्रोध से रहित वह, नय-निपुण कलाधार ।।१६।।
समर-कुशल था सूरमा, सेना कर्म विधान ।
पूर्णता से जानता, योद्धा बली महान् ।।१७।।
मर्दन मान म्लेच्छ का, मन माना था काम ।
उस का कहते साधु जन, जो फिरते सब धाम ।।१८।।
सिंह पन्थ के दशम गुरु, तज कर अपना प्रान्त ।
दक्षिण को गये धार कर, रहना हो कर शान्त ।।१६।।
कीर्ति सुन उस वीर की, वे आये नादेर ।
वन्दे ने आदर दिया, देख दिनों के फेर ।।२०।।

दो योद्धा एकान्त में, मिले देश के काज ।
एक हुए इस बात पर, उलटो शाही राज ।।२१।।
करुणा कर पंजाब पर, वीर-सुकंकण धार ।
बीड़ा उठाया जय का, उस ने बहुत विचार ।।२२।।
शांत भूमि को छोड़ कर, सुख साधन सब छोड़ ।
साधु संग ही सर्व तज, स्नेह सूत सब तोड़ ।।२३।।
सिद्ध सुसज्जित हो गया, ले कर राम सुनाम ।
सज कर केसरी सिंह सम, भजता मुख से राम ।।२४।।
कर में ले तलवार को, उठ धाया वह वीर ।
देश हताश निराश की, हरने आया पीर ।।२५।।
उसी समय पंजाब में, थी कुनिशा नैराश ।
बार बार की हार से, थे सब वीर हताश ।।२६।।
मार काट से मिट गये, जो कर के अति क्रोध ।
शाही पाप अन्याय का, करते बहुत विरोध ।।२७।।
ऐसी काली रात में, वन्दा चमका चाँद ।
शाही बल के पूर में, वह बना महा बाँध ।।२८।।
अत्याचारी दल दलन को, हत्या रोकने हेत ।
आततायी सुदमन को, वह उतरा इस खेत ।।२९।।
हाहाकार को रोक कर, क्षत से करे सुत्राण ।
रोके हत्या अन्याय को, सो जन क्षत्रिय जान ।।३०।।
ऐसा क्षत्रिय वीर वह, साहस सुशक्ति साथ ।
आया अबलों का बना, त्राता दहिना हाथ ।।३१।।
हिन्दू जन पंजाब में, थे कटते दिन रात ।
शिष्य सनातन धर्म के, होते निश दिन घात ।।३२।।

मांजा मालव भाग के, पंजाबी नर वीर ।
हार मार से थक गये, थे हो रहे अधीर ।।३३।।
गिने चुने नर सिंह सब, बने बली बलिदान ।
शेष शाही पंजे में, पड़ करते अतिहान ।।३४।।
ऐसे कड़वे काल में, आया वन्दा शूर ।
हिन्दू हिंसा रोकने, हत्या हटाने दूर ।।३५।।
टूटे फूटे वीर ले, थके दुर्बल उदास ।
पड़ा शत्रु पर सिंह ज्यों, जाय गजों के पास ।।३६।।
गर्जा केसरी सूरमा, शाही सेना पाय ।
हिरण झुण्ड में गर्ज कर, सिंह यथा ही जाय ।।३७।।
शाही सेना जा जहां, करती हि अत्याचार ।
वन्दा जाता दौड़ता, गहरी देता मार ।।३८।।
थोड़े साथी जाट ले, वैरागी गुण धाम ।
सहस्त्रों अरि संहारता, मुख से जपता राम ।।३९।।
शाही दल सरहिन्द का, गया हार तत्काल ।
वन्दे की तलवार ने, बदले लिये निकाल ।।४०।।
पैने बाण अचूक से, करता वह प्रहार ।
चुन चुन अगुआ शाह के, कर देता संहार ।।४१।।
जाता जिस दिश सूरमा, पाता विजय अखण्ड ।
अपने कौशल कर्म से, हरता मुगल घमण्ड ।।४२।।
अनर्थ अन्याय घोर को, देता दूर उखाड़ ।
शाही दल की हेकड़ी, पल में देता झाड़ ।।४३।।
मुख्य भाग पंजाब के, करनाल लाहौर पर्यन्त ।
स्व-तंत्र उस ने किये, कर शाही का अन्त ।।४४।।

खा कर हार पै हार ही, बार बार खा मार ।
[illegible]
ऐसे भारे भाग से, मुगल गये सब भाग ।
सोते सैकड़ों वर्ष से, हुए सजग जन जाग ।।४६।।
जय पाई उस वीर ने, वैरी सर्व निवार ।
हिन्दू गौरव स्थापना, हुई फिर एक बार ।।४७।।
करता करुणा कृश पर, दीन दुःखी जन पाल ।
न निर्दोषी को मारता, बूढ़ा बाला बाल ।।४८।।
पृथ्विराज के पतन के, पीछे वह ही एक ।
हुआ सफल पंजाब में, जेता शत्रु अनेक ।।४६।।
यमुना रावी प्रान्त तक, किया निष्कंटक देश ।
उस ने तो पंजाब के, काटे कष्ट विशेष ।।५०।।
सन्त ने दिये बांट कर, सरदारों को देश ।
स्वयं रहा साधु बना, जपता राम महेश ।।५१।।
बना न राजा भक्तवर, करता सेवा आप ।
सेवक बन कर वह रहा, कर्मयोगी निष्पाप ।।५२।।
जीत सकल दल शत्रु के, सौंप अन्य को राज ।
जाता पर्वत प्रान्त पर, ध्यान भजन के काज ।।५३।।
युद्ध स्थलों में भी वह, कर सेवन एकान्त ।
ध्यान लगाता रात को, हो कर शुद्ध सुशान्त ।।५४।।
भाग्य परन्तु मन्द थे, जनपद के लो जान ।
ऐसे त्यागी वीर के, हों विरोधी अजान ।।५५।।
लोभ ईर्ष्या अज्ञान वश, नहीं रहे वे एक ।
शाही के षड्यन्त्र में, फँसे वीर अनेक ।।५६।।

पर का भार उतार कर, समर सर्व ही जीत ।
स्वार्थ वश वे फूट कर, चले जाति विपरीत ।।५७।।
वन्दा सुसाधु सरल था, समता शान्ति निधान ।
छल बल में बहुते घिरे, उस के शूर अज्ञान ।।५८।।
शाही के ही जाल में, मुखिया बन कर मीन ।
चकमा पा कर शाह का, उस के हुए अधीन ।।५९।।
जेता सेना मुगल का, नेता निपुण महान् ।
कर्ता स्वतन्त्र जनपद, सेनापति प्रधान ।।६०।।
अपने दल की फूट से, हुआ बद्ध चुप चाप ।
षडयन्त्र रच जनों ने, किया घोरतम पाप ।।६१।।
उसे पकड़ कर ले गये, शाही सैनिक क्रूर ।
मार पीडन से न गिरा, सत्य धर्म से शूर ।।६२।।
हुआ दिल्ली में जाय कर, बंदी वंदा वीर ।
चिमटों से नोचा गया, उस का सर्व शरीर ।।६३।।
बीन्धा काटा वह गया, टूक टूक कर गात ।
क्रूर कुकर्मी जल्लाद ने, कर दी उस की घात ।।६४।।
महा वेदना के समय, डोला न वह महान् ।
राम राम जपते तजे, उस ने प्यारे प्राण ।।६५।।
अंत समय तक संत ने, मुख से भजते राम ।
ब्रह्म समाधि में तजा, अपना भौतिक धाम ।।६६।।
पाया पद पावन परम, भज कर उत्तम नाम ।
कर्म योग से राम का, कर निष्काम ही काम ।।६७।।

मीरा बाई

मारवाड़ में जन्म ले, मीरा ले वैराग ।
बाल काल में रम गई, पाय राम अनुराग ।।१।।
भक्ति प्रेम में थी रमी, करती साधन योग ।
मन से उस ने तज दिये, सभी जगत् के भोग ।।२।।
मात पिता ने ब्याह दी, बाला बल से आप ।
महाराणा चित्तौड़ से, करती बहुत विलाप ।।३।।
चाहा राणा ने बने, राणी सुन्दर रूप ।
ब्रह्मचारिणी थी वह, ध्याती राम अरूप ।।४।।
भार्यापन मानी नहीं, राणा हुआ उदास ।
ताड़न तर्जन से दिया, उस ने उस को त्रास ।।५।।
सहा सभी धर धीरता, उस ने ध्याते नाम ।
वह डोली न सुनियम से, मान भरोसा राम ।।६।।
रहती निमग्न ध्यान में, कर कीर्तन सराग ।
गाती बजाती ही वह, अन्य कल्पना त्याग ।।७।।
महिला मण्डल में मिली, मधुर मनोहर गीत ।
गा नृत्य आवेश में, करती हरि से प्रीत ।।८।।
राम रास यह भूप को, लगी बुरी दुःख खान ।
मीरा का करने लगा, क्रोध सहित अपमान ।।६।।
मार मिटाने के लिए, उस ने किये उपाय ।
पर वे सारे राम ने, निष्फल दिये बनाय ।।१०।।
पुष्पाहार के नाम से, उस ने भेजा सांप ।
विष का प्याला भेजते, गया नहीं वह कांप ।।११।।

पर विपदा हरि नाम से, टली उस की तत्काल ।
मीरा ने छोड़ा नहीं, भजना राम दयाल ।।१२।।
भय से भगवती न भगी, भक्ति भजन से मूल ।
उस के भक्ति भाव में, आई न भ्रान्ति भूल ।।१३।।
उपाय राणा के सभी, हुए अफल एकैक ।
मीरा ने संकट सहे, कटुतर कष्ट अनेक ।।१४।।
उस के निश्चय प्रेम को, धृति धर्म को जान ।
रमा राम में भूप भी, मीरा का कर मान ।।१५।।
मारवाड़ मेवाड़ में, नर नारी को तार ।
जप सिमरन प्रचार कर, वह पाई भव पार ।।१६।।
भक्त वही जन जानिए, राम नाम ले सार ।
तन मन सब अर्पण करे, पाय राम का द्वार ।।१७।।
राम भरोसे जो रहे, अवलम्बन ले नाम ।
भक्ति प्रेम में रत रहे, करे सभी शुभ काम ।।१८।।
गाय गीत सुप्रेम से, जो गद्गद् ही होय ।
खिले नयन रोमांच से, भक्त जानिए सोय ।।१९।।
मूर्ति मीठी मोहिनी, मुख मण्डल मधुमान् ।
राम नाम में मग्न जो, वह जन भक्त सुजान ।।२०।।
कर्म योग में जो लगा, रत सेवा उपकार ।
श्रद्धा निश्चय युक्त जो, वही भक्त सुखकार ।।२१।।
ज्योति प्राण ही राम को, जो माने आधार ।
नियम सूत संसार का, सो जन भक्त विचार ।।२२।।
राम भक्ति के संग में, जो जन जावे धाय ।
मिला रहे सत्संग में, सो ही भक्त कहाय ।।२३।।

अश्रु बहाय प्रेम के, राम प्रीति में आय ।
मुख से राम उच्चारते, भक्त मग्न हो जाय ।।२४।।
राम भक्त को जो गिने, उत्तम मधुर सुमीत ।
मेल प्रेम उस से करे, जाय वही जग जीत ।।२५।।
गुरु मुख भक्त सराहिए, नियम धर्म गुणवान् ।
ईश्वर प्रीतिमान् जो, शुद्ध सरल मतिमान् ।।२६।।
अनन्य सुभक्ति राम दे, परा प्रीति कर दान ।
अविचल निश्चय दे मुझे, अपने पद का ज्ञान ।।२७।।
अपना प्रेम सुदान कर, अपने जन का संग ।
राम नाम का आश्रय, अपना जाप सुरंग ।।२८।।

कथा प्रकाश

सिमरन

(१) परमेश्वर के पतित पावन नाम को वाणी से अथवा मन से जपना सिमरन कहा गया है। यदि किसी अनुभवी मनुष्य द्वारा परमेश्वर का मंगलमय नाम लिया जाय तो उस से अन्तरात्मा जग जाता है और वह नाम वृत्तियों को मूर्च्छित करने में एक मोहन मन्त्र ही माना गया है। जैसे सजीव पेड़ को सजीव फल और बीज लगा करता है, ऐसे ही ईश्वर कृपा तथा अनुभवी सज्जन से ग्रहण किया हुआ नाम ही ध्यान, एकाग्रता, समता और समाधि का साधन बना करता है।

एकदा एक जिज्ञासु ने एक शान्त, दान्त और सिद्ध उपासक के समीप जा कर आदर से कहा—महात्मन् ! मेरा मन बड़ा चंचल है, मेरी इच्छा बड़ी दुर्बल है, मेरा संकल्प सदा असफल रहता है और मुझे संशयशीलता सदा सताती रहती है। कृपया किसी उपाय से मेरे ये दोष दूर करा दीजिए। यह सुन कर उपासक बोला—भद्र ! तेरे उक्त दोष तेरे मानस रोग हैं। दुष्कर्मों की दुर्वासना से, दुष्ट विचारों से, दुश्चरित्र से तथा दुर्जन संगति से ऐसे मानस रोग हुआ करते हैं। मनोगत रोग से मनुष्य का मन इतना मलिन, इतना अस्थिर, इतना भीरु, इतना क्षीण, इतना शंकाशील और इतना भ्रमग्रस्त हो जाता है कि उसमें दृढ़ता, एकाग्रता और समाधानता नाम मात्र भी नहीं होने पाती। तू इस रोग को समूल नष्ट करना चाहता है तो राम नाम की महौषधि सेवन कर। इस से तेरे सारे मानस रोग, मानस विकार नष्ट हो जायेंगे। तेरा मन विमल और बलिष्ठ हो जायगा। तेरी इच्छा शक्तिमती हो जायगी और तू सत्संकल्प बन जायगा।

उस जिज्ञासु ने विधिपूर्वक नाम का ध्यान ले कर जप, चिन्तन तथा ध्यान करना आरम्भ कर दिया। कालान्तर में उसके सारे मानस दोष भस्म हो गये, उसकी एकाग्रता सुसिद्ध हो गई, उसकी इच्छा और संकल्प शक्ति सबल तथा सुदृढ़ हो गई। उसके अमल चिदाकाश में उच्च विचारों के तारे आप ही आप उदय हो आये। घोर विपत्तियों में भी वह वज्र-स्तम्भ सदृश स्थिर रहा करता। अपने अंगीकृत पथ से वह कदापि चलायमान नहीं हुआ करता था। वह जिस काम में हाथ डालता, सफलता ही लाभ करता। अपने धैर्य से, दृढ़ता से, समता से, शान्ति से, अपूर्व प्रतिभा प्रभा से, लोक हित कामना से और चमत्कारिणी मानस शक्ति से वह एक बहुत ही श्रेष्ठ मनुष्य माना जाता था। वह मंगलमय राम नाम के चिन्तन ध्यान से एक जीवन्मुक्त सिद्ध हो गया। उसका आत्म भाव सर्वथा शुद्ध हो कर जगमगाने लगा।

(२) नाम-ध्यान तथा नाम योग बहुत ही लाभदायक, शीघ्र सिद्धिकारी, अल्पकाल में सफलता का दाता तथा थोड़े प्रयत्न से ही आत्मा को जगा देने वाला, सुगम ध्यान और सहज योग है। इस योग में साधक अपने परमेश्वर के समीप होता है। वह उसी अनन्त हरि का आह्वान करता है और समाधि काल में उसी में लयता लाभ कर लेता है। एक बार एक युवक घर बार, सगे सम्बन्धी और इष्ट मित्र, सब कुछ को छोड़ कर ध्यान की धुन में एक तपोवन में जा कर तप करने लग गया। उसने अति-कष्टकारी तप से अपनी काया को सुखा कर कांटा बना दिया। उसका अस्थि-पिंजर सूखी लकड़ियों की भांति, चलते फिरते खड़ खड़ करने लग गया। उसका तापस गुरु और उसके तपस्वी संगी साथी उसकी बड़ी प्रशंसा करते और उसे कहा करते कि तू अब एक ऊँचा योगी तथा उत्तम सिद्ध हो गया है। परन्तु वह अपने आपको जब भी विचार नेत्रों से निहारता तो अशान्त, असन्तुष्ट, असफल, अतृप्त, बहुत ही व्याकुल

और अत्यन्त चंचल ही पाता। उसके भाग्योदय से उस तपोवन में, एक दिन, एक भक्त आ कर ठहरा। भक्त ने जब उस युवक तापस को देखा और उसके मुख से उसके तप त्याग की करुणा-जनक कष्ट-कथा सुनी तो उसका विमल, मृदुल दिल दया भाव से उमड़ आया। भक्त ने वात्सल्य भाव दर्शाते हुए उसे कहा—सौम्य ! आध्यात्मिक योग का तो तात्पर्य, श्री राम का मंगलमय महा मेल ही माना है, उस आनंदमय अनंत में लीनता कहा है, स्वसत्ता की जागृति समझा गया है और मन की शान्ति तथा समाधान ही बताया है। परन्तु आश्चर्य है तू तो काया का कूटना पीटना ही योग मान रहा है। प्यारे, यह मार्ग सन्मार्ग नहीं है। उलटे पथ पर से पग उठा ले। काया पर व्यर्थ कोरा कोप न किया कर। भगवद्भक्ति का सरल, सीधा, शुद्ध और सच्चा पथ पकड़। जाग, सावधान हो, विचार कर और यह अमूल्य समय यों ही न खो। नाम की कमाई कमा। इस से तेरा अवश्यमेव कल्याण हो जायगा। भक्त के ऐसे सार-गर्भित उपदेश को सुन कर तापस को भगवद्भक्ति का आवेश आ गया। उसने बड़ी भावना से उस भक्त से भगवान् के पतित पावन, श्री राम नाम का प्रसाद ग्रहण किया। उसने ज्यों ही अपने मन से महा मधुर राम नाम चिन्तन किया, उसकी वृत्ति तत्काल एकाग्र हो गई, उसका हृदय-सागर संशय, विक्षेप की तरंग-माला से रहित हो कर परम प्रशान्त हो गया। उसके अन्तःकरण की सारी कल्पना-कालिमा धुल गई और उसके आत्मा को स्व स्वरूप में स्थिति लाभ हो गई। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो किसी ने बांह पकड़ कर उसको समाधि के ऊँचे पद पर पहुँचा दिया है और वह सफल-मनोरथ, पूर्ण-काम तथा कृतकृत्य हो गया है।

उसने अपने भक्त गुरु को मिल कर कहा—महाराज ! आप से मिले राम नाम ने अद्‌भुत चमत्कार कर दिखाया। मेरे मन की सारी मैल इस नाम ध्यान से मिट गई और मैं अब अपने आत्मा को जानने लग गया

हूँ। भक्त ने कहा—भद्र ! साधन तो सभी अच्छे हैं परन्तु नाम का ध्यान तो चिन्तामणि है। इसका चिन्तन, चित्त की सारी चंचलताएं तथा चिन्ताएं सर्वथा चूर चूर कर देता है। यह सच्चे स्वर्ग की सरल सोपान है, अनन्त भगवान् के मिलाप का परम उपाय है। योग साधन का उद्देश्य भी यही है कि साधक को अपने स्वरूप की प्रतीति हो और अनन्त आत्मा में लयता उपलब्ध हो। यदि नाम चिन्तन न किया जाय तो राम कृपा तथा प्रेम रहित सूखी शून्यता तो सूखे सरोवर में निश्चेष्ट पड़े मेंडकों को भी प्राप्त है जो ग्रीष्म में इधर उधर विरलों में मृत-प्राय पड़े रहते हैं और वर्षा हो जाने पर एक रात में ही टर्राने लग जाते हैं। ऐसी अवस्था शीतकाल में बिल में छुपे पड़े सांपों को भी प्राप्त हो जाती है। ऐसी दशा मासों तक उन रीछों की भी हो जाती है जो कन्दरा में बैठे हुए शून्य तथा निराहार पड़े रहते हैं, जब हिम पात से कन्दरा का मुख बंद हो जाता है। जिस समाधि में राम प्रेम नहीं, राम कृपा नहीं, राम नाम की मीठी गूँज नहीं, राम रस में रमण नहीं और अपने स्वरूप की लख नहीं वह तो निरी प्रसुप्ति ही समझिए।

(३) नर्मदा नदी के किनारे पर निवास कर के दो मनुष्य अभ्यास कर रहे थे। वे दोनों दक्षिणी संन्यासी थे। उनको वहां रह कर अभ्यास करते पांच वर्ष बीत गए परन्तु वे समाधि में स्थिर न हुए। तप के कारण उनका तन सूख गया था, अस्थि-पिंजर निकल आया था और वे बहुत ही दुर्बल हो गए थे। उनकी पाचन-शक्ति नष्ट हो गई थी और वे बेचारे, केवल औषध के आश्रय पर, ज्यों त्यों कर के अपने जीवन के दिन काटते थे। एक दिन, सायं समय, वहां एक काशी प्रान्तीय संन्यासी आ टिका। उसने उन दक्षिणी संन्यासियों को कहा—आप योगाभ्यास के नाम पर काया को क्यों कृश बना रहे हैं। यह तो कल्प तरु और काम धेनु के समान है। इसको भली भांति पुष्ट, शुद्ध और स्वच्छ रखो और साथ ही परमात्मा

का नाम जपो, इस से आपको मुँह मांगा फल मिल जायगा। इस में राम नाम गुंजा दो, आप का सारा योग सिद्ध हो जायगा। उन दोनों अभ्यासियों में से एक ने उसकी बात पर ध्यान दिया और आदर पूर्वक कहा—सन्तवर! मैं अब इस अभ्यास से थक गया हूँ। कष्टकारी आसनों से, कठोर कर्मों से, क्लेषकारिणी क्रियाओं से और दुष्कर विधियों से मेरी काया कुटी अति कृश हो गई है। मुझे स्वशरण में ले कर कृपया नाम दान दीजिए, भक्ति पथ पर चलाइए।

दूसरे दिन सबेर का समय था। काशी प्रान्त का संन्यासी स्नान के अनन्तर साधन कर रहा था। उस समय उस दक्षिणी जिज्ञासु ने नमस्कार पूर्वक उस से ध्यान की प्राप्ति की जिज्ञासा की। अपने साधन समाप्त कर के काशी के संन्यासी ने उसको कहा—सौम्य! यदि आप मुझ से नाम योग लेना चाहते हैं तो हथेली पर जल ले कर, पहली विधि को नर्मदा नीर में विसर्जन कर दो। तीन बार साष्टांग प्रणाम कर के भगवान् से क्षमा मांगो। वह देव आपको दया दान से निहाल कर देगा। उसने वैसा ही कर के उस से भक्ति योग ग्रहण किया। विधि सहित नाम ध्यान से पांच पलों में ही उसकी वृत्ति स्थिर हो गई, उसके प्राण अपान सम हो गए। उसकी शक्ति जग गई। वह चार घड़ी तक प्रशान्त भाव से समाधि में मग्न बैठा रहा। तदनन्तर आसन से उठ कर उसने अपने गुरु को नमस्कार पूर्वक कहा—महाराज! जिस अभ्यास की सिद्धि के लिये मैंने इतने घोर, कठोर कर्म किये वह आज आप की कृपा से सहज से सिद्ध हो गई। मेरा रोम रोम आप का कृतज्ञ है। मैं आपके इस उपकार को सदा स्मरण रक्खूंगा। गुरु ने कहा—ऐसा नाम ध्यान राज योग तथा सहज योग कहा गया है। सन्त जन इसको भक्ति योग भी कहा करते हैं। इस की विशेषता यह है कि इस में अभ्यासी को भगवान् का आशीर्वाद मिल जाया करता है। राम कृपा से इस में सिद्धि भी सुगमता से मिल जाती है। नाम के अभ्यासियों

का योग क्षेम श्री भगवान् आप विधान किया करता है। इस में विघ्न बाधाएँ नहीं आने पातीं। प्यारे! इस योग के भेद को, कोरे ज्ञानवाद पर घोटा लगाने वाले, निरे शब्द-माला पिरोने वाले तथा देह को सुखाने वाले निराशावादी योगी नहीं जानते। पुरुषोत्तम की प्रीति से हीन जन, केवल काया को ही क्लेश दिया करते हैं और उलटे पथ पर चल कर समय व्यर्थ ही बिताया करते हैं। भद्र ! अब चाहे जो खाओ। पथ्यापथ्य की कल्पना छोड़ दो। केवल भगवान् के भरोसे रहो। तर्क वितर्क के वितण्डावाद में न पड़ो। नाम का चिन्तन, ध्यान तथा जप करते जाओ। जन सेवा, परहित, परोपकार और शुभ कर्म करते रहो, योगाभ्यास का आडम्बर न रचना। अपने को बहुत बड़ा न मानना। अपने अभ्यास का, अपनी सिद्धि का, अपनी स्थिरता का, अपनी योगावस्था का वर्णन न करना। परमेश्वर कृपा से आप उत्तरोत्तर उन्नति करते रहोगे।

(४) हिमालय के ऊँचे शिखरों के बीच में बद्रीनारायण नामक हिन्दू तीर्थ है। प्रति वर्ष सहस्त्रों नर नारी उसकी यात्रा करने जाते हैं। एक बार राम नाम जपने वाली एक स्त्री भी यात्रार्थ जा रही थी। वह स्त्री नाम ध्यान से उत्तम पद को पहुँची हुई मानी जाती थी। वह रात्रि में जब सब यात्री सो जाया करते तब बैठ कर चिन्तन ध्यान किया करती। एक रात को जब वह ध्यान में मग्न हो रही थी उस समय उसको एक दूसरी स्त्री ने देख लिया। जिस समय वह ध्यान से निवृत्त हुई तब उसने उसको कहा—बहिन ! तेरी ध्यान मुद्रा ने मुझे भी जगा दिया है, मुझ में भी लग्न उत्पन्न हो गई है। कृपया अपने ध्यान की विधि मुझे भी बता, मेरा भी कल्याण कर दे। उसके आग्रह से साधनशीला ने उसे परम पावन नाम दे कर, कहा—देवि! इस राम नाम महा मन्त्र का मन से आराधन कर। श्रद्धा से, प्रेम से, अखण्ड निश्चय से और परम तत्परता से इस साधन को साध। ईश्वर आप का कल्याण अवश्य ही कर देगा। उस नव दीक्षिता

ने ऐसे उत्तम भावों से साधन किया कि थोड़े ही दिनों में उसके भीतर के नयन खुल गये, उसका आत्मा जग गया और उसको स्थिरता मिल गई। उसको ऐसा अनुभव होने लगा कि मुख बन्द रहने पर भी उसका आत्मा अपनी आत्म शक्ति से परमेश्वर का शुभ नाम जप रहा है और उसके सम्मुख असंख्य सूर्य के सदृश प्रकाश विद्यमान है। उसने अपनी दीक्षा देने वाली को बहुत कहा कि अब आगे जाने से कोई लाभ नहीं है, जो पाना था सो पा लिया फिर व्यर्थ के पर्यटन से क्या काम, परन्तु उसने कहा—अब धाम देख कर ही लौटना उचित है। उस साधन-शीला के सत्संग से यात्रा करने वाली अनेक स्त्रियां जप आराधन करने लग गईं। उन सब को समझ आ गई कि ईश्वर का परम पावन राम नाम ही उत्तम तीर्थ है। इसके जप से, चिन्तन से, कीर्तन से तथा ध्यान से ही मनुष्य संसार सागर से तर जाता है।

(५) उपासक जन व्यर्थ के वाद विवाद से दूर रहा करते हैं। मतवाद की कोरी कल्पना के किले के कैदी वे कदापि नहीं बना करते। सम्प्रदाय के जाल में उनको फंसा लेना किसी के लिये भी असम्भव हुआ करता है। एक बार का वर्णन है कि एक साधनशील गृहस्थ, सवेरे के समय, स्नान कर के सरयू तट पर बैठ कर श्री राम नाम का सिमरन तथा ध्यान कर रहा था। वह साधक श्री रामानन्द जी का शिष्य समझा जाता था। वह कर्मी, सेवक, श्रद्धालु, अनुभवी और आत्मदर्शी था। वह माला के सहारे से भी स्मरण किया करता था। जब वह स्व साधन समाप्त कर'के घर को चल पड़ा तो उस समय एक संन्यासी ने उसको कहा—अरे तू तो बड़ा योगी बना फिरता है परन्तु माला की फांसी तो अभी तक तेरे गले में डली हुई है, क्या यही तेरा योग है ? वह हँस कर बोला—मैं श्री रामानन्द का शिष्य हूँ, करना धर्म मानता हूँ। भक्ति धर्म में अनुभव ही सच्चा ज्ञान माना है। परन्तु आप तो शंकर के अनुयायी हैं, केवल बोलना ही सर्वोपरि

कर्म मानते हैं। आप के मत में मत वाक्यों का रट लेना ही ज्ञान है। श्री रामानन्द जी पूरे संन्यासी हैं, कर्म करने वाले हैं, पूर्ण योगी हैं, रामानुरागी और परम त्यागी हैं। उनके भक्ति धर्म को आराधिए तब आपको सत्य की समझ आप ही प्राप्त हो जायगी।

(६) कबीर जी अपने युग में बड़े महात्मा, परम भक्त, यथार्थ के ज्ञाता, योगी और सन्त समझे जाते थे। उनको गंगा तट पर श्री रामानन्द जी ने राम नाम का मंगलमय महा मन्त्र दे कर प्रबुद्ध किया था। उसी महा मन्त्र के प्रताप से श्री कबीर जी योगी तथा सन्त कहलाये। जब लोगों को यह पता लगा कि रामानन्द जी ने कबीर जी को राम नाम की दीक्षा दे दी है तो इस से सारी काशी में कोलाहल मच गया। शास्त्री, पण्डित, उपाध्याय, आचार्य, मठाधीश, महन्त और मण्डलेश्वर आदि मिल कर कह रहे थे कि रामानन्द ने जो कबीर जी को राम नाम की दीक्षा दी है यह घोर पाप और बड़ा अनर्थ किया है। वह किसी को भी शूद्र नहीं समझता, ऊंच नीच सब को समान मानता है। वह छूआछूत के भेद भाव को भारी भ्रम कहता है। उसको दस नामियों से बाहर निकाल देना चाहिए।

गुरुपूर्णिमा का दिन था। सवेरे के समय एक ब्राह्मण जो काशी जी में चोटी का विद्वान् माना जाता था, गंगा तट पर बैठा सिमरन कर रहा था। उस समय वहां महन्त मण्डल और पण्डित गण अपने शिष्यों से पूजोपहार ले रहे थे। उनके चेले तथा विद्यार्थी अपने गुरु जनों का पूजन करते हुए साथ साथ ही रामानन्द जी को मन मानी गालियां दे रहे थे। जब उस ब्राह्मण ने अपना नित्य कर्म समाप्त कर लिया तब उसने महन्तों को कहा—क्या आप लोगों ने अपने शिष्यों को गुरु-पूजन का यही पाठ पढ़ाया है जो ये इस समय कर रहे हैं? हा ! क्या अच्छा होता जो आप सब, आज इस पुण्य पर्व पर, पतित पावन राम नाम का पुण्य पाठ कर के पवित्र हो जाते। अपने अपशब्दों से आप श्री रामानन्द जी को

कदापि दुःखित नहीं कर सकते। वह तो एक परम भागवत, वीत-राग, त्यागी और आत्म-दर्शी पुरुष है। उस निर्लेप, समदृष्टि के पास ऊँच नीच का भेद, सर्वथा नहीं है। वह सब को राम नाम का दान दे कर निहाल कर रहा है। बड़ा आश्चर्य है, आप लोग जो रात दिन अद्वैतवाद पर इतना घोटा लगाते रहते हैं और अभेदवाद का समर्थन करते हैं उनमें इतना घोर भेद और घृणा ! आप का वेदान्तवाद निरा वाणी-विलास है, आप का अद्वैतवाद कोरा वाक्य-जाल है, आपकी कल्पनाएँ सब निकम्मी हैं, आप का पाण्डित्य आडम्बर है और आप का संन्यास निरी विडम्बना है। आप लोग जब तक भगवती भक्ति भागीरथी में स्नान नहीं करोगे तब तक श्री रामानन्द जी के कथन के सार को नहीं समझ सकोगे।

(७) जो जन राम पर पूरा भरोसा कर लेते हैं, जो राम पर ही निर्भर हो जाते हैं, जो पक्के निश्चय वाले हुआ करते हैं और जिन को संकट में भी श्री राम में संशय नहीं होता उनकी सहायता भगवान् अवश्य करता है। उनके संकट श्री हरि दूर कर देता है। वाराणसी में एक संन्यासी अधिकारियों को राम नाम का उपदेश दिया करता था। उसके उपदेश से सैंकड़ों नारी नर कृतार्थ हो जाते थे। वह महात्मा रामानन्द था। वह पहला महा पुरुष था जिस ने यवन राज्य के यौवन युग में, राम नाम की जोत जगाई। वह सन्तों, साधुओं, भक्तों और उपासकों का शिरोमणि समझा जाता था। एक दिन एक स्त्री ने रामानन्द जी को नमस्कार कर के निवेदन किया कि महाराज! मुझे आत्म-कल्याण का साधन बताइये। मुनि ने कहा—देवि ! त्रिकुटी स्थान में राम नाम शब्द का ध्यान किया करो और इसी मधुरतम नाम का मुख से स्मरण करती रहो। परमेश्वर तेरा बेड़ा पार कर देगा। जो नारायण, निराकार, निरंजन और अन्तर्यामी है वही सन्त-सम्मति में राम समझना। वह स्त्री बताई गई विधि से ध्यान सिमरन करने लग गई एक मास में ही उसका अभ्यास सिद्ध हो गया और

वह अपने आपको कृतकृत्य समझने लग गई। वह प्रायः आधी रात के समय अथवा रात के पिछले पहर में साधन किया करती थी।

उस स्त्री के मैके अवध प्रांत में थे। एक बार वह अपनी माता को मिलने गई तो जब वह रात के समय ध्यान में मग्न बैठी हुई थी उस समय उसके बाप के घर पर, अकस्मात्, एक डाकू दल आ कूदा। उष्ण काल था। आधी रात थी। सब जन सो रहे थे। सर्वत्र सन्नाटा था। नींद का राज्य सब पर छाया हुआ था। उस समय वही अकेली छत पर बैठी ध्यान कर रही थी। घर की सभी धन सामग्री को लूट कर चलते समय डाकुओं ने उस ध्यान लीना स्त्री को भी उठा लिया और उस घर को आग लगा दी। आग लग जाने से ग्रामवासियों का ध्यान प्रचण्ड आग की ओर खिंच गया और डाकू दल, समय पा कर, उस स्त्री सहित धन सामग्री लिए दूर निकल गया। वे डाकू एक नवाब की छावनी के सैनिक थे। वे प्रायः ऐसे ही हत्याकाण्ड किया करते थे। उनके ऐसे काले कामों की पूछताछ कोई कुछ भी नहीं करता था। उस दिन वे जो धन लूट कर ले गये थे वह तो उन्होंने आपस में बाँट लिया परन्तु उस स्त्री को वे अपने सरदार को दे आए। वह रामानुरागिणी जब सरदार के घर पहुँचाई गई तो उसने वहां कोई बीस हिन्दू स्त्रियाँ बन्द पड़ी देखीं। वे सभी दासियां बनाई गई थीं। उन पर घोर अत्याचार होते रहते थे। वह उपासिका उस महा संकट में पड़ कर भी घबराई नहीं, दुष्टों से भयभीत नहीं हुई। उसे श्री राम पर पूरा भरोसा था कि वह अवश्य ही संकट निवारण करेगा। वह निरन्न, उपवास किये, केवल राम नाम का मनोहर मंत्र जप रही थी। उसको सरदार के संग रहने के लिए दासियों ने समझाया, न मानने पर बहुत डराया, धमकाया, पर वह सती थी जो अपने व्रत धर्म के पालन में वज्र-शिला के सदृश अचल बनी हुई थी। रात के समय सरदार ने उसे उसके कमरे में आने को कहा परन्तु उस सती ने उसकी बात को

नहीं माना और उसके उन पैशाचिक कुकर्मों के लिए उसको बहुत ही धिक्कारा। वह बड़ा निर्दय और क्रूर-कर्मी था। उसने उसको बलात्कार से सताना चाहा परन्तु उस सती ने विद्युत् वेग से दौड़ कर उसकी कमर से तलवार खींच ली और एक ही वार से सरदार के शरीर के आर पार कर दी। उस खड्ग को घुमाती हुई वह उस मकान से बाहर निकल कर अपने पितृ-गृह को चल पड़ी और जिस भी सैनिक ने उसे रोका टोका उसी को उसने मृत्यु शय्या पर सुला दिया। इस प्रकार अनेक आततायियों को ठिकाने लगा कर अन्त में वह अपने पितृ-गृह में पहुँच गई। स्वरक्षार्थ सारा संग्राम करते हुए, उसे यही प्रतीत होता था कि कोई कला उसके हाथ, उसके मस्तक, उसके हृदय और उसके मन के साथ काम कर रही है। और वह तो निरी साधन बनी हुई घूम रही है।

(८) देहली के निकट, यमुना नदी के किनारे बैठ कर, एक श्रद्धावान् राजपूत भजन कर रहा था। वह एक हृष्ट पुष्ट सुन्दर और सुडौल सैनिक था। उसकी आकृति से शूरवीरता झलकती थी। जब वह प्रातःकाल का साधन समाप्त कर के राम राम जपता हुआ अपनी छावनी में गया तो उसने देखा कि सारी सेना, अस्त्र शस्त्र से सन्नद्ध हो, बड़ी सजधज से प्रस्थान करने को उद्यत हो रही है। पूछने पर उसे पता लगा कि अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की घोषणा कर दी है और सारी राजपूत सेना उसके साथ जाएगी। उसको भी सुसज्जित हो जाने का आदेश मिल गया। वह उपासक सोचने लगा कि मुग़ल बादशाह की दासता की सांकल में बन्धा हुआ मैं अपने देश और वंश के शिरोमणि महाराणा प्रताप सिंह से लड़ने जाऊँ ? हा ! धिक्कार है इस पर-वशता पर। महाराणा के विरुद्ध शस्त्र उठा कर मैं देश-द्रोही, जाति-द्रोही, धर्म-द्रोही और बन्धु-वैरी कदापि नहीं बनूँगा। यह कर्म घोर पाप और नीच कर्म है। ऐसे विचार कर उसने घुटने टेक कर नमस्कार पूर्वक प्रार्थना की – हे ईश्वर ! तू सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्

भगवान् है। ऐसे विषम समय में तू ही मुझे वह पथ प्रदर्शित कर जो सच्चे वीर मनुष्यों का है और जो धर्म युक्त है। मेरे ईश्वर ! ऐसा न हो कि कहीं तेरे जन की तलवार किसी तेरे आश्रित भक्त को सताने का साधन बने। मुझे सुमति दे और मेरे घट में तू स्वयं दीपक जला जिस से मैं कल्याण कर्म को पहचान सकूँ।

इस प्रकार प्रार्थना करता हुआ वह राम नाम में ऐसा लीन हो गया कि उसको प्रतीत होने लगा कि कोई उसे कह रहा है कि एक निरपराधी, देश-वंश-बन्धु के विरुद्ध हाथ उठाना महा अनार्य-कर्म है। शाही शक्ति अपने दाव पेंच से तेरे वंश के बन्धु बान्धवों को आबद्ध करना चाहती है। उसके जाल में न फंसना, उसके षड्यन्त्रों को सब पर प्रकट कर देना, उसकी सर्वनाश-कारिणी कूटनीति से बचे रहना और उसके प्रलोभन के पंजे का पंछी न बनना सच्ची बुद्धिमत्ता है। शाही की चाल और नीति को निरर्थक बना देना बड़ी वीरता है। इस समय हिन्दुत्व का साथ देना ही सत्य धर्म है। क्षत्रिय का जन्म ही सत्य की रक्षा के लिए हुआ करता है। सो तू सत्य का साथ दे, सत्य की सहायता कर और सत्य पर आरूढ़ रह। यह वाणी सुनते ही उसने सेना के साथ जाना अस्वीकार कर दिया। उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं, अन्याय और अनर्थ पूर्ण संग्राम में, शाही का साथ कदापि नहीं दूँगा। उसको इस अपराध पर मारा, पीटा और बहुत सताया गया परन्तु वह राम भक्त, अन्तिम सांस तक अपने निश्चय पर अचल बना रहा।

(६) भगवान् के भक्तों में नाम ध्यान से कभी कभी अद्भुत दृढ़ता आ जाया करती है। वे अत्यन्त कष्ट क्लेश में भी सन्मार्ग नहीं छोड़ते। एक समय एक भक्त उपासना में लीन गंगा तट पर बैठा हुआ था। चाँदनी रात थी। चाँद अपनी शांत और कोमल किरणों से वनों उपवनों में, वाटिकाओं में, सरोवरों में, कमल कुंजों में तथा प्राणि-जगत् में सुख का और शान्ति का संचार कर रहा था। उसी समय एक बादशाह किसी

जंगली पशु के पीछे घोड़ा दौड़ाता हुआ उसी स्थान पर आ कर खड़ा हो गया जहां वह उपासक ध्यान मुद्रा में विराजमान था। बादशाह ने उसे कहा कि उठ कर घोड़े की बाग को पकड़ ले। मैं यहां थोड़ी देर के लिये विश्राम लेना चाहता हूँ। परन्तु उस उपासक ने उसकी बात न सुनी। बादशाह ने कोप में आ कर उसको तीन चार कोड़े भी लगाये पर वह अपने स्थान से न उठा। अन्त में खिज कर, बादशाह ने म्यान से तलवार निकाल ली और लगा वह उसे कतल करने। परन्तु अचानक उसका घोड़ा चौंक कर एक ओर को उछल कर कूदा जिस से बादशाह एक गहरे गढ़े में गिर गया। उसने गिरते ही हा हा के नाद से चिल्लाना आरम्भ किया ही था कि वह आश्चर्य चकित हो गया जब उसने यह देखा कि वही ध्यानी उसके अंगों से धूल झाड़ कर उसे उठाये गढ़े से बाहर ले आया है और उसको आई चोटों पर पानी पट्टी करने लगा है। बादशाह ने हाथ जोड़ कर कहा—बाबा ! जब मैंने तुझे मारा पीटा तब तो तू हिला तक नहीं। अब क्या बात हो गई जो तू मेरी इतनी सेवा शुश्रूषा कर रहा है ? भला कभी कोई अपने सताने वाले की भी इतनी सेवा किया करता है ? उस उपासक ने कहा—जब तू घोड़े पर चढ़ा हुआ मुझे पुकारता तथा पीटता था उस समय तू एक शक्तिशाली और अभिमानी बादशाह था। उस समय मैं ईश्वर के भजन में मग्न था तब मेरा वही कर्तव्य था कि अभिमानी बादशाह चाहे कितना ही कष्ट दे उसे सहन करूँ और अपने राम के भजन को भंग न होने दूँ। परन्तु जब तू गहरे गढ़े में गिर गया और चिल्लाने लगा उस समय मेरा यही कर्तव्य था कि मैं एक पीड़ित मनुष्य को सहायता दूँ, उसकी विपत्ति को दूर करूँ।

(१०) एक वन में एक वैरागी कुटी बना कर रहता था। वह भीलों को राम नाम सिमरन सिखाया करता और उनके बच्चों को हिन्दी भी पढ़ाया करता था। उसका कण्ठ भी बड़ा मधुर और सुरीला था। जब वह हरि गीत

गाया करता तो भीलों के झुण्ड सुनने के लिए एकत्र हो जाते थे। प्रभात को, रात को जब भी वह सुर अलापता तो वन सहित पहाड़ियां गूँजने लग जातीं और वहां एक अपूर्व समय बन्ध जाता। उसके भक्ति भाव से पूर्ण गीत, भीलों के बच्चों ने कण्ठाग्र कर रक्खे थे। भय में, संकट में, विपत्ति में, व्याधि में, शोक में, हर्ष में, मंगल समय में और उत्सव के अवसर में, भील स्त्री पुरुष श्री राम भरोसा ही उत्तम माना करते थे। वैरागी की शुभ संगति से उनमें आचार विचार और धर्म कर्म का एक उत्तम अंकुर उत्पन्न हो गया था। वह वैरागी उन वनवासियों में धर्म तथा प्रेम का बादल बन कर बरसता रहता था जिस से भीलों के हृदयों के खेत, पवित्र भावों से, हरे भरे फूले फले हुए दिखाई देने लग गए थे।

एक बार ऐसा हुआ कि रात के समय उस वन को अकस्मात् आग लग गई। वह अग्नि अपनी ज्वाल माला से वनराजी को भस्मसात् करती हुई, अपनी लाल-लाल लपटों से, बड़े वेग से, भील कुटियाओं की ओर भी लपक पड़ी। रात का समय था। अपनी अपनी कुटियाओं में भील निश्चिन्त सोये पड़े थे परन्तु वह रामानुरागी वैरागी हिरण की भांति दौड़ता हुआ एक एक कुटी पर जाता था और भीलों को जगाता था। उसने भीलों को आग से बचाने में एक दैवी कर्म कर दिखाया। वह प्रातःकाल तक भीलों के घरों की रक्षा में निरन्तर यत्नशील बना रहा। उस दावानल ने सहस्त्रों पशु भस्म कर डाले, हाथियों के झुण्ड झुलस दिये, अनगिनत पंछी भून छोड़े परन्तु उस वैरागी के पुरुषार्थ से भीलों के एक बच्चे तक को आंच न लगी। वे सभी सुरक्षित बने रहे। अगले दिन सब भीलों ने एकत्रित हो कर वैरागी की प्रशंसा करते हुए कहा—महाराज ! आप के ही पुरुषार्थ से हम सब बच गये, नहीं तो रातों रात हमारा सर्वनाश हो जाता। आप हमारे जीवन दाता हैं। यह सुन कर, राम राम जपता हुआ वैरागी बोला—प्यारे भाइयो ! रक्षा करने वाला राम ही है। मनुष्य तो निमित्त

ही कहा जा सकता है। मुझे तो उस भयकाल में यह भी नहीं सूझता था कि मेरा राम मुझ से क्या करवा रहा है, मुझे किधर लिये जा रहा है। मैं तो श्री राम का एक यंत्र बना हुआ घूमता जाता था, शक्ति श्री भगवान् की ही काम करती थी। भक्ति युक्त भक्तों में श्री राम की शक्ति अवतरित, आप ही आप, हुआ करती है।

(११) भक्ति धर्म आशा का धर्म है, प्रेम का धर्म है और भगवान् के आराधन का धर्म है, इस कारण भक्तों में कभी कभी दैवी साहस तथा सामर्थ्य प्रकट हो जाया करता है। अवध प्रान्त में एक विधवा स्त्री निवास करती थी। संसार के सम्बन्धों में उसका सहारा एक मात्र पुत्र ही था। परन्तु वह भगवान् पर पूरा भरोसा रखती थी, हरीच्छा पर उसका सुदृढ़ निश्चय था। घर के काम काज से निवृत्त हो कर वह अपना समय राम भजन और पर-हित में ही बिताया करती थी। वह अपने शुभ कर्मों से आस पास के ग्रामों में भी प्रसिद्ध थी। उसका पुत्र उस प्रान्त के राजा की सेवा में सैनिक का काम करता था परन्तु अपनी माता के प्रभाव से वह भी रामोपासक, सच्चा सज्जन, पक्का हिंदू-धर्मी और शूरवीर पुरुष था। एक बार ऐसा हुआ कि अयोध्या नगरी पर एक नवाब ने आक्रमण कर दिया। उसकी सेना ने नगरी में घुस कर त्रास फैला दिया, मन माने पाशविक अत्याचार किए और सर्व हनन की घोषणा कर दी। उस समय नगरी में जहां देखो वहीं बाल, बाला, तथा वृद्ध बिलखते हुए ही दृष्टिगत होते थे। लोग घर बार विहीन हो गए थे। अपनी बहिनों, बहुओं, बेटियों तथा माताओं का किसी को कुछ भी पता न था। त्राहि त्राहि के आर्त्त नाद से नगर के सभी द्वार दिवार गूंज रहे थे। नगर के गली कूचे, हाट बाट और चौक चबूतरे मनुष्यों की हत्याओं से लहू लुहान दिखाई देते थे। ऐसे विषम समय में, उस विधवा का पुत्र, कुछ एक सैनिक संग लिए, नगर की चार दीवारी को कूद कर नगर के भीतर आ गया। उसने देखा कि पर सेना ने घोर

त्रास फैला रक्खा है; नगर की अवस्था बहुत बुरी हो गई है और सैकड़ों स्त्रियों को सैनिक घेरे हुए न जाने कहां को लिए जा रहे हैं। उसने उन स्त्रियों में अपनी माता को भी घिरे हुए देखा। ऐसे हृदय विदारण करने वाले दृश्य को देख कर, उसने अविरल अश्रु बिंदु बरसाते हुए कहा—हे मेरे ईश्वर! श्री रघुनाथ की नगरी में यह घोर घृणित अत्याचार ! भगवती जानकी की राजधानी में स्त्रियों का ऐसा अपमान ! वह भगद्भक्त ये शब्द कहता हुआ भूल गया कि वह कहां है और क्या कर रहा है। वह आवेश में, साथियों के सहित, शत्रु सेना पर सिंह की भांति टूट पड़ा। अपने वीर संघ सहित राम राम जपते हुए उसने थोड़े काल में ही पर-दल-बल को दलित कर डाला जिस से शत्रु सेना हार कर भाग निकली।

वे वीर जय राम का नाद गुञ्जाते हुए सब से पहले उन स्त्रियों के पास पहुँचे जो अत्याचारियों के पापमय पंजे से अभी मुक्त हुई थीं। उन वीरों ने उनको धैर्य दे कर उनके घरों में पहुँचा देने का प्रबन्ध कर दिया। उस समय विधवा का वह वीर पुत्र जब दौड़ कर अपनी माता के चरणों पर पड़ा तो उसकी मां ने उसको आशीर्वाद दे कर कहा—बेटा! सचमुच तूने आज मुझे पुत्रवती बनाया है। इतनी स्त्रियों की रक्षा कर के तूने सच्ची वीरता प्रकट की है। पुत्र ! तेरा आज का कर्म चमत्कार और आश्चर्य रूप है। उस वीर ने अपनी मां के पैर पकड़ कर कहा—माता! मुझे तो कुछ भी पता नहीं कि यह काम मुझ से कैसे करवाया गया। मैं तो राम स्मरण कर के कुछ ऐसे आवेश में आ गया था कि एक निमित्त मात्र ही बना घूमता था। वास्तव में यह सारा शुभ काम श्री रामेच्छा से ही हुआ है।

******

सावित्री पाठ

(१) सरयू के सुन्दर तट पर एकदा, एक सन्त समाधि लगाए बैठा था। उस समय, वहां एक सरल प्रकृति का जिज्ञासु मनुष्य आया और समीप जा कर, उसने विनय सहित, उस सन्त को नमस्कार की। थोड़े समय के पश्चात्, उस सन्त ने अपनी आंखें खोलीं और समीपस्थ उस सज्जन को देखा। महात्मा ने उस से पूछा कि आप का यहां आना किस कारण हुआ है ? उस जिज्ञासु ने हाथ जोड़ कर कहा—सन्त जी ! मैं अयोध्या का निवासी हूँ। आत्म-ज्ञान की जिज्ञासा से, भ्रमण करता हुआ, इस ओर आया हूँ। यहां आने पर दैव योग से आप के दर्शन भी हो गए। कृपा कर के कोई ऐसा साधन बताइए जिस से मेरा मनोरथ पूर्ण हो जाए।

जिज्ञासु के कथन को सुन कर सन्त ने कहा—सौम्य ! आत्म-ज्ञान का उत्तम साधन सावित्री पाठ है। तू प्रति दिन गायत्री पाठ किया कर। इस से तेरा आत्मा जग जायगा। तेरे सारे भ्रम तथा संशय नष्ट हो जायेंगे। जगन्माता गायत्री के पाठ से तेरे कर्म-संस्कार भस्मसात् हो जायेंगे और फिर तुझे कुछ करना शेष न रहेगा।

उस भक्त ने मुनि कथन स्वीकार कर के प्रति दिन दो सहस्त्र गायत्री जाप करना आरम्भ कर दिया। जाप का साधन करते हुए जब पर्याप्त समय बीत गया तो उसने एक दिन जाप के समय अपने सम्मुख सूर्य का मण्डल देखा। उस दीप्तिमान सूर्य मण्डल में उसने एक तेजोमयी मूर्ति अवलोकन की। उस अद्भुत मूर्ति को देख कर उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई और वह अपने हृदय में विचारने लगा कि यह तेजोमयी मूर्ति क्या है ? और क्यों प्रकट हुई है ? ऐसा विचारते ही उसे प्रतीत हुआ कि वह मूर्ति कह रही है—मैं तेरा आत्मा हूँ, मेरे आत्मा, अब तू मुक्त हो गया है। तेरी संसार यात्रा समाप्त हो गई है। अब तुझे कुछ भी करना शेष नहीं रहा। मेरे आत्मा, मैं

तेरे स्वरूप की अभिव्यक्ति हूँ—तेरा प्रतिसाक्षी हूँ। जो तू है वही मैं हूँ। देह में, तू साक्षी है और मैं प्रतिसाक्षी हूँ। मैं व्यवहार में हूँ और तू कूटस्थ है। व्यवहार में जो चेतना काम करती है तथा देखती, सुनती, सूंघती, छूती और विचारती है वह व्यावहारिक आत्मा कही जाती है। उसके ऊपर जो साक्षी है, देखने वाला है, स्वभाव से कार्य करता है, उचितानुचित का द्रष्टा है और सत्यासत्य का बोधक है वह साक्षी और कूटस्थ आत्म-भाव है। उसी को सन्त जन पारमार्थिक आत्मा कहा करते हैं।

व्यावहारिक और पारमार्थिक आत्मा, ये शब्द, केवल संकेत मात्र हैं। आत्मा तो अखण्ड वस्तु है। वृत्ति-विशिष्ट आत्म-भाव को व्यावहारिक कहा है और शांत साक्षी आत्म-भाव को पारमार्थिक कहा गया है। वृत्ति-विशिष्ट आत्मा जब वृत्तियों पर विजय पा लेता है तब वह मुक्त हो जाता है। उस समय, सूक्ष्म शरीर सहित वह स्थूल शरीर से बाहर भी विचरने लग जाता है। उस समय वह स्थूल शरीरस्थ स्व स्वरूप का साक्षी होता है, इस कारण वह प्रतिसाक्षी कहा जाता है। ऐसी जीवन्मुक्त अवस्था आराधना करने वाले भक्त को उपलब्ध हो जाया करती है।

(२) साधन करने वाले साधकों को अपने आत्म-भाव का कभी कभी शाब्दिक प्रत्यक्ष भी हो जाया करता है जिस से वे आत्म-सत्ता को भली भांति जान जाया करते हैं।

एक बार एक मुनि ने एक व्यापारी को जाप करने का आदेश किया। वह व्यापारी प्रति दिन प्रातःकाल स्नान कर के सरयू जी के तीर पर बैठ कर मध्यान्ह पर्यन्त पवित्र पाठ जपा करता था। ऐसा श्रेष्ठ साधन साधते हुए उसे दो वर्ष बीत गए परन्तु उसको कोई विशेष लाभ न हुआ। इस कारण उस साधक के चिदाकाश में निराशा निशा का अन्धकार फैलने लगा। उसका मन उकता गया, चित्त उचट गया और धीरे धीरे धैर्य धरणी पर से, उसकी धारणा तथा विश्वास के पांव डगमगाने लगे। अन्त में

वह सावित्री के जाप को विसर्जन करने के लिए उद्यत हो गया। ऐसी अवस्था में, एकदा उसे वही जाप दाता मुनि सरयू के किनारे घूमता हुआ दृष्टि गोचर हुआ। वह भक्त दौड़ कर अपने गुरु के पैरों पर जा पड़ा और गद् गद् हो कर बोला—महात्मन्! दो वर्ष बीत गए परन्तु मुझे सफलता न मिली और मुझ में आत्म-ज्योति न जगी। अब मैं निराश हो कर थक गया हूँ। दया कर के डांवांडोल जन को, बांह पकड़ कर जगदीश के मन्दिर में ले चलिए। आप के बिना इस जन का सहारा और कोई नहीं है। अब मैं आप की चरण शरण में पड़ा हुआ हूँ। इस गिरे जन को आप स्वयं ही उठाइए और मार्ग पर लगाइए। मुनि ने उसको प्रेम-भाव-भरे हाथों से उठा कर बिठाया और कहा—प्यारे! तू अनन्त काल से संसार में चक्कर लगाता चला आया है। यह अवसर तो काल की सीमा से पार हो जाने का आ गया है; घबरा नहीं। भरोसा रख। सहस्त्र-बाहु भगवान् अवश्य-मेव तुझे उठाएगा और तेरी डगमगाती विश्वास-नौका को किनारे लगाएगा। तू उसके धाम का विश्वासी बना रह; हरि नाम पर निश्चय कर, आशा की तार न तोड़ और श्रद्धा से जप करता चला जा। देख, यहां से आध कोस पर मेरी कुटिया है, वहां प्रति दिन सवेरे आ कर, मेरे समीप बैठ कर जाप किया कर। तेरी आशा पूर्ण हो जायगी।

वह व्यापारी नित्य सवेरे वहाँ मुनि कुटी पर जा कर गुरु दर्शन के अनन्तर साधन करने लग जाता। एक मास के पश्चात् एक दिन ऐसा हुआ कि उसने अपने आपको देह से बाहर बोलता हुआ जाना। उसने समझा कि उसका आत्मा ही सावित्री का जाप कर रहा है और राम नाम गुञ्जा रहा है। उस से उसे अपार प्रसन्नता प्राप्त हुई। वह प्रसन्नता के तरंग में आसन से उठ कर अपने गुरु के पास जा कर बोला—महाराज! क्या आत्मा देह से बाहर भी बोला करता है? मुनि ने उत्तर दिया कि स्वर्गीय आत्मा जब जागृत होता है तो स्थूल देह से बाहर भी बोल उठता

है परन्तु उसका वह बोलना स्वाभाविक हुआ करता है। वहां भी उसका सूक्ष्म शरीर तो होता ही है। जो जन उच्च कोटि के आत्म-ज्ञानी होते हैं उनका सूक्ष्म शरीर, उनकी देह के चारों ओर दो तीन हाथ तक विस्तृत हो जाया करता है। इसका नाम तेजोमय शरीर भी कहा गया है। इसी शरीर में योगि-जन नाना नारायणी लीलाएं अवलोकन किया करते हैं। यह अवस्था भाग्यशाली मनुष्यों को ही मिला करती है। इस अवस्था में आत्मा को अपनी संकल्प शक्ति का पूरा भेद ज्ञात हो जाता है। प्यारे! तू धन्य है जो तूने अपने आपको जान लिया। यह तेरा अपना शाब्दिक प्रत्यक्ष है। अब तू निराश कदापि नहीं होगा।

(३) गंगा नदी, हिमालय की गोद में मन मानी क्रीड़ा कर रही थी। उसकी गरगराती, गड़गड़ाती ध्वनि, सवेरे के समय सुनने में सुखदायी प्रतीत होती थी। जब भगवती भागीरथी के तरल और उतावले तरंग, तट पर पड़ी स्वच्छ, सुन्दर, चिकनी और लम्बी चौड़ी शिलाओं के साथ आ कर टकराते तो स्नान करने वाले उनके संग कलोल करने लग जाते। मुनियों के अंगोछे, उपरने तथा तूम्बे, तरंग माला के संग अठखेलियां लेते हुए दिखाई देने लगते। तरंग माला से निःसृत, जल-कण-मिश्रित, मन्द, सुगन्ध पवन, स्नान-कर्ताओं के तनों को छू कर अपूर्व ओज दान करती। ऐसे मन लुभाने वाले समय में एक सन्त, गंगा जी की विमल, शीतल, नील धारा में गोता लगा कर, आकण्ठ पानी में खड़ा हो कर, त्रिलोक-तारिणी, पाप-शाप-हारिणी वेद-माता गायत्री का जाप कर रहा था। उस काल में वहां अनेक सज्जन स्नान करने आए और नहा कर स्व-स्व स्थान को चले गए परन्तु वह साधन-शील सन्त उस अतिशय शीतल जल-धारा से बाहर न निकला। किनारे पर खड़े लोगों ने सोचा कि यह स्नान करते करते सुन्न हो गया है, इसे उठा कर जल से बाहर ले आना चाहिए। उनमें से दो मनुष्य जल में प्रविष्ट

हुए और उस मुनि को उठा कर जल से बाहर ले आये। दर्शकों ने देखा कि सन्त का शरीर जड़ी-भूत हो रहा है। परन्तु वह मन्द मुस्कराहट के साथ सावित्री-स्मरण कर रहा है। लोग आश्चर्य करते थे कि उसका शरीर इतना ठण्डा हो गया है कि इस में गरमी का अभाव सा दिखाई देता है परन्तु इसके मुख पर, होठों पर मन्द मन्द हंसी अठखेलियां ले रही है और यह पुण्य पाठ कर रहा है। उन सब को, वहां खड़े एक साधु ने कहा—यह मुनि समाधि में है। यद्यपि इस की काया ठण्डी पड़ गई है परन्तु इसका मन आध्यात्मिक ऊष्मा से भरपूर है। यह आत्म-भाव से जप कर रहा है। जिन जनों का आत्मा कर्म बन्धन काट कर स्वतन्त्र हो जाता है वे किसी भी अवस्था में कहीं भी समाधिस्थ हो जाया करते हैं। जीवन्मुक्त जन का आत्मा मुख में, मुख से बाहर और स्व-देह के सभी ओर अपने आत्म-भाव से विद्यमान हो कर नाम ध्वनि आदि द्वारा अपना परिचय दे दिया करता है। यह एक नारायण जन है। लोगों ने पूछा—महाराज ! नारायण जन किसे कहते हैं ? उसने कहा—नरायण व नारायण परमेश्वर का नाम है। नरों का—मनुष्यों का शरण-स्थान होने से भगवान् को नारायण कहा है। नारायण के उपासकों को नारायण जन कहा जाता है। वैदिक काल में जो लोग गायत्री पाठ से अध्यात्म-सूर्य की आराधना किया करते थे उनको लोग नारायण जन कहा करते थे।

(४) मथुरा के समीप एक गाँव था। उसमें सभी नारायण जन बसते थे। वे प्रातःकाल स्नान शुद्धि के पश्चात्, सूर्य के सम्मुख खड़े हो कर अथवा बैठ कर सावित्री की आराधना किया करते थे। उनके साधनों में सावित्री की साधना उत्तम समझी जाती थी। इस मंत्र को वे इष्ट मंत्र मानते थे। उनकी यह धारणा थी कि यह मंत्र सर्व सिद्धि देने वाला है। इसका प्रभाव बहुत शीघ्र हुआ करता है।

एक बार एक साधक कार्यवश घर से विदेश यात्रा के लिए चल

निकला परन्तु विदेश में जा कर भी उसने अपनी उपासना में अन्तर न आने दिया, वह नित्य नियम से उपासना किया करता था। उसको उपासना करते देख कर एक विदेशी सज्जन ने पूछा—महाशय ! आप नहा कर गीले तन क्या पढ़ा करते हैं ? और सूर्य की ओर क्यों देखा करते हैं ? भक्त ने उत्तर में कहा—मैं नारायण जन हूँ। मैं एक मंत्र द्वारा परमेश्वर का पूजन किया करता हूँ। सूर्य के सम्मुख मुख रखने का तो यह तात्पर्य है कि जैसे सूर्य तेजोमय है तथा जीवन दान करता है ऐसे ही आत्मिक लोक भी तेजोमय है। परमात्मा का स्वरूप भी प्रकाश रूप है। अपना आत्मा भी ज्योतिर्मय है। इसी कारण गायत्री के उपासक ज्योति के सामने तथा समीप बैठ कर नारायण का आराधन किया करते हैं। आर्यों के धार्मिक कर्मों में ज्योति का बड़ा आदर है। उनके सभी धर्म कर्म ज्योति के सम्मुख किए जाते हैं। उनका विश्वास है कि सर्व ज्योतियों की ज्योति ईश्वर है, परमेश्वर परम प्रकाश स्वरूप है। उसी से सारे लोक लोकांतर प्रकाशित होते हैं।

(५) उपासक जन नारायण के आराधन में सुदृढ़ और निर्भय हो कर बैठा करते हैं। सच्चे उपासक अपनी धारणा के पक्के और व्रत नियम के पूरे ही होते हैं। वे प्राणों को संकटों में समझ कर भी प्रण-पालन से पीछे नहीं हटा करते। एक समय का वर्णन है कि एक दिन सिंधु नदी का प्रवाह अपना पूर्ण प्रबल रूप धारण कर रहा था। पल पल में पानी का पूर बढ़ता ही चला जाता था। ऊँचे ऊँचे तरंग उठ रहे थे। लहरों पर लहरें दौड़ती हुई जब किनारे से टक्कर लेतीं तो नदी तट पर खड़ों के कलेजे कांपने लग जाते। नदी के किनारे धमाधम गिर रहे थे। लोगों के देखते देखते ही पानी गज़ों ऊँचा चढ़ आया। ऊँचे ऊँचे पेड़ पानी में डूब गए। एक किनारे से दूसरा किनारा दीखता नहीं था। ऐसा प्रतीत होता था कि कोई सागर उमड़ आया है। देखने वाले सभी भयभीत हो

रहे थे। ऐसे संकट के समय में किनारे खड़े लोगों ने देखा कि कोई हिन्दू स्त्री, स्नान कर के नदी तट पर बैठी उपासना कर रही है और निश्चिन्त तथा निश्चल भाव से उपासना कर रही है। जिस स्थान पर वह बैठी हुई है वह स्थान पानी के पूर की प्रबल टक्करें लगने से आस पास से बह गया है। केवल चार हाथ भूमि बची हुई है, जिस पर वह निर्भय भाव से बैठी हुई है। उसके सामने बीसियों हाथ भूमि घुल कर लीन हो गई परन्तु वह है मानो जिसे कुछ पता ही नहीं है। अनेक युवक दौड़ कर आगे गए और उसे पुकार कर बोले—माई ! भूमि बहती चली जाती है, किनारे गिर रहे हैं, जल-धारा घोरतर होती जाती है। जहां तू बैठ रही है वह स्थान भी तीन ओर से बह गया है और उसका निचला तल भी घुल कर निकल रहा है। उसके पीछे की ओर एक लम्बा रेखाकार छिद्र हो गया है। सावधान हो जा। उठ कर शीघ्र भाग आ, नहीं तो आन की आन में बह जायेगी। परन्तु उनका सब चिल्लाना पुकारना बहरे कानों पर पड़ा। वह तो हिली तक नहीं। पानी के तरंग उछल उछल कर उसकी कमर छू जाते थे परन्तु वह मूर्तिवत् अचल बनी हुई थी। सैकड़ों मनुष्य दूर खड़े उसके डूबने के पल की प्रतीक्षा कर रहे थे और उसके सुदृढ़ निश्चय पर आश्चर्य-चकित थे परन्तु उनमें से किसी को भी यह साहस नहीं होता था कि दौड़ कर जाये और उसको उठा कर भय-स्थान से बाहर ले आये।

ऐसे ही सब के देखते हुए चार घड़ियाँ बीत गईं। तब कहीं उस स्त्री का आसन हिला। उसने स्व मुख पर हाथ फेर कर आचमन किया और तत्पश्चात् बड़ी निश्चिन्तता पूर्वक जल-कलश को हथेली पर उठा कर वह धीरे धीरे अपने घर की ओर चल पड़ी। उस समय दर्शकों ने आश्चर्य से देखा कि उस स्त्री ने ज्यों ही उस भूमि-भाग पर से निज चरण उठाये वह धड़ाम कर के सिन्धु जल-तल में लीन हो गया। परन्तु वह उपासिका थी कि उसने पीछे को मुख फिरा कर दृष्टि पात तक भी नहीं किया।

दर्शकों ने कहा—माई ! तेरे सामने भूमि बह रही थी, जल वृद्धि [illegible] गर्जना कर रहे थे और पानी के प्रवाह पर मृत्यु मूर्तिमान् हो कर नाच रहा था, तो ऐसे भयावने समय में तू डरी क्यों नहीं? क्या तुझे मरने का भय नहीं होता था ? तब वह मुस्करा कर बोली—जब मैं जगन्माता गायत्री की गोद में बैठी हुई थी तो मैं डरती क्यों ? भला, माँ की मधुर गोद में बैठ कर भी कभी बच्चा डरा करता है? अहो, यदि उपासना करते, हरि गीत गाते मृत्यु हो जाये तो फिर मरना नहीं पड़ता, काल जीत लिया जाता है। मुझे तो माता के मधुर स्मरण और आराधन में ऐसी समाधि मिल गई थी कि अन्तर-दृष्टि से देखते हुए बहती हुई सिन्धु नदी अपने सर सर के सरस स्वर से माँ की आरती करती हुई जान पड़ती थी। तरंग-मालाएँ, मेरी माता के महा मन्दिर के सामने सुन्दर नाच करती हुई प्रतीत होती थीं और वह सारा दृश्य एक अनोखी लीला दिखाई देता था। मुझ को तो वह जल-स्थल सब कुछ भगवती, नारायणी गायत्री का एक निराला गम्भीर गीत ही प्रतीत हुआ।

(६) यमुना के किनारे ब्राह्मणों का एक गाँव था। उस गाँव के सभी ब्राह्मण, सवेरे स्नान कर के गायत्री पाठ पूर्वक नारायण का पूजन किया करते थे। उस गाँव में एक ऐसा उपासक भी था जिस के हाथ में ऐसी शक्ति थी कि यदि वह किसी रोगी को छू देता तो वह प्रायः अच्छा हो जाता। एकदा एक अंग्रेज़ वन में मृगया करता हुआ, पेट की तीव्र पीड़ा से पीड़ित हो कर उस गाँव के पास आ कर लेट गया। उस से चला नहीं जाता था और घोर वेदना के कारण वह अति व्याकुल हो रहा था। सायं समय था। शीत काल था। सूर्यास्त हो रहा था। ऐसे समय में वह रोगी यही सोचता था कि इस मरण-कारिणी पीड़ा से निस्तार कैसे होगा? मैं यदि अब जाऊँ भी तो कैसे और कहाँ? यहां मेरा कोई भी सहायक नहीं है ? जिस समय

वह ऐसी निराशा में पड़ा पीड़ा के कारण करवटें ले रहा था उसी समय उसके पास वह ब्राह्मण आ खड़ा हुआ। ब्राह्मण ने सहानुभूति दर्शाते हुए उस अंग्रेज़ से कहा—महाशय, यहां मिट्टी पर क्यों पड़े हुए हो ? आपको क्या कोई कष्ट है ? इस में आप की मैं क्या सहायता और सेवा कर सकता हूं ? उत्तर में उस अंग्रेज़ ने उसे कहा—मेरे पेट में प्रबल पीड़ा हो रही है, उस से मेरा प्राणान्त होने लगा है। उसकी वेदना की बात सुनते ही वह ब्राह्मण, आगे बढ़ कर उसके पास बैठ गया और अपना हाथ उसके पेट पर फेरने लगा। इस प्रयोग से सात आठ पल ही में उस रोगी की महा वेदना दूर हो गई और वह हँसता हुआ उठ कर बैठ गया। उसने धन्यवाद-पूर्वक उस ब्राह्मण से पूछा कि क्या आप कोई जादू-विद्या जानते हैं जो इस प्रकार वेदना दूर कर देते हैं ? ब्राह्मण ने हँस कर कहा—मेरे पास तो हरि नाम का जादू है। मैं जब से उसका जाप आराधन कर रहा हूं तब से मेरे हाथ वैद्य बने हुए हैं। यह उसी नाम का माहात्म्य है कि प्रति दिन अनेक रोगी प्रायः नीरोग कर दिये जाते हैं।

(७) नर नारियों से भरी हुई एक नौका गंगा को पार कर रही थी। गंगा में पानी भी बहुत चढ़ा हुआ था। छिन छिन में जल प्रवाह बढ़ता ही जाता था। ऊँचे ऊँचे तरंग नौका को बार बार धकेलते थे। उसकी गति को रोकते थे और पार जाने में पूरी बाधा डालते थे। कभी कभी लहरें कूद कूद कर नौका में ही छलांगें मारने लग जाती थीं। स्थान स्थान में भंवर और चक्कर उसको जल तल में लीन करने की चेष्टा कर रहे थे। पवन के साथ मिल कर पानी का प्रबलतर प्रवाह नाव को उलट पलट कर देने पर उतारू हो रहा था। मल्लाह सारा बल लगा चुके परन्तु उनके चप्पू कुछ भी न कर सके। अन्त में वे थक कर जी छोड़ बैठे। पार जाने वाले सभी बड़ी निराशा में डूब रहे थे। प्राणों का भय सब के तनों को सुखा रहा था। सब के चित्त चंचल हो रहे थे। नौका को परली पार ले जाने

का उपाय किसी को कोई भी नहीं सूझता था। ऐसे शोचनीय समय में, सामने एक संन्यासी तैरता आता सब को दिखाई दिया। लोग उसे देख कर आश्चर्य करते थे कि वह नदी के ऐसे प्रबल वेग को चीरता हुआ कैसे चला आ रहा है। सब के देखते ही देखते वह संन्यासी नाव के पास आ कर उछल कर नाव में आरूढ़ हो गया और लगा उसको चलाने। थोड़ी देर में ही वह वेगवती जल धारा को चीरता फाड़ता हुआ, नाव को भय से बाहर ले गया। जब नौका परले किनारे जा लगी तो उसमें आरूढ़ सभी सज्जनों ने संन्यासी के साहस की, चतुरता की, कौशल की और असाधारण बल की बहुत ही प्रशंसा की और उसे कहा—महात्मन्! आप हमारे प्राण दाता हैं। ऐसे संकट-संकुल समय में यदि आप सहायक न होते तो हमारा यह बेड़ा मँझधार में ही डूब जाता।

लोगों का ऐसा कथन सुन कर उस संन्यासी ने कहा—सज्जनो! मैं तो इस किनारे बैठा हुआ सावित्री की साधना कर रहा था परन्तु अचानक मेरी दृष्टि बन्द हो गई। तब मुझे ऐसा दिखाई दिया कि मनुष्यों से भरी हुई नाव जल में डूबने लगी है। यह देखते ही मैंने आंखें खोलीं और आगा पीछा देखे बिना ही मैं नदी में कूद पड़ा। यह तो भगवान् की लीला है कि नाव के इस किनारे आ लगने और आप के बच जाने का निमित्त मैं बन गया हूँ। वास्तव में बेड़ा पार करने वाला तो नारायण आप ही है। वही विघ्न-विनाशक, पाप-हारक, संकट-निवारक तथा भक्त-जन-तारक है। उपासक जनों की ऐसी ही धारणा और श्रद्धा हुआ करती है।

(८) उपासक जनों ने समय समय पर साहस और मानस-बल दिखा कर आश्चर्य-जनक कार्य किये हैं। उनकी निर्भया, बलवती और अप्रतिहता इच्छा-शक्ति ने, कभी-कभी, अद्भुत चमत्कार कर दिखाये हैं। एक बार ऐसा हुआ कि अवध का एक राजा, सरयू के किनारे, मृगया कर रहा था। वन में एक वनैला पशु देख कर उसने उसके पीछे अपना

घोड़ा सरपट छोड़ दिया। वह वनचर जीव तो दौड़ता हुआ घने वन में घुस कर छुप गया परन्तु राजा सीध लगाये वहीं खड़ा हो गया। उस थके हुए नृप ने विश्राम लेने के लिए, इधर-उधर दृष्टि फिराई तो पास ही एक मधुर-मूर्ति मुनि, मौन मुद्रा रमाये बैठा उसे दीख पड़ा। इतने में ही दाहिनी ओर का घना और लम्बा घास उसे हिलता हुआ दिखाई दिया। कुछ सावधानी से देखने पर उसने जान लिया कि एक सिंह, घास में से, उसी की ओर चला आ रहा है। वह राजा तो, उस समय भयभीत था ही परन्तु सिंह को देख कर उसका घोड़ा भी चौंक पड़ा और मुख फेर कर भाग उठा। घोड़े के भागने की ध्वनि सुन कर उस मुनि के नेत्र खुल गये। उसने देखा कि एक घुड़-सवार विपद्-ग्रस्त है, आगे घोड़े पर चढ़ा वह दौड़ा चला जा रहा है और उसके पीछे एक सिंह लपका चला जाता है। आपत्ति में पड़े उस मनुष्य को बचाने के लिए मुनि भी उसी ओर विद्युत्-वेग की भांति दौड़ने लगा। वह केसरी अभी अपने प्रबल पंजे से घोड़े को पकड़ने नहीं पाया था कि मुनि के हाथ का भरपूर वार उसके कोमल पेट पर आ पड़ा। वह सिंह उस खड्ग-प्रहार से गिर कर वहीं अचेत हो गया और घोड़ा एक गढ़े में जा गिरा। घोड़े के गिरते ही राजा के मुख से हाहाकार का आर्त्त-नाद निकल कर उस वन में गूँज गया। मुनि ने आगे बढ़ कर देखा कि राजा सहित घोड़ा जिस गढ़े में गिर पड़ा है उसमें एक भयंकर काला नाग फुंकारे मार रहा है और उछल कर राजा की ओर जाने की चेष्टा कर रहा है। रुकावट, एक मात्र, बीच में गिरे पड़े घोड़े की ही है। जिस समय राजा और सांप में केवल चार पांच अंगुल का अन्तर रह गया था ठीक उसी समय मुनि ने छलांग लगाई और वह घोड़े के सिर पर जा पड़ा। गढ़े में जाते ही उसने पहला काम यह किया कि खंजर मार कर सांप के टुकड़े कर डाले। उसके सिर को कुचल डाला। तत्पश्चात् राजा को उठा कर वह गढ़े से बाहर ले आया। राजा

भय से मूर्छित था। पवन पंखा और शीतलोपचार करने से कोई आध घडी के अनन्तर वह सचेत हो सका। नयन उघाड़ते ही राजा ने देखा कि वह उस मुनि के पास लेटा पड़ा है। मुनि उसके मुख में थोड़ा थोड़ा जल डाल रहा है और मृग-चर्म का पंखा बना कर, धीरे-धीरे उसे झल रहा है।

राजा ने धीमी ध्वनि से कहा—महात्मन्, मैं कहां हूँ ? क्या मैं कोई स्वप्न देख रहा हूँ ? थोड़ी देर हुई तब मैंने आपको, यहां से कोई आध कोस दूर बैठे हुए देखा था। अहो! यह सांप आप ने ही मारा है, सिंह का संहार करने वाले भी आप ही हैं। मुनि! यदि आप मुझे आज न बचाते तो मेरी क्या दशा होती ! धन्य हो महात्मन्! आप का पराक्रम, पुरुषार्थ और दया-भाव आदर्श रूप है, आप की शक्ति प्रशंसनीय है तथा आप का कर्म-योग अनुकरणीय है। मन्द मुस्कानपूर्वक मुनि ने कहा—राजन्! यदि मैं यहां न होता तो विधाता कोई अन्य विधि बना देता। वह जिसे चाहे निमित्त बनाये। भगवान् का भाना प्रबलतम है।

(६) एक व्यापारी अपनी पत्नी सहित गंगा-स्नान करने जा रहा था। वे पति पत्नी, दोनों, पैदल ही जा रहे थे। मार्ग में एक घने वन में उनको रात पड़ गई। उनको उस घने, नीले जंगल में उस समय कोई भी आश्रय नहीं दीखता था। एक तो संघना वन दूसरे अन्धेरी रात का आ जाना प्रलय काल के समान ही हुआ करता है। उस यात्री की भार्या तो भय के मारे कांप रही थी। उसका गला सूख रहा था और उसके मुख में वाणी बंद हो गई थी। बेचारी चल तो रही थी पर डर के कारण उसके पैर डगमगाते थे—पथ पर सीधे नहीं पड़ते थे। उधर उसका पति भी हाँप रहा था। उसके फेफड़े फूल गये, पैर सूज गये, अंग शिथिल हो गये और उसका सिर चक्कर खाता तथा दिल धड़क रहा था। वे दोनों चलते तो थे परन्तु अपने आपको भूल से गये थे। उनके मन में

निराशा छाई हुई थी। ऐसी भयकारिणी अवस्था में इधर उधर भटकते हुए उन्होंने रात का एक पहर बिता दिया। रात का दूसरा पहर आरम्भ होते ही अकस्मात् सामने उनको एक कुटिया दीख पड़ी। कुटिया के भीतर एक दीवा टिमटिमा रहा था जो वहाँ किसी मनुष्य का होना सूचित करता था। वे दोनों यात्री, आशा के साथ, विश्राम के लिए उस कुटी के द्वार पर जा पहुँचे। उस कुटी के भीतर उन्होंने एक संन्यासी उपासना करता हुआ देखा। जब वह संन्यासी उपासना कर चुका तो यात्रियों ने उसे कहा—बाबा ! हम यात्री हैं। यदि आप आज्ञा दें तो इस कुटिया में आसन लगा कर रात बिता लें ? उत्तर में आदर से उस मुनि ने कहा—प्रसन्नता से कुटी में आ जाइए परन्तु यह पेड़ों के पत्तों से बनाई गई है और इसके किवाड़ भी नहीं हैं। कभी कभी यहाँ सिंह भी आ जाया करता है। इस वन में चक्कर लगाने वाले लुटेरे तथा चोर उचक्के प्रायः नित्य ही आ जाते हैं। यह स्थान सुरक्षित तो नहीं है परन्तु भीतर आ जाओ। जो होगा राम भरोसे देख लिया जायेगा। यह सुन कर यात्री ने पूछा—महात्मन् ! ऐसे भयकारी स्थान में आप आ कर क्यों टिकें हैं ? मुनि ने उत्तर दिया कि मेरे पास केवल तूम्बा और धोती है। मुझ से किसी ने लेना ही क्या है, इस एकान्त स्थान में मैं सावित्री की साधना के लिए टिका हुआ हूँ। जब साधना समाप्त हो जायगी तब मैं यहाँ से किसी दूसरे स्थान को चला जाऊँगा। ऊपर की बात अभी समाप्त नहीं हुई थी कि उस व्यापारी ने घोड़े की टाप की ध्वनि सुनी जिस से वह पैरों से चोटी तक थर थर काँप गया। उसकी भार्या मूर्च्छा खा कर अचेत हो कर गिर पड़ी। वह देख रहा था कि चार चोर, सीधे कुटी की ओर लपर लपर करते चले आ रहे हैं। परन्तु वह उपासक था जो उस समय निर्भयता से कुटी के द्वार से बाहर निकल कर खड़ा हो गया और चोरों को ललकार कर बोला—बस, आगे न जाओ। घुड़-सवार ने कहा—बाबा! हम तो यहाँ नित्य आया करते

हैं। पहले तो तूने हमें कभी भी नहीं रोका। आज ऐसी क्या बात है जो तू रोक रहा है? जब आप के पास पैसा ही नहीं है तो आपको भय किस बात का है ? महात्मा के रोकते रोकते ही वे चोर कुटी में घुस गये और उन यात्रियों की एक एक वस्तु बटोरने लगे। उनका सब कुछ छीन कर वे अन्त में उन दोनों को हनन करने के लिए आगे बढ़े। तब फिर उस मुनि ने उनको कहा—इनको मत मारो। जब इनका सब कुछ ले चुके हो तो इनको मारने से तुम्हें क्या लाभ है? परन्तु उन लुटेरों ने मुनि के कथन को न माना और लगे उनको खड्ग से हनन करने। दया और कर्तव्य-बुद्धि से प्रेरित संन्यासी ने एक डाकू के हाथ से झपट कर तलवार छीन ली और उसे घुमा कर, उसने चारों चोरों को अचेत कर दिया। चोरों को मरण-शय्या पर सोये देख कर उन यात्रियों के प्राण पीछे फिरे। वे सचेत हो कर मुनि को मन ही मन में धन्यवाद देने लगे। इस दुर्घटना के पश्चात्, तुरन्त ही एक सिंह वहाँ आ कर गर्जने लगा। मुनि ने उसे भी वहीं सुला दिया। मुनि के ऐसे आश्चर्यकारी पराक्रम को देख कर उस व्यापारी को बहुत प्रसन्नता प्राप्त हुई। सवेरे प्रस्थान के समय उसने मुनि को कहा—महात्मन्! आप ने हमारा संकट टाला, हमारे प्राण बचाये, आश्रय दे कर हमारी रक्षा की, इसके लिये तो हमारा रोम रोम आप का धन्यवाद करता है परन्तु हमारे हित के लिये आपको हिंसा करनी पड़ी इसका हमें बड़ा खेद है। संन्यासी ने हँस कर कहा—मैं सावित्री का उपासक हूँ और श्रुति-विहित धर्म को मानता हूँ। मैं कोई लीचड़ वैष्णव साधु तो नहीं हूँ जो गुप्ततया मन मानी हत्या करता चला जाऊँ और प्रकटतया फूँक फूँक कर पैर रक्खूँ। मैं तो दीन के उद्धार और रक्षण को दया मानता हूँ। दुष्ट के दमन को संन्यासी लोग सदा से पुण्य कर्म ही मानते आये हैं। दीन हीन के पालन और रक्षण में दया भाव का स्रोत, शक्ति के साथ मिल कर, आप ही आप बह निकला करता है। भक्ति धर्म में यही महत्ता है।

हरि भजन

भक्ति भाव को बढ़ाने का उत्तम साधन, मन को पवित्र तथा विमल बनाने का ऊँचा हेतु और अनन्त काल से प्रसुप्त आत्मा को जगाने का मुख्य कारण, मुनियों ने, हरि भजन वर्णन किया है। भक्त जनों ने इस सर्व श्रेष्ठ साधन से मन के समाधान को प्राप्त करना बहुत ही सुगम माना है। सन्त जन कीर्तन को, अन्तःकरण को कोमल बनाने का बड़ा प्रभाव-जनक कारण कहा करते हैं। सचमुच परमात्मा के प्रेम में पगे हुए पदों के पाठ में वह रस है, वह स्वाद है, वह प्रभाव है जो किसी भी दूसरे मार्ग में दीखना दुर्लभ है।

(१) गंगा के किनारे एक कुटी में एक साधु निवास करता था। वह बड़ा भजनीक और भावुक मनुष्य था। जिस समय वह राम-रस-सने, सुरीले गीत गाया करता तो सुनने वालों के मन अनायास ही मौन हो जाया करते थे। उसकी कुटी के समीप बहती गंगा में स्नान करने वाले परस्पर यही कहा करते कि यहाँ आ कर तो दो स्नान हो जाते हैं—एक तो विमल, नील जल-गंगा में और दूसरा शान्त, सुखमय, स्वादुतम, प्रेम-पूर्ण संगीत-गंगा में। ये दोनों स्नान तन, मन की मैल को धो देते हैं। इस भक्त के भाव-पूर्ण भक्ति-भरे गीतों ने गंगा के इस किनारे को एक सच्चा तीर्थ बना दिया है। परन्तु वहीं, उस कुटी के निकट, एक योगाश्रम भी था। उसमें बीस पच्चीस साधन करने वाले साधु सदा ही बने रहते। वे बड़े त्यागी वैरागी कहे जाते थे। उनमें धोती, नेती, बस्ती, आदि षट्कर्मों की चर्चा रात दिन चलती रहती थी। वे आसन, मुद्रा आदि सभी कठोर कर्म और प्राणायामादि सर्व क्रियाएँ साधते रहते थे। उनमें खान पान के बड़े कड़े बन्धन वर्ते जाते थे। वे प्रायः कृशकाय, उत्साहहीन, निराशा-ग्रस्त, उदासीन और निरुद्यमी से बने पड़े रहा करते थे। उनमें कौन कितना ऊँचा योगी बन गया था यह तो भगवान् ही जानता था परन्तु उनके घी

की, दूध की, बादामों के तेल की और खिचड़ी माठे की बातें तो उस ओर आने जाने वाले सभी जन जानते थे। वैसे वे सभी महात्मा माने जाते थे परन्तु उनमें से किसी के पास बैठो तो वह सब से बड़ा सिद्ध अपने आपको ही कहता था, दूसरे आश्रम-वासियों को दम्भी, साधारण, अजान, भ्रान्त और निकम्मा ही बताता था। एक बात उन सब साधकों को अखरती थी जो उनके निकटतर कुटी में एक भजनीक साधु का निवास था। उनके आश्रम में जो भी आता उसी के आगे सब उसकी निन्दा किया करते कि वह किसी से पैसा धेला तो नहीं लेता परन्तु है निरा अज्ञानी, तभी तो तम्बूरा लिये गला फाड़ता रहता है। वह हमारे साधनों में बड़ा भारी विघ्न बना बैठा है। रात दिन हरि गीत ही गाया करता है। हमारी वृत्ति को जमने ही नहीं देता। इसको यहां से निकलवा देना चाहिए।

वह योगाश्रम जिस सेठ के धन से चलता था उसका व्यापार लेन देन का था। वह निर्धनों से बड़ा कड़ा सूद ले कर पूंजीपति बना था। उसने कचहरियों में न जाने कितने किसानों के घर बार, भांडे बर्तन, कपड़े, कम्बल और पशु तक ले कर उनको निरन्न पेट बनाया था। परन्तु योगाश्रम के यति लोग उसकी प्रशंसा करते हुए कहा करते कि सेठ जी तो धर्मावतार हैं, साधु सन्त के भक्त हैं, बड़े दयावान हैं, अद्वितीय उदार और दान-वीर हैं। एक दिन सायंकाल, वह सेठ उस नगर के कोतवाल को साथ लिये योगाश्रम में आया। उस समय अभ्यासियों ने अपने पालक पोषक की प्रशंसा पेट भर की और उसको कहा—सेठ जी, आप की उदारता तथा दया से हमारे सारे साधन ठीक निभ रहे हैं परन्तु पड़ोस में एक गाने बजाने वाला साधु आ कर टिक गया है, वह बड़ा विघ्न बखेड़ा बन रहा है। सायं प्रातः, हमारे साधनों के समय, वह तम्बूरा ले कर गाने बजाने लग जाता है। हमारे ध्यान में वह बड़ी बाधा डालता है। एक वृद्ध अभ्यासी ने कहा—वह तो आधी रात तक सूर, तुलसी आदि के गीत गाता

रहता है और बीच में नाचने भी लग जाता है। ऐसी बात सुन कर सेठ ने कहा—बहुत अच्छा, मैं अभी उसे वहाँ से उठवा देता हूँ। वह सेठ वहाँ से उसी समय उठ कर, कोतवाल सहित, उस साधु की कुटी पर गया तो उस समय वह तम्बूरे के साथ सुर मिला कर, भक्ति प्रेम से, हरि गीत गा रहा था। उसकी दोनों आँखों से प्रेम-बिन्दु छम छम बरस रहे थे। वह भक्ति-रस में गद्गद् हो रहा था। वे दोनों भी प्रेम में ऐसे मग्न हो गये कि सोने के समय तक, एकाग्र मन से, हरि भजन सुनते रहे। वे देश काल दोनों को भूल गये। जब उस साधु ने हरि भजन समाप्त किया तब वे दोनों वहां से निज गृह को चल पड़े। मार्ग में उन्होंने परस्पर कहा कि यह साधु तो सच्चा योगी और पूरा सिद्ध है। इसके भजन गीत में ऐसा प्रभाव है कि सुनने वालों के मन आप ही आप स्थिर हो जाते हैं। इसके संगीत में कोई ऐसा रस है कि सुनने वालों की वृत्तियां भी लय हो जाती हैं। आज इस समय जो एकाग्रता, जो समता, जो शान्ति और जो लीनता हम ने अनुभव की है वह वर्णनातीत है और आश्चर्य रूप है।

(२) रात के पिछले भाग में, एक भक्त तम्बूरा लिये, गली कूचे में, हरि कीर्तन करता हुआ फिरा करता। उसके भजन गान में ऐसा निराला रस था कि सभी लोग कान लगा कर बड़ी लगन से उस कीर्तन को सुना करते थे। परन्तु वहां केवल एक मनुष्य ऐसा था जो उस कीर्तन-कर्ता को, प्रति दिन दो चार कोरी कोरी गालियाँ अवश्य दे दिया करता था। उसको खिज इस बात की थी कि यह प्रातःकाल जब गाता हुआ इधर आता है तो मेरे ध्यान को भंग कर देता है। इसके गीतों को सुन कर मेरा मन उखड़ जाता है। एक दिन ऐसा हुआ कि वही ध्यानी जब मन्दिर में गया तो वहां वही कीर्तन करने वाला, हरि गीत गाता हुआ, उसे दिखाई दिया। सवेरे का शान्त समय था। प्रकृति में समता छा रही थी और साथ ही वह भक्त भक्ति-रस के सुमधुर, मंगल गीत अपने अतुल प्रेम से गा रहा

था। उस दिन उस ध्यानी को हरि गीतों में ऐसा अपूर्व रस आया कि वह अपने आपको पाप ताप से ऊपर समझने लग गया। उसको अभूत-पूर्व शान्ति और समता अनुभव होने लगी। उस दिन से वह निरन्तर उस मन्दिर में उस मीठे कीर्तन को सुनने जाया करता। दो मास के भीतर ही उस अन्तःकरण-स्पर्शी कोमल कीर्तन ने उसकी काया पलट डाली। उसको वह एकाग्रता लाभ होने लगी जिस का पहले उसने स्वप्न भी नहीं देखा था। एक अवसर पर उस ध्यानी ने उस कीर्तन-कर्ता से पूछा कि हरि गीत किस प्रकार गाने चाहिएँ? भक्त ने कहा—सवेरे उठ कर व शान्त भाव से किसी भी काल में भक्त को चाहिए कि अपने पूरे प्रेम से, प्रेममय पदों का पावन पाठ करे, उत्तम भावना के साथ भक्ति-भरे गीतों को गाये, भक्ति-रस में लीन हो कर, आवेश में पद पढ़े और गद्गद् हो कर, रामानुराग रस में मग्न हो जावे। जिस कीर्तन में रोमांचित हो जावे, प्रेमाश्रु बहने लगे तथा आवेश आ जाये वह कीर्तन सारे तन को, मन को, स्नायु को और सारे मज्जा-जाल को प्रभावित कर देता है। आत्मा को इस से सहज ही शांति प्राप्त हो जाती है।

(३) भक्त जन अपने पुरुषार्थ से आजीविका चलाया करते हैं। उनके निश्चय में निरुद्यमी, आलसी, अकर्मी, क्रिया-हीन और सद्व्यवहार-रहित हो कर, पर-हस्ताक्षेपी बन कर जीवन चलाना सृष्टि नियम और शिष्ट पद्धति के सर्वथा विपरीत है। कर्म-योग-युक्त एक संन्यासी यमुना तट पर निवास करता था। उसका वेष श्वेत था। वह आश्रम के आस पास की भूमि में अपने हाथ से इतनी खेती बाड़ी कर लेता था कि जिसमें उसका अपना निर्वाह हो जाता और समागत अतिथि अभ्यागत को संतोष मिल जाता। उसको जनता बहुत मानती थी परन्तु वह इतना अच्छा त्यागी साधु था कि अतिथि अभ्यागत के चरण तक आप धोया करता था। व्यास-पूजा के पर्व पर उसके सैकड़ों प्रेमी उसकी पूजा

करने के लिए वहाँ एकत्रित हुए। उन्होंने अपने गुरु का आदर सम्मान बड़ी प्रीति के साथ किया और बड़ी श्रद्धा से उसके वचन सुने। वहाँ से चलते समय वे अपने गुरु को कहने लगे—महाराज! आप की आयु अब ८० वर्ष की हो चुकी है। अब आप आश्रम के खेतों को संवारने, बोने तथा काटने आदि का काम न किया करें। इस काम को करते आप के भजन ध्यान में बहुत विघ्न भी होता होगा। यह काम, हम में से आप के सेवक करना चाहते हैं। उस संन्यासी ने हँस कर कहा—प्यारो ! ध्यान भजन उनका भंग हो जाता है जिन की वृत्ति स्थिर नहीं होती, जिन में श्रद्धा भक्ति नहीं जागती, जिन को सन्मार्ग नहीं मिलता और जिन में अविचल निश्चय नहीं होता। यदि राम के मंगल नाम में मनोवृत्ति स्थिर हो जाये तो फिर चित्त उचाट नहीं हुआ करता, काम काज करते हुए भी समता बनी ही रहती है। मैं तो कुदाली को चलाते समय, दराती से काटते समय, खुरपे से घास खोदते हुए और डोलची से पौधों को सींचते हुए भी हरि गीत ही गाता रहता हूँ। क्रिया कर्म में मेरे मन की समता, कभी भी, विषम नहीं होती। नाम दान देते समय मेरे गुरु ने मुझे कहा था कि प्यारे ! मुख में रखना राम नाम और हाथ से करना उचित काम।

(४) मारवाड़ के एक नगर से एक कोस के अन्तर पर, एक छोटी सी पहाड़ी पर एक वैरागी भार्या सहित रहता था। वह समीप के सरोवर पर प्रति दिन सवेरे स्नान कर के पहले ध्यान करता और फिर वहीं बैठ कर सितार की तारों के झंकार के साथ झूमता हुआ हरि गीत गाया करता था। उसके सरस और सुरीले संकीर्तन की चर्चा, धीरे धीरे, सारे नगर में फैल गई। सैकड़ों भावुक जन, प्रति दिन प्रातःकाल, वहां आ कर संकीर्तन सरोवर का स्वच्छ सुरस पान किया करते थे। एक दिन एक सेठ ने उस वैरागी से निवेदन किया कि आप बड़े भक्त हैं, सज्जन हैं और सच्चे साधु हैं। मैं चाहता हूँ कि आप अपने अन्न वस्त्र की सेवा मुझे

दान करें, इसको मैं अपने ऊपर आप की अपार कृपा ही समझूंगा। वैरागी ने धन्यवाद दे कर कहा—सेठ जी ! अन्न तो भगवान् नित्य देता है। मैं कर्मी वैरागी हूँ, मुझे अकर्मण्यता से पूरा वैराग्य है। दो गायें मेरे पास हैं। उनकी सेवा मेरी भार्या करती रहती है। अपने उपयोग से अधिक जितना दूध होता है उसको मैं नगर में बेच कर, खानपान के पदार्थ नित्य ले आता हूँ और फिर निश्चिन्त हो कर हरि गीत गाता रहता हूं। ऐसे हमारी आजीविका श्री भगवान् भरोसे पर सुख से चल रही है। भिक्षा वृत्ति से मुझ को घोर घृणा है।

उस स्वावलम्बी वैरागी ने एक बार राम नवमी का महोत्सव, उस सरोवर पर, मनाना चाहा। नगर के प्रेमियों को कानों कान समाचार मिल गया। नगर-वासी सभी स्त्री पुरुष यह समाचार सुन कर सुप्रसन्न हुए कि आगामी दिन वैरागी बाबा श्री रामचन्द्र जी का जन्म दिन मनायेगा। वह, उस समय, स्वयं संकीर्तन अमृत से श्रोताओं को सिंचित करेगा। सरोवर पर एक महा मेला सा लग जायगा। राम नवमी के दिवस सवेरे ही सहस्त्रों जन सरोवर पर आ कर एकत्रित हुए। सब के मनों में श्री राम चन्द्र महाराज का सम्मान था। सभी जन उस महा पुरुष के जन्म दिन की महत्ता को मानते थे। परन्तु वैरागी बाबा ने जब अपने दिव्य सुर से रामायण का आलाप आरम्भ किया तो उसके माधुर्य से तथा मनोमोहक सुन्दर स्वर से सभी मनुष्य मौन-मूर्ति बन कर श्री महाराज की महिमा में मग्न हो गये। सुनने वाले एक-चित्त हो कर उस चरितामृत को पान करते थे। सब के कानों में श्री रघुनाथ जी का यशोगान गूंज रहा था और वे अन्य सब कुछ ही भूल रहे थे। वे सभी यही प्रतीत करते थे कि वे किसी दैवी शक्ति से प्रभावित हो रहे हैं। जब श्री वैरागी जी ने अपना अद्‌भुत गाना समाप्त किया तो लोगों ने देखा कि वैरागी की भार्या, टोकरी में से, जंगली बेर बांटती चली आती है और कह रही है कि श्री रामचन्द्र जी का अपूर्व पूजन तो मेरे पति देव

ने किया है, इस पर्व के सुअवसर पर मैं वह प्रसाद भेंट करती हूँ। हम दोनों स्व-सहायक हैं; हरीच्छा के भरोसे पर रहते हैं। हमारे भोजन का प्रधान भाग, वन-बेरों का है। वनवास के चौदह वर्षों में, सब से प्रशंसनीय, स्वादुतम, भोज्य पदार्थ श्री रामचन्द्र के लिए शबरी के वन-बेर ही थे।

(५) एक ब्राह्मण हरि गीतों की पोथी ले कर, अपने नगर के चौक में नित्य जा बैठता और अपने मीठे स्वर से कीर्तन किया करता। उसके राम-रस-सने, सुरीले गीतों को सुनने के लिए व्यापारी लोग सहस्त्रों की संख्या में इकट्ठे हो जाया करते थे। वह ब्राह्मण जब गीत गाता था तो लोग यही अनुभव करते थे कि मानो वे उसके सुर की सोपान से चढ़ कर सच्चे सुखमय स्वर्ग में बैठे हुए हैं, उनका अब पाप अपराध तथा कष्ट क्लेश से कुछ भी सम्बन्ध शेष नहीं है।

उस ब्राह्मण के भजनों से प्रभावित हो कर, एक धनी सज्जन ने उस से पूछा कि आप अपनी पोथी का पाठ किस दिन समाप्त करेंगे? मैं चाहता हूँ कि आप की कीर्तन-कथा की समाप्ति पर, उस पर, अच्छा चढ़ावा चढ़ाया जाय। उस दिन आपको सहस्त्र दो सहस्त्र रुपये प्राप्त होने बहुत ही सम्भव हैं। ब्राह्मण बोला—सेठ जी! मेरे पास तो राम पूजन के लिए केवल ये शब्दमय पुष्प ही हैं। इन्हीं की अंजलि से मैं श्री रामार्चन करता हूँ। इस परम पावन पुष्पांजलि को, उपहार ले कर, मैं कैसे बेच डालूं। मेरी पोथी पाठ के लिए है, व्यापार के लिए नहीं है। कीर्तन को, कथा को, शास्त्र-पाठ को और हरि नाम को चढ़ावा ले कर बेचते फिरना निरी कृपणता है, कोरा अभागापन है और अति हीन आजीविका है। कथा कीर्तन को ब्राह्मण, केवल स्व पर के कल्याण के लिए ही किया करते हैं। उनका शास्त्र-श्रवण-श्रावण सर्वथा स्वार्थ रहित वर्णन किया गया है।

(६) भक्तों के कीर्तन से, उपासकों के भजन से, प्रेमियों के पद-पाठ से तथा कर्म-योगियों के संग-संलाप से कोई कितना ही कुतर्की हो, कैसा

ही कठोर हृदय हो तथा चाहे बहुत ही वादी विवादी हो वह अवश्य भक्ति प्रेम से प्रभावित हो जाया करता है।

एक नदी के किनारे आश्रम बना कर एक ब्राह्मण पत्नी सहित निवास करता था। वह चारों वेदों और छेओं शास्त्रों का ज्ञाता था। दूर दूर देश से आ कर, विद्वान् लोग, उस से शास्त्रों के गूढ़तम रहस्य जाना करते थे। प्रान्त प्रान्त में उसका पाण्डित्य प्रख्यात था। वह निःस्पृही, वीत-राग, प्रेमी और बड़ा दयालु था। उसके आश्रम में जो कुछ भी फल फूल कन्द मूल तथा अन्नादि हो जाते थे वह उन्हीं पर अपना निर्वाह करता था। उसने दूध देने वाली कई एक गौएँ पाल रक्खी थीं। उसके पास पढ़ने के लिए विद्यार्थी भी आया करते थे। वह उनको ज्ञानी और हरि भक्त, दोनों बनाता था। उस विद्वान् को हरि-कीर्तन में बहुत प्रेम था। सायं प्रातः, वे पति पत्नी, दोनों, उपासना के पश्चात्, जब सितार की तारों से अपना सुर मिला कर हरि गीत गाया करते तो सुनने वाले गद्गद् हो जाया करते थे। उनके प्रेम-पूर्ण पदों का आलाप श्रोताओं के मनों को प्रेम में निमग्न कर देता था।

चतुर्मास के दिनों में दो संन्यासी उस ब्राह्मण के आश्रम में आ कर टिक गये। वे संन्यासी भी प्रस्थान-त्रय के पूरे पण्डित और सब दर्शन ग्रन्थों के ज्ञाता थे। वह ब्राह्मण प्रति दिन प्रेम-पूर्वक अन्नादि से उनकी सेवा शुश्रूषा किया करता था। एक दिन उन संन्यासियों ने उस ब्राह्मण को ब्राह्मणी सहित हरि गीत गाते देख कर बड़ा आश्चर्य मनाया कि ऐसा धुरन्धर विद्वान्, साधारण मनुष्यों की भांति गाता बजाता है और इसे ईश्वर-पूजन तथा मन के समाधान का साधन बताता है। समझाने की इच्छा से वे संन्यासी एक दिन उसकी पूजा में जा पहुँचे। उस समय वह सुर ताल सहित, भाव-पूर्ण हरि गीत गा रहा था। और भी अनेक पण्डित उस पूजनार्चन में सम्मिलित थे। वह साथियों सहित, सुर-गीत-रस में ऐसा

तन्मय हो रहा था कि देखने वालों को यही प्रतीत होता था कि यह इस समय संगीत-सुधा का स्रोत बन रहा है, इस की नस नस सुरीली सितार हो गई है, यह राग रागिणी का पूर्णावतार है और इसका रोम रोम सुर ताल के संग महा मनोहर नृत्य कर रहा है। उस निराली रास में वे संन्यासी भी चुटकियां बजा कर जय राम, जय राम उच्चारण करते हुए नाचने लग गये। वे राग रस में, अहं त्वं का सारा भेद भूल बैठे। देश काल का उनको कुछ भी पता न रहा। भक्ति भाव भरे गीतों में उनकी वृत्ति एकाकार हो गई। रामानुराग के सुराग ने उनके राग मोह की ममता माया सभी मिटा दी। राम रस के सुस्वाद ने उनमें वह मधुरता भरी कि वे समता सागर में लीनता लाभ करने लग गये। हरि गीत का गाना समाप्त भी हो गया परन्तु उन मुनियों के कानों में, जय राम की सुमधुर ध्वनि, चिर काल तक गूंजती ही रही। उन्होंने मन ही मन विचार किया कि भक्ति भाव की जब भादों झड़ी लगती है तो समाधि के सभी साधन सुगम हो जाते हैं। इस सुगम मार्ग के बिना ध्यान धारणा की चक्की में निरा पिस पिस और पच पच कर मरना ही है। भक्ति प्रेम हीन वेदान्तवाद कोरा कल्पना का कल्प तरु है, न तो उसमें कुछ रस ही है और न सार। भगवान् के अनुराग से रहित, त्याग वैराग केवल बौद्धवाद, अकर्मण्यवाद और निराशावाद है, जो व्यर्थ में ही प्राण पीड़न तथा काया क्लेश रूप है। सत्य पद की प्राप्ति का सुपथ तो परम पुरुष का परम प्रेम ही है। यही सनातन सन्मार्ग है।

(७) एक गृहस्थी प्रभात समय उठ कर, हाथ मुँह धोने के अनन्तर, परमेश्वर प्रेम के गीत गाया करता था। उसके वे सुरीले और स्वादीले गीत उसके सारे परिवार के छोटे बड़े बच्चों को कण्ठाग्र हो गये थे। तिथि त्यौहार को उसका सारा परिवार मिल कर, जब कीर्तन करता तो तब वहां एक अद्भुत समय बन्ध जाता और एक अपूर्व रस बरसा करता।

उसके पड़ोस में एक तार्किक रहता था। वह उस सारे नगर में बड़ा वैज्ञानिक माना जाता था। उसका यह निश्चय था कि मूल प्रकृति से भिन्न आत्मा परमात्मा कोई वस्तु नहीं है। चेतनाचेतन जगत् केवल प्रकृति का विकार और विकास है। उसके अनेक अनुयायी उच्च कोटि के विद्वान् थे। वे सभी अपने मत का प्रचार करने में तत्पर रहा करते थे। उनके तर्क वितर्क के सामने अनेक पण्डित हार मान जाते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि वह तार्किक उस भक्त गृहस्थी के घर पर निमंत्रित हो कर गया। वह दिन बसन्त पंचमी का दिवस था। उस शुभावसर पर वहां अनेक सज्जन सुर ताल से हरि गीत गाने में मग्न थे। वह गृह-पति भी भावना के साथ भक्ति-रस-पूर्ण पदों को एक आवेश में अलाप रहा था। उसका मुख-कमल विकसित था और उसके दोनों कपोलों से उतरते हुए प्रेमाश्रु, मोतियों की लड़ी सी बन रहे थे। सुर ताल के गम्भीर नाद से उसकी रोम-राजी मनोहर मोर बन कर नाच रही थी। उन प्रेम-पूर्ण पदों का एक एक शब्द सुनने वालों के हृदयों में बसता चला जाता था। उस अद्‌भुत कीर्तन का उस वैज्ञानिक सज्जन पर, चुप चाप, आप ही आप ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि उसके तर्क वितर्क का कोट, कंगूरे सहित, स्वयं ही गिर गया। उसकी युक्तियों की माला तुरन्त टूट गई। उसके नास्तिक-वाद के सारे विचार बदल गये और वह सुर में सुर मिला कर आप ही हरि भजन गाने लग गया। उस पर भगवद्भक्ति का ऐसा गूढ़ा रंग चढ़ा कि तत्पश्चात् उसने स्वयं सत्संग लगा कर हरि गीत गाना आरम्भ कर दिया। उसके अनुयायी भी उस सत्संग में सम्मिलित हो कर आस्तिक बन गये।

(८) एक नगर में एक ज्ञानी ब्राह्मण निवास करता था। वह सभी शास्त्रों का ज्ञाता और अद्‌भुत प्रतिभाशाली था। उसके पास अनेक विद्यार्थी विद्योपार्जन के लिए रहा करते थे। वह अपने पाण्डित्य से सारे देश में प्रमाण माना जाता और पुजता था। एक बार एक शंकराचार्य उस

नगर में आ कर विराजमान हुआ। वह भी भाष्यत्रय का ज्ञाता और धुरन्धर विद्वान् था। लोग उसको वेदान्त-सूर्य कहा करते थे। कहा जाता था कि आचार्य जी ने चार महा-वाक्य अनुभव किये हुए हैं और वह साक्षात् ब्रह्म है। वह आचार्य जब भी व्याख्यान देता तो शास्त्रों की पंक्ति पर पंक्ति बोल कर प्रमाणों के पुल बांध देता। उसके ग्रन्थ-ज्ञान की, वेदान्तवाद की, चमत्कारिक तर्क वितर्क की, सूक्ष्म विचार की और सुदृढ़ मनन की, नगर में, जहां जाओ वहीं, प्रशंसा हो रही थी। एक दिन उस ज्ञानी ब्राह्मण ने भी आचार्य महाशय को अपने घर पर निमंत्रित किया। आचार्य जी पालकी में आरूढ़ हो कर शिष्य-मण्डली सहित बड़े ठाठ से वहां पधारे। उस ब्राह्मण ने भी उनके आवभगत में कोई भी कमी न छोड़ी। जब आचार्य ब्राह्मण के धर्म-मंदिर में प्रविष्ट हुआ तो वहां उसने संगीत की सारी सामग्री सजी हुई रखी देखी। तब आचार्य ने कहा—ब्राह्मण! क्या आप संगीत-शास्त्र भी जानते हैं ? पण्डित ने उत्तर दिया कि हमारे पूर्वजों ने भगवान् की भक्ति की श्रुतियां गाने के लिए गन्धर्व उपवेद की रचना की थी। वह संगीत-शास्त्र ही तो है। वेदों का विद्वान् बनने के लिए संगीत-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना बहुत ही आवश्यक है। सुगीत के साथ राम का आराधन करना अति सुगम है। यह सत्य है कि राम-रसमय संगीत-सागर में गोता लगाते ही उपासक को ब्राह्मी अवस्था प्राप्त हो जाती है। भगवान् की महिमा के मनोहर गीत गाते ही मनुष्य के मनोमन्दिर से सारी ममता-माया नष्ट हो जाया करती है। यह सुन कर आचार्य ने कहा—भजन गा कर भक्ति करना द्वैतवाद है। द्वैत में ही भक्ति-उपासना का विधान है। परन्तु आप जैसे विद्वान् को तो वेदान्त-वाक्य मनन करने चाहियें। भजन पाठ, कीर्तन गायन आदि तो अबोध जनों का काम है। यह बाल कर्म आप जैसे पण्डितों को नहीं शोभा देता। इस पर ब्राह्मण बोला—महाराज ! मैं भी एक अबोध बालक ही हूँ। यदि आप चाहें तो मैं आपको अपनी बाल लीला दिखाऊँ।

आचार्य की हां पर ब्राह्मण ने राम-रस-सने सुगीत, सुर सहित गाने आरम्भ कर दिये। ऐसा समय बंधा कि पद गाते ही वह विद्वान् ब्राह्मण गद्गद् हो कर नृत्य करने लग गया और आचार्य भी, अपने सारे शिष्यों सहित, उस रास में साथ देने लगा। वह अनोखी राम-रास मध्यान्ह को आरम्भ हो कर दिन के तीसरे पहर की समाप्ति पर जा कर समाप्त हुई। इस बीच में, देश काल की, किसी को कुछ भी कल्पना न फुरी। सभी सज्जन सुर रस में एकाकार बने रहे। ऐसे शांत और समता भाव से उतर कर आचार्य ने उस ब्राह्मण को गले लगा कर कहा—प्यारे ! हमने पिछला सारा काल शब्दों पर घोटा लगाते ही बिताया, केवल कोरी कल्पना को ही कल्याण का कारण माना तथा व्यर्थ-वाद और वाक्य-जाल ही को यथार्थ ज्ञान समझा। परन्तु परमात्मा का प्रेममय परमानन्द पद तो आज ही पाया है। यह सत्य है कि भक्ति धर्म रसमय है, सन्मार्ग है, सब के लिए सुगम कर्म है और शान्ति तथा समता का दाता है।

******

सेवा

दीन, हीन, दुःखी, पीड़ित तथा दुर्बल जन की तन, मन, धन से सहायता करना सेवा कर्म है। लोक-हित के कामों को करना, जन-सुधार में भाग लेना और देश की दशा को अच्छा बनाना सेवा-धर्म है। वे सभी कर्म सेवा कहे गए हैं जिन से पर हित हो, पर को आश्रय तथा विश्राम मिले, दूसरे के मन, तन को शान्ति तथा सन्तोष प्राप्त हो और जिन से देश, जन तथा जाति का उत्थान और कल्याण हो। सेवा-कर्म करते हुये, सेवक को निष्काम रहना चाहिये। मन में, फल की, यश की, बड़ाई की और प्रशंसा की कामना कदापि नहीं करनी चाहिये। केवल धर्म-बुद्धि और कर्तव्य-बुद्धि से, जो परहित के कर्म किये जाते हैं वे सभी निष्काम कर्म कहे जाते हैं। ऐसी निष्काम कर्म की सेवा

सेवक का कल्याण कर दिया करती है।

(१) एक नगर में एक सच्चा सेवक निवास करता था। वह वेद शास्त्र के पूरे मर्म को समझने वाला पण्डित था। वह अपनी अप्रतिम प्रतिभा प्रभा के प्रताप से जनता में पूजा जाता था। दूर दूर देशों से आ कर, लोग उसके सत्संग से, उसके उपदेशों से, उसके विचारों से और उसके आदर्श जीवन से लाभ उठाया करते थे। परन्तु वह इतना अच्छा सेवक भी था कि समागत अतिथि अभ्यागतों के पांव आप धोने लग जाता, उनको अपने हाथ से पानी पिलाता और उनके जूठे कटोरे तक मांज धो कर स्वच्छ कर दिया करता। थके हुये जन के चरण दबाने में उसे बड़ी प्रसन्नता हुआ करती थी। रोगियों का तो वह सहारा बन जाया करता था। एक पर्व के दिन सैकड़ों जन, उसके सत्संग से लाभ उठाने के लिए, उसके आश्रम में आ कर सम्मिलित हुए। आये हुये सज्जनों ने उसका भावना सहित आदर सम्मान किया। उसने भी अपने सच्चे, शुद्ध सरल और मधुर वचनों से समागत सभ्यों को शान्त, सन्तुष्ट और प्रसन्न कर दिया। जब सत्संग की समाप्ति पर लोग अपने घरों को जाने लगे तो उनको यह देख कर आश्चर्य हुआ कि किसी ने उन सब की जूतियों को झाड़ पोंछ कर स्वच्छ कर रखा है। पीछे पता लग जाने पर, वे अपने गुरु की गुण-गरिमा को गद्गद् हो कर गाने लग गये कि वह पूर्ण पण्डित, धुरन्धर विद्वान्, ऊंचा ज्ञानी और सच्चा सन्त होने पर भी ऐसा सेवक है कि सत्संगियों के जूते तक स्वच्छ करने लग जाता है। पर हित का कोई भी काम करते हुये वह कभी भी नहीं हिचकिचाता। उसके सन्मुख ऊंच नीच का भेद भाव कुछ भी नहीं है। वह सब की सेवा सदा सम भाव से ही किया करता है।

(२) एक विदुषी ब्राह्मणी यमुना जल में स्नान कर रही थी। उसने जब नदी के किनारे पर दृष्टि डाली तो वहां एक भंगिन उसे कांपती हुई

वाली उस ब्राह्मणी ने बड़ी उतावली से जल से बाहर निकल कर, बड़े प्यार से, अपने दोनों हाथें से अपनी लोई पकड़ कर उस भंगिन को ओढ़ा दी। उसके पास बैठी हुई एक दूसरी ब्राह्मणी ने उसी समय उस से कहा—अरी बहिन ! तूने तो इसे छू दिया। यह तो भंगिन है। विदुषी ने कहा—बहिन, मैंने तो शीत से कांपती हुई स्त्री को लोई दी है। मैंने यह नहीं देखा कि यह कौन काम करती है। प्यारी! पर-परित्राण करने में, दान में और सेवा में भेद भाव का भ्रम रखना एक भारी भूल है। सभी भक्तजन, भगवान् के पुत्र हैं। देखती नहीं है, वह कैसे उत्तम भावों से भगवान् के राम नाम का भजन कर रही है।

(३) जेठ का मास था। बड़ी कड़ी गर्मी पड़ रही थी। धूप आग की ज्वाला बनी पड़ी थी। सूर्य की सारी किरणें अग्नि बन कर बरस रही थीं। वेगवती लू भी आग ही उगलती जान पड़ती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि सूर्य, भूमि को भस्म कर डालने पर उतारू हो गया है। इस प्रकार के कड़े काल में एक यात्री, गंगा-स्नान को जाता हुआ, मार्ग में एक पियाऊ पर पानी पीने के लिए ठहर गया। उस समय उस पियाऊ पर पथिकों को पानी पिलाने के लिए सेवा-व्रती, एक विद्वान् ब्राह्मण, बैठा हुआ था। उसने बड़े आदर और प्रेम से पानी का कटोरा भर कर उस प्यासे पथिक को पिलाया। जब वह यात्री पानी पी कर विश्राम लेने लगा तब वहीं बैठे हुए बनिए ने उस से पूछा, भाई! तेरी जाति कौन है ? उसने उत्तर में कहा—मेरी जाति तो हिन्दू है परन्तु वंश चमार है। चमार शब्द सुनते ही उस वैश्य ने चिल्ला कर कहा—अजी पण्डित जी ! आप ने जिस को कटोरे में जल दिया है वह तो चमार है। इस ने तो हम सब का धर्म भ्रष्ट कर दिया। पण्डित ने हंस कर कहा—यजमान जी, मैंने तो एक प्यासे को पानी पिलाया है, उसका व्यापार नहीं पूछा। व्यापार पूछना

व्यापारियों का काम है। ब्राह्मण किसी से पूछे तो एक, ज्ञानादि विचार और दूसरे, क्षमा सन्तोषादि आचार। लेन देन का काम मैं नहीं करता। इस लिए इस से मैंने इसका व्यापार भी नहीं पूछा। रही धर्म की बात। धर्म तो धारणा की बात है। जिस की सत्य में, आत्मा में, परमात्मा में, सेवा में और सत्कर्मों में धारणा पक्की है उसका धर्म न तो पानी का प्याला नष्ट कर सकता है और न ही भोजन की कोई भी सामग्री।

(४) एक युवक अपने माता पिता का परम भक्त था। वह उनकी सेवा करने में सदा तत्पर रहता था। उसके माता पिता ने उसको आशीर्वाद दे कर कहा—प्यारे पुत्र ! अब हम इस तन को छोड़ने लगे हैं। हम चाहते हैं, जिस प्रकार, रात दिन, धूप छाया, सुख दुःख सब एक समान समझ कर तू हमारी सेवा करता रहा है, इसी प्रकार तू जन-सेवा भी करता रहे। भगवान् इसी कर्म से तेरा कल्याण कर दे। उस युवक ने ऐसा ही किया। जहां कहीं भी कोई मनुष्य कष्ट क्लेश से पीड़ित वह सुन पाता वहां वह तुरन्त पहुँच जाता और उसकी हृदय से सेवा करता। इस सत्कर्म के कारण वह जन-सेवक के नाम से प्रसिद्ध हो गया। लोग उसका बड़ा आदर करने लग गये। एक बार ऐसा हुआ कि जन-सेवक के देश में घोर अकाल पड़ गया। उसने जन-सेवा-संघ बना कर, सुगठित रूप से इतना कार्य किया कि अन्न के अभाव से एक भी मनुष्य मरने न दिया। इस से उसकी कीर्ति पूर्णमासी के चांद की भांति सर्वत्र चमकने लगी। राजा प्रजा सब ने उसको बहुत ही आदर सम्मान दिया। सारे देश में वह सर्व-मुख्य मनुष्य माना जाने लगा परन्तु वह अपने सेवा-धर्म में एक-रस बना रहा। एक बार जन-सेवक को सम्मान-दान के लिए राज-सभा में निमंत्रित किया गया। परन्तु लोग आश्चर्य-चकित हो गये जब उनको यह समाचार मिला कि जन-सेवक आज इस कारण इस महा सभा में नहीं आ सका कि इधर को आते समय, अतिसार का रोगी, एक अनाथ, उसको मार्ग में लेटा

पड़ा दीख पड़ा। उसको वह अपनी पीठ पर उठा कर राज चिकित्सालय में ले गया है और वहां उसकी सेवा कर रहा है।

(५) एक त्यागी ब्राह्मण नर्मदा नदी के साथ साथ विचरता हुआ जन-सेवा किया करता था। उसकी यह धारणा थी कि सभी मनुष्य मनु की सन्तान हैं। ऊंच नीच की कल्पना खोटी है। वह जिधर जाता, वनवासियों के सियाने घरानों को क्षत्रिय धर्म की दीक्षा देता जाता। उसकी दीक्षा-पद्धति बहुत साधारण थी—दस बारह जन एकत्रित किये, अग्नि में आहुति दे कर कह दिया कि अपने आपको क्षत्रिय कहा करो। नित्य सवेरे राम नाम का जप किया करना। तीर्थों पर जाते रहना। दान पुण्य भी किया करो। गोरक्षा करना उत्तम कर्म है। तुम्हारा पुरातन और आदि-पुरुष आदित्य हुआ है। वह भूमि पर पहला राजा था। तुम उसी के अंशज और वंशज पुत्र हो। धर्म-रक्षा-निमित्त अपने शस्त्र चलाया करो। अन्याय से बचे रहना। समर से भागना नहीं। विपत्ति आदि में धर्म त्यागना नहीं। जाति-द्रोह कदापि नहीं करना। उन नवीन दीक्षितों को कुछ भी ज्ञान नहीं था कि उनके क्या गोत्र हैं ? उनके गुरु ने उनको जो भी समझाया बताया वे वही मान गये। एक रात का वर्णन है कि पूर्णमासी की चांदनी, नर्मदा की संगमरमरमयी चिट्टी शिलाओं पर चहुँ ओर चमक रही थी। उसी नदी के ऊँचे ऊँचे दोनों किनारे, अपने श्वेत स्वरूप में चमक चमक कर उचकते हुए मानो चन्द्र चुम्बन कर रहे थे। उस समय नर्मदा जल की रूपहरी झलक और उसके तरंगों में नाचते हुए चन्द्र-बिम्ब की चारुतम चंचलता, मुनियों के भी मनों को मोहने वाली थी। ऐसे शोभन समय में उस सेवक ब्राह्मण को एक संन्यासी का मिलाप प्राप्त हुआ। वे दोनों एक चौड़ी, चिकनी, स्वच्छ शिला पर बैठ कर वार्तालाप करने लगे। संन्यासी ने ब्राह्मण की प्रशंसा करते हुए उसको कहा—आप ने तो सहस्त्रों वनवासियों को क्षत्रिय बना दिया और उनमें वीर भाव भर दिया है। दीर्घ सांस ले

कर ब्राह्मण ने कहा—महात्मन् ! शाक्य मुनि ने पुरातन क्षत्रियों के वंश, भिक्षु बना कर निर्वंश कर दिये। उसका मत ब्राह्मण सभ्यता के विरुद्ध था। वह बड़ा भारी निराशा-वादी था। उसके विचार में कर्म-मात्र क्लेश का कारण समझा जाता था। वह वीर-कर्म का तो विरोधी था ही, उसने क्षत्रियों को गृह-त्याग के ऐसे उपदेश दिये कि विशाली राज-गृह, कपिलवस्तु आदि के राज घराने जन-शून्य हो गये। कुछ रहे सहे क्षत्रिय, शंकराचार्य की क्रान्ति ने समाप्त कर दिये। अब तो यवनों से भारत भूमि आक्रान्त होती जा रही है, देश का धन धान्य, जन, मान लुटेरे, आये वर्ष, लूट कर ले जाते हैं। नागरिक प्रजा तो प्रायः बौद्धों से लौट कर आई हुई है। नगरवासी तो हिंसा के नाम से कांपते हैं। इनके हृदयों में दया के नाम से, कोरी कायरता तथा अकर्मण्यता कूदा करती है। प्रत्येक वर्ष, दूर देशों के मनुष्य आ कर इन्हें मार काट कर लूट लेते हैं परन्तु यह दीन, दोनों हाथ उठा कर, दया धर्म की दुहाई ही देते रह जाते हैं। इस कारण, इस युग में यह आवश्यक है कि ग्रामीण जन, वनवासी लोग, पर्वतों पर रहने वाले मनुष्य, संस्कृत कर के क्षत्रिय बना दिये जायें। ये लोग धनुर्धारी तो हैं ही, बस बताना इतना है कि तुम अपने पैने तीरों का सदुपयोग कहाँ किया करो। सो मेरे राम का यह काम, मध्य देश में, मरुभूमि में, दक्षिण प्रान्त में, वनों में तथा पर्वतों पर आप ही आप होता चला जा रहा है। ऐसा दीखता है कि, सहस्त्रों बालकों को, अबलाओं को और दीन जनों को श्री राम बचाना चाहता है।

(६) एक महाराजा अपने राज्य के सारे कार्यों को बड़ी लगन से किया करता था। वह प्रजा के हित में सदैव तत्पर रहा करता। यदि उसके देश के किसी भी कोने में, किसी को कोई कष्ट क्लेश होता तो महाराजा उसके निवारण करने में अपना पूरा बल लगा देता। सब लोग सर्वत्र यही कहते सुनाई देते कि हमारे महाराजा के राज्य में सत्य-युग वर्त रहा है।

[illegible]

फैल गई। सर्वत्र त्रास फैल गया। जनता त्राहि त्राहि कर उठी। कीट पतंग की भांति मनुष्य मर रहे थे। जिधर जाओ, मार्गों में मृतकों के शवों का दृश्य दीख पड़ता था। घर घर से रोने धोने की ध्वनि निकल रही थी। देश भर में सियापा हो रहा था। देश की ऐसी दशा देख कर वह महाराजा अति दुःखित हो गया। उसने सभी उपाय किये परन्तु महामारी न मिटी। उसको एक दिन एक स्त्री ने कहा—राजन् ! इस सर्वनाश-कारिणी व्याधि को नष्ट करने का उपाय तो केवल यह है कि देश भर से चूहे मिटा दिए जायें। राजा ने इस काम की व्यवस्था अपने वैष्णव गुसाईं गुरु से मांगी। उसने कहा—महाराज! यह महा हत्या है। हिंसा करना हमारे धर्म के विरुद्ध है। इस से राजा ने वह उपाय न किया। वैष्णव गुसाईं की व्यवस्था जनता के लिए घोर घातक सिद्ध हुई। अनेक साधु सन्त, जपी, तपी, सती, यति, बाल, युवक तथा वयस्क, वृद्ध, काल के गाल का ग्रास बन गये। घरों के घर सूने दीखने लगे। सारा देश अधया गया। सभी ओर हा-हाकर का आर्त्त नाद होने लगा। दैव-वश, उन्हीं दिनों में एक दण्डी संन्यासी भी उस नगर में आ विराजमान हुआ। उस नगर की दुर्दशा देख कर उसके दिल में दया-नदी उमड़ उठी। लोगों के करुणा-क्रन्दन से उसका कोमल अन्तःकरण, करुणावश कांप गया। उसने उतावली से पंचायत लगवा कर, एक सौ स्वयं-सेवक संग ले लिये और वह लगा द्वार द्वार पर चक्कर लगा कर औषध बांटने। उसके मूषक-मारक औषधोपचार से चार पांच दिनों में ही सारा नगर निर्मूषक हो गया। उस महा संकट की निवृत्ति देख कर, लोगों के हृदयों में फिर से आशा-लता लहलहाने लग गई। उस दण्डी जी की दया की कहानी सुन कर वह राजा भी उसके दर्शन करने आया। दण्डी जी ने उसको उपदेश दे कर कहा—राजन् ! क्षत्रिय के लिये सभी उपायों से जन सेवा

तथा जन रक्षण करना धर्मानुकूल, वेद-विहित और न्याय-संगत है। आप के वैष्णव गुरु तो निरे अनाड़ी हैं। उनको वेद शास्त्र का कुछ भी ज्ञान नहीं है। सृष्टि-नियम, स्मार्त-धर्म, वर्ण-कर्म, लोक-रक्षण और मानवहित के मर्म से ये सर्वथा अनभिज्ञ हैं। जो जो कर्म करने को शास्त्र कहता है और जिन कर्मों को कर के क्षत्रिय सच्चा क्षत्रिय बना करता है उनमें पाप उत्ताप की कल्पना करना परले सिरे का पामरपन है। प्यारे ! तू जन-सेवक है, जन-सेवा पर ही दृष्टि रक्खा कर। इसी को पुण्यतम कर्म समझते रहो। श्री राम तेरा मंगल अवश्यमेव कर देगा।

(७) एक महात्मा से एक राजा ने पूछा कि श्री रामचन्द्र जी के राज्य में क्या विशेषता थी जो आज भी उसकी उपमा दी जाती है। उसने कहा—रघुनाथ, सेवा धर्म का मूर्तिमान् उदाहरण था। उसने वन के चौदह वर्ष मुनियों की सेवा करते हुए व्यतीत किये थे। जनस्थान के महासंकट को दूर कर के महाराज ने आर्य जाति की और मुनि मण्डल की सेवा ही की थी। विश्वामित्र के आश्रम को निर्भय और निर्विघ्न बना देना एक उत्तम सेवा थी। रावण के उपद्रव को दूर कर के सब देशों में शान्ति स्थापित करना रघुराज का ऊँचा सेवा-कर्म था। वनों में विचर कर वहां के वन वंशों को धर्म में दीक्षित करना,उनको सभ्य बनाना सेवा का ऊंचा आदर्श था। स्वयं दृढ़ रह कर लोगों को एक पत्नी-धर्म का पालन कराना जनता की सेवा ही की गई थी। महाराज ने अपने जीवन काल में प्रत्येक नर नारी के सम्मुख कर्तव्य पालन का ही आदर्श रक्खा था, बन्धुभाव को ही बड़ा कर्म बताया था, पारिवारिक सम्बन्ध का सुपालन सत्कर्म कहा था तथा सत्य को ही परम धर्म सिद्ध किया था, वह सब सेवा ही थी। ऐसी सेवा से ही रघुनाथ जी का नाम तथा काम अजरामर बना हुआ है।

******

दान

दीन को, दुःखी को, अपाहिज को, अनाथ को, निस्सहाय को, भूखे प्यासे को तथा अत्यन्त आवश्यकतावान् को, अन्न-देना, जल देना, वस्त्र देना, आश्रय देना और स्थान देना दान-धर्म कहा गया है। किसी की कमी को और आवश्यकता को द्रव्य से, उपदेश से और सहायता से पूरा कर देना दान ही माना जाता है। ऐसा दान मनुष्य लोक का एक श्रेष्ठ कर्म और एक उत्तम धर्म है।

(१) दो वृद्धा स्त्रियां गंगा-स्नान करने के लिये हरिद्वार को गईं। उनके साथ एक मिसरानी भी थी। उन दोनों देवियों ने मिसरानी को कहा कि कोई सन्त साधु तथा अधिकारी जन तुझ को मिल जाय तो अन्नादि अवश्य दे दिया कर। वह मिसरानी प्रति दिन दीनों को, दरिद्रों को, दुखियों को और भूखे मनुष्यों को उन स्त्रियों की ओर से भोजन कराया करती थी। एक दिन वह अपने डेरे पर, भोजन करने के लिए, एक ऐसे मनुष्य को ले आई जो अंग-हीन था, कठिनता से हाथ पैर हिला सकता था, जिस को न पूरा दीखता था और न ही पूरा सुनाई देता था। उन दोनों स्त्रियों ने उसको आदर से अन्न जल दे कर मिसरानी को कहा—देखो, ऐसे जनों को ही दीन कहा जाता है। ऐसे दीनों को अन्न वस्त्र आदि देना मानव-धर्म है और मानुषी कर्तव्य है।

(२) साधारण स्थिति के चार मनुष्य मिल कर, अपने नगर से दूसरे नगर को जा रहे थे। मार्ग में खाने के लिए उन्होंने कुछ पाथेय भी ले लिया। जब सायं समय आया तो वे एक धर्मशाला में ठहर गये। रात के समय, वहां उनको एक ऐसा मनुष्य मिला जो भूख के मारे व्याकुल हो रहा था और जिस के पास अन्न प्राप्त करने के लिए एक कौड़ी भी नहीं थी। यद्यपि भूख से वह तड़प रहा था परन्तु किसी से मांगता नहीं था। उन चारों सज्जनों ने उसको बड़े आदर और आग्रह से अपना सारा

पाथेय दे कर तृप्त किया। वह मनुष्य भोजन से तृप्त हो कर, उन सज्जनों का स्तुति सहित धन्यवाद करने लगा। उस समय चारों भद्र पुरुषों ने अपने कान अपनी अंगुलियों से मूंद लिये। जब वह धन्यवाद देने वाला चुप हो गया, तब एक मनुष्य ने उन से पूछा कि उस समय आप ने कान क्यों बन्द कर लिये थे ? उन्होंने कहा—अपने किये कर्म की कीर्ति सुनना अच्छा नहीं है। भूखे को अन्न देना तो मनुष्य का कर्तव्य कर्म है परन्तु उसके बदले में अपनी स्तुति के वचन सुनना उस कर्म को एक प्रकार से बेच डालने के बराबर है।

(३) एक बार एक देश पर, दूसरे देश के राजा ने अकारण अचानक आक्रमण कर दिया। परदेश में घुस कर उसकी सेना ने घोर उत्पात मचाया, नगरों के नगर लूट कर जला दिये। खेतियां नष्ट हो गई। वहां मनुष्य हत्या का एक भयानक दृश्य दीखने लगा। लोगों में ऐसा अविश्वास फैला कि डाकुओं के जत्थे घूमने लग गये। किसी का भी धन जीवन सुरक्षित न रहा। देश भर में अराजकता फूट निकली। व्यापार व्यवहार का सर्वनाश हो गया। शत्रु-सेना ने मन मानी मार धाड़ से देश-वासियों में महा-त्रास फैला दिया। उस देश का राजा, उस अकस्मात् और भंयकर आक्रमण के कारण सम्भल न सका। जन-नाश के साथ उसका धन-नाश भी इतना हुआ कि सेना-संग्रह के लिए उसके पास कुछ भी न रहा। वह अति दुःखी हो कर जहां तहां अपना सिर छुपाता फिरता था। उस समय उस राजा को उसका एक देशवासी सेठ मिल कर बोला—राजन! हमारे देश में जातीय सेवकों का तो अभाव नहीं है परन्तु धन के अभाव से राज-सेना हारती चली जाती है। सो मैं, संग्राम सामग्री के संचय के लिये अपनी सारी सम्पत्ति देश रक्षा के निमित्त दान देता हूँ और अपने सातों पुत्रों को सेवार्थ समर्पण करता हूँ। कृपया इस मेरी भेंट को स्वीकार कर के देश दशा को सम्भाल लीजिए। उस सेठ का दिया हुआ धन इतना

था कि वह राजा सात वर्ष तक समर गर्म रख सकता था। उसने धन ल कर पूरा सुसज्जा स शत्रु पर ऐसा आक्रमण किया कि उसकी सारी सेना तितर बितर कर के कुचल डाली, यहां तक कि अन्त में उसका एक सैनिक भी जीवित न जाने दिया। उस महा विजय से उसके सारे देश में प्रसन्नता के सातों सागर उमड़ पड़े। सर्वत्र महोत्सव मनाये जाते, जय नाद गूँजते सुनाई देते और हर्ष के बाजे बजते सुने जाते थे। महाराज के प्रासाद में भी हर्ष-सागर सीमा पार कर रहा था। राजा ने उस जीत के उपलक्ष्य में विजय महोत्सव मनाना निश्चय किया। उस दिन उसने उस दान-वीर सेठ का विशेष सम्मान देना स्थिर किया। परन्तु विजय उत्सव से पहले ही, राज सेवा में उपस्थित हो कर सेठ ने विनय की कि महाराज! राज सभा में इस दास के दान का वर्णन न हो। पत्र पुष्प, जो भी मेरे पास था वह अपने पुत्रों के सिरों सहित मैं देश सेवा में लगा चुका हूँ। यह सब कुछ मैंने केवल कर्तव्य ही पालन किया है। अब देश-विजय का हर्ष मेरे हृदय में इतना अधिक है कि कीर्ति को वहां कोई स्थान ही नहीं है। मेरे मन के मानसरोवर में जाति की जीत का जल, इतना आकण्ठ परिपूर्ण हो रहा है कि वहां मेरे यश की जल बून्द को टिकने का सर्वथा स्थान नहीं है।

(४) दान पर बालकों का पालना एक कुरीति ही समझनी चाहिए। दान से पोषित मनुष्यों में उदार भावों का, प्रायः अभाव बना रहता है। गंगा के किनारे एक आश्रम था। उस आश्रम में एक विद्वान् ब्राह्मण विद्यार्थियों को विद्या पढ़ाया करता था। वहां वेद, दर्शन और स्मृतियां आदि सब ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे। एकदा, एक धनिक पुरुष का पुत्र उस पाठशाला में पढ़ने के लिये आया। उसने विनय-पूर्वक अपने गुरु को कहा कि मेरा पिता आप के आश्रम के सब विद्यार्थियों के भोजन का प्रबन्ध करना चाहता है। उसकी यह इच्छा है कि वह सदा के लिए आश्रम के

भोजन का भार अपने ऊपर ले ले। ब्राह्मण ने कहा मेरे विद्यार्थी न तो दीन हैं न ही अनाथ। ये परान्न पर पेट पालने के लिए पाठशाला में नहीं आये हैं। ये सभी विद्यार्थी हैं, अन्नार्थी नहीं हैं। मैंने तो इनको पढ़ा सिखा कर विद्या-दानी और निर्भय लोक-सेवक बनाना है। परान्न पर पालन कर मैं इनको ऐसा नहीं बना सकूँगा। यह ठीक है कि अन्न-क्षेत्रों के आश्रय पर पढ़े हुए जन, ऊँचे और उदार विचारों से प्रायः शून्य देखे जाते हैं। मेरे विद्यार्थी यहां अपने घर की भांति रहते हैं, सभी काम काज करते हैं, गौएं पालते हैं, अवकाश काल में आश्रम के खेतों को आप संवारते, बोते, पालते तथा काटते हैं। ये सब परिश्रमी हैं, इस कारण ऊपर के कामों से इनका निर्वाह सुखपूर्वक हो जाता है।

(५) मनुष्यों में यदि दान बलिदान का भाव न रहे तो उनका संसार कंटकाकीर्ण, संकट-संकुल, विपत्ति-स्थान और दुःख का घर बन जाता है। काशी धाम पर, एक बार, सुदूर देश से आ कर एक दुष्ट राजा ने आक्रमण किया। नगर में आते ही उसने सर्व हनन की घोषणा कर दी। लूट मार से सारा नगर नष्ट भ्रष्ट हो गया। देव-मन्दिर धरातलशायी हो गये। देव-मूर्तियां तोड़ फोड़ कर नगर की नालियों में फेंक दी गईं। धर्म स्थानों के रूप बदल दिये गये। सहस्त्रों विद्यार्थी दास बना कर सरदारों के नौकर नियत किये गये। पुस्तकालयों की पोथियां पानी गरम करने के काम में आने लगीं। अनगिनत नारी नर धर्माचार से पतित किये जाने लगे। ऐसे अशुभ अवसर पर दृष्टि डाल कर, एक वृद्ध मुनि ने विचारा कि देश की इस दुर्बलता का कारण क्या है ? उसको दिव्य वाणी हुई कि जगन्नियन्ता की नियति में अन्याय नहीं है। इस देश पर अनर्थ अन्याय इस लिये हो रहा है कि यहां के मनुष्य दान बलिदान के धर्म को नहीं पालते। इस युग के हिन्दू आर्यों का सनातन दान बलिदान कर्म छोड़ कर निरे निराशावाद के विचार के बन गये हैं। वर्णों के कर्मों में, वीरता

के भावों में, लोक हित की रक्षा में तथा समाज सेवा में ये पाप की कल्पना करते रहते हैं। इन में परस्पर भारी भेद भाव है। ये सुगठित नहीं हैं। ये भक्ति तथा शक्ति धर्म को नहीं मानते हैं। ये केवल कल्पनामय, निराशावाद-रूप वेदान्तवाद में उलझे रहते हैं। सर्व दृश्यमान जगत् को मिथ्या और 'नहीं-नहीं' कह कर इन्हों ने अपने गौरव को, जातीय जीवन को, जाति के आस्तित्व को और अपने आत्म-भाव को भी 'नहीं' में ही लय कर दिया है। इनका व्यवहार, इनका आचार, इनका आहार और इनका विचार सब भ्रम-मूलक है। क्षात्र कर्म के अभाव से ये इस योग्य नहीं रहे कि भारत भूमि के भाग्य का विधान इन से बन सके।

(६) आदान प्रत्यादान का नियम स्वाभाविक है। मानव संसार का सारा सुख इसी पर निर्भर है।

अमरनाथ की यात्रा को जाते हुए, मार्ग में, एक मुनि ने अपने शिष्य को कहा—यह सारी सृष्टि आदान प्रतिदान के नियम में चल रही है। दूर न देख कर, इन पर्वत मालाओं पर ही दृष्टि-पात करो तो ये सभी, शिखरमय सिर ऊँचे कर के इसी नियम की साक्षी देती जान पड़ती हैं। ये पर्वतों के किले कितने ऊँचे, सुदृढ़ और दुर्गम हैं, यह तो तुम देख ही रहे हो। यह ही नहीं कि ये केवल, बाहर से आने वालों को ही भारत भूमि पर आने से रोकते हैं किन्तु भारत के समुद्र-जल को भी भारत से बाहर जाने नहीं देते। उसको लौटा कर भारतवर्ष में ही बरसाते रहते हैं। वाष्पमय जो जल इनके सिरों पर से लांघने लगे उसको ये बर्फ बना कर अपने ऊपर ही बैठा लेते हैं। फिर उसी को थोड़ा थोड़ा पिघला कर, सागर की ओर सदा भेजते रहते हैं। समुद्रों से जो जल ये पर्वत लेते हैं यह उनका आदान—लेना-है और जो नदी नद के रूप में पीछे देते रहते हैं यह इनका प्रतिदान है। यदि ये पर्वत मालाएं न होतीं तो आदान प्रतिदान के नियम भंग से भारत का सारा भाग मरु-स्थल बन जाता। यही समझना

चाहिए कि जड़ जंगम सारा जगत् इसी दान आदान के नियम में ओत प्रोत है। यह सहज नियम, मानव मण्डल में कदापि भंग नहीं होना चाहिये। वे, गुरु शिष्य दोनों, यह ज्ञान गोष्ठी कर ही रहे थे कि उसी समय आकाश से हिम-पात होने लग गया। आन की आन में सारी भूमि चिट्टी हो गई। इतना हिम-पात हुआ कि मार्ग बन्द हो गया। अति शीत के कारण, अनेक यात्री खड़े खड़े सुन्न हो गए। उस समय उस मुनि ने अपने शिष्य को कहा—सौम्य! जीवन दान से दूसरे को जीवन मिला करता है। हम को चाहिए कि जितने भी मनुष्य हम बचा सकें, बचायें। उस हिम-पात के स्थान से पाँच कोस के अन्तर पर ऐसा स्थान था कि वहां यदि कोई मनुष्य पहुँच जाय तो उसका जीवन बच जाय। उन दोनों ने अगला सारा दिन इसी काम में लगाया। वे अपने कन्धों पर उठा कर मनुष्यों को ले जाते और सुरक्षित स्थान में पहुँचा देते। अन्तिम फेरे में उनके कन्धों पर दो वृद्धा स्त्रियां थीं जो सुन्न सी हो रही थीं। रात पड़ जाने पर वे दोनों मुनि, आग सुलगा कर लोगों को उष्णता दान करते रहे। वे आप एक पल भर नहीं सोये। उन्होंने दिन रात, यह काम बिना विराम विश्राम किया।

******

सत्संग

सच्चे, धार्मिक, सरल और राम-भक्त मनुष्यों को सत्-पुरुष तथा सज्जन कहते हैं, ऐसे सत्पुरुष और सज्जन का संग, सत्संग, कहा जाता है। जिस संग में, सभा में तथा मेल जोल में धर्म का वर्णन होता हो, राम का निरूपण किया जाय और आत्मा की चर्चा हुआ करे उसको भी सत्संग कहा करते हैं। ऐसा सत्संग मनुष्य के जीवन को उज्ज्वल बना देता है, उसमें रस तथा सार को भर देता है। सत्संग से कठोर कुकर्मी और पातकी मनुष्य का भी कल्याण हो जाया करता है। मनुष्य को सन्मार्ग पर लाने

का, सत्य का स्नेही बनाने का उत्तम साधन सत्संग है।

(५) एक बार विचरता हुआ, एक ब्राह्मण पाटलीपुत्र नाम नगर में आ कर ठहरा। उसने देखा कि वह सारा नगर, राजा के प्रभाव से बौद्ध मत को मानने लग गया है। श्रुति स्मृति के नाम पर लोग हँसने लग जाते हैं। उसने वहां नित्य सत्संग लगाना आरम्भ कर दिया। लोग उसके सार-मर्म के वचनों को सुनने लग गये परन्तु भिक्षुओं को यह बात अच्छी न लगी। वे फिर से सनातन धर्म का प्रचार सहन न कर सके। उन्होंने उस ब्राह्मण को नगर से निकलवा दिया। वह भी अपनी धुन का पक्का पुरुष था। वह नगर से बाहर, एक उद्यान में जा टिका और लगा वहां धर्म शास्त्र सुनाने। उसके सत्संग में जो भी आता वही प्रभावित हो कर जाता। एक दिन एक सेनापति उसके पास आ कर विनय से बोला—ब्राह्मण! क्या पुरातन धर्म का फिर से प्रचार हो सकेगा? ब्राह्मण ने कहा—सौम्य ! धर्म के रक्षक क्षत्रिय हुआ करते हैं। इस युग में वे तो भिक्षु बन कर द्वार द्वार पर टुकड़े मांगते फिरते हैं। इस दशा में धर्म का प्रचार हो तो कैसे? आप का राजा तो नाम मात्र का महाराजा है। राजशक्ति का संचालन तो भिक्षु कर रहे हैं। राजा ने अपना सारा राज्य तीन बार भिक्षु संघ को दान किया। उन्होंने उसका जो मूल्य नियत किया वह देना कर के अशोक फिर राज्य करने लग गया। राज्य की जितनी आय होती है वह सब की सब भिक्षु संघ में चली जाती है। उस से नाम के त्यागी, उद्यानों में,आरामों में, विहारों में, सुख से आमोद मनाते रहते हैं। इस कारण मैं कहता हूँ कि तुम्हारे राज्य के वास्तव में राजा भिक्षु लोग हैं। महाराजा तो उनके हाथ की कठपुतली बन रहा है। ब्राह्मण के ऐसे वचन उस सेनापति के मन में बस गये। उसने क्षात्र पतन का कारण समझ लिया। कालान्तर में, यह परिणाम निकला कि अशोक के अधिकार छिन गये। उसको गिन कर पैसे मिला करते। अपने जीवन के अन्तिम

दिनों में उसको भोजन भी मिट्टी के पात्रों में दिया जाता था।

(२) एक राजा का पुत्र बड़ा कुव्यसनी था। वह कुव्यसनों में पड़ कर पढ़ने लिखने से कोरा रह गया। रात दिन, वह हास विलास में, खेल कूद में, राग रंग में और नृत्य गीत में निमग्न रहा करता। राजकाज की रीति नीति से तो वह निपट अनाड़ी था। राजा भी वृद्ध हो गया था। उसको यह चिन्ता सदा सताया करती कि उसके देहान्त के पश्चात् उसके राज्य की न जाने कैसी दुर्दशा हो जायगी। उन्हीं दिनों में उस राजा को एक संन्यासी का मिलाप प्राप्त हुआ। उस महात्मा की यह कीर्ति थी कि वह घोर कुकर्मियों को भी अपने उपदेशों से सन्मार्ग पर ले आता है। राजा ने अपने पुत्र के अपवित्र चरित्र का चित्र, उस मुनि के सम्मुख रख कर विनय की—महात्मन्! यदि आप उसको सुधार सकें तो मुझ पर, मेरे वंश पर और मेरे सारे राज्य पर आप का बड़ा उपकार होगा। मुनि ने, कुछ विचार कर कहा—राजन् ! कुछ भी चिन्ता न करो। कुमार को, सात दिवस तक, अपने साथ मेरे सत्संग में ले आते रहो। राम कृपा से सब कुछ ठीक हो जायगा। वह राजा अपने पुत्र को सात दिन तक, उसके सत्संग में, साथ लाता रहा। सातवें दिन, सत्संग की समाप्ति पर जब राजकुमार उठ कर राज निवास को जाने लगा तो मुनि ने कहा—राजकुमार ! आज मैं भी प्रस्थान कर जाना चाहता हूँ। मैं यह अच्छा समझूंगा, यदि आप मेरे सात दिन के कथनों में, कोई ऐसी बात मुझे बतायें जो आपको अच्छी न लगी हो। मैं उसको आगे कहना छोड़ दूँगा। यह सुन कर राजकुमार ने प्रेम-पूर्वक निवेदन किया कि महाराज! इन सात दिनों के सत्संग में, आप के प्रस्थान कर जाने के शब्द, मेरे कानों को कटुतर प्रतीत हुए हैं। सो कृपया यहां से जाना छोड़ दीजिये। उस महाभाग मुनि ने वहां चतुर्मास तक रहना स्वीकार कर के, राजकुमार को कहा कि एक काम आप भी करें वह यह कि जितने भी आप के निजी घोड़े हैं उनके नाम रख लें

और एक मास के पश्चात् वे सारे नाम मुझे सुना दें। राजकुमार ने ऐसा करना मान तो लिया परन्तु उनके नाम उसको बार बार भूल जाते थे। उसके पिता ने उसको कहा कि आप के पांच सौ घोड़े हैं। उनके नाम लिख कर स्मरण रख सकते हो, इस कारण पहले लिखना सीख लो। उसने लिखना सीखना आरम्भ कर दिया। धीरे धीरे वह नीति के पद और शिक्षा-दायक श्लोक पढ़ने लग गया। उस मुनि ने उसको चार मास में मनु-स्मृति और रामायण ये दोनों ग्रन्थ पढ़ा दिये। तत्पश्चात् अपने समय में वह एक नीति-निपुण और सुयोग्य शासक प्रसिद्ध हो गया।

(३) राजगृह नगर में एक ऐसा सेठ रहता था कि जिस के धन का कोई पारावार नहीं पाया जाता था। लोग कहा करते कि यह तो साक्षात् धन-कुबेर है। उसका घर माया का मन्दिर माना जाता था। परन्तु वह धनी, सदा इस चिन्ता में चूर रहा करता कि उसका एक-मात्र पुत्र, मदिरा पान की बहुत बुरी बान में फंसा पड़ा रहता है। उसके चहुँ ओर, रात दिन, चण्डाल चौकड़ी का ही चक्कर चला रहता है। उसकी पाचन शक्ति मन्द पड़ गई है। उसका तन पीला हो गया है और उसके हाथ कांपते रहते हैं। सेठ को दृढ़ भय था कि कहीं अकाल में ही इसके जीवन की ज्योति बुझ ही न जाय।

उसी नगर में एक ऐसा ब्राह्मण बसता था कि जिस के उपदेश के वचन व्यसनियों पर मोहन-मंत्र का काम किया करते थे। उस ब्राह्मण ने, उस युवक को मिल कर कहा—सौम्य! मर्यादा में रहना उचित है, आचार में रहना चाहिये, चरित्र-संचय के सदृश दूसरा सुख नहीं है और संयम का जीवन ही उत्तम जीवन है। देखो प्यारे ! तूने मर्यादा नहीं रक्खी और न तू अपने विचारों को संयम में रख सका, तो आज तेरी यह दशा है कि तेरा शरीर क्षीण होता चला जाता है; तू रोगों का घर बन रहा है। तेरे पिता को तेरे जीने में संशय होने लग गया है। अब भी सम्भल

जा। व्रत धारण कर। सुरापान करना त्याग दे। परमेश्वर तेरा कल्याण करें। उस ब्राह्मण के उपदेश से प्रभावित हो कर उस युवक ने मदिरा पीना त्याग दिया। ब्राह्मण ने भी कुछ काल उसके पास रह कर, उसको धर्म शास्त्रों के उत्तमोत्तम उपदेश सुना कर उसको सच्चा चरित्रवान् और चतुर बना दिया। उस पण्डित के सत्संग से वह युवक सर्वथा सुधर गया, उसके रोग जाते रहे, उसकी काया कुन्दन की भांति चमकने लगी और वह एक सुशील और सदाचारी पुरुष प्रसिद्ध हो गया। कालान्तर में, वह ब्राह्मण जब फिर उसको मिलने आया तो उसने देखा कि वही युवक, एक दूसरे को, जो राजकुमार है, मदिरा पान के दोष बता रहा है और उसके सम्मुख सदाचार के लाभ वर्णन करके उसको एक उत्तम शैली से समझाने में तत्पर है। ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ जब उसने यह जाना कि इस ने तो युवकों में से मदिरा का बहिष्कार करा दिया है।

(४) वेश्या व्यसन में फंस कर एक सुन्दर, सुडौल युवक ने अपने तन, धन का सत्यानाश कर डाला। वह अपनी पत्नी की तो सार तक भी नहीं लेता था, वह बेचारी रो रो कर दिन बिताया करती थी। उसके अड़ोस पड़ोस की सभी छोटी बड़ी स्त्रियां यह कहा करतीं कि देखो, इस युवती के यौवन-वसन्त पर बर्फ पड़ गई है। इसके सुख सौभाग्य के सूर्य को मध्यान्ह में ही राहु ने ग्रस लिया है। इसके प्रेम पुष्प-वन में अकाल में कीट आ लगा है। इस की मनोरथ माला इसके मन ही मन में मुरझाती चली जाती है। ऐसा हुआ कि एक दिन, एक हरि भक्त उस कुव्यसनी के घर आ निकला। उसका काम था लोगों को हरि गीत सुनाना। वहां, उस समय, उसने अपने देवदत्त, दिव्य-नाद से, सुकोमल कण्ठ से और सधे हुए सरस स्वर से, भावना के साथ ऐसा मधुर हरि गीत आरम्भ किया कि श्रोताओं के मन, तन हर्षित हो गये। सब के मनों में प्रेम-पूर प्रवाहित होने लग गया। उस कुव्यसनी पर भी उस दिन इसका अतुल्य प्रभाव पड़ा। उसके तो हर्ष से रोमांच हो आया। हरि अनुराग के सुगीत

सुना कर जब वह हरि भक्त स्व-स्थान को जाने लगा तो उस समय उस [illegible] से नित्य वह हरि-भक्त के पास जाता और उसके सत्संग में बैठ कर सुगीत सुधा पान किया करता। उस भजनीक के उठने बैठने से, वचन विलास से, क्रिया कर्म से, आचार विचार से और सरल सत्य उपदेश से वह ऐसा प्रभावित हुआ कि उसकी काया पलट गई। वह आप ही आप वेश्या-व्यसन से विरक्त हो गया। एक दिन उसने उस भजनीक के पांव पकड़ कर उसको कहा—आप तो मेरे सच्चे गुरु हैं। कुव्यसन के गंदे, काले और सड़े हुए कीचड़ से मुझे बाहर निकाल कर आप ने मेरा जन्म सुधार दिया है। इस सर्वनाशक कुव्यसन से बचा कर, आप ने मुझ को एक नव-जीवन प्रदान किया है। मैं आप के इस उपकार का आजन्म कृतज्ञ बना रहूँगा। पांच वर्ष के पश्चात् वह हरि भक्त फिर उसको मिला तो उसने देखा कि उसका सत्संगी उपकार कर्म करने में सदा तत्पर रहता है। उसने अपने भक्ति भाव के प्रभाव से अनेक वेश्याएं सुधार दी हैं। उन से व्यसन छुड़ा कर, उनके विवाह, उसने भद्र जनों के साथ करवा दिये हैं। वे सब सद्गृहणियां, पतिव्रता, धर्मरता और निर्मल नारियां हो गई हैं।

(५) एक पण्डित की कथा में, प्रति दिन, एक ऐसा पुरुष आया करता जिस का मन बहुत ही मलिन था। जिस के भीतर बड़ा भारी पाप कर्म करने का संकल्प दौड़ रहा था। एक दिन सत्संग में पण्डित ने वर्णन किया कि पाप तो सभी त्यागने योग्य हैं। परन्तु सब पापों से बड़ा पाप देश-द्रोह है। दूसरे पापों का तो प्रायश्चित्त भी बताया गया है परन्तु देश-द्रोही का प्रायश्चित्त से निस्तार नहीं हो सकता। इस पाप कर्म का मार्जन होता ही नहीं। इसका फल, अवश्यमेव घोरतम नरक ही होता है। द्रोही को कहीं भी ठौर ठिकाना नहीं मिलता। द्रोह कर्म का पाप इतना बोझल बताया गया है कि इसके भार को भूमि भी नहीं उठा सकती।

इस से आकाश तक कांप उठता है। द्रोही को, लोग, जाति के प्राणों का प्यासा कहा करते हैं। द्रोही को देख कर देवता भी दुहाई देने लग जाते हैं। इस पाप कर्म में पड़ कर, प्राणी का फिर पद पद पर पतन ही होता चला जाता है। ऐसे पातकी प्राणी के पांव कहीं भी टिकने नहीं पाते।

ऐसे वचनों को सुन कर वह मलिन मन का मनुष्य, पांव से चोटी तक थर थर कांप पड़ा। उसकी आँखों से आँसू छम छम बरसने लग गये। उसने, उसी समय, उस पण्डित के पैर पकड़ कर कहा—महाराज! मैं एक जाति-घातक और देश-द्रोही बनने लगा था। मैंने देहली के बादशाह को दक्षिण के भेद ला कर देने का वचन दे दिया था। परन्तु ये मेरे कोई शुभ कर्म थे जो मैं आप के सत्संग में आने लग गया। अब मैं अपने उस मानस पाप तथा पतन पर पश्चात्ताप करता हूँ और यह चाहता हूँ कि द्रोह का दुष्ट संकल्प करने के प्रायश्चित्त के लिए, काशी जी में जा कर, आरे के नीचे सिर रख कर, ऐसे द्रोहमय जीवन की इति-श्री कर दूँ। यह सुन कर पण्डित ने कहा—सौम्य ! तू पाप-भीरु मनुष्य है। तेरा कल्याण सुकर्म करने से होगा। देखो, काशी पुरी पर जब मलेच्छ मनुष्यों का पहला आक्रमण हुआ था, उस समय, जिन लोगों ने आक्रमण-कारियों को देव-धन का पता बताया था और पुस्तकालयों के भेद दिये थे, पीछे वे लोग, आरे के नीचे स्वयं सिर रख कर मर गये थे। परन्तु अब तू ऐसा न कर। यह युग तो शुभ कर्म करने का है, व्यर्थ में मरने का नहीं है। देश-द्रोह के दुष्ट संकल्प के दोष का मार्जन तो तेरे लिए यही है कि तू राम नाम का आराधन किया कर, हरि गीत गाया कर और दक्षिण में जा कर छत्र-पति की सेना में भरती हो जा। स्वदेश सेवा में सिर समर्पण कर देने से तेरे दोनों लोक सुधर जायेंगे।

******

यज्ञ

यज्ञ-कर्म में दान पुण्य, सेवा उपकार, सहभोज, मेला महोत्सव और अग्निहोत्र आदि सभी उत्तम कर्म आ जाते हैं। जिन जिन कर्मों से स्व पर का सुधार तथा कल्याण होता हो वे सब यज्ञ कर्म हैं। भजन पाठ, कथा कीर्तन, सत्संग समागम, ज्ञान गोष्ठी और चिन्तन आराधन आदि कर्म भी उत्तम यज्ञ ही वर्णन किये गये हैं।

(१) कोई युग था कि जब जगत् में बड़े बड़े यज्ञ किये जाते थे। धर्म-नेता, लोगों को निमंत्रण भेज दिया करते कि अमावस को, पूर्णमासी को तथा अन्य सुपर्व के दिन अमुक स्थान पर सभी सज्जन आयें, वहाँ एक यज्ञ होगा। स्थान और दिन की महिमा को दृष्टि में रख कर, सहस्त्रों जन दल बना कर, भजन गाते हुए वहां आते और यज्ञ में सम्मिलित होते थे। यज्ञ का स्थान, एक बड़ा भारी मण्डप हुआ करता था। उसके एक कोने में वेदी बनाई जाती। उस समय वेदी उसी सभा-स्थान को कहा करते जहां विद्वान् लोग बैठ कर ताल-सुर से वेद को गाया करते थे। अग्नि-होत्र तो ऐसे यज्ञों में बलिवैश्वदेव ही किया जाता था। भोजन से पूर्व, जो भोज्य पदार्थ अग्नि की भेंट किया जाता, उस काल में, वैदिक लोग उसको बलि कहते थे। बलिदान के अनन्तर, शेष सारे भोजन को प्रसाद कहा जाता था। उस देव-प्रसाद को अमृत भी समझा करते थे। ऐसे अमृत प्रसाद को खाना उस समय के लोग महात्म्य मानते थे। ऐसा ही एक यज्ञ एक विद्वान् ने गंगा के किनारे रचाया। उस शुभावसर पर वहां पांच सहस्त्र मनुष्य एकत्रित हुए। कथा वार्ता, भजन कीर्तन करते हुए जब मध्यान्ह समय आया तो यजमान ने थाल में भोज्य-पदार्थ धर कर अग्नि-कुण्ड में बलि दे कर प्रार्थना की—हे देव ! हम सभी तेरे भक्त हैं, उपासक हैं, सेवक हैं, आश्रित हैं। तू हम सब को अपना पावन प्रकाश प्रदान कर। हमारे हृदयों को अपनी उज्ज्वलतम ज्योति से जगमग कर

दे। अपने अखण्ड तेज से हमारे आत्म-देश को चमका दे। जैसे स्थूल अग्नि, हमारे पार्थिव पथों को प्रकाशित करती है ऐसे ही तू हमारे आध्यात्मिक पथों पर अपना प्रकाश डाल।

(२) नर्मदा नदी के तट पर एक विद्वान् सज्जन रहता था। वह प्रत्येक पूर्णमासी को महा-यज्ञ किया करता था। उसके यज्ञ में, नर्मदा के दोनों किनारों पर रहने वाले तापसी, ग्रामों में विचरने वाले पण्डित, कन्दराओं में रह कर तप जप, धारणा ध्यान करने वाले साधन-शील योगी तथा तीर्थों पर अटन करने वाले अभ्यागत जन, कोई तीन चार सौ, एकत्रित हो जाया करते थे। भोजन तो वहां होता ही था परन्तु हरि गीत गान का जो निराला रस बरसता वह वर्णनातीत था। उस सत्संग में कोई कोई मुनि तो भजन गाता हुआ लीला से नृत्य करने लग जाता था। ऐसे अवसर में, जब कि वह पौर्णमास यज्ञ मनाया जा रहा था, एक दण्डी संन्यासी ने ब्राह्मण को कहा—और तो सब ठीक है परन्तु धर्म-यज्ञ के समय मुनियों का नृत्य करने लग जाना, शोभा नहीं देता। उस विद्वान् ने उत्तर में कहा—दण्डी जी ! जिस समय प्रस्थान-त्रय की टीका नहीं रची गई थी, बौद्ध-मत का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था और सम्प्रदायों के संकीर्ण सिद्धान्तों ने लोगों के हृदयों को संकुचित नहीं बना दिया था, उस समय के हमारे पूर्वज उदार थे। वे यज्ञों में देव-स्तोत्रों को गाते हुए, प्रेम-वश, नृत्य भी करने लग जाते थे। आज भी दक्षिणी लोग जो वेद को गाते समय हाथ हिलाते हैं वह उसी नृत्य का अवशेष अंश है। स्वर के साथ हाथ व पांव से जो ताल दिया जाता है वह नृत्य ही तो है। उस समय वहां संगीत सभा ने सरसता उत्पन्न कर रखी थी। भजनीक लोग भावना से भक्ति भाव के गीत गा रहे थे। ज्यों ही उस विद्वान् ने और दण्डी जी ने मिल कर श्रुतियों का आलाप किया, तो दोनों आवेश में आ गये और लगे चुटकियां बजा कर नृत्य करने। अन्त में विश्राम के समय दण्डी जी ने

[illegible] समाप्ति हो ही जाया करता है।

(३) काली के मन्दिर के विशाल आंगन में हरि भजन हो रहे थे। भक्त जन ताल-सुर से, भक्ति-रस-सने सुगीत गाते और झूमते चले जाते थे। उनके प्रफुल्ल मुख-मण्डल, विकसित नेत्र दर्शकों के मनों को मोह रहे थे। उस भजन कीर्तन को, एक अमेरिका का वासी भी खड़ा देख रहा था। वह अपने मत का आचार्य था। उसने बंग-वासियों के राग रंग पर कई बार नाक सिकोड़ा, मुँह चढ़ाया, भवें तानीं, त्यौड़ी डाली और घृणा प्रकट की। उसके ऐसे हाव भाव देख कर, एक बंग-वासी ने उसको कहा—महाशय ! आपको क्या हिन्दुओं की यह प्रार्थना अच्छी नहीं लगी? उसने उत्तर दिया—मैं बंगला भाषा जानता हूँ। गीतों के अर्थों को भी मैं समझता हूँ। गीत तो सब अच्छे हैं परन्तु इन लोगों का, परमेश्वर को मां मां कह कर, नाचने लग जाना कुछ भला नहीं प्रतीत होता। उस बंग-वासी ने आदर से उसको कहा—सज्जन! यदि आज यहाँ क्राइस्ट उपस्थित होता, तो इन्हीं में मिल कर पिता पिता पुकार कर नाचने लग जाता। ठीक है कि आज वह प्रार्थना हम में नहीं है जिस को गाते हुए जीभ के साथ देह की एक एक नस नाचने लग जाय।

उस भजन कीर्तन के अनन्तर वहाँ एक भोज हुआ जिस में बीसियों दीनों को, अपाहिजों को मिष्टान्न दिया गया और अन्त में शाक्त गुरु ने समागत सज्जनों को सम्बोधन कर के कहा—हम भगवान् को शक्तिमय मानते हैं। इस विश्व में, सारी रचना में शक्ति ही काम कर रही है। द्रव्य-मात्र से यदि शक्ति को निकाल दें तो वह पीछे कुछ भी नहीं रह जाता। सृजन, संवर्द्धन, संरक्षण, सुविकास तथा संहार शक्ति के ही परिचायक हैं। हम माता के मन्दिर में विश्व की शक्ति को मां कह कर आह्वान करते हैं। शक्ति की जागृति पहले शब्द में हुआ करती है। उसका अंश ही हमारा भजन पाठ है। फिर शक्ति का प्रकाश कर्मों में हुआ करता

है। उसका अंश हमारा दीन-जन-रक्षण तथा संपालन है। हमारे यज्ञ में शक्ति ही प्रधान है। इसका उद्देश्य प्रजा पालन और संरक्षण ही है।

(४) वृन्दावन में, बंगदेश के भक्तों की एक बड़ी मण्डली आई। उस मण्डली के सभ्यों ने बड़े भक्ति भाव से मन्दिरों का पूजन अर्चन किया और सुर-ताल से कीर्तन करना आरम्भ कर दिया। उनका गाना बजाना सभी, भाव-पूर्ण था। वे लोग जब हरि गीत गाते हुए गद्गद् हो जाते तो वहां प्रेम रस की बदलियां बरसने लग जातीं। उनके अनुराग को देख कर भक्त जन सहसा कह उठते कि मनुष्य में रामानुराग हो तो ऐसा हो, भगवान् की भक्ति हो तो ऐसी हो। वास्तव में यही आराधन का प्रकार है। जो लोग, भक्ति से शून्य, छोकरों, से कीर्तन कराया करते हैं वे तो भक्ति धर्म को काला कलंक ही लगाते हैं। उन बंगीय भद्र लोगों के राग रंग से वृन्दावन वासियों को बड़ा भारी लाभ हुआ। वे मन्दिरों के महन्तों की माया के मर्म को समझ गये। उनको छोकरों के नृत्य गान से घृणा हो गई।

उस बंग संघ के एक सज्जन ने, एक दिन, गोवर्द्धन पर्वत पर यज्ञ रचाया। उसने, उस दिन, मोहन-भोगादि उत्तमोत्तम और स्वादुतम भोजन बनवा कर, दीनों को, अंगहीनों को, निर्धनों को और अन्य अनेक अधिकारी जनों को तृप्त किया। उसने लवण की मोटी मोटी डलियाँ भी जहाँ तहाँ रखवा दीं और बीसियों मन हरा हरा घास मंगवा कर इधर उधर रखवा दिया। गोवर्द्धन पर चरती विचरती हुई गौएं, अपनी इच्छा से आती थीं और कोमल घास खा कर लवण चाटती थीं। उस सुन्दर दृश्य को देखकर, दर्शक जन वाह वाह कह कर परस्पर कहते थे कि सच्ची भावुकता तो बंगवासियों में ही पाई जाती है। श्री कृष्ण के चरित्र का सजीव अभिनय इन्हीं को करना आता है। यह यज्ञ कर के इन्हों ने श्री कृष्ण के गोवर्द्धन यज्ञ को, हमारे सामने मूर्तिमान् बना कर खड़ा कर

दिया है। इनका उत्साह, इनका साहस, इन की वीर वृत्ति, इन की भक्ति और इनका प्रेम कन्नौज देश के लिए, काशी देश के लिए, अवध प्रान्त के लिए और गंगा-यमुना प्रदेश के लिए अनुकरण करने योग्य है।

(५) प्रयाग में एक बृहद् यज्ञ रचा गया। वह माघी का महा मेला था। उस मेले में भारत के सभी प्रान्तों के लोग सम्मिलित हुए। कई लाख मनुष्यों का समारोह हो गया। नर्मदा के, गोदावरी के, यमुना के तथा नाना नदियों के और पर्वतों के वासी मुनि जन वहां आ कर विराजमान हो गये थे। मठाधीश, मण्डलेश्वर, महन्त आदि सभी साधु सन्त अपनी अपनी छावनियाँ डाल कर कथा वार्ता कर रहे थे। यात्री लोग भी अपने स्नान, दान, पूजन, पाठ, जप, आराधन और धर्म सुकर्म के करने में तत्पर थे। ऐसे समय में शंख, घंट, घड़ियाल बजा कर घोषणा की गई कि कल प्रातःकाल, गंगा जी के स्नान के अनन्तर, भागीरथी के तट पर एक महा सभा होगी। उस सभा में काशी के सभी पण्डित सम्मिलित होंगे। दक्षिणी और गुर्जर विद्वान भी इसी कारण यहां आये हुए हैं। बंग देश के धुरन्धर तत्त्वदर्शी, वागीश, तर्क शिरोमणि और गुणि जन, उस सभा में अपने निश्चय प्रदर्शित करेंगे। महा सभा में, यह समझ लेना चाहिये, कि बड़े महत्त्व का विषय रक्खा जायेगा। इस कारण नियत समय पर, महा सभा में सब लोग अवश्य ही आयें।

उस महा मेले में वह घोषणा विद्युत् समाचार की भांति फैल गई। सभी लोग आगामी सवेर की प्रतीक्षा, बड़ी उत्सुकता के साथ करने लगे। बहुत से पण्डित, महन्त और सेठ यही सोचते थे कि काशी के पण्डितों का दक्षिणियों के साथ कल शास्त्रार्थ होगा। कई एक यह विचार रहे थे कि कल बंगालियों के साथ काशी के तार्किक अपने कला कौशल के पेचीले पंजे लेंगे। कईयों का यह विचार था कि सभा में वैष्णव गुसांइयों के साथ वेदान्तियों की मुठभेड़ होगी। लोगों की अधिक संख्या तो यही

सोचती थी कि कल की महा सभा में, पंजाब और राजपूताने के सारे हिन्दू अहिन्दु अवश्य घोषित कर दिये जायेंगे। क्योंकि इन दोनों प्रान्तों के हिन्दू रात दिन पठानों के साथ मार धाड़ करते रहते हैं। समय पड़ने पर उनको लूट खसूट भी लेते हैं। उनके देश में चले जाते हैं। उनके कूओं का पानी भी पी जाते हैं। लड़ाई में ये सुलेमान पर्वत से पार जा कर वहां के लोगों का अन्न खा लेने में कुछ भी संकोच नहीं करते। ये बड़े हिंसाशील हैं। लसुन, प्याज तक खा लेते हैं और छुआछूत का ध्यान तक नहीं करते। इस कारण ये लोग आचार हीन हैं। यदि दक्षिणी आचारी पण्डित, काशी के शास्त्री, वैष्णव महन्त, शंकर के अनुयायी और वैश्य समाज के सारे सेठ मिल कर, राजपूतों को, जाटों को और खत्रियों को, कल सवेरे अहिन्दू बता दें तो इस व्यवस्था से हिन्दू धर्म बच जायगा नहीं तो सनातन धर्म का सर्वनाश होने में कुछ भी संशय शेष नहीं रह गया है।

पर्व का माहात्म्य था। प्रातः समय, सहस्त्रों नारी नर राम राम जपते हुए, गंगा के विमल, नील, सुशीतल जल में गहरी डुबकियां लगा कर नहाये। सब ने उस शुद्ध और स्वच्छ जल का आचमन किया। बहुतों ने सूर्याभिमुख हो कर जगत्-तारिणी, पाप-ताप-हारिणी भगवती गायत्री का जाप जपा। तदनन्तर जय राम, जय राम, बोलते हुए सब सज्जन सभा मण्डप में पधारे। उस समय दर्शकों ने देखा कि एक विशाल चन्दोये के तले पंडित-वृन्द, ग्रह, नक्षत्र और तारागण की भांति शोभा पा रहा है। एक सुन्दर और ऊंचे मंच पर काशी जी का सर्वमान्य संन्यासी विराजमान है। वही उस महा सभा का सभापति है। सभापति ने अपनी गम्भीर गर्जना के साथ सभा उद्घाटन की और कहा--आप सभी जानते ही हैं कि इस समय सारी हिन्दू जनता संकट में घिरी हुई है, यवन-पादाक्रान्त हो रही है, पराधीनता में पड़ी हुई विपद्-ग्रस्त है और दिनों दिन दुखिया दीन

होती चली जाती है। इस घोर कुसमय में किसी भी सनातन धर्मी को सुख से सांस भी लेना नहीं मिलता। हिन्दू मात्र पर यह आपत्काल आ गया है। इस कारण, प्रयाग के इस माघी याग में आये हुए सारे हिन्दुओं को मैं कहता हूँ कि तुम इस युग को आपत्काल समझो। भोजन आदि के झंझट में पड़ कर, तुम किसी भी हिन्दू का बहिष्कार न करो। एक भी हिन्दू को अहिन्दू बना देना अनेक गो हत्याओं से भी अधिक पाप है और महा नरक का कर्म है। बिरादरी के बन्धन में फंस कर और गोतों के गढ़ों में गिर कर एक भी राम भक्त को पतित कह देना ऐसा महा पाप तथा पातक है कि जिस का प्रायश्चित्त कभी कल्पान्तर तक भी नहीं हो सकता। इस प्रकार भाषण देकर श्री संन्यासी जी तो आसनासीन हो गये। तत्पश्चात् सभामंच पर खड़े होकर, एक दक्षिणी विद्वान् ने सब के सामने अपना प्रस्ताव उपस्थित करते हुये कहा कि सुना है देहली नगर में यावनी भाषा पढ़ाई जाने लगी है। यह सब कुछ इस लिये किया जायगा कि हिन्दू सभ्यता का, हिन्दू संस्कृति का और हिन्दू साहित्य का सर्वनाश कर दिया जाय। जिस जाति के जनों के पास अपने शब्द भी न रहेंगे, उसका शेष क्या रह जायेगा, यह तो आप सुगमता से जान सकते हैं। भाषा के मिट जाने से जातीय भाव तो स्वयं मिट जाया करते हैं। हिन्दू धर्म का गला घोंटने का भयंकर उपाय इस से बढ़ कर दूसरा नहीं किया जा सकता। हिन्दू भाव तथा भाषा को भ्रष्ट करने की यह भारी कूट नीति चली जा रही है। इस कुटिलता के काल में हमारे लिए आत्म-रक्षण करना परम आवश्यक कर्म है। यदि हम न सम्भले तो यह निश्चित जानिये कि इस कड़े, क्रूर काल की कुचाल हम को कुचल ही डालेगी, भूमि पर से हिन्दू भावों का भारी अभाव हो जायगा, हिन्दू साहित्य का कहीं बिन्दू विसर्ग भी नहीं रहेगा और हिन्दू धर्म का सब ओर लोप ही दिखाई देगा। मैं चाहता हूँ कि आप अपने

पूर्वजों की भांति सच्चे और पक्के हिन्दू बनें और अपने बुद्धि बल का पूरा प्रमाण दें। जिस समय राजगृह आदि के बौद्ध राजा, उस समय के हिन्दुओं को बुद्ध के मन्दिरों में जाने के लिए बाधित किया करते थे, तब तत्कालीन हिन्दुओं ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया था—"हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्" हाथी से सताया जाने पर भी जैन मंदिर में न जाय। अब यह महा वाक्य स्वीकार करो कि—"न वदेद् यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि" गला घोंटे जाने पर भी यावनी भाषा न बोले। इस प्रस्ताव को करताली नाद से सारी सभा ने स्वीकृत कर लिया।

******

धर्म

धारण करने से, शुभ कर्मों को धर्म कहा है। जिन निश्चयों को, विश्वासों को, नियमों को, व्रतों को और सुकर्मों को मनुष्य धारण करे तो उसके आत्मा का, मन का, तन का, परिवार का, समाज का और जाति तक का धारण, रक्षण और पालन हो जाय वे सब धर्म कहे गये हैं। उन्हीं गुण कर्मों को, निश्चय मंतव्यों को धर्म कहना चाहिये जिनके धारण करने से प्राणी का पाप अपराध से परित्राण हो जाय, मनुष्य का जीवन ऊँचा हो और उसका चरित्र पवित्र बन सके।

(१) यमुना का जल उछल उछल कर अपने किनारों के साथ क्रीड़ा कर रहा था। उसके रह रह कर उठते तरंगों के संग, रंग बिरंगी, मनोहर मछलियों के कलोल सभी को सुन्दर प्रतीत होते थे। यमुना के तट पर का, नव जात हरित, मृदु घास अपनी श्यामल शोभा लिये, भूमि, तरुगण, लताकुंज और अपने ऊपर के विमल, नील विशाल आकाश सहित नदी के स्वच्छ पानी में भी मूर्तिमान् हो रहा था। ऐसे सुहावने समय में, स्नानार्थ आए हुए सभ्यों को एक संत ने सम्बोधन करके कहा—धर्म का सच्चा और सनातन स्वरूप, सब सज्जनों को, समझ लेना चाहिए। धारण किया हुआ

जो धर्म, धारण करने वाले को, पाप से, पतन से बचाये, उसके जीवन को उन्नत कर दे, उसमें धैर्य, साहस, उत्साह उत्पन्न करे, उसको परिश्रमी, पुरुषार्थी बनाये और उसके पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन को सुन्दर, सुदृढ़ और सुमधुर बना सके, वही सत्य सनातन धर्म है। धर्म का एक स्वरूप विचारमय है—ज्ञान रूप है और दूसरा आचारमय है—कर्तव्य कर्म रूप है। यह जानना चाहिये कि जो विचार मनुष्य को उदार बनायें, उसमें उत्साह भरें, उसमें ओज तेज बढ़ाते रहें, उसको आशावादी बना दें तथा उसको कर्तव्य कर्म करने के लिये प्रेरित करें वे ही धर्ममय विचार हैं। जो दार्शनिक विचार, मनुष्यों को निराशा निशा के तमोमय, किंकर्तव्य-मूढ़-भाव में लीन कर दें, कर्म धर्म में अनुत्साही बनायें और जिन विचारों से व्यक्ति तथा जाति का अभ्युदय तथा उत्थान न हो कर पतन ही होता चला जाय वे अधर्म के विचार हैं। उनमें सत्य नहीं है, उनमें सजीवता भी नहीं समझनी चाहिए। अंत में मनुष्यों को, जातियों को ज्ञानमय विचार ही तो उठाया करते हैं पर उनकी परीक्षा वही है जो पहले कही जा चुकी है। धर्म का दूसरा स्वरूप कर्ममय है। अपने जीवन को उन्नत करने के कर्म करना, इंद्रियों को संयम में रखना, मन को विमल बनाना, देह को स्वच्छ, स्वस्थ बना रखने का यत्न करते रहना, संसार के सारे सम्बन्धों को सरस बना लेना और कर्तव्य कर्मों को पालन करने में, पाप ताप तथा बन्ध बाधा की व्यर्थ कल्पना न करके, सदा चाव से तत्परता रखना कर्ममय धर्म है। यही पुरातन तथा सनातन धर्म है। इसी से यह लोक और परलोक सुधरता है।

उस समय उस सन्त को एक सज्जन ने कहा—महाराज !हम तो यह समझते हैं कि धर्म, रीतियों का नाम है। सन्त ने उत्तर दिया—सौम्य! रीतियां तो समय समय पर बदलती रहती हैं परन्तु धर्म वह है जो सदा स्थिर रहे। देखो, भारतवासी कभी सिर पर मुकुट रक्खा करते थे। आज

टोपी रखते और पगड़ी बान्धते हैं। पहले युगों में पुरुष अधोवस्त्र (जांघिया) पहना करते थे, आज धोती धारण करना अच्छा मानने लग गये हैं। कोई काल था कि वैदिक लोगों में स्वयंवर हुआ करते थे आज वह रीति लोप हो रही है। मनु महाराज ने तो आठ प्रकार के विवाहों को धर्म में ही परिगणित किया था परन्तु इस समय उनमें से एक दो ही उचित माने जाते हैं। पुराने काल के हिन्दू शूद्र, परिश्रमी को, कर्मी को और जाति-सेवक को कहा करते थे। वे लोग शूद्र शब्द का यही अर्थ करते थे कि जो जन अपने बाहु बल से और अपने परिश्रम से, जाति के ''शुच को—शोक तथा चिन्ता को—पिघला कर दूर कर दे वह शूद्र है'' परन्तु आज अज्ञान वश लोग, शूद्र शब्द का अर्थ ''नीच जन'' बताते हैं। इस लिये धर्म जैसे उत्तम तत्व को रीतियों की सड़ी गली रस्सियों में बान्धना सर्वथा अनुचित है। धर्म के सूक्ष्म और सुकोमल स्वरूप को कुछ एक मन्तव्यों के किले में बन्द कर देना सर्वथा अनर्थ है।

(२) राम नाम का आराधन करने वाला एक मुनि पंजाब से चल कर मारवाड़ को गया। वह ग्रामानुग्राम विचरता हुआ उदयपुर में जा पहुँचा। सरोवरों से सुसज्जित, हरे भरे उस भूखंड को निरख कर उस मुनि ने मन ही मन कहा कि यह प्रदेश कश्मीर का एक दृष्टान्त है। यह भू-भाग मरुदेश का एक सुन्दर स्वर्ग है। इस की हरी भरी पहाड़ियाँ इसकी शोभा को चार चांद लगा रही हैं। उसी समय वहां उसको एक राजपूत दिखाई दिया जिस की मूछों की तनी हुई बांकी कमानें, उसके वीर भाव को प्रकट कर रही थीं। जिस का आकार प्रकार ही उसके सच्चे क्षात्र भाव को कह रहा था। जब समीप आ कर उस राजपूत ने उस मुनि को प्रणाम किया तो मुनि ने उस से पूछा—सौम्य ! आप किस धर्म को पालते हैं ? वह दुःखित हो कर बोला—महाराज ! मैं तो धर्म-हीन, एक अभागा प्राणी हूँ। मेरा धर्म तो प्रजा पालन है परन्तु इस पाप के युग में, मैं तो प्रजा पीड़न

ही करता हूँ। दुर्बल किसानों से कड़े कर ले कर हम लोग भारे भ-भार ही हो रहे है। वीर कर्म के अभाव से आज हमारा जीवन ज्वाला रहित अग्नि-कुंड, ज्योति-रहित दीपक और निर्जीव धौंकनी के समान बन रहा है। हम लोग तो अपनी अकर्मण्यता से, अपने पूर्व पुरुषों के पावनतम नाम तथा काम को कलंक ही लगा रहे हैं। राजपूत का पुण्यमय धर्म तो, वे ही शूर वीर, मेवाड़ के मुकुट-मणि पालते थे जिन्होंने हिन्दुत्व की रक्षा के निमित्त अपने जी-जीवन को जोखम में डाल कर सारी शाही को, सिर से पैर तक कम्पायमान कर रक्खा था। उन वीरों के बलिदानों के वर्णन, आज भी, हमारी नस नस में सजीव वीर भाव का संचार कर देते हैं।

मुनि ने अपनी दिव्य दृष्टि से देख कर कहा—भद्र ! एक समय था जब तीर्थ स्थान तोड़ दिये गये थे, धर्म-मन्दिर मिटा दिये जाते थे, पंजाब के, देहली के, काशी के, कन्नौज के क्षत्रिय और वीर वंश कट चुके थे उस समय हिन्दुओं के आशा के आकाश में हताशा, निराशा की निबड़ निशा का पूरा राज्य था। भारत भूमि भ्रूण हत्याओं से थर थर कांप उठी थी। हिन्दु हनन की घोषणाएं भयंकर रूप धारण कर रही थीं। किसी का बाल बच्चा तक भी बचने नहीं पाता था। उस समय अनुभवी, आत्म दर्शी, बुद्धिमान्, विद्वान् ब्राह्मणों ने, अग्नि से संस्कृत वीर वंश बनाये। जो लोग धर्म की रक्षा के निमित्त सिर समर्पण करने को समुद्यत हो गये, गुरुजनों के कथन से यज्ञ-कुण्ड में आहुति बनने के लिए आगे बढ़े, वे भारत को बचाने वाले वीर पुरुष, क्षत्रिय घोषित किये गये। क्षत्रिय तो जन पालन, जन संरक्षण का काम कर के पुण्य कर्म की पूंजी ही उपार्जन करता है, उसका वीर कर्म सर्वथा धर्ममय माना गया है, उसका बलिदान का भाव भक्ति की भावना को दर्शाता है और उसका स्व-शिर तक समर्पण का कर्म उच्चतम तप और त्याग समझा जाता है। सच्चा क्षत्रिय तो यदि समर में ही सो जाय तो सीधा सुखमय स्वर्ग को उपलब्ध कर लेता है। सो तुम राम

नाम का सिमरन और जन सेवा के कर्म सदा करते रहो। भगवान् तुम्हारा कल्याण कर देगा। प्यारे ! क्षात्र कर्म तो स्वभाव सिद्ध, सहज और नैसर्गिक मानव धर्म है। इसका पालन करना सर्वदा उत्तम कर्तव्य मानना। बन्धु जन के मोह से, जीवन की ममता से, भोग विलास की लालसा से, सामयिक सुख के वश तथा आधुनिक मतों के मिथ्या मन्तव्यों के कारण अपने सनातन क्षत्रिय भाव को कदापि परित्याग न करना।

(३) एक ब्राह्मण ने एक बड़े जन-समूह को सम्बोधन कर के कहा—कि भारतवासी दुर्बल इस लिए हैं कि वे अपने पुरातन धर्म को छोड़ बैठे हैं। वे, धर्म के उस सत्य स्वरूप को ऐसा नहीं समझते जैसा कि उनके पूर्वज पुरुष समझते थे। सत्य युग के वैदिक लोग, यजन याजन को, कर्तव्य कर्म को, दान बलिदान को, सेवा उपकार को, पीड़ित प्राणी के पालन परित्राण को, बल शक्ति के उचित उपयोग को, शूर वीरता को तथा जीवन के सारे कर्म कलाप को धर्म कहा करते थे। उस समय के महर्षि और मुनि, उन सारे कर्मों को धर्म मानते थे जिन से मनुष्यों के आत्मा को, मन को, तन को पुष्टि प्राप्त हो, लोगों में बल बुद्धि बढ़े, जनता में संघ-शक्ति का प्रवेश हो और समाज, दिनों दिन, सतेज तथा समुन्नत होता चला जाय। कलि युग के प्रभाव से आज लोग अकर्मण्यता की कल्पनाओं को धर्म मान रहे हैं। इनके अन्तःकरण कलि काल ने इतने कायर बना दिये हैं कि ये कर्म कर्तव्य के करने में भी, पाप अपराध के भयंकर कीड़ों के विषैले कलेवर कल्पित करते रहते हैं। दुर्बलता की बहुत बुरी वृत्ति के वश, वर्तमान युग के हिन्दू, वीरता की वायु में तो सांस लेना भी पाप पतन समझ लेते हैं। वास्तव में ये लोग मानव धर्म की अवहेलना करते जाते हैं। मानव धर्म में मनुष्य के लिए कर्म करने का विधान है, पुरुषार्थ तथा उद्योग कर्म का आदेश है और जीवन संग्राम में सबल तथा सफल रहने की आज्ञा है परन्तु आज के मन माने मताभिमानी

मनुष्य, क्रिया-जन्य मानव धर्म का लोप कर के, नित्य मरण मुखिया होते जा रहे हैं। समाज के सजीव अंगों से घृणा करना, सुधार से दूर भागना, अपनों को न अपना कर, उन से परे परे भाग कर, प्रति दिन उनको पराये बनाते जाना, परायों से प्यार करना, सम्प्रदायों के खुर्दरे खेत में, हठ के खूंटे के साथ, रूढ़ियों की रस्सियों से बन्धे हुए पशु बने रहना और निज रक्षण से सदा जी चुराते चले जाना लोग धर्म बता रहे हैं। लोगों की समता में, समानता में, समुन्नति में और सुगठित संघ विधि में विघ्न बाधा डाल कर विरोधी बन बैठना सनातनता कही जाती है। सच तो यह है कि मानव समाज का धर्म, मानव धर्म ही है और मानव धर्म वह है जिस से मनुष्य के दोनों लोक सुधर जायें। मानव जाति का सामाजिक शरीर, नीरोग, स्वस्थ, सबल, सतेज और सुपुष्ट हो। वे लोग मानव धर्म से सर्वथा अनभिज्ञ हैं जो समाज सुधार नहीं करते, जो जन एकीकरण के विरोधी हैं, जो संघ सुगठित करने में बाधक हैं, जो विचार-स्वातंत्र्य सहन नहीं कर सकते, जो मान और महत्व के भूखे, मतवाद के मन्तव्यों को आड़ बना कर, रात दिन, मुग्ध मनुष्यों की मन मानी मृगया करते फिरते हैं और जो कर्म धर्म को तथा कर्मयोग को बन्ध का कारण वर्णन किया करते हैं। अनाश्रमी लोग तो मानव धर्म से बहुत दूर चले गये हैं। परान्न को ताकने वाले लोग भी मानव धर्म को नहीं जानते। वे लोग भी मानव धर्म से विपरीत चल रहे हैं जो पानियों में कुल्ले करते जाते हैं और गंदी मंदी नालियों का पानी जहां पड़ता है वहीं बैठ कर स्नान और आचमन करने लग जाते हैं।

(४) काशी के एक विशाल मन्दिर में, पंडित मंडल मिल कर विचार रहा था कि पुरातन व सनातन धर्म क्या है ? सभी विद्वान् तथा गुणि जन अपने मत तथा निश्चय प्रकट कर रहे थे। उस समय, एक महा महोपाध्याय ने कहा कि विश्वनाथ की नगरी को यह वर मिला हुआ है

कि यहां वही व्यवस्था दी जाती है जो सर्वथा सत्य होती है। साम्प्रदायिक विचारों की उपेक्षा कर के और मतों के मन्तव्यों को न गिन कर विचारा जाय तो जो मानव धर्म है वही सनातन धर्म समझ में आता है। वही मोक्ष धर्म भी है। मानव धर्म के लक्षण दस वर्णन किये गए हैं। उनमें सब धर्मों का तत्व सार आ गया है। उनमें, मतवाद का नाम तक नहीं है, साम्प्रदायिकपन का लेश भी नहीं दीखता और क्लिष्ट कल्पना की कला का कोई अंश भी नहीं पाया जाता। यह सब समय में एक रस रहने वाला है, सब मनुष्यों के लिये समान है। यह सब देशों के लिये एक सा सुगम है। यह मनुष्य-मात्र को समुन्नत करने वाला है, इसी कारण मानव धर्म है। अन्य धर्म तो देश के धर्म हैं, काल के धर्म हैं जाति के धर्म हैं, कुल के धर्म हैं, लोक रीतियों के धर्म हैं तथा परम्परा के धर्म हैं परन्तु मानव धर्म तो त्रय-काल, त्रिलोक में एक रस रहने योग्य धर्म है। इसमें परिवर्तन के पैर नहीं पड़ने पाते। इसी को सार्व-भौम धर्म कहना चाहिये। इस दस लक्षणमय धर्म में किसी को कभी भी किन्तु परन्तु करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। बीच में ही एक वैष्णव पंडित बोला—निस्सन्देह मानव धर्म ही सनातन धर्म है परन्तु इस में भगवान् की भक्ति का नाम निर्देश नहीं है। तब एक शास्त्री ने कहा—भगवान् का स्वरूप अगम्य है। उसका विस्तार से वर्णन किया जाय तो उसमें एक तो साम्प्रदायिकपन आ जाता है, दूसरे उसमें, अधिकांश से, मानुषी मानस कल्पनाएं प्रवेश कर लेती हैं। परन्तु संक्षेप से, ''विद्या'' से जो परा अपरा दो प्रकार की विद्याएं कही हैं, उनमें परा विद्या भक्ति ही तो है। परा विद्या तो परम पावनी हरि भक्ति है। इस कारण विद्या नामक लक्षण में ईश्वर भक्ति भी सम्मिलित है। इससे समझ लेना चाहिए कि दस लक्षणमय मानव धर्म पूर्ण और सत्य सनातन धर्म है।

******

[illegible]

जो अपनी इच्छा से वा अन्य प्रेरणा से, हाथ से, पांव से, मन से तथा वाणी से इष्टानिष्ट कर्म करता है वह कर्त्ता कहा जाता है। जिन हस्तादि साधनों से कर्ता कर्म करता है वे साधन, करण कहाते हैं। कर्ता अपने करणों द्वारा जो शुभाशुभ करता है उसका नाम कर्म है। राग द्वेष से किया गया कर्म कर्ता को कष्ट क्लेष देने का कारण कहा गया है। सम भाव से, कर्तव्य बुद्धि से और शास्त्र के आदेश से किया हुआ कर्म, कर्ता के कल्याण का कारण वर्णन किया है। मनुष्य जैसे कर्म करता है, उसके अन्तःकरण पर, उन कर्मों के वैसे ही संस्कार अंकित हो जाते हैं। वे संस्कार ही समय पा कर कर्म फल बन जाया करते हैं। जैसे सिनेमा की फिल्म में जो रूप, जो रंग, जो आकार प्रकार, जो हाव भाव, जो दृश्य, जो स्वर गीत, जो वाणी वचन और जो नाद वादन भरा गया हो, अंकित किया जा चुका हो, समय पर, वही याथातथ्य अभिव्यक्त हो जाता है इसी प्रकार जैसे भावों से जो कर्म किये जायें वैसे ही उनके फल प्रकट हुआ करते हैं। अपने किये कर्मों का उसी पर दायित्व है। प्रत्येक कर्म-कर्ता में क्रिया करने की स्वतन्त्रता विद्यमान है, इस कारण अपनी स्वतंत्र इच्छा से कर्म करने वाला ही अपने कर्मों का उत्तर-दाता है। प्रत्येक कर्म-कर्ता, कर्म करने में स्वतन्त्र है इसका प्रमाण यही है कि करना, न करना, अन्यथा करना केवल कर्ता पर निर्भर करता है। सभी कर्म इच्छा से किये जाते हैं। इच्छा का सूक्ष्मतम स्वरूप आत्म-शक्ति है। वह आत्मा में स्वतन्त्र रूप से ही स्फुरित हुआ करती है।

(१) कुरुक्षेत्र में एक कर्म-काण्डी मनुष्य बसता था। उसके सारे कर्म उत्तम थे। वह प्रातः समय उठ कर, स्नान,सन्ध्या, जप, ध्यान आदि किया करता था और फिर दिन भर अपनी आजीविका निभाने के साधनों में लगा रहता था। जो कुछ धन वह उपार्जन करता उसका बड़ा

भाग दान में, सेवा में, उपकार में, तथा अन्य अनेक शुभ कर्मों में वह बड़ी उदारता से लगा देता था। उसके ऐसे सत्कर्म, सारे कुरुक्षेत्र में, एक उत्तम उदाहरण हो रहे थे। अनेक लोग उसके सुकर्मों का अनुकरण करते थे। एक बार वह सुकर्मी सज्जन हरिद्वार पर गया। वहां भी उसने अद्वितीय उदारता के मुक्त द्वार से दीनों को दान मान देकर अतीव सन्तुष्ट किया। उस कर्म-वीर सज्जन को, वहां एक मुनि ने मिल कर कहा—सौम्य! कर्म के मर्म को भी आप आज मुझ से समझ लीजिये। हिन्दू-भक्त कर्मवाद के विश्वासी हैं। वे यह मानते हैं कि जैसा कर्म कोई करता है, उसका वैसा ही फल भोगता है। अन्तःकरण भूमि है और कर्म बीज है। भूमि में जैसा बीज बोया जाय, उस से वैसा ही खेत फला करता है। खेती को काटते समय वे जन ही पछताया करते हैं जो भूमि को जोत संवार कर तैयार नहीं करते अथवा जो अच्छा बीज नहीं बोते। यथा आक, ढाक बो कर आम चाहना व्यर्थ है, नीम लगा कर उस से अंगूरों की आशा करना केवल दुराशा है, ऐसे ही अशुभ कर्म कर के, पाप के बीज बो कर सुख के, स्वर्ग के स्वादुतम फलों की कामना करना कोरी कृपण-कल्पना है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, यह अन्तःकरण चतुष्टय है। यही कर्म-बीज बोने का खेत है। शुभ कर्म के बीज बोने से पहले इस खेत को, संयम से, साधनों से, सत्संग से, सद्भावों से, प्रेम और भक्ति से उत्तम बनाना चाहिये। फिर शुभ कर्म का बोया हुआ बीज बहुत ही बढ़िया फल लाया करता है। अपनी सुकर्म की खेती को उत्तम विचारों से सदा सींचते रहना अधिक उपयोगी है।

(२) गंगा नदी के समीप एक ग्राम में एक किसान रहता था। वह बढ़ा परिश्रमी और भक्त था। पर वह दैव योग से,धन, जन और तन से अति कृश था। दिन भर परिश्रम कर के वह बड़ी कठिनता से अपना पेट भरा करता था। एक दिन उसने पूरा परिश्रम करके जब सायं समय रसोई

बनाई तो तत्काल एक भूखा अभ्यागत वहां आ खड़ा हुआ। उस किसान ने उस अभ्यागत को अपना सारा भोजन दान कर दिया और वह आप सारी रात भूखा पड़ा रहा। उसके विमल मन में यही मधुर मनोरथ उत्पन्न होता था कि ऐसा शुभावसर राम कृपा से नित्य मिलता रहे। ऐसी दान भावना मुझ में सदा एक रस बनी रहे।

अगले दिन सवेरे जब वह काम करने को जा रहा था तो मार्ग में एक ब्राह्मण ने उसको कहा—भद्र! तू भजन पाठ तो बहुत करता है, तेरे पास जो कुछ होता है वही दीन दुःखी जन को दे देता है परन्तु तेरी प्रारब्ध, न जाने इतनी क्यों मन्द है ? तेरा हाथ सदा तंग रहता है। तू धन के अभाव से, कष्ट-कर कर्म से कमाई कमाता है। किसान ने कहा—ब्राह्मण ! यहां तो मैं पूर्व कर्मों का फल भोग रहा हूँ। जो सुकर्म अब करता हूँ उनके फलों को आगे भोगूंगा। ब्राह्मण! मनुष्य के आचारों के, विचारों के, धर्मों के, कर्मों के संस्कार उसके अन्तःकरण पर पड़ते रहते हैं। उन संस्कारों को, ज्ञानी लोग संचित कर्म कहा करते हैं। उन्हीं को वासना भी कहा जाता है। जैसे तेल में पुष्पों की सुगंधि बसी रहती है, वायु में गंध मिश्रित हो जाती है, दर्पण में छाया अंकित हो जाया करती है और यंत्र विशेष में शब्द की प्रतिध्वनि बस जाती है, ऐसे ही किये कर्मों के संस्कार कर्ता के अन्तःकरण में अंकित रहते हैं। वे कर्म वासनाएँ व कर्म संस्कार प्रारब्ध कर्म के बीज हुआ करते हैं। प्रारब्ध कर्म, उन संस्कारों का पेड़ और फल माना गया है। जो कर्म संस्कार कर्म फलों में परिणत हो जाते हैं उनका नाम प्रारब्ध है। और जो कर्म किये जा रहे हों उनको क्रियमाण कर्म कहा जाता है। खोटे संस्कार, संचित कर्म, राम-भक्ति से भस्म भी हो जाया करते हैं। जप, तप, आराधन से संचित कर्मों का सर्वनाश तक हो जाता है। क्रियमाण कर्म का लेप हरि भक्तों को नहीं लगा करता। उपासक जन, पद्म-पत्र की भांति कर्म-जल लेप से निर्लेप बने रहते हैं। परन्तु प्रारब्ध कर्म

तो भोगने ही पड़ते हैं। सो मेरे प्रारब्ध कर्म ऐसे अवश्य हैं जिन से मैं कृश हूँ परन्तु मेरा आत्मा दुर्बल नहीं है। मुझे द्रव्य का अभाव कुछ भी नहीं सताता, परिश्रम से मुझ को यत्किंचित् कष्ट भी प्रतीत नहीं होता और संसार के स्वादु सुखों की लालसा मेरे मानस मन्दिर में कभी भी प्रवेश नहीं करती। रूखी सूखी खा कर जब मैं ठण्डा पानी पीता हूँ तो अपने आपको किसी से कम नहीं पाता हूँ। हे ब्राह्मण ! भोग पदार्थ किसी को कितना ही कम क्यों न मिले उसमें विचार की, विवेक की, धैर्य की, सन्तोष की, पुरुषार्थ की और आत्म संयम की कमी न हो तो वह सुखी मनुष्य ही समझा जाता है। भगवान् ने अपनी भक्ति और अपना भरोसा दान करके मुझ रंक को तो राजा बना रक्खा है। मैं राम भरोसे सदा सुखी और सर्वथा निश्चिन्त रहता हूँ।

(३) पौष मास अपने पूरे बल को दिखा रहा था। घोरतर शीतपात से सभी प्राणी कांपते हुये दिखाई देते थे। जहाँ तहाँ तिनकों पर, घास पर, हरे हरे खेतों पर, बेल बूटों पर और मार्गों में कोहरा जमा पड़ा था। सर्वत्र सम-स्थानों में कोहरे की चिट्टी चादर बिछी पड़ी दीखती थी। तालाबों के, सरोवरों के पानी जम गए थे। पशु पक्षी पाले से परित्राण पाने के लिए सिकुड़े सिमटे हुए बैठे थे। लोग अग्नि ताप कर अपने आपको गर्म कर रहे थे। ऐसे समय में एक हट्टा-कट्टा, व्यस्क मनुष्य एक मन्दिर में आ घुसा। उसके अंग कांपते और सिकुड़ते चले जाते थे। उसके दान्तों से दान्त बजते थे। उसकी ऐसी दशा देख कर मन्दिर के महन्त ने उसको ओढ़ने के लिए कम्बल देकर कहा—महाशय ! तू पिछले जन्म का भाग्यहीन नहीं है क्योंकि तेरा शरीर पुष्ट बलिष्ठ है। तेरे सारे अंग सुदृढ़ हैं तू कर्म करने को समर्थ है तथा सशक्त है। फिर जो तू ऐसा वस्त्र हीन बना फिरता है यह तेरा पाप कर्म तेरे इसी जन्म का है। तेरा नग्नपन, निराश्रयपन और निरन्नपन तेरे इसी जन्म के आलस्य प्रमाद का कटुतर परिणाम है। सो तू अपना जीवन अच्छा बना। पुरुषार्थ और

दिन नहीं लगेंगे।उसने महन्त को कहा—महाराज ! मैं तो यही मानता हूँ कि मेरे पहले कर्म खोटे हैं, मेरे पूर्व जन्म के दुष्कर्मों का यह सारा परिणाम है जो मैं अब इस जन्म में भोग रहा हूँ। महन्त ने कहा—यदि तू अंग-हीन होता, अपाहिज होता और अन्न वस्त्र के उपार्जन में सर्वथा असमर्थ होता तब तो तेरी यह अवस्था तेरे पूर्व जन्म के पापों का परिणाम कही जाती परन्तु तू तो हृष्ट पुष्ट और आजीविका चलाने में सर्व प्रकार सामर्थ्यवान् है। इस कारण तेरा भोग सोग तेरे इसी जन्म के प्रमादादि पाप कर्मों का अनिष्ट फल है। यह सत्य है कि प्राणी पूर्व-कृत कर्मों का फल भोगते हैं परन्तु पूर्व-कृत का तात्पर्य यही है कि फल भोग से पहले किये गये। वे चाहे पहले जन्म के हों चाहे इस जन्म के।

(४) हरिद्वार पर दो विद्वानों का कर्मवाद पर सम्वाद हो रहा था। दर्शकों की भी बड़ी भारी भीड़ लगी हुई थी। परन्तु उस वाद का कोई निर्णय होने में नहीं आता था। अन्त में विचारवान् एक किसान ने आगे बढ़ कर कहा—पण्डित तो अपने वाद वितण्डा में पड़े हुए, सब का समय व्यर्थ में खो रहे हैं। इनके वाक्य आडम्बर, वचन-छल और वाणी-विलास को छोड़ कर सोचो तो कर्म वही है जो किया जाय। कर्मों का कर्ता सशरीर आत्मा है। पूर्व-कृत कर्मों के प्रभाव से कर्ता में शुभाशुभ क्रिया उत्पन्न हो आती है। वह क्रिया, चेष्टा वा प्रवृत्ति के नाम से कही गई है। उस प्रवृत्ति के प्रेरक राग द्वेष हुआ करते हैं। पूर्व कर्म की वासना तो वास्तव में प्रवृत्ति को प्रेरित किया करती है। जैसे एक कीड़ी के पीछे दूसरी कीड़ी चला करती है एक ऊंट के पीछे अनेक ऊंटों की एक लम्बी कतार चला करती है और मधु-राणी के पीछे सहस्त्रों मधु-मक्खियां उड़ा करती हैं ऐसे ही वासनाओं से प्रवृत्तियों का तार बन्ध जाता है। जैसे पानी का प्रवाह रोका तथा बदला जाता है ऐसे ही सभी प्रवृत्तियां भी रोकी तथा

बदली जा सकती हैं। विवेकवान् कर्ता का अपनी प्रवृत्तियों पर पूरा अधिकार होता है। वह उनको नष्ट तक कर सकता है। जैसे दाने भून दिये जायें तो फिर उनसे अंकुर नहीं उत्पन्न होता ऐसे ही यदि संचित कर्म तथा कर्म-संस्कार भक्ति से, ज्ञान से, और कर्म-योग से दग्ध कर दिये जायें तो उनसे उत्पन्न होने वाली प्रवृत्ति भी भस्म हो जाया करती है। अब रही प्रारब्ध कर्म की बात। प्रारब्ध कर्म भोगने से आप ही समाप्त हो जाता है। संचित और क्रियमाण कर्म नष्ट हो जाने पर, प्रारब्ध कर्म, छिन्न-मूल पेड़ की भांति, आप ही आप सूखता चला जाता है। यदि किसी का दुष्ट प्रारब्ध कर्म प्रबलतर भी हो तो उसको वह भक्ति से, हरि सिमरन से, तप से, विवेक से और सद्ज्ञान से मन्द बना सकता है। एक कायर मनुष्य को चुभा हुआ कांटा उसको घोर कष्टकारी प्रतीत होता है और एक शूर-वीर देश-भक्त, गोली की मार को भी पुष्प-प्रहार समान समझ कर शत्रु से लड़ता रहता है। मोह माया में ग्रस्त जन थोड़े से दुःख से तड़प उठता है परन्तु हरि-भक्त जन पर्वतपात से भी कम्पायमान नहीं होते। अविवेकी को वियोग वेदना महा व्याकुल बना देती है और विवेकवान् उसको केवल काल परिवर्तन मात्र ही मानता है।

दुःख की मात्रा दुःख सहने के अभ्यास से भी कम हो जाया करती है। एक सुखशील मनुष्य, उष्ण काल में, चार घड़ी दिन चढ़े की धूप से पिघल कर पसीना पसीना हो जाता है। परन्तु जेठ मास में, दोपहर के समय, खलिहान में खड़ा किसान, अपना काम काज करता हुआ, बड़े हर्ष से गीत गाता रहता है। इस कारण यह बात सत्य है कि मनोबल से तथा अभ्यास से दुःख क्लेश मन्द पड़ जाते हैं, उनकी प्रतीति प्रबलतर नहीं रहती।

(५) कर्म धर्म का उपदेश देते हुए एक मुनि ने बताया कि कर्म दो प्रकार के कहे गये हैं। एक विहित कर्म हैं, जिन के करने का

विधान शास्त्रों में पाया जाता है, जिन के करने का आदेश वेद और आप्त जन देते हैं, जो जाति और देश के हित कर हैं, जिन से समाज का अभ्युदय और धारण हुआ करता है। दूसरे कर्म निषिद्ध हैं—शास्त्रों ने जिन के करने का निषेध किया है, आप्त लोग जिन का करना वर्जित बताते हैं, जो जाति तथा देश के लिए हानिकारक हैं और जो समाज के अभ्युदय को रोकते हैं तथा हितकर नहीं हैं।

विहित कर्मों के चार भेद हैं—एक तो वह जो कर्म कामना से किया जाता है। दान सेवा, उपकारादि कर्म करके उनके फल की वाञ्छा करना, इस लोक में कीर्ति, प्रशंसा तथा प्रत्युपकार को चाहना और परलोक के स्वर्गीय सुख भोग की लालसा रखना कामना है। ऐसे कर्मों का नाम सकाम कर्म है। दूसरा भेद निष्काम कर्म है। दान, पुण्य, सेवा, उपकार आदि शुभ कर्म करके उनके सांसारिक फलों को न चाहना, केवल कर्तव्य बुद्धि से कर्म करना, निष्काम कर्म है। तीसरा भेद है—समर्पण कर्म। जो भगवद्भक्त अपने मन को, अपने धन को, अपने तन को, अपने बल ज्ञान को, अपने बुद्धि विवेक को और अपने करने को राम नाम के मंत्र से परमेश्वर के आगे समर्पण कर देता है और सकाम निष्काम के चक्कर में नहीं पड़ता, उसके कर्म समर्पण कर्म कहे जाते हैं। समर्पण कर्मों का कर्ता केवल रामेच्छा पर ही निर्भर किया करता है। चौथा भेद राम के कर्म हैं। कोई भी संत, सज्जन और संयमी अपनी अन्तरंग प्रेरणा से संचालित हो कर लाखों मनुष्यों को सुधार दे, युग बदल डाले, करोड़ों मनुष्यों के मनों को एक-मुखी बना कर, एक लक्ष्य पर केन्द्रित कर दे, धर्म के, भक्ति प्रेम के प्रवाह बहा दे तो समझो कि उसके कर्मों में भगवान की कला काम कर रही है। उसमें दैवी शक्ति का अंश ही प्रकट हुआ मानना चाहिये। ऐसे महात्माओं में दैवी प्रेरणा का प्रकाश और देव-वाणी का अवतरण होना बहुत ही संभव होता है। इस कारण उनके कर्म राम के कर्म कहे जाते

हैं। समर्पण के कर्मों में और राम के कर्मों में उनका कर्ता तो निमित्त मात्र ही होता है, वह यंत्र की भांति क्रिया करता जाता है और वास्तव में प्रेरक, परम पुरुष ही माना जाता है।

(६) एक बार एक ग्राम में चोरों का दल आ घुसा। वह जाटों का ग्राम था। चोरों का नाम सुनते ही लोग लाठियां, छवियां, गंडासे और तलवारें लिये अपने अपने घरों से बाहर निकल आये। ग्रामवासियों ने मार-मार कर सभी डाकू लिटा दिये। इससे सारा ग्राम निश्चिन्त हो गया। अगले दिन दूर-दूर से लोग उस डाकू दल को देखने आते थे और ग्रामीणों के बल पराक्रम की कीर्ति गाते जाते थे। उस समय एक व्यापारी ने कहा कि जाटों ने अपना ग्राम तो बचा लिया पर बेचारे चोर मारे गये। इनको डरा धमका कर भगा दिया जाता तो अच्छा होता। ऐसा करने से पाप कर्म तो न हो सकता। उसी काल उस सेठ को एक विद्वान् ब्राह्मण ने समझाया कि डाकू दल का दमन पाप नहीं है। अपनी और पराई रक्षा करना कर्तव्य कर्म है। दुर्बल जन को बचाना पुण्य है। आततायी को दण्डित करना वेद-विहित और शास्त्र-सम्मत कर्म है। ऋषि, महर्षि ऐसे सुकर्म करते आये हैं। स्वात्मा की और आत्मीयों की रक्षा करना तो सब प्राणियों में स्वभाव-सिद्ध कर्म पाया जाता है। इस नैसर्गिक नियम में पाप दोष की कल्पना करना केवल मिथ्या मात्र है। हां, अन्याय पूर्वक जो कर्म किया जाय वह पाप है। निरपराधी मनुष्य को सताना पाप है। दीन, दुर्बल को दुःख देना पाप है। संक्षेप से, जिस कर्म के करने से अपना तथा पराया पतन हो, वह पाप है। जिस कर्म से कर्ता के मानुषी भाव का पतन हो, उसके वीरत्व का पतन हो, उसके कर्तव्य का पतन हो, उसके निर्भय भाव का पतन हो, उसके नियम न्याय का पतन हो तथा उसके विवेक विचार का पतन हो वह पाप है। देश का द्रोह करना, जाति का अनिष्ट करना भी पाप है। इस से प्राणी का अपना तथा उसके देशवासियों का

पतन हो जाता है। कर्म करते समय कर्ता का लक्ष्य ऊंचा होना चाहिये। जन रक्षण तो उत्तम लक्ष्य से और उच्च भावों से किया जाता है, इस कारण ऐसे कर्म शुभ कर्म ही कहे गये हैं। इनको करता हुआ मनुष्य कर्म संस्कार से सर्वथा निर्लेप बना रहता है।

(७) वनों उपवनों में विचरता हुआ एक मुनि, एक ऐसे देश में जा पहुँचा जहां महामारी का भयंकर प्रकोप हो रहा था। उस देश के लोग अति चिन्तित चित्त और व्याकुल-मना हो रहे थे। मुनि ने भी भूत-दया-वश जनता के दुःख को दूर करने का भरसक यत्न किया। थोड़े दिनों में ही जन-नाश-कारिणी व्याधि शान्त हो गई। उस समय, उस मुनि से एक सज्जन ने प्रश्न किया-महात्मन् ! हम हिन्दू सुख, दुःख, जीवन, मरणादि को अपने पूर्व-संचित कर्मों का फल मानते हैं परन्तु इस देश में जो लाखों मनुष्य, एक काल में, एक सी व्याधि से मर गये उन सब के कर्म एक जैसे कैसे थे ? मुनि ने उत्तर दिया—सौम्य! कर्मों के सारे भेद तो भगवान ही जानता है। ज्ञान उसी का पूर्ण है। हां, शास्त्रानुसार जो कुछ समझ में आता है, तदनुसार कहता हूँ कि कई एक कर्म सामूहिक भी हुआ करते हैं। जैसे सौ डाकू मिल कर किसी गांव को लूट लें, सहस्त्रों मनुष्य उत्तेजना-वश किसी नगर को आग लगा दें, लाखों मनुष्य, एक समय में आक्रमण करके किसी दुर्बल जाति को काट पीट कर उसकी धन-सम्पत्ति अपहरण कर ले जाएं और एक देश के वासी दूसरे देशवासियों से वैर विरोध करके उनकी हत्या कर डालें, ऐसे सब कर्म सामूहिक कर्म कहे गये हैं। ऐसे कर्मों को करते समय, जन-समूह मन, वचन, काया से प्रायः एक रूप हो रहा होता है। इस कारण उनके कर्म संस्कार भी समान होते हैं और फिर पीछे उन समान संस्कारों के फल भी, सम-काल में, समान ही भोगने पड़ा करते हैं। परन्तु यह तत्त्व अवश्य समझना उचित है कि महामारियों से इतने मनुष्य मरते नहीं, जितने पीड़ा भोगते हैं। मरना

जीना विधाता का विधान मान कर, रोग की पीड़ा को, कष्ट क्लेश को, व्याधि के भय को, शोक की वेदना को उपायों से कम किया जा सकता है। वह पीड़ादि तो प्रायः मनुष्यों के अपने प्रमाद का ही परिणाम होता है। जो जन स्वास्थ्य के नियम नहीं पालते, स्वच्छ नहीं रहते, परिश्रम नहीं करते, खान पान में मर्यादा नहीं रखते और आत्म-संयमी तथा जितेन्द्रिय नहीं होते उनके रोग-भोग, व्याधि-वेदना तथा दुःख क्लेश उनके ऐसे कर्मों के अनिष्ट फल कहे गये हैं। कभी कभी जो कोई सबल जन, अबल को, अकारण कष्ट दिया करता है, वह कर्म फल न कह कर, पर -कृत अन्याय, अत्याचार कहना चाहिए। ऐसा कर्म कर्ता का नवीन कर्म कहा जाता है। उसका बदला दुःख दाता को भोगना होता है। दुर्बल, दीन, पराधीन, दब्बू और दास बन कर दुःख भोगते रहना यह मनुष्य को अपनी कायरता का, कर्म-हीनता का, अवीर-वृत्ति का और अपुरुषार्थता का फल होता है। इसको पिछले जन्म के साथ जोड़ कर, भीरु मनुष्य अपनी निर्बलता छिपाने के लिए, एक व्यर्थ बहाना ही बनाया करते हैं।

(८) एक नगर में एक धनपति निवास करता था। द्रव्य तो उसके घर में समाता तक नहीं था। लक्ष्मी उसके पाओं में ठोकरें खाती डोलती थी। रुपया पैसा उसके नौकरों चाकरों के चरण चुम्बन करता फिरता था। उसका घर माया का मन्दिर माना जाता था परन्तु सेठ की देह अति दुर्बल थी। उसकी पाचन शक्ति अतिमन्द थी। उसका रंग पीला पड़ गया था। उसकी काया सूख कर कांटा सी हो रही थी। मांस पेशियों से रहित, उसका अस्थि-पिंजर, भीतर बाहर एक सार दीखता था। उस धनपति सेठ को, अपनी दिव्य दृष्टि से देख कर, एक मुनि ने अपने शिष्य को कहा—प्यारे! इस सेठ के पास सम्पत्ति तो अपार है पर यह है भाग्यहीन। यह अपने धन का उपभोग कुछ भी नहीं कर सकता। यह जौ का उबाला हुआ पानी पीता है परन्तु वह भी पूरा नहीं पचा सकता, इससे सूर्य का

तेज सहन नहीं हो सकता, इस कारण यह दिन भर एक अंधेरी कोठड़ी में पड़ा काल काटा करता है। यदि सुकोमल कपड़े पहने तो इसके तन को जलन होने लग जाती है। यह रात दिन खुर्दरा कम्बल ओढ़े रहता है और कंकड़ों पर सोता है।

भद्र ! कोई जन दान, पुण्य, सेवा, उपकार आदि सुकर्म करके, पश्चात्ताप करने लग जाये तो उसकी ऐसी ही दशा हुआ करती है। इसने पिछले जन्म में, अनाथ पालन में, एक बार ही लाखों रुपये दान कर दिये। परन्तु कालान्तर में यह पीछे पछताने लग गया था। उस दान का फल तो, इस जन्म में इसकी यह सम्पत्ति है पर इसके पिछले जन्म के पश्चात्ताप का यह परिणाम है कि यह पदार्थों के भोगने में सर्वथा असमर्थ है। इसी लिये मुनियों ने कहा है कि दान दे कर, सेवा करके, उपकार और त्याग करने के पीछे पश्चात्ताप करना अपने सुकृत कर्म के अमृत में विष मिलाना है, गंगा जल के कटोरे में गन्दा कीचड़ मिश्रित करना है, तथा कामधेनु के मधुर दूध में कांजी डाल देना है।

******

सदाचार

श्रेष्ठ, सभ्य और सज्जन जनों के आचरण को, कर्तव्य कर्म को, नियम व्रत को, रीति नीति को, मर्यादा बन्धन को और धर्म धारणा को सदाचार कहा है। सत्कर्मों को और सच्चरित्र को भी सदाचार कहा जाता है। वे सब कर्म सदाचार में गिने जाते हैं जिनसे मनुष्य के भीतर ऊंचे भावों का उदय हो और उसका मन तन अच्छा रहे। समाज की समुन्नति और मर्यादा के सुकर्म भी सदाचार ही समझे जाते हैं।

(१) उज्जैन के कुम्भ पर एक बार एक बड़ी परिषद् के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि सदाचार का, सर्व साधारण की समझ में

समा जाने वाला, सच्चा स्वरूप क्या है? बड़े लम्बे वाद विवाद के अनन्तर, सब विद्वानों ने, एक मत हो कर, निर्णय किया कि सद् नर-नारियों के सुकर्मों को, चारु चरित्र आचरण को सदाचार कहना चाहिए और व्यक्ति को तथा समूह को सभ्य, सज्जन बनाने और समुन्नत करने वाले सत्कर्म सदाचार समझने उचित हैं। ऐसा सदाचार दश लाक्षणिक मानव धर्म है। इसको साधारण तथा सामान्य धर्म भी कहा है। यह चारों वर्णो का एक सा धर्म कहा गया है। विशेष आचार दो प्रकार का है। एक तो चारों वर्णो का धर्म विशेष आचार है और दूसरे सम्बन्ध संबन्धी कर्तव्य पालन करना सदाचार है। माता पिता के, पति पत्नी के, भाई बहिन के, बन्धु मित्र के संबन्धों को भली भांति पालन करना, उनको दृढ़तर और सुमधुर बना रखना सदाचार है। जाति समाज के नियम बन्धन को निभाना भी विशेष आचार है। सदाचार का यही सरल, सुन्दर और सच्चा स्वरूप है। इसी से मनुष्य का जीवन सुखमय होता है। यही सदाचार परलोक में मनुष्य का सहायक समझा जाता है। इस सदाचार से भिन्न कल्पना केवल क्लिष्ट कल्पना है और व्यर्थ का मतवाद मात्र है।

(२) आबू पर्वत के एक एकान्त शान्त स्थान में एक सुन्दर मठ था। मठ के आस पास का प्रदेश भी, नाना प्रकार के पेड़ों से, बहु विध बेलों बूटों से और भांत भांत की पुष्प लताओं से बहुत ही सुशोभित था। उस प्रदेश के स्वाभाविक पुष्प, रात-दिन,निरन्तर अपनी भीनी-भीनी सुगन्धि ऐसे ही चहुँ ओर निस्सरण करते रहते जैसे उस मठवासी मुनियों के अमल चित्त कमल शुभ संकल्पों की सुगन्धि, सहज से दशों दिशाओं को, विस्तृत करते रहते थे। उस मठ का महन्त बड़ा तपस्वी, त्यागी, वीतराग और अतिशय सज्जन मनुष्य था। उसका मधुर वार्तालाप मुनियों को भी मोह करके ही छोड़ता था। महन्त के शिष्टाचार, सद्व्यवहार और सच्चरित्र के कारण, दूर-दूर से यति जन वहां आ कर ठहरा करते थे। ध्यान

धारणा करने वाले योगी जन तो उस स्थान को अपने साधनों का स्वर्ग [illegible] करने का सुअवसर, सुगमता से मिल जाया करता था। उस स्थान की कीर्ति सुन कर, एक बार संन्यासियों की एक मण्डली वहां आ टिकी। उस मण्डली का मण्डलेश्वर विद्वान् तो था पर अभिमान और घमंड का भी घर था। उसने अपने साथियों सहित वहां चतुर्मास तक ठहरने का निश्चय कर लिया। मठ के महन्त मुनि ने भी उनके आदर आतिथ्य में, योग क्षेम में और उनकी सेवा शुश्रूषा में कोई भी कमी न की। वह, उन सब को अन्न से, वस्त्र से, दूध से, घी से तथा आदर सम्मान से, प्रसन्न करने में, दिन रात तत्पर रहता था। पर फिर भी उस मण्डली का मण्डलेश्वर उससे रूठ गया। उसको सामने देख कर तुरन्त नाक मुँह फुला लिया करता।

मण्डलेश्वर का अकारण कोप करना, महन्त के कोमल अन्तःकरण को कचोटने लग गया। उसने एक दिन मण्डलेश्वर के पैर पकड़ कर उससे कहा—मैं तो साधु सन्तों का सेवक हूँ। आप मुझ पर क्यों रुष्ट हो रहे हैं। यदि जाने अजाने कोई भूल चूक मुझ से हो गई हो अथवा मुझ से कोई अपराध हो गया हो तो, आप संन्यासी हैं, अपने सेवक को क्षमा कर दें। मण्डलेश्वर ने अपना मुंह मोड़ कर कहा—आपके अनाचार से मैं असन्तुष्ट हूँ। आप जो शाक भाजी में प्याज लसुन का तुड़का लगा देते हैं यही आप का अनाचार है। यही मुझ को नहीं भाता। आपको हींग प्याज का आचार अवश्य पालना चाहिए। उसके कोप का कारण जान कर महन्त ने बड़ी नम्रता से उसको कहा—संन्यासिन्! भला कभी शाक पात के खाने में आचार हुआ करता है ? आचार तो, सत्य भाषण है, हितकर वचन बोलना है, क्रोध को जीतना है, अभिमान को मारना है, ईर्ष्या द्वेष को दमन करना है, सभ्य, सुशील और सत्कर्मी होना है। भोजन

के भेद में, खाने के पदार्थों में आचार विचार सोचते रहना साम्प्रदायिक झगड़ा है। खाद्य वस्तुओं में अनाचार की आशंका करना अतीव तुच्छ विचारों का परिणाम है। महात्मन्! सच्चरित्र संचय को ही सच्चा आचार समझो। उसी से मनुष्य का मंगल और कल्याण होता है।

(३) प्राचीन काल में हस्तिनापुर एक सुप्रसिद्ध नगर था। चंद्र वंशीय राजाओं की वह राजधानी थी। कुरुवंश के क्षत्रिय उस नगर में बड़े गर्व और गौरव से रहते थे। वहां के पण्डित, शास्त्र ज्ञान में पूरे प्रमाण माने जाते थे। नगरवासी सभी निर्भय, स्वतंत्र, स्वच्छन्द, निश्शंक और सुख पूर्वक वहां बसते थे। एक बार उस राज्य में दुष्काल का प्रचण्ड प्रकोप टूट पड़ा। अन्न की कमी से मनुष्य दुःखी हो गये। जहां देखो भूखों की बड़ी भीड़ लगी हुई दीखने लगी। ऐसे समय में उस नगर के राजा ने, अपना सर्वस्व दान करके, अकाल पीड़ितों की पालना की। उसने अपने सारे बल से अकाल के आक्रमण को रोक दिया। सुकाल हो जाने पर, जनता ने अपने राजा को आदर देने के लिए सभा कर के उसका अभिनन्दन किया। जनता का धन्यवाद करते हुए, राजा ने कहा—परस्पर सहायता करना, परार्थ अपने पदार्थों को अर्पण करना, अपने तन, मन, धन और बुद्धि बल से मनुष्यों का पालन पोषण कर देना केवल सदाचार है। हमारा आर्य धर्म उदारता पूर्ण है। यह सदाचार को किसी एक वस्तु में ही नियत नहीं करता, किसी एक कर्म में संकुचित नहीं बनाता, किसी एक देश काल में सीमा-बद्ध नहीं बना देता और न ही किसी भोजन के भ्रम में फंसा रखता है। इस उदार धर्म में, सदाचार सभी सत्कर्मों का नाम है। इसमें श्रेष्ठ आचरण ही सदाचार है। सदाचारी होने के लिये मनुष्य में चार गुण अवश्य होने चाहिएँ—एक तो कर्तव्य पालन करने में आलस्य प्रमाद कदापि न करे, सदा सुकर्म करने में तत्पर रहे। दूसरे, धर्म में अपने नियत और विहित कर्म में, पाप पातक की व्यर्थ कल्पना में न उलझे।

तीसरे, आचार को वेश में, स्थान में अथवा भोजन में न माने। चौथे, चरित्र को पवित्र बनाने में, अन्तरंग वृत्तियों को उन्नत करने में और संयम रखने में आचार समझे। आचारवान् मनुष्य के आठ चिन्ह हैं—एक तो उसमें पर हित हो। दूसरे, वह दानी और उपकारी हो। तीसरे, वह दुर्बल, दीन को सहारा, आश्रय और शरण दे। चौथे, पारिवारिक जीवन में पवित्र, पक्का तथा सच्चा हो। पांचवें, प्रण प्रतिज्ञा को पालन करे। छठे, सुनियम से कार्य करे। सातवें, सन्मित्र तथा सच्चा सेवक हो। आठवें, साहसिक और निर्भय वीर मनुष्य हो। ऊपर कहे आठों चिन्हों से मनुष्य के सदाचार और सच्चरित्र की पूरी पहचान की जाती है।

(४) मुहम्मद बिन कासिम ने जब भारत पर आक्रमण किया तो बीसियों नगर और सैकड़ों ग्राम नष्ट कर दिये गये थे। बड़े-बड़े नगर तो आततायियों के त्रास से निर्जन, सूने हो गये थे। आन्धियों ने और अन्य अनेक परिवर्तनों ने उन नगरों पर मिट्टी डाल कर, उनको धरती में दबा दिया। पुरातत्व विभाग के विद्वान् आज उन्हीं नगरों को भूमि खोद कर निकालते रहते हैं। ऐसे धरातल शायी नगरों के पुराने जीर्ण अस्थि-पिंजर देखते हुए दो हिन्दू विद्वान् आपस में विचार प्रकट करने लग गए। उनमें से एक बोला—ये भूमिगत नगर उस समय के हिन्दुओं के चरित्र हीन और अनाचारी होने के चिन्ह हैं। यह टूटे फूटे स्थान उनके दुर्बल आचारों की साक्षी दे रहे हैं। वे लोग ऐसे भ्रम-ग्रस्त थे कि आततायियों के आते ही भाग पड़ा करते थे। शत्रु से केवल कुछ एक ब्राह्मण और क्षत्रिय तो आगे बढ़ कर लड़ा करते किन्तु अन्य अनगिनत जन माथे पर हाथ रक्खे बैठे रहते। थोड़े से लड़ने वाले क्षत्रियों के हनन हो जाने पर सहस्त्रों और लाखों नागरिक लोग अपने नगरों के द्वार अपने हाथों से, शत्रु के प्रवेश के लिए, खोल दिया करते और हाथ जोड़े, गिड़गिड़ाते हुए, आप ही पराधीन हो जाते। वे दुर्बल, दीन दया की दुहाई

देकर अपना जीवन दान मांगते रहते परन्तु निर्दय दल की दमन नीति से घास पात की भांति दलित कर दिये जाते। वीराचार के अभाव से ही उस समय वे लोग अधोगति भोगते और दुर्दशा के दिन देखते थे। दबे हुए नगरों के ये भग्नावशेष खण्डहर, उन लोगों के अविचार, अनाचार का ही ऐसा विरूप और कुरूप चित्र प्रदर्शन कर रहे हैं।

दूसरा विद्वान् बोला—विचार का बाहर दीखने वाला आकार ही आचार है। जैसे विचार मनुष्य के मन में बस जाते हैं वैसे ही उससे कर्म हुआ करते हैं। उस समय के बौद्धवाद ने जो विचार दिये थे, जनता ने उनको कर्मों में परिणत कर लिया था। अब देखना यही है कि उस दर्शनवाद का उस समय के समाज पर, उस समय की जाति पर कैसा प्रभाव हुआ ? ऐतिहासिक घटनाएं और काल के उथल पुथल तो यही बता रहे हैं कि उन विचारों में जन समाज को सबल, सशक्त, समर्थ, सजीव तथा सतेज बना रखने की सामग्री कुछ भी नहीं थी। जिन विचारों का प्रचार, विस्तार लाखों भिक्षु रात दिन भ्रमण करके करते रहते थे, जिन विचारों को राजा से लेकर एक रंक, ग्रामीण, वनवासी तक करोड़ों मनुष्य मानते थे और जिन विचारों ने पुराने सभी विचार निस्तेज से बना दिये थे उन विचारों के यौवन काल में, उनको मानने जानने वाली जाति की यह दशा कि एक विदेशी, उसके तीन सौ मनुष्यों को तागे से बान्ध कर, आगे हांकता हुआ सैकड़ों कोस तक, अनेक नदियां, नाले, पर्वत, घाटियां लांघता हुआ, ले जाए, तो कौन विवेकी मनुष्य यह कहने का साहस कर सकता है कि उन विचारों में, और नहीं तो, मनुष्य को मनुष्य बना रखने की भी शक्ति थी। इतिहास के अध्ययन करने से तो यही ज्ञान होता है कि उस समय के लोगों में तप बहुत था, त्याग अधिक था, बुद्धिवाद बढ़ा हुआ था, अहिंसा का सप्तम सुर था और दया के दरिया बहते थे, परन्तु मनुष्य को, सबल, समुन्नत करने वाला सदाचार नहीं था, आन-बान से

जीने का चरित्र नहीं था, अपनों को, अपने को बचाने का धर्म नहीं था और मानव समाज का मानव कर्म नहीं था।

******

आलोचना

अपने दिन रात के किये कर्मों पर दृष्टि डाल कर, उनमें जो दोष किये गये हों, पाप अपराध हो गये हों, भूल चूक हो गई हो और जो व्रत नियम भंग कर दिया गया हो तथा जो शुभ कर्मों में अतिक्रम व्यतिक्रम किया हो, उसका गुरु जनों के सम्मुख, वर्णन करना और पश्चात्ताप पूर्वक वर्णन करना 'आलोचना' कही जाती है। अपने दोषों तथा पापों की आलोचना करना पाप-भीरु, धर्म परायण, ईश्वर-विश्वासी और भावुक जन का काम है। दूसरे जन के आगे अपने अवगुण वर्णन करने के लिए मानस बल और साहस चाहिए। आलोचना करने से मनुष्य का मन विमल, चरित्र पवित्र और जीवन उज्ज्वल हो जाता है। सदाचार के स्वर्ग की, आलोचना पहली सीढ़ी है।

(१) एक मनुष्य बद्री नारायण की यात्रा को जाते हुए मार्ग में एक ब्राह्मण को मिला। वह ब्राह्मण भी भजन ध्यान करने वाला भक्त था। कहा जाता था कि उसको देव दया से दिव्य दृष्टि प्राप्त थी और वह गहरे भेदों को भली भांति जानता था। यात्री ने ब्राह्मण से पूछा—शर्म्मन्! दुष्ट कर्मों की वासना को, पापों के कुसंस्कारों को और मनोगत विकारमय विचारों को कैसे दूर किया जाय ? उत्तर में ब्राह्मण बोला—पाप मार्जन का मार्ग तो सुगम है परन्तु मत मतान्तरों के मन्तव्य मनुष्य को भ्रम में डाल कर, मति-भ्रष्ट बना देते हैं। देखो, पुरातन ऋषि जन अपने दिन रात के कर्मों को गुरु जनों के सम्मुख वर्णन करके, अपनी भूल चूक पर पश्चात्ताप कर लिया करते थे। अपनी त्रुटियों को तथा दुर्बलताओं को आलोचना द्वारा वे दूर कर देते थे। इससे उन मुनियों के मानस-मन्दिर

में दुर्वासना की मैल जमने ही नहीं पाती थी। उनके चिदाकाश में चित्त-चन्द्र की सुचारु चन्द्रिका, पाप राहु की छाया से सदा मुक्त रहा करती थी। सज्जन ! यह सत्य है कि स्वकर्मों की आलोचना करने वाले को पाप ताप की तप्त भूमि से ऊपर उठने का अवसर प्राप्त हो जाता है। यह भी सत्य है कि मन की मैल धोने का पानी आलोचना है। आत्मा के निर्मल रखने का उपाय अनुताप है। जो मनुष्य पाप कर्म करते नहीं लजाता वह आलोचना करने से क्यों लजाये। पाप को छुपाना भी पाप है। दुष्कर्मों को भीतर दबा रखना, गुरु जनों के समीप उनकी आलोचना न करना दम्भ हुआ करता है।

(२) मिथिला में एक स्त्री रहा करती थी। वह ज्ञानवती और पूर्ण पण्डिता थी। उस नगर में उसके जप तप की, दान पुण्य की और ज्ञान ध्यान की बड़ी महिमा थी। वह एक ऊंचे चरित्र की सती थी। एक घर बार वाली स्त्री ने, एक दिन उस सती के सम्मुख अपने पाप अपराध वर्णन करके रोना आरम्भ कर दिया। सती ने उसको कहा—देवि ! तूने परम दयामय देव के द्वार पर, अपने अश्रुपात के साथ, पुकार की है। वह परमेश्वर अवश्यमेव तेरा निस्तार कर देगा। तू उसके धाम का भरोसा रख। यह सच समझ कि पाप पर पश्चात्ताप करने वाले हरि भक्त का बेड़ा पार, परम पुरुष आप कर दिया करता है।

देवि ! अपने दुष्कर्मों को देखकर, आलोचना के साथ, वे ही जन आंसू बहाया करते हैं जो उत्तम जीव हों, जो अपने पतन से बचना चाहें और जो नीच कर्मों का तीखा कांटा अपने अन्तःकरण से निकाल देने की कामना करते हों। जो जन श्री राम को साक्षी मानते हों उनकी काया भी कटु कर्म करके कांप जाया करती है। जो जन पाप कर्म को बुरा समझते होते हैं, जिनको दुष्कर्मों से घृणा होती है, उनसे जब कभी दोष हो जाय तो उनके आंसू भी आलोचना के साथ बह उठते हैं। भोली ! अपने किये

की आलोचना और उस पर अनुताप, हृदय के भार को हलका करने का सच्चा साधन है। बुरी वासना पर विजय पाने का, यह एक उत्तम उपाय है। जो जन अपने किये पापों पर पश्चात्ताप करते रहते हैं वे कुकर्म करना त्याग देते हैं।

(३) गुर्जर देश में सिद्धपुर पाटन एक प्रसिद्ध नगर है। वहां एक उदीच्य ब्राह्मण रहता था। वह अपने ज्ञान से, विद्या बल से, आचार विचार से, बुद्धि विवेक से, सेवा परहित से और भजन ध्यान से उस सारे प्रांत में पूजा जाता था। एक दिन, लोग उसके पास, एक स्त्री ले आये और उसको कहने लगे—पंडित जी! यह स्त्री बड़ी पाप-कर्मिणी और पतिता है। इस ने अपने सती धर्म को नष्ट कर दिया है। हम इसको जाति और देश से बाहर निकाल देना चाहते हैं। केवल अब आप की व्यवस्था प्राप्त करनी शेष है। आँखें बन्द कर के वह ब्राह्मण कुछ एक पलों तक सोचता रहा। तदनन्तर पलकें उठा कर वह बोला-प्यारो! यह मनुष्य अपूर्ण प्राणी है। इसका पद पद पर, पाप अपराध से पतन होना सम्भावित है। न जाने हम में से किस में कितने दोष दुर्गुण भरे पड़े हैं। मैं तो अपनी ऐसी अवस्था नहीं देखता कि इसके बहिष्कार की व्यवस्था दे सकूँ। हाँ, आप में जो ऐसा पुरुष हो जिस ने कभी कोई मानस पाप भी न किया हो वह ऐसी व्यवस्था दे सकता है। यह सुन कर सब के मुखों पर मौन की मोहर लग गई। किसी ने भी कुछ कहने का साहस न किया। तब फिर ब्राह्मण बोला-यदि किसी से कभी कोई भी पाप कर्म हो जाय तो उसको चाहिए, एक तो गुरु जनों के आगे उसकी आलोचना करे । दूसरे, उस कुकर्म पर पश्चात्ताप करता रहे। तीसरे, फिर उसको न करने का व्रत धारण कर ले। चौथे, विधिपूर्वक प्रायश्चित्त कर के उसका सर्वथा मार्जन कर डाले। आलोचना करते रहना ऐसा ही उत्तम है जैसा घर बार में पड़ी हुई धूल को झाड़ना बुहारना। जैसे प्रति दिन स्नान करने से काया शुद्ध

रहती है ऐसे ही प्रति दिन की आलोचना से मनुष्य का अन्त:करण स्वच्छ बना रहता है। दिन भर के काम काज तो व्यापारी के लेन देन के कार्यों के सदृश हैं और नित्य की आलोचना दिन भर के आय व्यय की पड़ताल के समान है। इस से मनुष्य को अपनी त्रुटियों का पूरा पता हो जाता है। सज्जनों के सम्मुख अपने दुष्कृत की आलोचना करना अपने मानस रोग सुवैद्य को बता कर उनकी चिकित्सा कराना है। आलोचना न कर के, अपने दुष्कृत्यों को अपने भीतर छुपा रखना ऐसा ही बुरा है जैसा निज गृह में मल मैल को भरते चले जाना। रोगी का इस में हित सर्वथा नहीं है कि वह अपने रोग को छुपाये बैठा है, अपने फोड़े फुन्सियां किसी को भी नहीं दिखाता और अपने प्रकुपित वात, पित्त, कफ का वर्णन किसी भी वैद्य के सामने नहीं करता। रोगी का हित तो रोग की चिकित्सा कराने में है। ऐसे ही पापों की, पातकों की, अपराधों की और दुष्कृत्यों की आलोचना करने में ही मनुष्य का हित और कल्याण है। दुर्वासना पर विजय लाभ कर लेने का सुगमतर साधन अपने कृत्यों की आलोचना करना ही है।

******

प्रायश्चित्त

पुरातन काल से, भले लोग यह मानते आये हैं कि अपने किये दुष्कर्मों की पश्चात्ताप-पूर्वक आलोचना कर के फिर उनका प्रायश्चित्त कर लेना, उनके कुसंस्कारों को मिटा देना है, पाप धूल को धो डालना है, अशुभ के संचय को भस्मसात् करना है और अपने विमल विशुद्ध स्वभाव को सदा स्वच्छ बना रखना है। पश्चात्ताप सहित किया हुआ प्रायश्चित्त, मनुष्य के चित्त को, शरद् ऋतु में कैलाश की भांति, चौगुना चमका देता है।

(१) कुरुक्षेत्र में एक घोर पापी पुरुष रहा करता था। वह साधारण से लोभ के वश भी भ्रूण हत्या तक कर डालता था। उसके निर्दयपन के क्रूर कर्मों की कथाएं कहते लोगों को रोमांच हो आया करता

था, कायरों की काया कांप उठा करती थी और दर्बलों के दिल धडकने लग जाते थे। उसके नाम तक से लोगों में त्रास फैल जाता था। उस हत्यारे को, मार्ग में एक बार, अचानक एक मुनि मिल गया। उस मुनि ने अपनी मधु-वर्षिणी वाणी से उसको कहा—भद्र! हत्याएं करना बड़ा बुरा पाप है। इससे प्राणी का, पल पल में, अधःपतन ही हुआ करता है। यह सच जान कि क्रूरता के कर्मों के कटुतर फल हुआ करते हैं। ऐसे कर्म करने से कर्ता का अन्तःकरण अति कठोर और काला हो जाता है, जिससे उसका जन्म नारकी जीव का बन जाता है। तू विचार कर। समझ से काम ले। जन हनन करना छोड़ दे। क्यों अकारण ही कुकर्मों के काले कीचड़ में कूद रहा है?

उस मुनि के सदुपदेश से वह चोटी से एड़ी तक कांप गया। उसने मुनि के चरण पकड़ कर विनय की—हे मुने! मेरे निस्तार का मार्ग मुझे बताइये। पिछले पाप से परित्राण पाने का उपाय मुझे समझाइये। मुनि ने उसको कहा—सौम्य ! जो जन आगे को पाप कर्म करना त्याग दे, उसको चाहिए कि वह अपने पिछले पापों का परिशोधन करे। वह परिशोधन भावपूर्ण, पश्चात्ताप पूर्वक किये गये प्रायश्चित्त से होता है। प्रायश्चित्त के, पण्डितों ने दो अर्थ किये हैं—एक यह कि प्रायस् नाम तप का है, चित्त नाम निश्चय का है। निश्चय के साथ जो तप किया जाय वह प्रायश्चित्त है। दूसरे 'प्रायस्' कहते हैं बहुधा को और चित्त अन्तःकरण को कहा जाता है। जिस जप तप से, व्रत नियम से और दान पुण्य से चित्त प्रायः पाप से हट जाय, उसमें कुसंस्कार न रहे वह प्रायश्चित्त है। सो तू अपने निस्तार के लिये प्रायश्चित्त कर। इससे तेरे पिछले पाप मार्जित हो जायेंगे। उसने मुनि से राम नाम का अमृत प्रसाद पा कर, उसके कथनानुसार, एक वर्ष पर्यन्त ऐसा जप तप किया कि उसका चिदाकाश पाप-रज से रहित हो कर सर्वथा स्वच्छ हो गया और उसमें शारदी

ज्योत्स्ना की भांति निज रूप की चांदनी चमचमा उठी। कालान्तर में वह एक मुनि माना गया।

(२) प्रयागराज के महा मेले पर एक बार एक ऐसा महात्मा गया जो सर्व-शास्त्र-निष्णात था, जो सर्व-विद्या-पारंगत था और जो ज्ञान से, सूर्य समान, प्रकाशमान था। जिज्ञासु जनों को उपदेश देते समय उसने बताया कि धर्म शास्त्र के अनुसार कर्म फल तीन प्रकार से भोगा जाता है—एक तो जिस जन का, जिस ने अपकार किया हो, जिस जन को जिसने सताया हो, समय पा कर, उससे वही बदला ले ले तो उस कर्म का फल भुगत जाता है। दूसरे, राज दण्ड से कर्मो के फल भोग लिए जाते हैं तीसरे, राम के नियत नियम से प्राणी अपने कर्मों का परिणाम प्राप्त किया करता है। परन्तु यदि कोई पाप-भीरु अपने किये दुष्कर्मों पर पूरा पश्चात्ताप करे और उनका यथा-विधि प्रयाश्चित्त करले तो उसके दुष्कर्मों के कुसंस्कार, फल में न परिणत होकर, समूल नष्ट हो जाते हैं। यदि विवेकी मनुष्य अपनी दैनिक भूलों का, अपनी त्रुटियों का, अपनी असावधानताओं का, अपने प्रमादों का और कर्तव्यों के अतिक्रम, व्यतिक्रम का, प्रति दिन, पश्चात्ताप पूर्वक प्रायश्चित्त करता रहे तो उसके अन्तःकरण पर से पापों तथा दोषों की धूल धुलती रहती है। उसके चित की चादर, सदा चांद सी चिट्टी चमका करती है। प्रायश्चित्त, मानस रोगों की एक सिद्ध औषधि है। इससे मनुष्य का आध्यात्मिक स्वास्थ्य उत्तम बना रहता है। यह पवित्र जीवन का पावन पथ है। अपने व्रतों को भंग कर देना तथा मर्यादा को लांघ जाना अतिक्रम कहा जाता है। विपरीत कर्म करना व्यतिक्रम कहाता है। इन दोनों दोषों को दूर करने का उपाय प्रायश्चित्त ही है। यह सच है कि पाप-पंक को धो देने का पवित्र गंगा जल, कुवासना के कांटे को, क्रिया के पैर से निकालने का सूक्ष्म शस्त्र और आत्म-शुद्धि का सुगम साधन, अनुताप सहित, प्रायश्चित्त करना ही माना गया है।

आपत्काल

आपत्काल प्रायः प्राणियों पर आक्रमण किया ही करता है। संकट के समय को, विपत्ति के दिनों को तथा अत्यन्त कष्ट क्लेश के काल को ज्ञानी जन आपत्काल कहते हैं। उस समय उससे पार प्राप्त करने के उपयोगी उपायों को, कर्तव्य कर्मों को, नीति नियम को तथा आचार विचार को धर्म के तत्व को जानने वाले मुनि जन आपत्काल के धर्म मानते आये हैं।

(१) पृथ्वीराज की जब पराजय हुई तो शत्रु ने इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश कर के सर्व जन-हनन की घोर घोषणा कर दी। उसने सारा नगर लूट लिया। असीम सम्पत्ति लेकर जब वह अपने देश को लौटने लगा तो उसने, देहली आदि नगरों के, सहस्त्रों ब्राह्मण,वैश्य आदि पकड़ लिये और उन पर लूट की सारी सामग्री लाद कर वह चल पड़ा। मार्ग में, उसके दल बल पर जाटों ने ऐसे छुपे छापे मारे कि उनसे उसका बहुत कुछ लूट का धन छिन गया और इन्द्रप्रस्थ, थानेसर आदि नगरों से पकड़े हुये सहस्त्रों दास भी भाग निकले। वे ब्राह्मण, वैश्य आदि जब अपने अपने नगरों में जा पहुँचे तो उनकी बिरादरियों के पंचों ने कहा कि ये महमूद की दासता में मासों तक रहे हैं। तब इन्हों ने भक्ष्याभक्ष्य का नियम कुछ भी नहीं निभाया। ऐसी अवस्था में इनका पंक्ति में प्रवेश और खान पान का समान व्यवहार कैसे किया जाय। वाद विवाद के पश्चात् निश्चय हुआ कि काशी के पण्डितों से व्यवस्था मंगाई जाए और उसके अनुसार व्यवहार किया जाय।

काशी के सभी पण्डितों ने सर्वसम्मति से अपनी व्यवस्था लिख कर भेजी कि वे लोग आपत्काल में थे। आपत्काल में खान पान, भक्ष्याभक्ष्य का नियम नहीं पल सकता। इस कारण उस समय के कर्मों से किसी को जाति से पतित करना और पंक्ति से बाहर कर देना सर्वथा धर्म विरुद्ध,

शास्त्र से विपरीत, न्याय के प्रतिकूल और सज्जन सम्मति से अनुचित है। आपत्कालों की गिनती में पराधीनता घोर आपत्काल है। ऐसी व्यवस्था के आ जाने पर वे सहस्त्रों ब्राह्मण, वैश्य आदि मनुष्य अपनी-अपनी बिरादरियों में मिल जुल कर, परस्पर घी खिचड़ी बन गये।

(२) महमूद अपने आये वर्ष के आक्रमणों से, अनगिनत कुलीन मनुष्य, दास बना कर गज़नी में ले गया था। वहां वे दास बड़ी दुर्दशा में रखे जाते और भेड़ बकरियों की भांति बिका भी करते थे। एक बार उस देश में बड़ा कड़ा अकाल पड़ा। गज़नी के वासी अपने आपको पालने में भी असमर्थ हो गये थे। जहां तहां सारे देश में आपाधापी पड़ रही थी। कोई किसी को कुछ भी नहीं पूछता था। अपने परायों को प्रायः लोग भूल से गए थे। ऐसे अवसर में दासों के दल के दल भारत को भाग आये। जब वे अपने अपने प्रान्तों में पहुँचे तो उनके नाती गोतियों ने उन आपत्काल से निकले हुए बन्धुओं को बिरादरियों में सम्मिलित करने में यत्किंचित् भी संकोच नहीं किया। कहा जाता है कि हिन्दुओं ने आपत्काल के ऐसे धर्मों को पालने से तब इन्कार किया, जब भारत में आ कर, बादशाह रहने लगे और उन्होंने यह घोषणा कर दी कि ब्राह्मण, वैश्य आदि, एक बार हमारा मत मान लेने पर फिर उसको न छोड़े। और न ही उसको कोई कुल, वंश वा कुटुम्ब अपने धर्म में पीछे ले। एक हमारे सधर्मी को अन्य धर्मी बनाना बड़ा भारी अपराध है।

शासकों के भय से लोगों ने, बलात्कार से धर्म से गिराये गये भाइयों को, अहिन्दु बने रहने पर आप ही बाधित किया। तभी से हिन्दुओं में ऐसे आपत्कालों का कोई विचार न रहा और शास्त्र तथा धर्म के नाम से अनेक अनीतियां तथा कुरीतियां प्रचलित हो गईं। उन्हीं से हिन्दू धर्म अनुदार और दुर्बल समझा जाने लगा।

(३) सरस्वती नदी के आस-पास जो ब्राह्मण बसा करते थे उनका

जाना आवश्यक था। वे बड़े विद्वान माने जाते थे। धर्म शास्त्रों की व्यवस्था में तो वे ही प्रमाण होते थे। उनकी व्यवस्था को सभी लोग शिरोधार्य कर लेते थे। एक बार एक बहुत बड़े महाराजा ने सारस्वतों की सभा के सम्मुख निवेदन किया कि आपत्काल और उनके धर्म नियत कर देने चाहियें। सरस्वती के तट पर वह सभा लगी। उसमें सैकड़ों सारस्वत पण्डित सम्मिलित हुए। उन आप्त पुरुषों की परिषद् ने अपना निर्णय प्रकट किया कि मनुष्य को कर्म-फल नाना प्रकार से भोगने पड़ते हैं। इस कारण विपत्तियां भी नाना हैं और अनगिनत हैं। उनकी संख्या नियत कर देना उचित नहीं है। परन्तु मोटे आपत् काल सात समझे जाते हैं—एक तो रोग को आपत्काल कहा है। रोग में निषिद्ध वस्तु सेवन से मनुष्य प्रायश्चित्ती नहीं होता। दूसरा आपत्काल दुष्काल है। भयंकर अकाल भी एक आपदा ही कही है। तीसरा आपत्काल देश पर विदेशियों का आक्रमण है। शत्रु का किसी देश में प्रवेश उस देश के लोगों के लिए भयंकर आपत्ति हुआ करती है। चौथा आपत्काल शत्रु से घिर जाना है। उसमें भी मर्यादा आदि भंग हो जाने से पातक पाप नहीं होता। पांचवां आपत्काल शत्रु के कारावास में आबद्ध हो जाना है। छठा आपत्काल पराधीनता परदासता है। और सातवां आपत्काल परदेश यात्रा हैं। ऐसे आपत्कालों में किसी से भी यदि कोई विपरीत कर्म हो जाय तो उसको आपत्काल का कर्म ही कहना चाहिए। आपत्काल के कर्मों को धर्म, इस कारण कहते हैं कि उनका प्रायश्चित्त नहीं कराया जाता, उनमें दोष की कल्पना नहीं किया करते। फिर भी कुछ एक ऐसे कर्तव्य हैं कि किसी पर कैसा ही आपत्काल आ पड़े, तो भी, उसे वे नहीं करने चाहिएँ। उनमें एक अपना निश्चय तथा विश्वास है। विपत्ति में भी अपने सच्चे विश्वास को त्याग देना घोरतर पाप है। दूसरे आपत्काल में माता, पिता, पति, पत्नी और पुत्रादि को छोड़ देना वर्जित है। तीसरे आपत् के समय जाति से द्रोह करना, जाति

घातक बन जाना महा पाप है। ऐसा कर्म कदापि करना नहीं चाहिये। चौथे आपत्काल में अपने सहधर्मियों के विरुद्ध चलना पाप कर्म है। श्री राम के समीप अन्य अनेक कर्म तो क्षन्तव्य हैं, परन्तु प्राणान्तकारी आपत्ति में भी ऊपर कहे चार पाप करने, किसी प्रकार भी, क्षन्तव्य नहीं हो सकते और न ही इनका कोई प्रायश्चित्त ही कहा गया है।

******

श्रद्धा

श्रत् नाम सत्य का है। सत्य को धारण करने की भावना को, प्रीति को और रुचि को सन्त जन श्रद्धा कहा करते हैं। सत्य के निश्चय को भी श्रद्धा कहा गया है। मनुष्य में, आत्मा के लिए, परमात्मा के लिए, परलोक के लिए, दान पुण्य के फल के लिये, सत्कर्मों के लिये और श्रेष्ठ जनों के लिये जो उत्तम धारणा, पवित्र प्रीति, अटूट अनुराग और संशय रहित सुनिश्चय हुआ करता है उस वृत्ति का नाम श्रद्धा है। धर्म मार्ग में, आत्म-पथ में, अभ्यास के साधनों में, सेवा सत्कर्मों में श्रद्धा ही काम किया करती है। इसके बिना तो धर्म कर्म फीके हो जाते हैं, अध्यात्मवाद निरा असार समझा जाता है और ज्ञान ध्यान, रस रहित पकवान समान ही दीखने लगता है।

(१) काशी धाम के एक बहुत बड़े विद्वान् से एक जिज्ञासु ने पूछा—कर्म बड़ा है व श्रद्धा ? पंडित ने उत्तर दिया—श्रद्धा ही श्रेष्ठ है। श्रद्धाहीन जन कर्म को भली भांति नहीं निभा सकता। श्रद्धाहीन को कर्म करने की रुचि ही नहीं होती। प्रेम और रुचि के अभाव से किया गया कर्म कोई उत्तम परिणाम भी नहीं निकाला करता।

जो जन कर्मशील होते हैं, जो जन अपने नित्य नियम में परायण रहते हैं, जो जन भजन पाठ, धारणा ध्यान तथा जप तप में रत रहते हैं और सेवा परहित किया करते हैं वे श्रद्धालु ही देखे जाते हैं। इस कारण श्रद्धा का आसन, कर्म से ऊँचा है। श्रद्धा वह भूमि है जिसमें सुकर्मों के खेत बहुत

ही फूलते फलते हैं। श्रद्धा वह शिला है जिस पर धर्म कर्म का महान् मन्दिर निर्माण किया जाता है। श्रद्धा वह श्वेत रंग है जिस पर प्रेम भक्ति, सेवा उपकार, दान बलिदान के सारे रंग बस जाते हैं। इसके बिना, वास्तव में, सारा कर्म कलाप कड़वा और कसैला लगने लग जाता है। जीवन का रस, भक्ति का स्वाद, धर्म का सार और ज्ञान का तत्व श्रद्धा मानी गई है।

(२) अयोध्या के निकट एक ज्ञानी रहता था। वह तर्कशास्त्र में परम निपुण माना जाता था। अवध देश के सभी पंडित उस से तर्क शास्त्र सीखने आते थे। उसका युक्ति बल, काशी के पंडित दल को भी जीत चुका था। एक दिन, जिस समय वह सरयू में स्नान कर रहा था उस समय उसको एक विद्वान् वैरागी ने कहा—आप कृपया यह तो बताएं कि किन किन कर्मों के करने से मनुष्य का कल्याण होता है? उस तार्किक ने कहा—भद्र ! यह विषय धर्म शास्त्र का है, तर्क शास्त्र का नहीं है। शुभ करने से शुभ फल मिलता है और अशुभ करने से अशुभ परिणाम होता है, यह धर्म शास्त्र बताया करता है। यह प्रत्यक्ष है कि अशुभ का परिणाम अशुभ और शुभ का शुभ हुआ करता है। परलोक सम्बन्धी कर्मफलों के वर्णन में आप्त मनुष्यों के वचन और धर्म ग्रन्थ के वाक्य प्रमाण माने जाते हैं। तर्क तो अनुमान में होता है और वह भी तब जब वस्तु ज्ञान में संशय हो। जैसे दूर स्थान पर गाय खड़ी हो तो उसको देखकर, भ्रान्ति-वश, कोई कहे कि न जाने वह गाय है अथवा गधी। आप्त जनों के वचनों पर और धर्म ग्रन्थ के वाक्यों पर विश्वास करना श्रद्धा है। तर्क का काम तो संशय में निर्णय करना है। जिस जन को अपनी माता की ममता में, प्रीति में तथा उसके सतीत्व में श्रद्धा है वह व्यर्थ में तर्क करके अपने मातृ-मान में किरकिरापन क्यों उत्पन्न करे। जिसको अपनी पत्नी के प्यार और पातिव्रत धर्म में पूर्ण विश्वास है वह संशय करके व्यर्थ में क्लेश क्यों उठाए।

(३) एक सुन्दर वन में कुटी बना कर एक मुनि वहाँ रहा करता। वह मुनि अपने समय का बड़ा भाग ज्ञान ध्यान में बिताया करता और कुछ एक काल में अपनी कुटी के समीपवर्ती खेत में, इतने कन्द मूल, फल फूल अवश्य उत्पन्न कर लेता जिससे उसका निर्वाह सुख से होता रहता। प्रतिदिन का उसका यह भी काम था कि वह वनवासियों के बच्चों को, एकत्रित करके उनको लिखाया पढ़ाया करता था। दैववशात्, उस मुनि की कुटिया में एक दिन एक तार्किक आ टिका। उसने मुनि के पोथी पाठ पर, जप तप पर, ध्यान सिमरन पर, संयम साधनों पर और एकान्त निवास तक पर बहुत ही तर्क वितर्क किये। मुनि ने उसको कहा—सौम्य ! तू कुछ मानता भी है? उसने कहा—मैं मत मात्र को मिथ्या मानता हूँ। मुनि ने मुस्करा कर उसको फिर कहा—प्यारे! तू यह तो मानता है कि आत्मा परमात्मा आदि तत्त्व और धर्म कर्म आदि शुभ आचार कुछ भी नहीं हैं। इन की कोरी कल्पना केवल मतों ने कर रक्खी है। तब तर्कवादी बोला—हां, मैं ऐसा मानता हूँ। उस समय मुनि ने उसको समझाया कि जो तू यह कहता है कि धर्म कर्म सब ढकोसला है यही तेरा मत है। मति से मनन करके जो विचार स्थिर किये जायें वे ही मत बन जाते हैं। मनुष्यों के माने हुए मन्तव्यों को मत माना जाता है। यह कहना सर्वथा भूल है कि मेरी मति में जो मन्तव्य समा जाय वह तो मत नहीं और दूसरे लोगों के माने हुए मन्तव्य मत हैं ? यह सत्य है कि मनुष्य की मति सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं होती परन्तु यह मानना भी भारी भूल है कि सभी मनुष्यों के स्थिर किये हुए मत मिथ्या ही हैं। अन्त में सत्य भी तो मनुष्य ही समझा करते हैं। विमल मन का मनुष्य आत्मा के विचार को, परमात्मा के विश्वास को और सत्य के अस्तित्व को निरी मत-मूलक श्रद्धा नहीं समझता। वह तो इसको अनुभव जन्य विद्या मानता है, तत्वज्ञान समझता है और आत्मा से प्रत्यक्ष पदार्थ निश्चय करता है। इस कारण एक सच्ची विद्या को जानने

का कर निर्णय किया हो, केवल कल्पित तर्क वितर्क से अथवा अदूर युक्तिवाद से उसका खण्डन करने लग जाना मनुष्य का मतवाद ही है। अस्ति भाव को अभाव बताना विद्या नहीं किन्तु अविद्या है।

(४) जो मनुष्य पूरा श्रद्धालु होता है वह रामेच्छा में सर्व प्रकार प्रसन्न बना रहता है। वह प्रत्येक परिवर्तन में तथा प्रत्येक घटना में हरि का हाथ देखता है।

एक राजा का विश्वास था कि श्री राम की इच्छा में जो कुछ होता है वह अच्छा ही होता है। उस राजा का महा मन्त्री एक पक्का नास्तिक था। वह ऐसे विश्वास पर महाराजा के साथ सदा तर्क वितर्क किया करता था। परन्तु महाराजा का कहना था कि श्रद्धा विश्वास ही बड़ा तत्व है। इसके बिना यह लोक ही ठीक नहीं रहता तो परलोक कैसे उत्तम बने। एक बार वे, राजा मंत्री, दोनों मृगया करने वन में जा पहुँचे। उस वन में वनराज की गर्जना सुन कर उनके घोड़े चौंक पड़े और सरपट दौड़ते हुए वन के घने भाग में जा घुसे। वहाँ के कंटीले झाड़ झंखाड़ में उलझ कर वे खड़े हो गये। सायं समय था। नाना रंग के पक्षी दूर-दूर से उड़ते हुए आ कर वन वृक्षों पर बसेरा करने लगे थे। सन्ध्या राग रजनी राज्य के आगमन की सूचना दे रहा था। पल-पल में अन्धेरा अपनी काया पसारता चला जाता था। हिंसक जीव अपनी कन्दराओं से बाहर निकल कर अपने पैर, पंजे पसारते और सुसज्जित करते थे। ऐसे संकट के समय में मंत्री ने महाराजा को कहा-राजन् ! यह स्थान भयदायक है। दसों दिशाओं में मुझे तो यहाँ मृत्यु ही मुख फैलाये खड़ी दीखती है। अब जायें तो भी कहाँ ? मार्ग का तो कहीं नाम निर्देश भी नहीं है। आज यहाँ प्राणान्त हो जाने में मुझे कुछ भी संशय नहीं होता। महाराजा बोला—प्यारे ! भयभीत न हो। घबराओ नहीं। धैर्य रक्खो। अपना बुद्धि विवेक लुप्त न होने दो। सावधान और सचेत बने रहो। रामेच्छा में जो होना है वह

तो देखना ही होगा। थोड़ी देर के पश्चात् राजा ने अपने घोड़े को धीरे-धीरे आगे को संचालित किया। उसके पीछे चलने के लिये मंत्री ने भी अपने घोड़े को प्रेरणा की। घने वन में, संघनी झाड़ियों में, रुकते अटकते, फंसते उलझते और तीखे काँटों से बिन्धते छिलते हुए, वह बड़ी कठिनता से, एक विशाल पीपल के पेड़ के तले जा खड़े हुये। वह समय आधी रात का था। सारे संघने वन में सन्नाटे का साम्राज्य था। नीले वृक्षों और उनकी छाया के साथ मिल कर, अन्धेरी रात की कालिमा ने भूतलाकाश को एकाकार कर रक्खा था। राजा महाशय तो, मन ही मन, राम नाम का महा मधुर रस आस्वादन कर रहा था और गम्भीर भाव में था। परन्तु राज-मंत्री का मन भय के कारण बार बार डूबता था। उसका हृदय, पवन से पीपल के पत्तों के कांपने पर भी धड़कने लग जाता था। उसको प्रत्येक आहट में सिंह ही आता हुआ सूझता था। वह एक तुच्छ कीड़े के सरकने में भी सांप का संदेह करने लग जाता था। उसको एक हलकी सी खटक भी किसी मतवाले हाथी के आने की शंका का कारण होती थी। ऐसे काल में राजा ने कहा—मन्त्रिन्! मुझ को तो प्यास बहुत सता रही है। चलो, कहीं ढूँढ कर पानी पीयें। वे दोनों घोड़ों की बागें पकड़े, ठोकरें खाते, गिरते पड़ते अन्त में एक नदी के किनारे जा पहुँचे। वहाँ पानी केवल तारों की मन्द ज्योति से अल्प मात्र चमकता था और नदी तट के साथ टकरा कर अपने होने की सूचना देता था। उसके किनारे का भाग, तारक मण्डल सहित आकाश को अपने भीतर लिये, उस समय इतना गहरा उनको प्रतीत हुआ कि उन्होंने नदी तीर पर स्पर्श करते तरंगों का जल, अपनी अंजलियों में लेकर पान किया।

जल पीने के अनन्तर श्रद्धालु महाराज ने अपने तार्किक मन्त्री को आश्वासन दे कर कहा—प्यारे ! चिन्ता न करो। भय से व्याकुल न बनो। बाहर तो गाढ़ तर अन्धकार है ही, अपने साहस की, अपने मनोबल की,

अपने अस्तित्व की और सब से बड़ी श्रद्धा की ज्योति को कदापि बुझने न दो। श्री राम के विधान में जो जैसा बन्धा हुआ है वह वैसा ही हो कर रहेगा। उन्होंने अपने घोड़ों को, काठिएं उतार कर, नदी में तरा दिया और आप दोनों एक वृक्ष पर चढ़ कर उसके बड़े मोटे डाहल पर बैठ कर विश्राम लेने लगे। थोड़ी देर के पश्चात् उन दोनों ने देखा कि उसी पेड़ के तले, एक केसरी आ कर खड़ा हो गया है और उन दोनों को ताक कर गर्ज रहा है। महाराजा ने उस दहाड़ते सिंह को अपने बाण का ऐसा लक्ष्य बनाया कि वह एक ही वार से बल खाकर लेट गया। इतने में सवेर हो गई। सूर्योदय होने पर उन्होंने देखा कि उनके घोड़े नदी के अन्तर्द्वीप में उनको देख कर हिनहिना रहे हैं। उनके संकेत करने पर वे घोड़े तैरते हुए तुरन्त उनके पास आ खड़े हुये। उन पर काठी डाल कर राजा और मंत्री दोनों अपने नगर को चल पड़े। मार्ग में, रात वाला वही पीपल का पेड़ पड़ा। वहां उन्होंने आश्चर्य से देखा कि कोई पचास मनुष्य मरे पड़े हैं। उन में केवल एक ऐसा है जो बातचीत कर सकता है। उस से पूछ कर उनको ज्ञात हुआ कि डाकुओं का दल, किसी नगर को लूट कर, यहां आ कर आपस में धन बांटने लगा तो डाकू परस्पर लड़ पड़े और एक दूसरे को मार काट कर धराशायी हो गये। वहां से चल कर उन दोनों ने वह स्थान देखा जहां घनी झाड़ियों से उलझ कर उनके घोड़े रुक गये थे। वहां दो काले नाग, कई टुकड़ों में कटे पड़े थे, जिन को वन के न्यौले ने काट कुतर कर मारा था। ऐसे दृश्यों को देख कर राजा ने श्रद्धा से गद्‌गद् हो कर कहा-मंत्रिन्! राम की इच्छा सब से बलवती है। भगवान् का भाना अनिवार्य है। श्रद्धा करो –

रामेच्छा में हो रहे, सभी नियम से काम।
बांका बाल न हो कभी, जो राखे श्री राम।।

******

भगवद्भक्ति

परमात्मा के लिये, मनुष्य के मन में जो पूजा का भाव होता है, राम के मंगलमय स्वरूप में जो प्रीति हुआ करती है, राम धाम की महिमा में जो श्रद्धा हो जाती है और राम के पावन नाम में जो प्रेम उत्पन्न हो आता है वह भक्ति है। भगवान् का भावना के साथ भजन, ध्यान, जप, आराधन और चिन्तन भक्ति में ही सम्मिलित हैं। राम के भरोसे सेवा उपकारादि कर्म करना भी भक्ति धर्म ही माना गया है। भक्ति भगवान के विश्वास से की जाती है। सच्चा विश्वास चाहे आप्तोपदेश से ही हो, ज्ञान माना जाता है। जब तक भगवान् के होने का ज्ञान न हो तब तक भक्ति नहीं हो सकती। इस कारण भक्ति में ऐसे ज्ञान ही समाया हुआ है जैसे खाण्ड में मिठास और पुष्प में सुगन्धि। भक्ति एक कर्म है। भजन, ध्यान, मानस और वाचक कर्म के बिना नहीं किये जाते परन्तु उपासक तो कायिक कर्म भी बड़े चाव से किया करता है। सेवा तथा उपकार आदि सुकर्म प्रेम-वश और बन्धु भाव से किये जाते हैं। उपासक जन भगवान को सब का पिता समझते हुए सब मनुष्यों को अपने प्यारे बन्धु ही जाना करते हैं और उनको स्वात्म समान समझ कर सप्रेम और सदय हृदय से उनके हितकर कर्म करते रहते हैं। इस लिए यह कहना सर्वथा सत्य है कि भक्ति में, ज्ञान और कर्म, दोनों का समन्वय है। भक्ति का यह परम महत्त्व है।

(१) एक उपासक ब्राह्मण, एक नगर के मन्दिर में आ कर विराजमान हो गया। वह नित्य-प्रति नियम से उपासना किया करता था। जो जन भी उसके पास आता उसको वह उपासना करने का अवश्य उपदेश दिया करता। एक दिन दोपहर के समय, उसके पास आ कर, एक संन्यासी ने उसको कहा-ब्राह्मण ! तू तो बड़ा कर्मकाण्डी है तथा भक्ति में लीन रहता है। तेरे जैसे ज्ञानी को तो भजन पाठ का बखेड़ा छोड़ कर आत्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। यह सुन कर ब्राह्मण बोला-संन्यासिन् ! मैं तो न

कर्मकाण्डी हूँ न ही अच्छा उपासक। मैंने गुरु-मुख से यह सुना था कि कोरा ज्ञान निरी कल्पना ही होता है। मनुष्य ज्यों ज्यों निराकार पद पर तर्क वितर्क करने लगता है प्रायः त्यों त्यों उसके भीतर मिथ्या ज्ञान की वृद्धि होती जाती है। जैसे काल्पनिक पकवान भूखों के पेट नहीं भर सकते ऐसे ही काल्पनिक ज्ञान भी आत्म ज्ञान, शांति और संतोष का कारण नहीं हो सकता। कल्पना वह किला है जिस की नींव कच्ची है। यह वह घोड़ा है जिस के पांव न तो सीधे पड़ते है और न एक स्थान पर स्थिर रहते हैं। जिन लोगों ने अधिक कल्पना की वे अन्त में चारवाक मत पर जा कर ठहरे। युक्तिवाद के अतिपन से बौद्ध लोग शून्य पर जा टिके और शंकर मत के अनुयायी निर्विशेषवाद पर। जिस का कोई विशेषण नहीं और जिस का निर्वचन भी न किया जा सके वह पदार्थ क्या है यह कौन कहे।

काल्पनिक ज्ञान वही है जो निरा युक्ति-वाद हो, केवल तर्क वितर्क का जटिल जाल हो और जो, वस्तु-ज्ञान रहित, वाद विवाद मात्र ही हो। शून्य-वाद और अनिर्वचनीय-वाद निरे वाद ही समझने चाहिएं।

भद्र ! वास्तविक ज्ञान तो वस्तु का ज्ञान है। उपासक जानता है कि मैं वस्तु हूँ और चैतन्य स्वरूप हूँ। उपासना से मेरी कर्म धूल धुल कर मेरा विमल और शुद्ध स्वरूप प्रकट हो जायगा। वह यह जानता है कि जिस की मैं उपासना करता हूँ वह भगवान् सच्चिदानन्द स्वरूप वस्तु है वह पुरुषोत्तम अनुग्रह-शील है। ऐसा निर्मल और निर्दोष आस्तिक भाव सच्चा ज्ञान है। यह ज्ञान भगवती भक्ति में समाया हुआ है। यही भक्ति और ज्ञान की एकता है।

(२) श्री काशी जी में एक बार एक महा सभा लगी। उसमें सभी देशों के गिने-चुने हुए विद्वान सम्मिलित हुए। उस विद्वत्सभा में निर्णय योग्य विषय यह था कि निर्विशेष और अनिर्वाच्य आत्मा का कभी किसी मनुष्य

को ज्ञान भी हुआ है वा नहीं ? एक लम्बे युक्ति-वाद के अनन्तर एक शास्त्री ने कहा—ज्ञान तो ज्ञेय वस्तु का, ज्ञाता को, हुआ करता है। जिस मत-वाद में ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान रूप त्रिपुटी ही मिथ्या मानी जाती हो वहां किस का किस को ज्ञान होगा। वस्तु का ज्ञान विशेषणों द्वारा ही हो सकता है। जब सत् चित्, आनन्द आदि विशेषण न माने जायें तो वह आत्म-तत्व क्या है यह कौन जाने। इस कारण यह कहना ठीक है कि निर्विशेष और अनिर्वाच्य आत्म-पद का आज तक कभी भी किसी को ज्ञान नहीं हुआ। हां, सच्चिदानन्द-स्वरूप ब्रह्म ज्ञेय वस्तु है, लगन-युक्त, चेतन-स्वरूप आत्मा उसका ज्ञाता है और भगवान् परम पुरुष है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान् है और परमानन्दमय है यह उसका ज्ञान है, जो भक्ति धर्म में ही होना सम्भव है। भक्ति धर्म के बिना आत्म-पद में युक्ति-वाद, केवल वाद विनोद ही समझना चाहिये।

(३) हरिद्वार में, दो विद्वान् परस्पर सम्वाद करने लगे तो वहां एक मेला सा लग गया। उनका सम्वाद इस विषय पर था कि भक्ति उत्तम है अथवा ज्ञान। उन दोनों विद्वानों में से एक भक्ति को उत्तम सिद्ध करता था और दूसरा ज्ञान को सर्व श्रेष्ठ बता रहा था। दोनों ने अपने युक्ति बल से पूरा काम लिया परन्तु कोई निर्णय होने में नहीं आता था। अन्त में एक मुनि ने उठ कर कहा—कोरे कहने से करना उत्तम है। भोजन का पाठ किये जाने से तो चने भी चबाना भूखे के लिये हितकर है। केवल वाक्य-माला का ज्ञान, कथन-मात्र का ज्ञान, तो वाणी-विनोद ही होता है। वास्तविक ज्ञान तो अनुभव से, वस्तु के स्वरूप के समझने से और तत्व दर्शन से हुआ करता है। यह सब भक्ति से प्राप्त करना बड़ा सुगम समझा गया है। वस्तु को जानने की जो जिज्ञासा हुआ करती है, जो गहरी लगन लग जाती है, जो पूरी प्रीति तथा रुचि उत्पन्न हो आती है, भक्त वाणी में, वही भक्ति है। ऐसी भक्ति उत्पन्न होने पर ज्ञान के पुष्प का विकास आप ही आप होता

चला जाता है। भक्ति की प्रभात आ जाने पर वस्तु ज्ञान का सूर्य स्वयं उदय हो जाया करता है। जिस जन के मन में वस्तु को जानने की जिज्ञासा, लगन, प्रीति तथा रुचि कुछ भी न हो वह लौकिक ज्ञान से भी सदा वंचित बना बैठा रहता है। पानी में पत्थर की भांति उसको ज्ञान की गंगा का जल स्पर्श तक नहीं करता। उसने दृष्टान्त दिया कि मेरे आश्रम में दो विद्यार्थी बसते थे। उनमें एक तो पढ़ने सीखने में बड़ा उद्यम करता, बड़ी लगन से लगा रहता और अति प्रेम से अपने पाठ स्मरण करने में तत्पर रहता था। वह आज अप्रतिम प्रतिभा-शाली पण्डित प्रसिद्ध है। दूसरा आलसी था, सुख-शील था और पढ़ने-सीखने में यत्किंचित् भी प्रेम प्रदर्शित नहीं किया करता था। वह इस समय निरा निरक्षर, महन्त महाराज है। इस कारण यह कथन सत्य ही है कि ज्ञान में भक्ति प्रीति न हो तो ज्ञान प्राप्त नहीं होता, भक्ति ही ज्ञान का सच्चा स्रोत है।

(४) भक्ति से मनुष्य कर्म-शील बन जाता है। भक्ति से मनुष्य में साहस, आशा, उत्साह और पुरुषार्थ आदि सुगुण, वसन्त में कुसुमों की भांति, स्वयंमेव विकसित होते जाते हैं। एक बार भारत पर गज़नी का नवाब चढ़ आया। सिन्धु नदी के इस पार आते ही उसने हिन्दू हत्याएं करना आरम्भ कर दिया। वह मार धाड़ करता हुआ सोमनाथ के मन्दिर पर जा पहुँचा। उस मन्दिर को तोड़ कर उसने बहुत ही धन प्राप्त किया। वह उस अतुल सम्पत्ति को ले कर एक वर्ष पर्यन्त गुर्जर देश में ही, सुख से आमोद प्रमोद मनाता, टिका रहा। उसके सुख विलास में किसी ने भी कोई विघ्न बाधा नहीं डाली। परन्तु जब वह अपार धन, महा मूल्य रत्न और सहस्त्रों दास साथ लिये अपने देश को लौट रहा था तो उसके मार्ग में एक छोटा सा पहाड़ आ पड़ा। उस पहाड़ पर भील बसते थे। वह सभी एक रामानुरागी मुनि के शिष्य थे। उस मुनि ने जब देखा कि नवाब के साथ सहस्त्रों हिन्दू, दास बने हुए, भेड़ों की भांति सिर नीचा

किये चुप चाप ही चले जा रहे हैं और उनमें सैकड़ों सुन्दर युवतियां हैं तो उसका हृदय करुणा के कारण भर आया। मनुष्य की दया के भाव ने उसको वशीभूत कर लिया। वह तत्काल अपनी कुटी से बाहर निकल कर अपने वीर शिष्यों को बोला—प्यारो! अपने धर्म प्रेम का सहारा ले कर, राम भरोसे आगे बढ़ो और पर-वशता में पड़े हुए इन सहस्त्रों दासों को अपने बाहु बल से बचा लो। अपने सद्गुरु का आदेश सुनते ही श्रद्धालु भील, नवाब के दल बल पर, अपने नुकीले वाणों के बादल बरसाने लग गये। उनके उस वीरोचित कर्म से, सैकड़ों स्त्रियों को, और पुरुषों को वहीं छोड़ कर नवाब की सेना आगे निकल गई। उन स्त्रियों को उन वीरों ने, उनके घरों में पहुँचा दिया।

कहा जाता है ऐसे आक्रमण जाट लोग भी किया करते थे और लौटते हुये लुटेरों को लूट लिया करते थे। इस प्रकार की घटनाओं को देख कर एक शिष्य ने अपने गुरु से पूछा कि क्या कारण है कि जाटों और भीलों जैसे वीर मनुष्य होते हुये भी भारतवर्ष लूट और हत्याओं का स्थान बन रहा है ? गुरु ने उत्तर दिया—सौम्य! जनता की जागृति का कारण ज्ञान, उपदेश और विचार हुआ करते हैं। इस समय के हिन्दुओं के विचार निराशामुखी हैं। निराशा-वाद के दार्शनिक विचारों ने इनके हृदयों के साहस को दबा दिया है। नागरिक प्रजा में ज्ञान, विवेक और विचार अधिक हुआ करते हैं। भारत की बहुत सी नागरिक जनता वेदान्त वादिनी बन कर, जन, जाति, जगत्, अपना पराया सब भ्रम है तथा मिथ्या है कह कर, अपने ज्ञान की पराकाष्ठा कर देती है। उसके लिये संगठन, साहस और सामर्थ्य का सच्चा उपयोग कोई सत्य बात नहीं है। शेष रही उपदेश की बात। भारत के अधिक भाग के नागरिक लोग प्रायः बौद्ध हैं अथवा बौद्धों से प्रभावित हैं। बौद्ध भिक्षुओं ने अपने उपदेशों में दया-वाद की इतनी अति कर दी है कि उन्होंने इस देश के लोगों के अन्तःकरणों

के किसी कोने में भी स्वदेश-भक्ति को नहीं रहने दिया। दया के नाम से लोग कृपण, कायर, अकर्मी और सकीर्ण तथा संकुचित विचार के बन गये हैं। ऐसा विचारमय विकार और उपदेशों का क्लेश अभी तक भीलों में और जाटों में नहीं घुसने पाया है। इसी कारण वे भक्त और सशक्त हैं। यदि नागरिक लोग बोदे बौद्ध-वादों में न फंसे हुए होते और इन लोगों को साथ मिला कर आत्म-रक्षा का सुकर्म करते तो कोई, मार-काट करने वाला विदेशी, इनकी ओर आँख उठा कर भी न देख सकता। तब इस देश मे सर्व सुख, सच्चा ज्ञान, सच्चे उपदेश और पूरा भक्ति भाव दिखाई देता। ऐसा काल फिर वैदिक काल ही कहा जाता।

(५) एक बार पशुपति की यात्रा के लिए सहस्त्रों मनुष्य नेपाल देश को जा रहे थे। उन यात्रियों में दो यात्री ऐसे थे जो विचार विवेक युक्त और भगवत्भक्त थे। वे मार्ग में जहां विश्राम लेते वहीं लोगों को सदुपदेश देने लग जाते। उस सारे यात्रा-संघ में, उन भक्तों की सुगुण-सुगन्धि विस्तृत हो रही थी। सभी की जीभ पर उन्हीं का सुधन्य नाम था। सब में उनके सच्चरित्र की चर्चा चलती रहती थी। उन्होंने एक नेपाली सज्जन को भक्ति धर्म की दीक्षा दे कर उपदेश दिया—भद्र! तू अपने देश के लोगों में भक्ति धर्म का प्रचार कर। तेरे देश-वासी इस धर्म के पूरे अधिकारी है।

सौम्य ! भक्ति धर्म का प्रचार भीरु मनुष्यों में नहीं हो सकता। इसके मुख्य कारण ये हैं कि भीरु मनुष्य भ्रम-शील होता है। वह भय के वश आत्म-विश्वास तक खो बैठता है। वह सच्चा भी नहीं होता। उसके मानस भाव बड़े निकम्मे और भद्दे हुआ करते हैं। ऐसे ही द्रोही मनुष्य भी भक्ति प्रेम में प्रवेश नहीं कर सकता। मित्र का द्रोही, जाति का द्रोही और धर्म का द्रोही मनुष्य अति नीच और महा पातकी माना गया है। उसका मन इतना मैला हो जाता है कि इसमें भक्ति भाव का बसन्ती रंग कदापि

नहीं बसा करता। विश्वास-घाती मनुष्य, भक्ति धर्म में नहीं रम सकता। जिस जन में इतना भी चरित्र नहीं कि वह भाई बन्धु का, इष्ट मित्र का और धर्म जाति का विश्वास-पात्र बन सके तो वह भगवान् के स्वरूप का विश्वास कैसे करेगा। जो मनुष्य इस लोक के सम्बन्धों का ही नहीं है वह परलोक के सम्बन्धों में सच्चा, पक्का और पवित्र है, यह कौन कहे। जो मनुष्य प्रत्यक्ष का नहीं है वह परोक्ष का नहीं हो सकता, यह सर्वथा सत्य बात है। संशय-शील मनुष्य भी भक्ति धर्म को नहीं धारण कर सकता। संशय मनुष्य के हृदय की दुर्बलता का प्रकाश है, उसके विश्वास की कमी का प्रत्यक्ष रूप है, उसके निश्चय की न्यूनता का प्रकटी-करण है और उसके डांवांडोल होने का प्रदर्शन-मात्र है। संशय-शील का यही लोक बिगड़ जाता है तो परलोक का बनना तो सर्वथा ही असम्भव है। स्वार्थी मनुष्य, जो अपने सुख को, आराम को, धन को, तन को, मन को जाति देश और धर्म के हित में नहीं समर्पण करते, वह भी भक्ति की गंगा में स्नान करने के अधिकारी नहीं हुआ करते। सौम्य ! सौभाग्यवश, तेरे देश-वासियों में ऊपर कहे दुर्गुण बहुत कम हैं अतएव तेरा देश भक्ति का पुण्यमय बीज बोने की बहुत उपजाऊ भूमि है।

(६) यमुना तट के समीप एक जाट बसता था। उसके पास भूमि पर्याप्त थी। गो-पालन वह प्रेम से किया करता था। दूध माखन का तो उसके घर में भण्डार खुला रहता था। उसके गृह पर दिन भर में अनेक अतिथि अभ्यागत आते और उसके आदरातिथ्य से सन्तुष्ट होकर जाते थे। उसके घर में, सायं सवेरे सदा सत्संग लगा करता था। उसके उत्तम भक्ति भाव से सबोध अबोध सभी जन प्रभावित हो जाते थे।

एक दिन उस जाट को एक ब्राह्मण ने कहा—चौधरी ! सेवा सत्संग में तू समय बहुत लगा देता है। कुछ अपनी भी तो चिन्ता किया कर। निरा भगवान् भरोसे ही न बैठा रह। जाट ने उत्तर दिया—विप्र ! प्रभु के

प्रेम के पालने में पलता हुआ मैं एक बालक हूँ। बालक को अपनी चिन्ता कुछ भी नहीं होती। उसकी चिन्ता तो उसके माता-पिता करते रहते हैं। वह तो बाल-सुलभ स्वभाव से, अहन्ता ममता रहित, क्रीड़ा ही करता रहता है। मां बाप की देख रेख में वह शुक्ल पक्ष की चन्द्र कला की भांति बढ़ा करता है। उसको अपने धन का, सम्पत्ति का और तन का अभिमान नाम मात्र भी नहीं होता। वह मुनियों की भांति निर्मम और निर्भय बना रहता है। ब्राह्मण ! विचारवान् मनुष्य को चाहिये कि अपने चित्त को चिन्ताओं से चंचल न करे। वह कर्तव्य तो अवश्य पाले, पर भविष्य के व्यर्थ भय न खड़े करता रहे। भुवन-भावन भगवान् के भरोसे पर निर्भर करे और फलाफल उसी पर छोड़ दे। ऐसे भक्त की पालना परम पिता आप किया करता है। श्री राम अपने आश्रित का, अपने शरणागत का और अपने अनन्य भक्त का, योग क्षेम रूप भार, अपने ऊपर आप ले लेता है। भक्त का तो केवल इतना ही काम है कि बालक वत्, वीत-राग बन कर, स्वभाव से कार्य करता चला जाय। अपने मन में मोह, ममता और अभिमान की ग्रन्थियां गाढ़तर न पड़ने दे, अपने सर्व कर्म श्री राम की शरण में समर्पण करके शान्त हो जावे और श्री भगवान् में ही समता लाभ सुख से करता रहे।

******

बंधु भावना

(१) वृन्दावन के एक ग्राम में एक अहीर रहता था। उसके घर श्री कृष्ण जी आया करते थे। तरुणता की ओर बढ़ते हुए श्री कृष्ण कुमार के कण्ठ की कोई ऐसी अलौकिक कोमलता थी, ऐसी मधुरता थी और उसका ऐसा मनोमोहक रसीलापन था कि उनके सुर गीत को सुनते ही जाट, अहीर बालक उनके पास दौड़े चले आते और तन्मय हो कर उनके स्वर-सुधा का स्वाद लेते। एक बार श्री कृष्ण जी ने उस अहीर के विशाल आंगन में अपनी बांसुरी बजानी आरम्भ की। वह पूर्ण-मासी की रात थी।

चटकीली चांदनी चहुँ ओर चमक रही थी। ऊपर तारागण-जड़ित नील आकाश का चन्दोआ तना हुआ था। उसके नीचे हरे हरे घास पर वृन्दावन-वासी, आबाल वृद्ध विराज रहे थे। उस समय यद्यपि आकाश में भी पूर्ण चन्द्र चमक रहा था परन्तु उन लोगों की दृष्टि तो, एकाकार होकर, सर्व कला सम्पूर्ण श्री कृष्ण चन्द्र के दर्शनामृत को ही पान कर रही थी। सब लोग, सब कुछ भूल कर, मुरली का माधुर्य और उस रास का रस आस्वादन कर रहे थे। मनमोहन की मधुर मुरली के उतराव चढ़ाव के साथ मनुष्यों के मन भी सितार के सुतार बने हुए हर्ष का झंकार करते जाते थे। उस समय, वहां सभी श्रोता यह समझते थे कि हम में किसी दिव्य विद्युत् शक्ति का स्वयंमेव संचार हो रहा है। उस रास के दर्शकों में से अनेक युवक आवेश में आ कर गाने, बजाने और नृत्य करने लग गये। उस रास में नारियां भी भाग ले रही थी। सुध-बुध वाले सभी सज्जन यह बात जानते थे कि वृन्दावन के नारी नर दिन भर काम-काज करते हैं, हल जोतते हैं, खेत संवारते हैं, भेड़ें बकरियें और गौएं चराते फिरते हैं। ये परिश्रमी ऐसे समय में ही परस्पर मिल बैठते हैं, हरि गीत गाते हैं और आपस के प्रेम से अपना भ्रातृ भाव बढ़ाते हैं। श्री कृष्ण की इस रास ने ही सारे वन-वासियों को और ग्रामीणों को बन्धु भाव के सूत्र में पिरो कर, एक परिवार बना दिया है।

(२) मथुरा प्रान्त के सभी ग्वाले अपनी गायें लिये गोवर्द्धन को जा रहे थे। युवकों में उस दिन अपार उत्साह था। बूढ़े भी युवकों की भांति दौड़े चले जाते थे। छोटी बड़ी सभी स्त्रियां अपने घरों के पुरुषों के साथ गीत गाती हुई, दूध दही की मटकियां उठाये, दाल रोटी और माखन के कटोरदान सिर पर धरे, प्रसन्न-मुख उसी ओर चली जाती थीं। दिन चढ़ते ही गोवर्द्धन पर गायें ही गायें दीखने लगीं दोपहर के समय वहां पूरा मेला भर गया। युवतियां युवक वीर रस के गीत गाते हुए आवेश में आ कर नृत्य भी करने लग जाते थे। उनके नृत्य भाव पूर्ण और निराले थे। उनमें

से कोई तलवार घुमा कर आश्चर्य चकित करता था, कोई लाठी फेरता हुआ नाचता था, कोई बाण से लक्ष्य वेधन करके अपना कौशल दिखाता था और कोई गतके के दाव पेंच चलाता हुआ बड़ी उतावली से पेंतड़े बदलता जाता था। आवेश वश अनेक नारी नर—'मैं नारायण जन हूँ, मैं वीर क्षत्रिय हूँ, मैं सैनिक हूँ, मैं विजेता योद्धा हूँ और मैं भगवद्भक्त हूँ,' कहते हुए नाना खेल खेलते थे। श्री कृष्ण चन्द्र के चहुँ ओर वे ऐसे ही चक्कर लगाते क्रीड़ा करते थे जैसे सूर्य के इर्द-गिर्द ग्रह नक्षत्र घूमा करते हैं। उस समय श्री कृष्ण ने अपने गम्भीर स्वर से गर्ज कर कहा—रास रस तो सब ने पान कर लिया। अब हमारा बन्धु-सम्बन्ध-वर्द्धक सहभोज होगा। सब लोग मिल जुल कर षट्रस-युक्त भोजन खायें और अपने प्रेम के तार को और भी सुदृढ़ बनायें। गौओं का पालन पोषण और आपस में मिल कर सहभोज करना, हमारा यही इन्द्र-यज्ञ है।

(३) वृन्दावन के सभी गोप, श्री कृष्ण को बहुत चाहते थे। जाट, अहीर, गूजर उनके परम भक्त थे। उस प्रान्त के सभी युवक महाराज के प्रेम-तार में पिरोये जा कर उनकी ममता की माला के मनोहर मनके बन रहे थे। श्री कृष्ण का नन्द-गाम में पालन पोषण पाना, विधाता का ही विधान था, किसी बड़ी घटना का सूत्र-पात था, किसी भारे उथल पुथल रूप परिवर्तन का प्रथमारम्भ था और सब से अधिक कुरुदेश को, यादव वंश को, कंस के क्रूरतम हाथ से, स्वतन्त्र करने का परम उपाय था।

श्री कृष्ण ने अपनी रास से, अपने निराले खेलों से और अपने आयस्कान्तिक आकर्षण से ग्राम-वासियों में वह वीर भाव भर दिया था कि वहां के वन के बाल गोपाल सभी, शस्त्र चलाना सीख कर शूर वीर बन गये थे। वहां की नारियां भी वीर रस में रंगी गई थीं। महाराज की रास में बालक वे खेल खेलते थे कि उनके शस्त्र संचालन को देख कर वृद्ध भी दान्तों में उंगलियां दबाते आश्चर्य में रह जाते थे। वृन्दावन के

सभी युवक श्री कृष्ण की नारायणी सेना के सैनिक थे, उस सेना के सेनापति श्री महाराज आप थे। उस सेना का प्रत्येक सैनिक श्री महाराज के समान ही अस्त्र-शस्त्र चलाना जानता था। उनकी रसमयी रास का यही सरस सार और गहरा रहस्य था। उनके रास-मंडल में तथा सम्मेलन में नारी नर सब, अपने अपने घरों से दूध, दही, माखन, शाक और रोटी आदि भोज्य वस्तुएँ ले आते और फिर मिल जुल कर खाते पीते थे। इस से वहां आबाल वृद्ध में अपार प्रेम बढ़ गया था। श्री कृष्ण के, एक ऐसे ही प्रीतिभोजन के समय भाषण करते हुए एक विद्वान ने कहा—सज्जनो ! बन्धु भाव के सच्चे सम्बन्ध-सूत्र को सुदृढ़ बना रखने का सर्वोत्तम साधन आप का रसीला रास, रंगीला खेल, सुरीला स्वर संगीत और स्वादीला सम्मिलित सहभोज है। भ्रातृ-भाव बढ़ाने में भोजन का बड़ा भारी भाग हुआ करता है। सहभोज से भगवद्भक्तों में भेद भाव का भय नहीं रहता।

(४) नर्मदा नदी के निर्मल नीर के तीर पर बैठे हुए, दो ब्राह्मण परस्पर वार्तालाप करने लगे। एक ने अपने साथी को कहा—भारत पर भारी भय छा रहा है। यह युग बहुत ही भंयकर है। भारत-वासियों के चारों ओर अशुभ सूचक चिन्ह चमक रहे हैं। जो कुलक्षण मरणाभिमुख मनुष्य में मिला करते हैं वे सब अब इनमें दीखने लग गये हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि भारतीयों में भ्रातृ-भाव का बड़ा भारी अभाव है। ये अपने जातीय क्षेत्र में बंधु—सम्बन्ध का सुबीज नहीं बोते। ये लोग अपने कुलों को, वंशों को और गोतों को जाति मान कर अपने भविष्य को दिनों-दिन, भयंकर बनाते चले जाते हैं। भला ऐसे भेद भाव की भीत पर ये कब तक खड़े रह सकते हैं। इस रेत की दीवार ने, अन्त में तो, गिर कर ही रहना है।

दूसरा ब्राह्मण बोला—यह सत्य है कि इस समय के भारतवासी भ्रम-शील और भोले हैं। इनमें बन्धु भाव का सम्बन्ध शिथिल है। परन्तु इनमें, अब, रामानन्द, तुकाराम, रामदास, चैतन्य और श्री नानकादि महानुभावों

ने भक्ति भाव उत्पन्न करके, भ्रातृ-भाव उत्पन्न कर दिया है। अब भारतीय लोग मेल मिलाप के मीठे माहात्म्य को मन से समझते और मानते जाते हैं। इनके जातीय जीवन की जो जड़, भेद के कीड़े ने चाट कर निर्जीव कर देनी आरम्भ की थी वह अब फिर सजीव बनी जाती है। भारत के भवन को भव्य बनाने के लिये विश्वकर्मा इसको फिर से बनाना चाहता है। इसके चौबारे, इस की ऊंची अट्टारियां, इसके कोट और किले सब सम कर के वह इसको नीचे से निर्माण करेगा। इस युग में ग्रामीण लोग, किसान जन और परिश्रमी मनुष्य मिल कर जातीय जीवन की जोत ज्वलन्त करेंगे और समाज संगठन को सुधार कर उसकी नवीन रचना रचेंगे। उस नव-रचना में नव-जीवन होगा, नूतन आवेश होगा, निराला तेज होगा, नया बल होगा और नवतर बन्धु भाव होगा। अन्त में भक्ति ही तो भ्रातृ-भाव की जननी है। मनुष्य में जब स्वदेश भक्ति होगी, स्वजातीय भक्ति होगी, सद्धर्म में भक्ति होगी और भुवन-भावन श्री भगवान् में भक्ति होगी तो भ्रातृ-भाव अवश्य ही बढ़ता जायगा। श्री राम अपने जनों को कभी भी हताश निराश नहीं करते।

******

दया

किसी जन के दुःख को देख कर, मनुष्य के हृदय में जो अनुकम्पा का भाव उत्पन्न हो जाता है वह भाव दया है। दया दीन, दुःखी और पीड़ित प्राणी पर की जाती है। दुखिया जन के साथ सहानुभूति करना, उसके कष्ट क्लेश में उसको सहायता देना, उसकी व्याधि वेदना में उसकी सेवा करना और उसके दुखड़े दूर करने का भरसक यत्न करने लग जाना दया के चिन्ह हैं।

(१) अपनी पत्नी सहित एक यात्री चित्रकूट को चला जा रहा था। एक दिन मार्ग में उसको रात पड़ गई। घना वन था। वनैले पशुओं का

पैर पैर पर पूरा भय था। शीत-काल के प्रबल प्रभाव ने सब दिशाओं को शीतलतर बना रक्खा था। ऐसे कुसमय में, विषम वन में चलते हुए उन यात्रियों को आधी रात के लग-भग एक आश्रम दिखाई दिया। वह आशा के साथ उसके द्वार पर गये तो उन्होंने देखा कि आश्रम स्थान में केवल एक वृद्ध वैरागी ही निवास करता है। वैरागी ने भी उन अभ्यागतों को देखते ही अपनी कुटी का द्वार खोल दिया और स्वागत पूर्वक उनको भीतर आसन निमन्त्रित किया। वह तपस्वी उन अतिथियों को कुटिया में सुला कर आप कुटिया से बाहर निकल कर जा बैठा।

सवेरा होने पर वे यात्री जगे और प्रस्थान कर के अभी थोड़ी दूर ही जाने पाये थे कि एका एक उन पर तीन भेड़िये आ पड़े। उनकी हा-पुकार सुन कर वह बूढ़ा वैरागी दौड़ता हुआ वहां जा पहुँचा। उसने जाते ही वे तीनों हिंसक पशु अपनी तलवार से हनन कर दिये और फिर दोनों घायल यात्रियों को वह अपने कन्धों पर उठा कर कुटिया में ले आया। उसने अपने हाथ से उनके घाव धोये, उन पर औषध लगाई और अपने स्वच्छ वस्त्र फाड़ कर उनकी पानी-पट्टी की। वे यात्री वेदनावश पड़े कराहते थे और वह वैरागी उनके अंग दबाता हुआ उनको आश्वासन दे रहा था। दिन चढ़ आया। बादल बरसने लग गये। थोड़ी देर तक ऐसी मूसलाधार वर्षा हुई कि सर्वत्र जल ही जल हो गया और फिर मन्द मन्द वृष्टि होने लगी। उस समय ठण्डी पवन भी तीखे वाण की भांति तन को आर-पार कर रही थी। परन्तु ऐसे समय में वह वैरागी दो कोस दूर, एक गांव में जाकर, उन यात्रियों के लिये दूध मांगता फिरता था। उसके कपड़े पानी से भीग रहे थे, घुटनों तक कीचड़ चढ़ा हुआ था और शीतल वायु-वश, सारे अंग ठिठुरते जाते थे पर वह लाठी के सहारे, भिक्षार्थ, द्वार-द्वार पर जाता था। गांव की गलियों में फिसल कर वह कई बार गिरा परन्तु यात्रियों के लिये भोजन पथ्य ले ही आया। उसने उन दोनों

की सेवा शुश्रूषा कई दिन तक करके, उनको नीरोग स्वस्थ बना कर विदा किया। वे दोनों यात्री उस वृद्ध की अकारण कृपा को अपने अन्त:करण में चिर काल तक स्मरण करते रहे।

(२) एक मुनि बिहार देश में भ्रमण करता हुआ विशाली नगर में जा विराजमान हुआ। वह प्रति दिन, लोगों को दया दान का उपदेश दिया करता था। वह अनाथों और दीन-दुखियों की सेवा स्वयं करने लग जाता था। वह निस्सहाय रोगियों के आप अंग धोता और उनको औषध पथ्य लाकर देता था। निर्धनों के बच्चों का पालना, अनाथों की देख रेख रखना और उनके खान पान का पूरा प्रबन्ध कर देना, ये उसके नित्य के काम थे।

एक बार उस प्रान्त में भयंकर अकाल पड़ गया। भूखे मनुष्य कीड़े-मकोड़े की मृत्यु मरने लगे। ऐसे समय में उस महा-मुनि ने अपना सेवा संघ संगठित करके प्रान्त भर में काम करना आरम्भ कर दिया। उस दयालु मुनि की भिक्षा झोली, जब नगरों के द्वार-द्वार पर झूमती झूलती फिरने लगी तो थोड़े दिनों में ही अकाल का मृत्युमय मुख मुंद गया। मुनि के पुण्यमय कर्म से सहस्त्रों मनुष्यों को सहायता मिली। ऐसे सुकर्मों के कारण उस मुनि को लोग कृपा सागर के नाम से स्मरण करने लग गये। कृपा सागर सचमुच कृपा का सागर ही था। दीन दुखी के लिये तो वह अपना तन तक लगा देने को तैयार रहा करता था। यदि कोई दीन वस्त्र-हीन उसे दीख पड़ता तो वह अपने सारे वस्त्र उतार कर उसको ओढ़ा देता। एक बार एक वैद्य ने, एक रोगी के घाव पर लगाने के लिये, नीरोग मनुष्य का जीवित मांस मांगा। उस रोगी के किसी भाई बन्धु ने अपना मांस देना न माना तो कृपा सागर ने तत्काल अपना मांस काट कर वैद्य को दे दिया। उसके ऐसे दया भाव का प्रभाव उस नगर के श्रावक राजा पर ऐसा पड़ा कि वह दया धर्म के सच्चे मर्म को समझ कर अपने सनातन धर्म को मानने लग गया।

(३) सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण करके पंजाब की उत्तर पश्चिम सीमा के नगर नष्ट भ्रष्ट कर दिये। उस समय उन नगरों के वासी दया के दार्शनिक गोरख धन्धे में फंसे हुए थे। जब शत्रु नगर पर आक्रमण करता तो दयावन्त लोग उपवास धारण करके बैठ जाया करते थे। शत्रु नगरों में, किलों में घुस कर मन मानी मार मारता जाता और उन उपवास धारियों को भी हनन कर देता। ऐसे ही कारणों से सिकन्दर का उत्साह बढ़ गया था। अन्त में उसने तक्षशिला पर भी आक्रमण कर दिया। उस नगर की ऐसी दुर्दशा हुई कि वह जन-शून्य हो गया। पश्चिम से सिन्धु नदी पार करके आक्रमण करने वाले लोग, प्रायः सर्व हनन की नीति से ही विजय पाया करते थे। सिकन्दर की विजय का भी यही रहस्य था। उसकी ऐसी ही क्रूर नीति का यह परिणाम हुआ कि उस काल के उजड़े हुए नगर, आज भी भूमि के भीतर से, अपने भंग अंग दिखा कर, भारतीयों की कुदया और यवनों के सर्व-हनन-रूप अति-निर्दय कर्मों की कथा कह रहे हैं।

तक्षशिला की विजय से मत्त हो कर सिकन्दर मगध देश तक मार मारना चाहता था परन्तु पोठोहार के ब्राह्मण राजा ने संग्राम करके उसकी सेना की कमर तोड़ दी। सिकन्दर के सैनिक हत प्रतिहत होकर ऐसे भय-भीत हुए कि उन्होंने आगे बढ़ने से कोरा नकार कर दिया। उनको आश्चर्य होता था कि ये ब्राह्मण इतने वीर हैं कि हमारी सर्व-विजयिनी सेना का सर्वनाश कर देने पर तुले बैठे हैं। न ये दया की दुहाई देते हैं और न उपवास का नाम लेते हैं और रात दिन छापे मार कर हमारे दल बल को मिटाते चले जाते हैं। अन्त में सिकन्दर ने ब्राह्मण राजा से सन्धि कर ली और शान्ति से विश्राम लेना स्वीकार कर लिया। सिकन्दर की सेना में रोग फैल गया था और उसके सैनिकों को सांप भी बहुत काटते थे। उसने उसकी चिकित्सा के लिए ब्राह्मण राजा से सहायता

की याचना की। राजा के आदेश से, उस समय के संन्यासियों ने, विदेशियों को, अपनी चिकित्सा के आश्चर्यकारी चमत्कार दिखाये। सिकन्दर ने उन संन्यासियों में से एक से विनय की कि आप मेरे साथ युनान को चलें। मैं आपको अपने पास बड़े आदर सम्मान से रक्खूंगा। उसने उत्तर में कहा—हमारा राजा बड़ा दयावान् है। उसने रोग के संकट में आप की सहायता करके अपने दयालु स्वभाव का आपको पूरा परिचय कराया है। हम तो उसके आदेश से ही आप की सेना की सेवा कर रहे हैं। जिस क्रूरतम मनुष्य के सेना बल को हमारा राजा, कुछ दिन हुए, सर्वथा नष्ट कर देना चाहता था आज संकट में उन्हीं की सहायता करने में तत्पर है। राजन ! हमारे पुरातन पुरुष ऐसी ही दया को दया कहा करते थे।

******

अहिंसा

किसी प्राणी को हनन करना—मारना हिंसा है। किसी प्राणी को न हनन करना—न मारना अहिंसा है। सृष्टि नियम में, क्रियात्मिक जीवन में और स्वाभाविक जीवन यात्रा में हिंसा क्या है और अहिंसा क्या है यह विवेक बुद्धि से ही समझने योग्य वार्ता है। स्वभाव सिद्ध कर्मों को कल्पनामय विचारों में गड्ड मड्ड कर देना मतवाद की शैली है।

(१) दक्षिण के एक नगर में, एक विद्वान सन्त ने जनता को कहा कि अपराध रहित मनुष्य को मारना, दीन दुर्बल जन को हनन करना और किसी को अकारण पीड़ा पहुँचाना हिंसा है। यही शास्त्र में वर्जित है। असत्य पथ पर चल कर अपने आत्मा को पतित बना देना, जान बूझ कर मिथ्या कर्म करते रहना और आत्म-ध्वनि के विपरीत चलना आत्म-हनन, आत्म-हिंसा है। सब हिंसाओं से घोरतर यही हिंसा है। अपने सामयिक स्वार्थों के वश, साम्प्रदायिक हठ के कारण, लोक लाज के अर्थ और भ्रममय विचारों से देश के भविष्य को बिगाड़ देना, जाति को दासता

में बान्ध डालना और वीर कर्म का निषेध करते रहना जाति की हिंसा है। जाति को दुर्बल और कायर बना देने वाले विचार देना जाति की आत्मा की हिंसा है। साहस, पराक्रम, वीरता, क्रिया-शीलता और बन्धु-रक्षण आदि सच्चे और स्वाभाविक कर्म हैं। सृष्टि नियम में ये सर्वत्र पाये जाते हैं। इनके विपरीत बोलना और बरतना सत्य की हिंसा है। आस्तिक भाव का हनन करना भी सत्य का हनन है। चारों वर्णों के कर्म स्वभाव सिद्ध हैं। ये सब देशों में समान देखे जाते हैं। इनकी उपयोगिता त्रयकाल में एक सी बनी रहती है। इसमें से एक वर्ण के कर्म के नाश से जन का, समाज का और जाति का नाश हो जाता है। इनके बिना धर्म कर्म का अलाप, निरा विलाप और उन्मत्त प्रलाप है। इस कारण चारों वर्णों के कर्तव्य कर्मों में पाप, अपराध तथा हिंसा की धारणा रखना सत्कर्मों की हिंसा है, सच्चे धर्म की हिंसा है, जन समाज की हिंसा है, सज्जन सम्मति की हिंसा है और नीति न्याय, दोनों की हिंसा है। हमारे वैदिक विचारों का यह बड़ा महत्व है कि उनमें एक कृषक का कर्म भी ऐसा ही धर्म है कि जैसा एक ब्राह्मण का। सनातन धर्म की दृष्टि से क्षत्रिय का कर्म भी उतना ही उत्तम है जितना कि वेद वेदांग के प्रचारक और तत्त्व-दर्शी योगी का। सनातन धर्म में सभी विहित कर्म धर्म हैं। जन-हित-दृष्टि से किये गये कर्म दया में ही गिने जाते हैं।

(२) एक किसान ने अपनी भूमि में हल चला कर फिर उसको पानी दिया। जब उसका सारा खेत सींचा जा चुका तो वह अपने बैल लिये अपने घर को चल पड़ा। मार्ग में उसको एक मनुष्य ने कहा—चौधरी ! तेरी कमाई बड़ी हिंसा की कमाई है। देखो, खेत को जोतने में, सुहागा फेरने में, पानी देने में, खेती को काटने में और खलिहान में काम करने में असंख्य जीव मारे, मसले, काटे और कुचले जाते हैं। इस कारण खेती बाड़ी का काम करना घोर हिंसा करना और पाप कमाना है। किसान

ने उसको कहा—भाई! किसान का काम तो पवित्र और दया-पूर्ण है। यदि कृषि की कमाई न की जाय तो ग्रामों और नगरों की हिंसा हो जाय। अन्न के अभाव से सारे मनुष्य मर जायें। किसान का कृषि कर्म करना मनुष्य समाज को पालना है और परम अहिंसा धर्म है। भगवान् की सृष्टि में मनुष्य ही श्री राम का मनोहर मन्दिर है। इसी में देवाधिदेव के दिव्य दर्शन हुआ करते हैं। मानव तन के विशाल मन्दिर में ही एक ऐसा झरोखा है जिसमें से आत्मिक सूर्य की झांकी मिला करती है। इसी शरीर में सुख शान्तिमय सच्चे स्वर्ग की सीढ़ी है जिससे ऊपर चढ़ कर आत्मा जन्म मरण के चक्कर से निकल जाता है। अहो ! ऐसे जीवित जागृत हरि मन्दिरों की रक्षा का कर्म, हिंसा का कर्म कह देना कितना बड़ा अज्ञान, कितना गहरा भ्रम और कितना भारी अधर्म है।

(३) एक विद्वान् ब्राह्मण सिन्धु नदी के किनारे भ्रमण करता हुआ मूर्छित हो कर गिर गया। लोगों ने उसको हाथों हाथ उठा कर एक स्वच्छ स्थान पर लिटा दिया। देखने वाले सभी आश्चर्य में थे कि इसको सहसा क्या हो गया है ? विशेष देखने से उसके पास से एक पोथी निकली जिसमें सिन्ध देश के पहले पतन का रोमांचकारी वर्णन था। पवन पंखा करने पर जब वह ब्राह्मण सचेत हो गया तो उसने अपनी मूर्छा का कारण बताया कि मैं इस पोथी में लिखा, सिन्ध पर अरबों के प्रथम आक्रमण का वर्णन पढ़ रहा था। उस में जब मैंने यह पढ़ा कि अरब लोगों ने अपनी सेना के आगे पशु हांक रक्खे थे। सिन्ध के शूर वीरों ने अरबों पर अपने पैने बाण इस कारण न बरसाये कि कहीं वे आगे आते हुए पशुओं को न लग जायें और उससे पशु हिंसा न हो जाय। उन वीरों के ऐसे अहिंसामय विचारों का यह परिणाम हुआ कि अरब लोगों ने, बिना हानि उठाये, बड़ी सुगमता के साथ, सहस्त्रों सिन्धियों को मार काट कर उनकी राजधानी को लूट कर नष्ट भ्रष्ट करके छोड़ा। उनकी सामयिक अहिंसा ने लाखों

मनुष्यों की हिंसा करके, भारतीयों के भविष्य की असंख्य संतानों के भाग्य की हिंसा भी कर डाली, वहां के मानव जीवन की हिंसा कर दी और पुराने हिन्दू विचारों का हनन कर दिया। ऐसी विचार परम्परा में मेरा मन मूर्छित हो गया और मैं भूमि पर अचेत गिर पड़ा।

(४) एक परम-हंस समुद्र के किनारे वायु सेवन करता हुआ भ्रमण कर रहा था। उस समय उसने देखा कि एक सेठ मछली मारों में धन बांट रहा है। उस सेठ को परम-हंस ने कहा—सेठ जी, आप ने अकाल पीड़ितों के लिये, अपाहिजों के लिये और अनाथों के लिये कभी कानी कौड़ी तक नहीं दी। आज क्या कारण है जो आप यहाँ थैलियां उलट कर ठन ठनाते रुपये बांटते जाते हैं ? आप की कंजूसी के कड़े-किवाड़ के ताले को, कहो, आज किस कुंजी ने खोल दिया है ?

सेठ ने कहा—महाराज ! कल को हमारा पुण्य पर्व का दिन होगा। उस दिन ये लोग मछलियों की हिंसा न करें इस लिए इनको रुपये दे रहा हूँ और मुँह मांगे रुपये दे रहा हूँ। मुनि ने गम्भीर भाव से कहा—भद्र ! यह तेरा भोलापन है जो तू ऐसी अहिंसा की कल्पना करता है। तेरे दिये द्रव्य से जाल आदि नये तैयार करके, ये लोग अगले दिन दुगनी मछलियां मारेंगे। कल, तू इनसे तो मछलियां बचा देगा परन्तु बड़े मत्स्य, मगर और जल-हस्ती आदि, जो छोटी मछलियों का मन माना आहार करते रहते हैं उसका क्या उपाय करेगा। प्यारे ! मानव समाज की सेवा कर। दीन दरिद्र के पालन में द्रव्य दान दे। जन हित के कर्मों में भाग लेता रह। ऐसे सुकर्मों से तुझ को अहिंसा का सार सुगमता से समझ में आ जायगा। यह सत्य समझ की सृष्टि में सर्व श्रेष्ठ मनुष्य है, रचना का दिव्य देवालय है और भुवन-भावन भगवान की विभूतियों का यह सर्व सुन्दर विभाग है। इसका हित करना एक ऊंची अहिंसा है।

(५) भारतवर्ष के लोग अहिंसा-वाद की, तर्क से सिद्धि करने में अति

कर दिया करते हैं। ऐसे वादों को युक्तियों से छील छाल कर, लोग उसके स्वरूप को, अस्तित्व को भी असम्भव बना देते हैं।

मारवाड़ के एक नगर से कुछ दूर, एक मुनि ने सरोवर बनवाना आरम्भ कर दिया। मुनि भी एक माना हुआ महात्मा था। उसने लोगों से धन मांग कर उससे बड़ी भारी सामग्री इकट्ठी करके, छोटी-छोटी दो पहाड़ियों के बीच सुदृढ़ बांध बन्धवा कर एक सुन्दर सरोवर तैयार करवा लिया। वह सरोवर कोई एक कोस लम्बा और पाव कोस चौड़ा था। जब वर्षा ऋतु की पहली झड़ी लगी तो वह सरोवर पानी से आकण्ठ पूर्ण हो गया। उस समय उस सुन्दर सरोवर को देखने के लिए सहस्रों नारी नर आते थे और उसके सुहावने दृश्य को देख कर उस मुनि के गुण-गान गाते थे। परस्पर लोग कहते थे कि यहां, ग्रीष्म में, आये वर्ष पानी का अकाल पड़ जाता है। पानी के अभाव से लोगों ने पशु पालने त्याग दिये हैं। परन्तु अब तो सन्त ने जल-सागर बना दिया है। इस से मनुष्यों के तो दुखड़े दूर हो ही गए हैं, पर सहस्रों पशु भी सुख से पलते रहेंगे। परन्तु उन लोगों में ऐसे मत के मानने वाले मनुष्य भी थे जो कह रहे थे कि सन्त ने सरोवर क्या बनवाया है एक कसाई घर बनवा दिया है। भाई! इसके जल में असंख्य जीव जन्तु पड़ जाएंगे। मछलियां, मींडक भी अनगिनत उत्पन्न हो जावेंगे। जब लोग इसके जल में स्नान करेंगे, इसका पानी पियेंगे तो स्थूल और सूक्ष्म दर्शक यंत्र से दीखने वाले सूक्ष्म, असंख्य जीव मर जाया करेंगे। छोटी मछलियों को बड़ी मछलियां भी सदा खाती रहेंगी। यदि सरोवर न होता तो इतने जीव जन्तु भी न होते। तब किसी की हिंसा भी न हो सकती। सरोवर न बनता तो छोटी मछलियां भी उत्पन्न न हो सकतीं और उनको बड़े मच्छ भी न खाते। मींडक मच्छलियां न होने से उनको बगुले भी आहार न बना सकते।

******

ज्ञान

१) यमुना तट पर कुटिया बना कर एक ब्राह्मण वहां सुख से रहा करता था। वह बड़ा ज्ञानी माना जाता था। वेद शास्त्र तो उसकी जीभ पर विराजते थे। सब स्मृतियां उसने स्मरण कर रक्खी थीं। एक बार काशी के कई पण्डित उसके दर्शनों को आये। उसने भी उनका आदर सम्मान पूर्ण रीति से किया। वे सभी मिलकर अनेक दिनों तक ज्ञान-गोष्ठी करते रहे। उन्होंने नाना विषयों का निश्चित निर्णय किया। जब वे चलने लगे तब उन्होंने यमुना तट वासी को कहा—आप का ज्ञान अगाध है। आप की विद्या का तो पारावार भी नहीं पाया जा सकता। यमुना तीर वासी बोला—यह तो आप की अपनी प्रशंसा है। मुझ को दर्पण बना कर आप अपना ही मनोमोहक मुख-मण्डल देख रहे हैं। मैं तो एक नन्हा सा कीट हूँ और ज्ञान के ऊंचे पर्वत की तलैटी में रींगने वाला तुच्छतर कीट हूँ। मुझे तो चार अंगुल मात्र भूमि दीखती है। सबसे ऊंची चोटी की ऊंचाई की चर्चा तो कौन चलाये।

(२) अमृतसर में पधार कर एक संन्यासी ने राम-बाग में सत्संग लगाना आरम्भ कर दिया। उसके सत्संग में सत्य-ज्ञान का सागर उमड़ आता था। श्रोता जन, उसके युक्ति-प्रमाणों के तरंगों में अठखेलियां लेने लगते थे। कोई कैसा ही तार्किक क्यों न होता परन्तु उसके आसन के आगे आते ही निरुतर हो जाता। अपनी अनोखी सूझ से और समयानुकूल युक्ति से बड़े वाचाल और महा मुखर मनुष्य का तुरंत मुँह मूंद देना उस मुनि का एक सहज सा काम था। अपने व्याख्यानों में वह वाक्यों की, उपयुक्त प्रमाणों की, उचित युक्तियों की, सुन्दर उदाहरणों की और निराले दृष्टान्तों की एक ऐसी अच्छी लड़ी पिरो देता कि सुनने वाले वाह वाह करते लट्टू हो जाते। उसकी उपमा में एक अद्भुत रस होता था। उसकी कथन-शैली में आश्चर्यकारिणी आकर्षण-शक्ति होती थी। वह अपने विशाल

हृदय उद्यान के विचार पुष्पों पर श्रोताओं के मनों को, एक बार तो,भ्रमर ही बना लेता था।

वह मुनि जब अमृतसर से प्रस्थान करने लगा तो वहां के गण्य मान्य पंडितों ने उसका अभिनन्दन करते समय कहा—आप तो साक्षात् व्यास देव जी हैं। हम ने आज तक आप जैसा विद्वान् नहीं देखा। यह सुनने के अनन्तर उस मुनि ने कहा—सज्जनो! व्यास तो विद्या का सूर्य था। उसके समीप तो मैं एक जुगनू के समान हूँ जो अंधेरी रात में ही अपने पतले पंख चमकाया करता है। भाइयो! ज्ञान तो असीम सागर है। उसके ऊपर की लहरों में नहाने वाला मैं उसकी थाह की क्या कथा कहूँ ? मैं तो केवल यही जानता हूँ कि ज्ञान अनन्त है। उसकी थाह नहीं ली जा सकती। मेरा ज्ञान तो सिन्धु के समीप बिन्दु के समान है और अनन्त रेखा के सामने शून्य के सदृश है।

(३) ज्ञान का स्वरूप क्या समझा जाय ! यह प्रश्न एक शिष्य ने अपने गुरु से किया। गुरु ने उत्तर दिया—भद्र ! ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है। एक व्यावहारिक ज्ञान है और दूसरा पारमार्थिक। व्यावहारिक ज्ञान के तीन भेद हैं। एक वस्तुओं के बाह्य स्वरूप का साधारण ज्ञान। दूसरा वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान जिसमें तत्त्वों के संयोग विभाग आदि का ज्ञान सम्मिलित है। तीसरा, तर्क ज्ञान है। तर्क ज्ञान में वे ही बातें सम्मिलित हैं जिन के अनुमान से निर्णय करके वस्तु का ज्ञान होता है। तर्क का प्रवेश अनुमान में ही माना गया है। वस्तु के जानने की इच्छा का नाम जिज्ञासा है। जिज्ञासा को अनुमान में गिन कर भी इसको वस्तु के स्वरूप को जानने की इच्छा कहना चाहिये। जिज्ञासा का जन्म स्थान संशय नहीं है किन्तु इसकी उत्पत्ति तो वस्तु को जानने की गहरी लगन से हुआ करती है।

पारमार्थिक ज्ञान आध्यात्मिक ज्ञान का नाम है। आत्मा की सत्ता का निश्चय और परमात्मा की सत्ता का विश्वास, शाब्दिक

आध्यात्मिक ज्ञान है। यह ज्ञान भी मनुष्य के कल्याण का ऊंचा कारण कहा गया है। आत्मा परमात्मा के स्वरूप का साक्षात् बोध, अनुभव रूप ज्ञान माना जाता है। यह ज्ञान परम ज्ञान है। इसी का नाम कैवल्य ज्ञान है।

(४) पुष्कर के मेले पर पण्डितों ने एक परिषद् लगाई। उसमें निर्णय योग्य विषय यह उपस्थित किया गया कि धर्म में युक्ति का, तर्क का कितना अधिकार है ? पूरे दो दिन तक वाद विवाद होता रहा। पण्डितों ने, अपने पक्ष की पुष्टि में प्रमाण देने के लिए, अपनी पोथियों के पन्नों को उलट-पलट कर श्रोताओं के कान कड़वे कर दिये परन्तु किसी के हाथ पल्ले कुछ भी न पड़ा। अन्त में एक बंगीय विद्वान बोला—महाशय! तर्क एक उत्तम तुला है। इसके बिना व्यावहारिक ज्ञान का तोल माप ठीक नहीं रहता। संसार को यह अवश्य जाननी चाहिए। इससे जगत् के सभी व्यवहार सिद्ध होते हैं। संशय-शील को समझाने में यह काम आती है। वादी को निरुत्तर बना देने में यह काम की शक्ति है। परन्तु फिर भी इसका क्षेत्र भिन्न है। इस तुला से सब वस्तुऐं नहीं तोली जा सकतीं। लकड़ियों को, कोयलों और पत्थरों को तोलने वाली तुला से कस्तूरी और सोने को तोलने बैठ जाना जैसे बहुत बुरी बात है ऐसे ही विषयों से, वासनाओं से, वैर विरोध से, वाद वितण्डा से, विकार-युक्त बुद्धि से उत्पन्न तर्क द्वारा आत्मा परमात्मा के स्वरूप का पार पा जाने का निश्चय करना केवल दुस्साहस ही समझना चाहिए। धर्म में तो परम प्रमाण शब्द है और अनुभव-ज्ञान है। तर्क तो एक ऐसा वाण है जिस का लक्ष्य साकार पदार्थ है। निराकार वस्तु से यह इधर ही गिर जाता है। यह वह गाड़ी है जिसके पहिये कच्चे और लचकीले हैं। इस पर आरूढ़ होकर आध्यात्मिक कैलाश की ऊंची चोटी पर चढ़ने का प्रयत्न करना केवल परिश्रम ही है। इस पतंग की पहुँच, सूर्य लोक में नहीं है। पक्ष विपक्ष के पक्षों को ही फड़काते रहने वाला तार्किक पक्षी महाकाश के उस पार को नहीं पहुँच पाता। इसकी गति सीमित है। इसका

क्षेत्र सर्वथा परिमित है। अनन्त पद इसकी गम्यता से बाहर है।

(५) गौतम बुद्ध स्वयं तो एक वीत-राग और जीवन्मुक्त पुरुष था। परन्तु उसके शिष्य बड़े वाद विवाद करने वाले और परमत खण्डन-प्रिय हो गये थे। वे सदा हार जीत के लिए कमर कसे चक्कर लगाते फिरा करते। वे वादी, बुद्ध महाराज को सदा घेरे रहते थे। गौतम मुनि को मिलने यदि कोई ब्राह्मण आ जाता तो वे वाद-निपुण भिक्षु उसको द्वार पर ही रोक लेते और उसके वेद पर, शास्त्र पर, कर्म-काण्ड पर और यजन याजन पर आक्षेपों की भरमार कर के उसको दुःखी ही बना कर छोड़ते। वाद करना, उनको अर्हन्त लोग सिखाया भी करते थे। भिक्षु-गण के वाद में यह बड़ा दोष था कि वे पर पक्ष पर तो आक्षेप करते चले जाते थे परन्तु स्वपक्ष की स्थापना नहीं करते थे। इसका कारण यह भी था कि गौतम मुनि के जीवन काल में बौद्ध धर्म, सैद्धान्तिक मत नहीं बना था। वह तो केवल सनातन सत्य का उपदेश दिया करता था। उसके निर्वाण हो जाने के सैकड़ो वर्ष पीछे भिक्षुओं ने अपने वाद स्थिर किये और सिद्धान्त रचे। उन्हीं का नाम आज बौद्ध वाद अथवा बौद्ध मत है। सम्भव है कि ऐसे बौद्ध वादों तथा सिद्धान्तों का शाक्य मुनि ने कभी स्वप्न भी न देखा हो।

एक विद्वान् ब्राह्मण किसी प्रकार शाक्य मुनि के पास पहुँच कर बोला—गौतम! तूने जो अपना निराला पन्थ चलाया है इसमें विशेषता क्या है ? गौतम बोला—मुझे संसार में कोई वस्तु सुख-दायक नहीं दीखती। सारा संसार असार, नीरस और दुःख का घर है। सभी प्राणी मृत्यु के महा मुख में ग्रास बने हुए हैं। इस कारण मैं निर्वाण के मार्ग का उपदेश देता हूँ। ब्राह्मण ने कहा—गौतम ! यदि संसार में कोई भी वस्तु तुझ को सुखदायक नहीं दीखी तो क्या तूने निर्वाण को देख लिया है ? गौतम ने कहा—मेरी बुद्धि मानती है कि निर्वाण में दुःख नहीं है। ब्राह्मण

बोला—गौतम ! बुद्धियां तो देश काल के अनुसार भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किया करती हैं। उनमें समता नहीं पाई जाती। मनुष्य का ज्ञान-क्षेत्र सीमित होने से उसकी बुद्धि ससीम और अपूर्ण हुआ करती है। इस कारण, इसमें क्या प्रमाण है कि गौतम की बुद्धि सबसे उत्तम और पूर्ण है। गौतम ! मेरी बुद्धि तो मुझे यही बताती है कि बिना देखे ही तू निर्वाण की कल्पना कर बैठा है। काल्पनिक विचार मिथ्या भी हो सकते हैं इस में क्या प्रमाण है कि तेरी कल्पना सर्वांश में सत्य है।

ब्राह्मण के प्रश्न को सुन कर गौतम मौन हो गया। तब ब्राह्मण ने फिर कहा—पहले तेरी बुद्धि, तुझ को यह बताती थी कि वन में रहना चाहिये, केवल एक कौपीन कटि पर बान्धनी चाहिए, अन्य वस्त्र धारण करने उचित नहीं हैं। आज तू उन उद्यानों और आरामों में रहता है जिनमें, लाखों रुपये लगाकर, विहार बनाये गये हैं। जिस तेरी बुद्धि ने पहले यह समझा कि स्त्रियों को भिक्षुणियां बनाना उचित नहीं है और फिर उचित जान लिया और जिस तेरी बुद्धि ने संघ के नियम अनेक बार बदल डाले वह तेरी बुद्धि निर्भ्रान्त है, यह कदापि माना नहीं जा सकता। अन्त में गौतम बोला—ब्राह्मण ! तू सत्य कहता है। मनुष्य की बुद्धि सर्व वस्तुओं को नहीं जान सकती। सारे पदार्थ बुद्धि-ग्राह्य नहीं हैं। इस कारण मनुष्य को त्रयकाल निर्भ्रान्त मानना भारी भूल है।

(६) दो यात्री गंगोत्तरी का दृश्य देखते हुए उस स्थान पर जा पहुँचे जहां से गंगा का प्रवाह आरम्भ होता है। उन्होंने देखा कि पर्वतों के शिखरों पर से हिम ढल कर, छोटी-छोटी धाराओं को जन्म दे कर, उनके मेल से, नदी का आकार बना रही है। उस स्थान के अतिशय निर्मल जल को देख कर एक यात्री ने अपने साथी दूसरे यात्री को कहा—मित्र ! यह हिममय जल यहां कितना शुद्ध है, कैसा स्वच्छ है परन्तु जब यह बहता हुआ काशी के पास जायेगा, तब तक इसमें न जाने कितना कूड़ा कर्कट,

सड़ा गला गंद-मंद मिल जायेगा। वहां इसका यह स्वरूप सर्वथा लुप्त-सा ही होकर रहेगा। ऐसे ही शुद्ध बुद्धि के स्रोत से जो विमल विचार सन्त जन प्रकट किया करते हैं, जो शुद्ध सत्य भगवान् के धाम से उतरा करता है और जो अनुभव मुनि जनों को प्राप्त हुआ करते हैं, कालान्तर में उनमें भी, नदी जल की भांति, मत मतांतर की मैल कुचैल मिश्रित हो जाया करती है। बहुधा मतों के माने हुए मन्तव्य, सम्प्रदायों के निश्चय किये हुए सिद्धांत, ज्ञान-गंगा के प्रारम्भिक जल को उसके अपने रूप में रहने नहीं देते। महात्माओं के अनुभवों को उनके अनुयायी लोग समय समय पर मतवाद का रंग देते रहते हैं। सत्य में असत्य का मिश्रण करना यह हठ-धर्मी में बहुत ही हो जाता है। इस कारण जिस जिज्ञासु को शुद्ध सत्य जानने की इच्छा हो उसको चाहिये कि वह बुद्धि के उस ऊंचे शिखर के समीप सम रह कर देखे जहां से ज्ञान गंगा का विचारमय जल आप ही आप उतरता आता है।

******

तप

(१) काशी जी में, एक समय, एक ऐसा मनुष्य आया जो सूख कर कांटा हो गया था। उसकी देह अकड़ी पड़ी थी, उसके पट्ठों में ऐंठन आ गई थी। लोग कहते थे कि यह बड़ा भारी तपस्वी है क्योंकि यह रात दिन, सदा खड़ा ही रहता है। कभी भी टेढ़ा होकर टेक तक नहीं लेता। एक पंडित ने उसको कहा—तापस! तन को तपाना, सुखाना तप नहीं है। यह तो ज्ञान ध्यान उपार्जन करने की उत्तम हाट है। भद्र ! तप तीन प्रकार का कहा है—सत्संग में बैठना, सेवा परोपकार करना, माता-पिता तथा गुरु जनों को सम्मान देना कायिक तप है। ब्रह्मचर्य पालन करना भी काया का तप है। दीन-दुर्बल को दुःख न देना तन का तप कहा है। दूसरा तप वाचिक है। सत्य, कोमल, हितकर और प्यारा वचन बोलना

वाङ् मय तप है। स्वाध्याय करना, पठन पाठन में रत रहना और सदुपदेश देना भी वाणी का तप है। तीसरा तप मानस है। मन में राम के मंगलकारी नाम को रमाना, उसका जप तथा ध्यान करना मनोमय तप है। सब की कल्याण कामना करना, विचार निर्विकार रखना, प्रसन्न रहना, ईर्ष्या द्वेष को भीतर न बैठने देना और आत्म-संयम करना मानस तप है। ज्ञान, चिन्तन में प्रसन्नता लाभ करना भी मानस तप है। ये ही तीन तप सच्चे तप हैं। अन्य तप तो केवल काया को कृश करने के कारण ही कहे गये हैं। देह को सुखाना तो प्राणों को पीलना है, अपने ऊपर अत्याचार करना है। इसको मुनि जन तामस तप मानते हैं।

(२) एक नगर में एक स्त्री तपस्विनी नाम से प्रसिद्ध थी। लोग उसके दर्शनों को दूर-दूर देशों से आया करते थे। एक मुनि भी, उस स्त्री की सुकीर्ति सुनकर, उसका दर्शन करने के लिए उसके घर पर गया। मुनि ने देखा कि वह गृह कर्म मे परायण रहती है, परिवार के सम्बन्धों को अच्छी प्रकार निभाती है और अपने घर के सारे काम काज आप करती है। उस मुनि को यह जान कर आश्चर्य हुआ कि वह प्रति दिन चार घण्टे अनाथ कन्याओं की सेवा में व्यतीत करती है। मुनि ने उसके ऐसे शोभन आचार को अवलोकन करके यह समझा कि सच्चा तप यही है कि मनुष्य स्वावलम्बी हो। वह अपने कर्मों के करने में पर की अपेक्षा न करे। जो कर्तव्य का पालन करता है, इन्द्रियों को संयम में रखता है, सम विषम सब सहन कर लेता है और पुरुषार्थी है वह तपस्वी है। जो जन वैर विरोध के विषैले कृमि, अपने अन्तःकरण के कुसुम को नहीं लगने देता, जो जन ईर्ष्या द्वेष की अग्नि से अपने मन के वन को नहीं जलाता, जो जन चिन्ता और शोक के गहरे सागर में अपने हृदय को नहीं डुबोता रहता और जो जन मान अपमान तथा निन्दा स्तुति में सम बना रहता है वह तपस्वी है। प्रसन्न मुख, प्रिय स्वरूप, सोमाकार, मेल-मिलापी,

कोमल कर्मी और मधुर भाषी मनुष्य तपस्वी ही हुआ करता है। परहित-रत जन तो तपोमूर्ति ही माना जाता है।

******

त्याग

(१) कुरुक्षेत्र में एक ब्राह्मण, त्यागी माना जाता था। उसके सभी कर्म श्रेष्ठ थे। परहित-परता तो उसमें परम कोटि की पाई जाती थी। उसके चित्त चांद में, कपट कलह की कोई भी काली रेखा नहीं प्रकट हुआ करती थी। उसके मन के मानसरोवर में, सदा विमल विचारों की लहरें विलसती रहती थी। उसका कोमल कर्म-कलाप सबके लिये हितकर होता था। एक बार, एक गद्दी-धारी शंकराचार्य ने उसको मिल कर कहा—ब्राह्मण ! तू तो गृहस्थी है, पूजा पाठ करता है, शिखा-सूत्र-धारी है, परिवार को पालता है, परिश्रम करके अपना अन्न आप उपार्जन करता है और लोकहित के कामों में रात-दिन ग्रस्त रहता है। तुझे लोग त्यागी क्यों कहते हैं ? ब्राह्मण विनयपूर्वक बोला—आचार्य जी! त्याग तो तीन प्रकार का कहा जाता है। उनमें एक त्याग लोभ का है। मनुष्य स्वार्थ के लिए पर धन का अपहरण कर, अन्याय अत्याचार से धन संग्रह कर, छल कपट से आजीविका चलाये और धन को अपने प्यारे प्राणों से भी अधिक प्यारा समझे, यह लोभ है। इसका त्याग ही लोभ त्याग है। दूसरा भोग त्याग है। जीवित जन से खान-पान रूप भोग तजे नहीं जा सकते। परन्तु भोग लालसा में जो लीनता होती है उसका त्याग भोग त्याग है। भोगों को मनुष्य, जीवन यात्रार्थ भोगे, मर्यादा में रह कर भोगे और धर्म अनुसार भोगे तो वह त्यागी ही समझा जाता है। खान-पान आदि पदार्थों के उपभोग के लिए, जो जन न जिये किन्तु जीने के लिये उनको भोगे वह पूरा त्यागी है। तीसरा त्याग विषय त्याग है। पांच ज्ञानेन्द्रियों के जो शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये पांच विषय हैं इनके लिये चंचल तथा लालायित न होना विषय त्याग है।

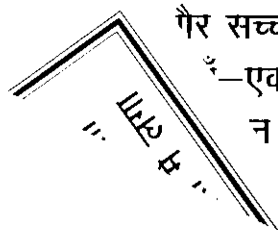
जो जन उक्त विषयों का व्यसनी न बन गया हो और संयमी हो वह त्यागी है। ऊपर के तीनों त्याग जिस साधु, सन्त तथा सज्जन में पाये जायें वही त्यागी है और वही संन्यासी है। इस से अतिरिक्त जो आकार प्रकार के, रंग ढंग के और वेश केश के त्याग संन्यास हैं, वे सब साम्प्रदायिक सजावटें हैं। उनका वेद में विधान नहीं है।

(२) अमृतसर नगर में एक संन्यासी आये वर्ष आया करता था। उसको बाना पहराने की ऐसी बुरी बान थी कि उसके पास जो भी भूखा प्यासा बाल वृद्ध आ जाता, वह उसको तुरन्त मूण्ड डालता। वह तो राह चलतों को भी संन्यास दे देता था। उसके साथ सदा दस बारह छोकरे संन्यासी बने फिरा करते। एक दिन एक सद्गृहस्थी ने उसको कहा—संन्यास लेना तो, चौथी अवस्था में उचित है और वह भी विद्वान् के लिये। परन्तु आप तो अनपढ़, कुपढ़ बाल विकराल सभी को संन्यास दे कर बड़ा अन्धेर कर रहे हैं। यह सुन कर वह संन्यासी बोला—विधि युक्त संन्यास कलि काल में नहीं निभता। यह तो पाप का युग है। इस में ऐसे नियम नहीं पल सकते। गृहस्थी ने कहा—महात्मन् ! पाप के युग को विधि-विरुद्ध कर्म कर के आप अधिक घोरतर क्यों बनाते हैं। आप का कर्तव्य तो यह होना चाहिए कि कलि काल की क्रूर कला और कुचाल को आप अपने सुकर्मों से कम कर के छोड़ें।

महात्मन् ! मुनियों ने सच्चे संन्यासी सात प्रकार के कथन किये हैं। एक तो वे जो अपनी आयु के चौथे भाग में, यश, धन और परिवार का मोह छोड़कर भगवान् का आराधन करने में लग जायें, एकान्त शान्त भू-भाग में रह कर उपासना किया करें और अपने परलोक को उज्ज्वल बनाने में यत्न-शील हों। दूसरी प्रकार के वे जन संन्यासी होते हैं जो चाहे जहां रहें पर अभिमान, मोह, ममता और ईर्ष्या द्वेष त्याग दें। तीसरे संन्यासी वे हैं जो परिग्रह का त्याग कर देते हैं—अपना सर्वस्व परहित

उठा देते हैं। जो सब से समान बरताव किया करते हैं। जिन के समीप ऊंच नीच का भेद भाव सर्वथा नहीं रहता। पांचवे वे संन्यासी हैं जो अपने आपको भगवान् में लीन कर लेते हैं, जो सम-दृष्टि सदा ब्राह्मी स्थिति में रहा करते हैं। छठे संन्यासी वे हैं जो कर्म योग में रत रहते हैं और जो निष्काम कर्म करके सार्वजनिक काम करते हैं। सातवें वे संन्यासी हैं जो ज्ञान से, विचार से, तत्त्व दर्शन से और अनुभव से आत्म तत्त्व को जान जाते हैं। जिन को आत्मिक प्रकाश प्राप्त हो जाता है। ऊपर कहे सभी प्रकार के संन्यासी और त्यागी संसार की शोभा हैं, मनुष्य समाज के सिंगार हैं और सन्मार्ग के सुदीप्त दीपक हैं।

(३) हरिद्वार में एक दिन यह प्रसिद्ध कर दिया गया कि आज, सायं समय, घाट पर एक त्यागी व्याख्यान देगा। उस समय सैकड़ों साधु टोलियां बना कर वहां आ एकत्रित हुए। उन सब का यही विचार था कि आज कोई परमहंस व्याख्यान देगा परंतु जो सज्जन बोलने लगा वह श्वेत वस्त्रधारी विद्वान् था। उसने अपने भाषण में कहा—त्याग और संन्यास का एक ही अर्थ है। त्याग उस कर्म का होता है जिस का करना वेद शास्त्र निषेध करे और जो त्यागने योग्य हो। त्याग के योग्य तो असत्य है, मिथ्या हठ है, दम्भ है, दिखावा है, मतवाद की ममता है और पक्ष की खींचातान है। फिर त्यागने के योग्य क्रोध, कपट, वैर, द्वेष आदि दर्गण हैं। इसी प्रकार सारे पाप त्याज्य हैं और आलस्य, प्रमाद तथा ...न त्यागनीय हैं। जो जन इन सब दोषों को त्याग देता है वही पक्का ...ैर सच्चा संन्यासी है। ऐसे त्यागी साधु में चार गुण अवश्य ही ...—एक तो वह सत्य से स्नेह करे, पक्षपात वश मतवाद के ...न बने। दूसरे जप, ध्यान, संयम, आराधन, चिंतन आदि ...ा हो। तीसरे सब का हितकारी हो। दूसरों की कल्याण



कामना करने वाला हो। चौथे स्वकर्म धर्म में परायण हो। कर्तव्य कर्मों के पालन में तत्पर रहे। ऐसे सुगुणों से अलंकृत सज्जन को ही सन्त जन साधु, संन्यासी तथा त्यागी कहा करते हैं। अब रही बाने की बात। बाना बनाना तो बहुविध का बहाना बनाना ही है। राम उपासक साधु जन तो वेश विशेष को कोरा क्लेश ही कहा करते हैं। उनकी शुभ सम्मति में, अपना आप, अपने ज्ञान, मान और कर्म कलाप सहित, श्री राम की परम शांत शरण में समर्पण कर देना सबसे श्रेष्ठ संन्यास और त्याग है।

******

वैराग्य

(१) जिस काल में बौद्ध मत की, भारतवर्ष में, प्रबलता थी उस समय अयोध्या में एक सूर्यवंशीय राजा राज्य करता था। वह महाराजा बड़ा वीर, धीर और दयालु था। राम की भक्ति के रंग में वह रंगा हुआ था। राजा के धार्मिक प्रभाव से प्रजा में भी सत्कर्मों को करना, श्रुतियों के उपदेश और विधिपूर्वक यजन याजन होते रहते थे। कोसल देश में सर्वत्र रामानुराग के स्रोत बह रहे थे अयोध्या नरेश की ऐसी राम-भक्ति बौद्ध भिक्षुओं को न भायी। उन्होंने मगध देश के राजा को भड़काया कि अयोध्या का राजा तथागत के संघ में सम्मिलित नहीं होता, गौतम बुद्ध को सर्वज्ञ नहीं मानता, भिक्षुओं को भक्ति भाव से भोजन भिक्षा नहीं देता और न ही उनके ठहरने के लिए वहां विहार ही बनवाता है। वह संघ का मन से विरोधी है। मगध देश का राजा अपने नये मत के प्रभाव से मतवाला हो रहा था। उसने उसी समय दो भिक्षु अयोध्या नरेश के पास भेजे। वे दोनों सारे संघ में सबसे अधिक सम्मानित थे और अर्हन्त माने जाते थे। उन भिक्षुओं ने आकर सरयू के किनारे एक उद्यान में आसन लगा कर अपने धर्म का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। एक दिन महाराजा को मिल

कर उन्होंने कहा—राजन्! तथागत की शरण में आ जाओ, संघ में मिल कर रहो और श्रमणों की संगति में आया करो। इससे आप का और सारे कोसल देश का कल्याण हो जायगा। राजन्! तथागत का धर्म ही त्याग वैराग्ययुक्त सच्चा धर्म है। आप भी इसके त्याग वैराग्य को ग्रहण करो। यही निर्वाण का मार्ग है।

अयोध्या नरेश, आदर से, बोला—श्रमण ! मेरा धर्म सनातन है। इसी के अंश लेकर गौतम ने अपना मत चलाया है। मैं एक अखण्ड, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् भगवान् को ही मानता हूँ और उसी का आराधन करता हूँ। मैं तो रामानुरागवश सब बुराइयों से वैरागी हो गया हूँ। मुझ को किसी भी वस्तु का मोह सन्मार्ग से चलायमान नहीं कर सकता। मैं तो अपने तन को भी रामेच्छा का यंत्र मान कर काम करता हूँ। भिक्षु ! सत्य समझिये, जितना रुपया भिक्षुओं के आश्रमों पर, मगध देश की राजधानी में, व्यय होता है उतना मैं अपने लिये नहीं करता। जो सुख, श्रमणजन विशाली के सुन्दर आश्रमों में भोगते हैं वे मैं नहीं भोगता। श्रमण ! मगध देश का राजा भिक्षुओं को चर बना कर देशांतर में भेजता है। उनसे षड्यंत्र रचवाता रहता है। भिक्षु लोग पर राष्ट्रों के गुप्ततर भेद लाकर उसको देते रहते हैं। अब बताइये ऐसे संघ में मैं किस लालसा से मिलूं। श्रमण ! मैं तो आनन्द धाम श्री राम की शरण में सर्वथा शांत और निर्भय हूँ ! मुझे तथागत में ऐसी कोई विशेषता नहीं दीखती जिससे मैं उस पर विश्वास ले आऊं। साधु ! तू तो त्याग वैराग्य की बात कहता है, मुझ को राम की परा प्रीति से, त्रिलोकी के सर्व सुख भी तृण-तुल्य प्रतीत होते हैं।

(२) जिस काल में, बौद्ध मत के लोग प्रबल थे उस समय, पांच पांच सौ श्रमण मिलकर विचरा करते थे। मागधों के राजा के प्रभाव से सब देशों के राजे महाराजे भिक्षुओं को आदर सम्मान, अन्न वस्त्र दिया करते थे। भिक्षुओं का आदर आतिथ्य करने के आदेश, समय-समय पर,

पाटलीपुत्र से निकलते रहते थे। इस कारण बहुत से राजा तो ऐसा करना एक प्रकार का कर ही माना करते थे। छोटे नगरों के लोगों को भिक्षु जन भिक्षा निमित्त धमका भी लेते थे। मगध देश के राजा का बड़ा बल था इस कारण बंग, दक्षिण और काशी आदि देशों के छोटे बड़े सभी राजे संघ शरण में आश्रय लेने लग गये। जो राजा संघ में नहीं मिलता था वह मगध नरेश के कोप से रात दिन भयभीत रहा करता था। श्रमण लोग मगध नरेश की कृपा का पात्र बना देने के वचन दे कर अनेक राजाओं को संघ में मिलाया करते थे। उस काल में हस्तिनापुर का राजा ही ऐसा था जो पाटलीपुत्र की कृपा किरण की आकांक्षा नहीं करता था, जो श्रमण संघ में कुछ भी श्रद्धा नहीं रखता था। मगध देश के राजा की आंखों में भी कुरु देश के क्षत्रिय खटकते थे। उसने एक मुख्य अर्हन्त को, सात सौ श्रमणों सहित, हस्तिनापुर को भेजा और कहा कि कुरु देश के क्षत्रियों को संघ शरण में लाकर ही विश्राम लेना।

उस सात सौ की श्रमण सेना में अनेक राजे थे और बीसियों राजकुमार थे। वह संघ-सेना क्रमशः चलती हुई हस्तिनापुर की ओर आगे बढ़ रही थी। उनके भोजन का प्रबन्ध, मार्ग में ग्राम, नगर वासियों को करना पड़ा था। छोटे-छोटे ग्राम के लोग, भिक्षु संघ आता सुन कर, भिक्षा के भय से, घर बार छोड़कर, उस दिन भाग जाते थे। जिस गांव में श्रमण सेना का पड़ाव पड़ जाता उस गांव के घरों में उस दिन दूध दही, माखन घी, गुड़ खांड सब समाप्त हो जाते। स्त्रियां तो रोटियां ही पकाते पकाते थक जातीं। अपने बच्चों बूढ़ों की सार सम्भार किसी को कुछ भी न रहती।

इस प्रकार ग्रामानुग्राम विचरता हुआ वह संघ दो मास के अनन्तर कुरु देश की राजधानी में जा विराजा। वहां एक बड़े उद्यान में छावनी डाल कर भिक्षु जन ठहरे। विश्राम ले लेने के पश्चात्, श्रमण लोग, नगर के मार्गों में, बाजारों में, गलियों में, कूचों में, चौकों में, स्थान स्थान में,

हाटों के सामने और देवालयों के सम्मुख खड़े होकर श्रमण धर्म का प्रचार करने में तत्पर हो गये। ब्राह्मणों के धर्मों का, वर्णों के कर्मों का, यजन याजन का, उस दिन उन्होंने बहुत ही खण्डन किया। और उधर एक अर्हत्, बहुत से राज घरानों के श्रमणों को साथ लेकर राजा को जा मिला और लगा उसको उपदेश देने—राजन्। मैं तुझ को कल्याण का मार्ग देने आया हूँ। मैं कुरु-वंश को संघ शरण में लेना चाहता हूँ। राजन् ! बुद्ध की शरण, संघ की शरण और अहिंसा धर्म की शरण ग्रहण कर। निर्वाण का यही सीधा, सरल तथा सच्चा मार्ग है। इसी मार्ग में त्याग और वैराग्य है। जो राजा संघ की शरण में आता है पर-चक्र से सर्वथा निर्भय हो जाता है। अर्हत् के वचन सुन कर राजा बोला—श्रमण ! मैं राम-भक्त हूँ। मेरी श्रद्धा भक्ति धर्म में अगाध है। मैंने श्री राम की चरण शरण में अनुराग करके सब कुव्यसनों से वैराग्य प्राप्त कर लिया है। मेरे राज्य में पक्षपात रहित शासन होता है। मेरी प्रजा सुखी है। मेरे देश में चोर नहीं हैं। मेरे देश के बसने वाले नारी-नर सभी सदाचारी, सुशील और सुकर्मी हैं। मैं राज-कोष से उतना धन नहीं लेता हूँ जितना पाटलीपुत्र के बड़े विहार में व्यय होता है। श्रमण! यह सत्य समझ कि मुझ को अपने धर्म में अपार प्रेम है, सुदृढ़ निश्चय है और असीम श्रद्धा है। मैं भगवान् का अनन्य भक्त हूँ। इस कारण मेरे अन्तःकरण में, तेरे संघ के लिये, कोई भी कोना रिक्त नहीं है। भिक्षु! तू कुरुवंश के क्षत्रियों को समझाने का कष्ट न कर। इनका धर्म सनातन है। वे अहिंसा के सारासार को समझते हैं। तू तो जा कर मागधों को समझा कि वे पर-राष्ट्र पर अकारण क्रूर आक्रमण न किया करें और सदाचार को पालें। श्रमण ! मगधादि देशों के नरेशों को जाकर उपदेश दे कि वे अपनी सवारियों के आगे कुमारियों को नचाना छोड़ दें, वेश्याओं को रखना त्याग दें, कुव्यसनों में न फंसे रहें और किसानों से कड़े कर लेकर उनको पीड़ित न करें। श्रमण! तू अपने संघ के भिक्षुओं

को भी समझा कि वे छोकरों को भिक्षु न बनायें, भिक्षा के लिए प्रजा को पीड़ा न दें, जो राजे बौद्ध नहीं बने उनके विरुद्ध न बोला करें और उनके भेद मगध के राजा को न पहुँचाते रहें। श्रमण! कुरु-वंशियों की कुछ भी चिन्ता न कर। वे तो भगवद्भरोसे सर्वथा निर्भय हैं। वे रामानुराग में वैरागी हैं। वे एक भगवान् को मानते हैं और मागधों के दाव पेंच से निश्चिन्त हैं। तुझे चिन्ता तो अपने संघ की करनी चाहिए जिसमें नित्य नई कलह फूट निकलती है। श्रमण! तू भिक्षुओं को कह कि चेलों की ममता से वैराग्य प्राप्त करो, विहारों के बनवाने से वैरागी बनो और दल-बन्दी तथा पक्ष-पात से वैरागी हो जाओ। श्रमण ! कहने की अपेक्षा करना उत्तम है। औरों के सुधार की अपेक्षा पहले अपना सुधार करना आवश्यक है। श्रमण ! गौतम बुद्ध तो सत्य का उपासक था। उसके सभी सदुपदेश सनातन धर्म का समर्थन करते हैं। उसने कोई नवीन बात नहीं बताई और न ही नवीन मत चलाया है। वह उसी धर्म का प्रचार किया करता था जिस आर्ष-धर्म को मैं मानता हूँ। विरोध तो वाद-प्रिय भिक्षुओं ने ही नये-नये वाद रच कर उत्पन्न कर रखा है यदि आप लोग वाद-विवाद करना त्याग दें तो सत्य धर्म में हम सब एक हैं।

(३) हिमालय के एक एकान्त प्रशान्त प्रदेश में, एक स्वच्छ शिला पर बैठा हुआ एक मुनि हरि भजन में मग्न था। चंद्रभागा उसके पास ही बह रही थी। मन्द-मन्द पवन, नदी के उतावले तरंगों को छूकर आती और मुनि के तन को शीतल स्पर्श करके चली जाती थी। कभी-कभी बीच में, कोई लहर लीला में लचकती हुई आकर मुनि-चरणों में लिट जाया करती तो उस समय, मुनि के दण्ड कमंडल आदि उपकरण उसके साथ क्रीड़ा करने लग जाते। ऐसे ऊंचे तरंग भी आते थे जो न जाने कहां-कहां से लाये हुए, नाना रंगों के पुष्पों को धोकर उनसे मुनि चरणों का अर्चन कर जाते थे। पर वह मुनि ऐसा वीत-राग था और ऐसा सम-भाव में था कि उसको चन्द्रभागा

के पवित्र परिवार के पूजन अर्चन का कुछ भी पता नहीं था।

जब मुनि ने अपने निर्मल नेत्र खोल कर देखा तो उसको अपने समीप एक सज्जन बैठा हुआ दीख पड़ा। उस सज्जन ने नमस्कार पूर्वक विनय की—मुने ! कोई ऐसी विधि बताइये जिस से मुझे इस सार-रहित संसार से वैराग्य हो जाय। मुनि ने अपने कृपा-सूचक कोमल कर से छूकर उसको कहा—सौम्य! संसार तो हरि लीला है, राम की रसमयी रास है और कर्म-योगियों की क्रीड़ा-स्थली है। इससे परम वैराग्य यही है कि इसको हरि का माना जाय। विवेकवान् भक्त संसार को भगवान् की विभूतियों का भव्य भवन समझ कर इसमें भले ही भ्रमण करे परन्तु अपने मन में इसके मोह ममत्व की गांठ न बन्धने दे। भगवद्भक्त सारे कर्म करे और बड़ी तत्परता से करे परन्तु सकामता तथा कर्तापन के अहंकार की अन्तःकरण में घुण्डी न पड़ने दे। कर्म-क्षेत्र में विचरता हुआ विवेकी जन राग द्वेष की ग्रन्थियों से सदा बचा रहे। ऐसा मनुष्य सदा वैराग्यवान् समझा गया है। भद्र ! जब किसी भाग्यवान् मनुष्य को राम से अनुराग हो जाय, उसकी लगन लग जाय और उसमें अपने आत्मा का सच्चा प्रेम जग जाय, तब वह पूरा वैरागी हो जाता है। उसको संसार के पदार्थों के उपभोगों का राग यत्किंचित् भी नहीं हुआ करता। अध्यात्म पथ पर चलता हुआ वह सारे सांसारिक सुखों को, स्वर्ग-सुख सहित, एक तुच्छ तृण-तुल्य गिना करता है। उसको कोई भी प्रलोभन फंसा नहीं सकता। इसी वैराग्य से मनुष्य में कुकर्मों से विरक्ति और पापों से उपरति उत्पन्न होती है।

******

आत्मसत्ता

(१) पुरातन काल में आर्य लोग सिन्धु नदी के प्रान्तों में बड़े गौरव से रहा करते थे। इसी युग की वार्ता है कि सिन्धु के समीप, एक गहरी गुहा में एक मुनि रहता था। वह पूरा आत्म-ज्ञानी प्रसिद्ध था। सुदूर देशों

के जिज्ञासु भी, उससे आत्म-ज्ञान ग्रहण करने के लिए, उसके पास आते रहते थे। एक बार, यूनान देश के एक जिज्ञासु ने, उनके पास आकर आत्म-ज्ञान की जिज्ञासा की। मुनि ने उसको कहा—सौम्य ! जिस आत्मा को तू जानना चाहता है वह तो तू आप है। तू दूसरे पदार्थों को जानने वाला है। अपने से भिन्न सब पदार्थों का तू द्रष्टा है। तुझे अपना ज्ञाता बनने की आवश्यकता नहीं है। जानने वाला अपने से भिन्न वस्तु को जाना करता है, इस कारण तू अपने स्वरूप का ज्ञाता कैसे बन जाय। दीवे से अन्य पदार्थ प्रकाशित हो जाते हैं परन्तु दीवा अपने स्वरूप का दीवा कैसे बने। वह तो स्वतः प्रकाश है। ऐसे ही आत्मा भी स्वतः प्रकाश है। आत्मा तेजोमय है, ज्ञाता है, देखने वाला है और साक्षी है। अपने होने की प्रतीति उसमें सदा बनी रहती है आंख से वस्तुएं देखी जाती हैं परन्तु वही आंख अपने आपको नहीं देखती। आत्मा सब को देखने वाला है परन्तु वह अपने स्वरूप में ही द्रष्टा दृश्य नहीं बन सकता। हां, दर्पण में, आंख अपने प्रति-बिम्ब को देख लेती है, इसी प्रकार मनुष्य को समाधि में स्व-सत्ता का ज्ञान हो जाता है और साक्षी प्रति-साक्षी रूप में अपना आप जाना जाता है।

(२) कश्मीर देश में एक ऐसा पण्डित रहता था। जो आत्मज्ञानी समझा जाता था। अनेक सज्जन उससे आत्म-ज्ञान के साधन सीखा करते थे। एक दिन एक जिज्ञासु ने उसको कहा—कृपया आत्मा की सिद्धि में कोई प्रमाण बताइए। पण्डित बोला—जिसके आश्रय सारे प्रमाण हैं, जो सब प्रमेयों—जानने योग्य वस्तुओं-का प्रमाता-ज्ञाता-है और तर्क का कर्ता है, उसको प्रमाणों से कौन कैसे जाने। वह तो जानता है कि मैं हूँ। मैं देख रहा हूँ, सुन रहा हूं तथा नाना चेष्टाएं कर रहा हूँ। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि मैं ज्ञाता हूँ। अपने होने का ज्ञान "मैं हूँ" इस प्रकार सभी को प्राप्त है। यह 'वह' का ज्ञाता स्वयं ज्ञान स्वरूप है, चैतन्य है और प्रकाशमय है।

पांचों तत्वों में, ज्ञान गुण किसी भी तत्व का नहीं है। पांचों तत्व

चेतनता-रहित और ज्ञान-शून्य है। जब पृथ्वी आदि पांचो तत्व अचेतन है तो उन जड़ों के संघात रूप शरीर में जो चेतनता होती है वह उन भूतों की कैसे मानी जाय। पांचों से पृथक् चेतना आत्मा है। देखने के लिए आंख है, देखने वाला वही है सुनने के लिए कान है, सुनने वाला वही है ऐसे ही रसयिता, घ्राता आदि वह आत्मा ही है। पांचों ज्ञानेन्द्रियां तो ज्ञान प्राप्त करने के उसके साधन तथा द्वार हैं। जैसे खिड़की खोल कर बाहर को देखने वाला खिड़की से भिन्न होता है ऐसे ही आंख आदि खिड़कियों से बाहर के पदार्थों के जानने वाला, नेत्र आदि इन्द्रियों से पृथक्-ज्ञान-स्वरूप है।

(३) सूर्योदय का शुभ समय था। सूर्य की सुकोमल, सुवर्णमयी किरणों से कैलाश कलश चमचमा रहा था। उस समय का पर्वत-प्रतिबिम्ब, मानसरोवर के अमल जल में, बहुत ही सुहावना लगता था। ऐसे सुन्दर अवसर में एक परमहंस, मानसरोवर के किनारे प्रशान्त भाव में निश्चल बैठा था। धीमी धीमी पवन पानी में प्रवेश करके उसको बार-बार कम्पा कर, सरोवर की समता को भंग करती हुई क्रीड़ा कर रही थी। पवन पानी के कलोल से उठे हुए तरंग दौड़ते हुए किनारे को, मानो इस कारण आ रहे थे कि पवन सरोवर से बाहर हो जाय; कहीं यह गहरी डुबकी लगा बैठी तो सरोवर के सारे शरीर की समता भंग हो जायगी। ऊँचे-ऊँचे तरंग जब किनारे पर आकर कूदते थे तो उनमें से, नहाकर निकलती हुई पवित्र पवन, अपने तन पर उठाए हुए, सरोवर के शुद्ध और सूक्ष्म जल से परमहंस के सिर पर अभिषेक करती हुई शोभती थी। मुनि के विशाल भाल पर जो जल बिन्दु लहलहाते दीखते थे उनमें किरणों के अपने भरे हुए रंग बहुत ही सुन्दर प्रतीत होते थे। परन्तु वह मुनि तो उस सारी रास से ऊपर, एक ऊँचे भाव में विराजमान था।

समाधि से उतर कर जब परमहंस ने अपने नयन पसार कर देखा तो उसको अपने समीप बैठा हुआ एक बौद्ध भिक्षु दीख पड़ा। कुशल

क्षेम पूछने के पश्चात् बौद्ध सन्त बोला—परमहंस जी ! आत्मा की अमरता का वर्णन कीजिए। परमहंस ने कहा—साधु जी! आत्मा वस्तु है, वस्तु का नाश कदापि नहीं होता। जो पदार्थ बनता है वह कई कारणों से बनता है और अन्त में बिगड़कर अपने कारणों में लय हो जाता है। आत्मा कारण कार्य भाव रहित, नित्य वस्तु है। इस कारण इसमें विकार भी नहीं होता। आत्मा विकार रहित नित्य वस्तु है, इस कारण वह अमर है। जन्म मरण, ये अवस्थाएं हैं। ये अवस्थाएं ऐसे ही बदलती रहती हैं जैसे एक ही जन्म में बालावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था, ये तीन अवस्थाएँ बदला करती हैं। जैसे जो बालक था वही तरुण बना और वही वृद्ध हो गया, ऐसे ही जन्म मरण की अवस्थाओं में जो जीव मर जाता है वह फिर जन्म लेता है। अवस्था के मिट जाने पर आत्मा नहीं मिटता। वह अमर ही बना रहता है। जो मन जागता हुआ जगत् के व्यवहार करता है, उस पर जब निद्रावस्था आ जाती है तब उस अवस्था में भी वही गाढ़ निद्रा में निमग्न होता है और उस पर जब स्वप्न अवस्था आ जाती है तो उसका भी वही साक्षी हुआ करता है। जैसे ये अवस्थाएँ तीन हैं, एक अवस्था में दूसरी नहीं रहती परन्तु इन तीनों का साक्षी एक ही बना रहता है, ऐसे ही जन्म मरणादि अवस्थाएं बदलती रहती हैं और इनका द्रष्टा आत्मा नहीं बदलता। आत्मा का अपना स्वरूप अमृत और अविनाशी है। इसके स्वरूप में मृत्यु नहीं है। आत्मा जहां होता है वहीं इसका अमृत जीवन बना रहता है।

अंधेरा अथवा रात्रि सूर्य का नाश नहीं है किंतु सूर्य का उस स्थान, भू-भाग पर, न होना है। सूर्य जहां भी होता है वहीं दिन व प्रकाश होता है। किसी स्थान में अंधेरा वा रात्रि सूर्य की अनुपस्थिति है इसी प्रकार आत्मा जिस देह-देश में विद्यमान होता है वहां तो जीवन का प्रकाश होता है और जहां आत्मा नहीं रहता उसी तन में मृत्यु रूप रात्रि होती है। यह तो सदा जीवित रहने वाला सनातन सूर्य है। इसकी चेतन ज्योति त्रय

काल ज्वलन्त बनी रहती है। यह बात सच्ची है कि सूर्य के स्थान पर कभी भी रात नहीं हुई। सूर्य ने कभी भी अन्धकार तथा रात्रि नहीं देखी। वह तो प्रकाश रूप है। इसी प्रकार यह बात सत्य है कि कभी भी किसी जन ने अपनी मृत्यु नहीं देखी। आत्मा जहाँ भी होता है वहीं अमर जीवन की ज्वलन्त ज्योति चमकती रहती है। किसी बालक की पाठशाला में अनुपस्थिति उसकी मृत्यु नहीं मानी जाती, इसी प्रकार एक देह में आत्मा की अनुपस्थिति का होना उसकी मृत्यु नहीं है। जैसे एक मनुष्य अपने मकान की एक कोठरी से दूसरी में जाता है ऐसे ही आत्मा एक देह से दूसरी देह में चला जाता है। इसका जन्म मरण तो कोठरी और वस्त्र बदलने के सदृश ही है। विद्युत-धारा की भांति जिस देह का प्राण मार्ग बन्द हो जाय वहां से यह चला जाता है और जहां मार्ग खुला हो वहां यह प्रवेश कर लेता है। यह बिजली जिस भी देह में व्याप्त हो जाती है उसी की इन्द्रियों की सारी तारें प्रकाश रूपा हो जाती हैं।

(४) एक उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ एक उपासक जिज्ञासुओं को उनके प्रश्नों का उत्तर दे रहा था। उसके सामने हरित मृदु घास का सुन्दर बिछान बिछा हुआ था। उसके सिर पर अशोक की सुन्दर शाखाएँ, चम्पा और सेवती की पुष्पित शाखाओं के साथ मिल कर झूम रही थीं। उन झुक कर झूमती हुई शाखाओं के पुष्पों पत्रों का कुछ ऐसा अद्‌भुत संयोग हो गया था कि उपासक के सिर पर हीरों, नीलमों और मोतियों से जड़ा हुआ, उनका छत्र शोभा पा रहा था। ऐसे अवसर में एक अनात्मवादी ने कहा—उपासक जी ! मेरा तो निश्चय है कि आत्मा कोई वस्तु नहीं है। यह केवल पांच भूतों का विकार है। इसका आना जाना तथा अमरपन सर्वथा असिद्ध है।

उपासक बोला—सौम्य ! निश्चय तो जानी, देखी और परीक्षित बात का ठीक समझा जाता है। सो क्या कभी तूने अपना न होना, अपना अभाव

जाना व देखा है ? अपने आपको नष्ट करके अथवा नास्ति में बदल कर कभी तूने कुछ सोचा तथा विचारा है ? यदि ऐसा तूने कभी भी नहीं किया तो फिर तू कैसे कहता है कि आत्मा कोई वस्तु नहीं है और यह भूतों का विकार मात्र है ? सौम्य ! जब से सृष्टि हुई है, तब से एक भी ऐसा मनुष्य नहीं हुआ जिसने अपने नाश को, अपने नास्तित्व को देखा हो। जो जन भी विचारता है, चिन्तन करता है और परीक्षण करने में लगा रहता है वह, यह सब कुछ अपने होने में ही करता है। अभाव में किसी ने कभी भी कुछ नहीं किया। इस कारण यह सत्य है कि अपने अस्तित्व का सब को अनुभव है और अपने नास्तित्व का अनुभव किसी को भी कहीं, कभी नहीं हुआ। अनात्म-वाद केवल तर्क क्रीड़ा है, निरा वाणी- विनोद है और व्यर्थ वादवितंडा है। प्यारे ! अनात्म-वाद भद्र भी नहीं है। अन्त में अनात्मदर्शन-वाद भी तो वाद मात्र ही हैं कोई अनुभव-जन्य ज्ञान तो यह है ही नहीं। तो फिर केवल वाद-विलास-वश अपने अनुभूत होने को नास्ति मान लेना न तो भद्र ही है, न ही सुन्दर। जो जानने वाला, सृष्टि के सर्व सुन्दर सार को आस्वादन करता है, जो रचना के मोहक मुख का विमल नयन है, जो पांचों भूतों के भवन का ज्वलन्त दीपक है और जो जड़ जगत् का ज्ञानमय आत्मा है उसको कोरी कल्पना की क्रीड़ा में, 'नहीं है' कह देना यत्किंचित भी भला नहीं है। जैसे जान बूझ कर कोई अपने सिर को आप काट डालने की चेष्टा करे ऐसे ही अभद्र चेष्टा अपने आप के नास्ति-वाद की है। यदि यह कहो कि आत्मा इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होता इसलिए नहीं है तो सब वस्तुएँ इन्द्रियों से ग्रहण कहां होती हैं। आकाश तरंग को सब कहां जानते हैं। समय की अपेक्षा से वस्तु स्वरूप को सभी तो नहीं समझते हैं और न ही परमाणु के कणों को और उनके चक्कर के वेग को सब ने जान लिया है। जैसे सब विद्याओं के विशेषज्ञ हुआ करते हैं ऐसे ही आत्मा को प्रकृति से पृथक् और भूतों से

भिन्न अनुभव करने वाले सगुणि जन सर्व काल में, सर्व देशों में मिल जाते हैं। इसलिये आत्मा नित्य वस्तु है, चेतन स्वरूप है और मुनि जन द्वारा साक्षात्कृत तत्त्व है।

******

बंध और मोक्ष

(१) चम्बा एक पहाड़ी प्रान्त है। उसमें मनमहेश नामक एक झील है जिस से रावी नदी का अवतरण होता है। उस झील पर आये वर्ष एक मेला लगा करता है। मनमहेश के मेले पर, एक बार एक जीवन्मुक्त मुनि गया। उसके साथ दो सत्संगी भी थे। एक सत्संगी ने नमस्कार पूर्वक पूछा–गुरुदेव ! जीव जन्म जन्मांतर में किस कारण फंसा फिरता है ? इस सूक्ष्म सत्ता को किस ने बांध रक्खा है ? मुनि ने कहा–सौम्य ! अपने किये शुभाशुभ कर्मों के कारण, कर्म संस्कारों की परम्परा के वश और वासना में बन्धा हुआ प्राणी जन्म जन्मांतरों में चक्कर लगाता है। जैसे चींटी के पीछे चींटी चली जाती है, ऊंठों की पंक्ति रस्सी से बन्धी हुई चलती है, मधु-राणी के पीछे मधु-मक्खियां उड़ी जाती हैं और निचले भू-भाग को पानी बहता जाता है ऐसे ही वासनाओं की परम्परा में बन्धा हुआ जीव जन्मों में घूमा करता है। इसको जिस ओर संस्कारों की डोर खींचती है यह उसी ओर खिंच जाता है। बन्ध का मूल तो अविद्या है। अपने स्वरूप की अप्रीति को और सत्य की न समझ को अविद्या कहते हैं। उसी से दुष्कर्मों को करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। प्रवृत्ति कर्म करने के झुकाव को कहा करते हैं। प्रवृत्ति से कर्म किये जाते हैं। किये गये कर्मों से, फिर वैसे ही कर्म करने की जो सूक्ष्म कामना स्फुरित हो जाया करती है उसका नाम वासना है। इस प्रकार इस सारे कर्म जाल के ताने बाने का वास्तविक सूत अविद्या है। यही ऐसा खेत है जहां नाना कर्मों के बेल बूटे उत्पन्न होते, पलते, बढ़ते और फूलते फलते रहते

हैं। बन्ध के वृक्ष का मूल अविद्या ही है। सारे दुःख जंजाल की जननी अविद्या है।

दूसरे सत्संगी ने प्रार्थना की महाराज ! अविद्या के नाश का साधन बताइए। मुनि बोला—प्यारे ! जैसे प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है ऐसे ही आत्म-ज्ञान से अविद्या नहीं रहती। आत्मा ज्ञान-स्वरूप है, अविनाशी तथा नित्य है। इसकी सत्ता में काल का प्रवेश नहीं होता। यह अपने स्वरूप में पवित्र और परम अमृत है। ऐसा समझ कर, मनन सहित, निश्चय कर लेना आत्म-ज्ञान कहा गया है। अविद्या के नाश का प्रकाश, यही अपने स्वरूप का सच्चा ज्ञान है। इस ज्ञान से कर्म-बन्ध का बांध तोड़ कर आत्मा निर्बाध आनन्द प्राप्त करता है। कर्म के बन्धनों को नष्ट करने के उपाय भगवान् की अनन्य भक्ति और सत्कर्म भी कहे गए हैं।

(२) चित्रकूट पर बैठे हुए कई सन्त बन्ध मोक्ष की चर्चा कर रहे थे। उनमें से एक यति ने कहा—आत्मा का कारण शरीर, कर्म संस्कारों का कारण अथवा मूलाधार, मिथ्या ज्ञान है। आत्मा सत्य है, अमर अविनाशी है, स्वभाव में—स्वरूप में—शुद्ध है और ज्ञान स्वरूप है यह समझना तथा जानना सम्यक् ज्ञान है। इस से विपरीत समझना तथा जानना मिथ्या ज्ञान है। यही सब दुष्कर्मों का बीज है। यही कर्म बन्धन की आधार शिला है। मनुष्य का अज्ञान जितना गाढ़तर हो उतने ही कठोरतर उसके कर्म हुआ करते हैं। कठोरतर कर्म ही उसके पतन का कारण बन जाते हैं। जैसे बोझल वस्तु नीचे को गिरा करती है ऐसे ही पाप कर्मों से लदा हुआ प्राणी, पांव पांव पर, पतित होता चला जाता है।

यथार्थ ज्ञान से मिथ्या ज्ञान को नष्ट कर दिया जाय तो दुष्कर्म करने की प्रवृत्ति आप ही नाश को प्राप्त हो जाती है। प्रवृत्ति के सर्वनाश से क्रोध, वैर आदि सारे दोष नष्ट हो जाते हैं। दोषों के नाश से कर्म भस्म हो जाते हैं। कर्मों के दग्ध होने पर जन्म नहीं होता, आत्मा

निर्बन्ध बन कर अपने विमल स्वरूप से चमक उठता है। तब वह परम पवित्र आत्मा परमेश्वर के पद की परम ज्योति लाभ करके स्वसत्ता में लीन रहता है। इस प्रकार उसके जन्ममरण के सारे मार्ग सर्वथा नष्ट हो जाते हैं और उसकी मुक्ति हो जाती है।

एक और सन्त बोला—मुक्ति तो आत्मा के स्वरूप का शुद्ध हो जाना है। आत्मा के स्वरूप में पाप नहीं है; दोष नहीं है, दुष्कर्म नहीं है और दुरवासना भी नहीं है। यह रोग तो इसको प्रकृति के संयोग से लगा हुआ है। प्रकृति के संयोग से उसके स्वभावों को, परिवर्तनों को और उत्पत्ति नाश आदि को आत्मा ने अपने ऊपर आरोपित कर—लगा—लिया है। इसी कारण, मिथ्या-ज्ञान-वश यह समझता है कि मैं देह हूँ, मैं इन्द्रियां हूँ, मैं गोरा हूँ, मैं काला हूँ, मैं जन्मता और मरता हूँ। वास्तव में सारे परिणाम और परिवर्तन प्रकृति में होते रहते हैं परन्तु संयोग वश उनको आत्मा अपने में मान लेता है। बन्ध की गाढ़तम ग्रन्थि यही है। यह ग्रन्थि जड़ चेतन के विवेक—पृथक् जानने—से नष्ट होती है। इस अज्ञान ग्रन्थि के नाश हो जाने से आत्मा धुले हुए वस्त्र की भांति अपने स्वरूप में शुद्ध हो जाता है। प्रकृति के गुणों से मुक्त हो जाना, कर्म संस्कारों को नष्ट कर देना और अपने शुद्ध स्वरूप को प्रकट कर लेना मोक्ष है। मोक्ष में दुःख मात्र का अभाव होता है और आत्मा की अपने स्वरूप में तथा ब्रह्म में स्थिति हो जाती है।

(३) कुरु देश के वन में एक किसान बसता था। उसके लम्बे-चौड़े खेत, घने वन को काट कर बनाये गये थे। खेती बाड़ी का काम और गो-पालन वह प्रेम से किया करता था। उसकी बुद्धि ऐसी शुद्ध थी कि उसके घर पर ऋषियों महर्षियों का आना जाना बना ही रहता था। एकदा एक पूर्ण ज्ञानी ब्राह्मण उसके घर में आ ठहरा। किसान ने विधि सहित उसका आदर सम्मान किया। सायंकाल की उपासना के पश्चात् किसान

ने पूछा—ब्राह्मण ! मोक्ष के उपाय क्या हैं ? ब्राह्मण ने उत्तर दिया—भद्र! मोक्ष पाने की अभिलाषा, उत्कण्ठा तथा गहरी लगन ये ही बड़े उपाय हैं। जैसे भूखा मनुष्य भोजन को चाहता है, अति प्यासा पानी को ढूँढता है और रोगी औषधि को मांगता है, इस प्रकार मनुष्य के मन में मुक्ति की चाह होनी चाहिए। जैसे बिछड़ा हुआ बच्चा अपनी माता को देख कर अपने नयन पसारे, हाथ उठाए उसकी गोद में जाना चाहता है और जैसे भूखा बछड़ा सिर उठाए अपनी जननी को देखता है, ऐसी उत्कण्ठा मनुष्य में मोक्ष के लिये होनी उचित है। जैसे विरह में, विरहिन के मन में मधुर मेल की लगन लगी रहती है ऐसी गहरी लगन मोक्ष प्राप्ति की होनी उचित है। तीसरा उपाय, बन्ध से घृणा है। जैसे रोगी को रोग से घृणा हुआ करती है और स्वच्छ मनुष्य मैले गंदे कीचड़ से घृणा किया करता है, ऐसी घृणा, मोक्ष चाहने वाले को बंध से हो। चौथा उपाय बन्धन विनाश का प्रयत्न है। पानी में डूबता हुआ मनुष्य जैसे अपने सारे बल से, जल से बाहर आना चाहता है, जैसे कोई बड़ी उतावली से, जलते मकान से बाहर निकलना चाहता है और जैसे बन्दी मनुष्य कारावास से स्वतन्त्र होना चाहता है ऐसे ही अपने पूरे प्रयत्न से मनुष्य मोक्ष प्राप्त करने में यत्नशील बना रहे। पांचवाँ उपाय हरि-भक्ति है। छठा उपाय सत्संग है। इन उपायों से उपासक जन अमर पद के मोक्ष द्वार को अपने हाथों से उद्घाटन कर लिया करते हैं। श्री राम नाम की सुदृढ़ सुन्दर सोपान से, सुखमय मुक्ति मन्दिर में प्रवेश करना परम सुगम है।

******

वीरता

(१) सत्युग में, एक बार असुर बहुत बढ़ गये। वे देवों को मारते काटते जाते थे। उनके बाल वृद्धों तक का वध कर देते थे। उनके ऐसे क्रूर कर्मों से सभी सुर कांपा करते थे। असुर नास्तिक, असभ्य और दुष्कर्मी लोग

थे। देवों ने एक बार उनके सर्व संहार की सारी सुसज्जा कर के उन [illegible] भाग निकले। खेत देवों के हाथ में रहा। देवों के विजय नाद से सत्‌युग सर्वांग-पूर्ण हो गया। उस समय ज्ञानियों ने कहा सुयुग व्यवस्था तो वीर जन बांधा करते हैं। जिस काल में लोग कर्म योगी हों, निर्भय हों, वीर हों और दैवी गुण-युक्त हों वह काल सत्‌युग बन जाता है। काल तो गिनती है यथा एक पल दो पल आदि। यह मनुष्यों के कर्मों का कारण नहीं है। कर्मों का कारण तो कर्ता की इच्छा है। काल के अच्छे बुरेपन का कारण मनुष्यों के कर्म हैं। जब मनुष्यों में कायरता अकर्मण्यता आ जाय तो कलि-काल का कोप हो जाता है और जब उनमें दान, उदारता, वीरता आदि दैवी सम्पत् आ जाय तो सत्‌युग चमक उठता है। सार मर्म यही है कि मानव कर्म ही काल का कारण होते हैं।

(२) एक मनुष्य रोता हुआ, काशी से निकल कर कहीं को जा रहा था। उसको मार्ग में एक मनुष्य मिला। उसने पूछा—आप रो क्यों रहे हैं ? वह बोला—मैं काशी का सर्व प्रधान पण्डित हूँ। मैं इस लिये रो रहा हूँ कि आज विश्व नाथ के महा मन्दिर को, म्लेच्छों ने मर्दन कर डाला है। उन्होंने अन्य अनेक बड़े सुन्दर मन्दिर, मूर्तियों समेत, मिट्टी में मिला दिये हैं और हिन्दुओं के सर्व हनन की घोर घोषणा कर रखी है। यह सब कलि-काल का भयंकर प्रकोप है। अब धर्म कर्म कुछ भी नहीं रहेगा। सभी लोग भ्रष्टाचारी हो जाएंगे। यह वार्ता सुन कर उस पथिक ने कहा—मैं सीधा नेपाल देश से आ रहा हूँ। वहां तो इस समय सोलह आने सम्पूर्ण सतयुग है। इसका प्रधान कारण यह है कि नेपाल के ब्राह्मणों ने, बनियों के साथ मिल कर क्षात्र धर्म पर छापा नहीं मारा और अहिंसा के नाम पर, वीर वंशों की शूर वीरता को, बलिदान का बकरा नहीं बनाया। मैं तो यही समझता हूँ कि इस देश के हिन्दू अपनी कायरता के कलंक को

कलि-काल के माथे यों ही लगा रहे हैं। वे वीर धीर बन कर अपना कर्तव्य पालन करें तो अपनी अकर्मण्यता की कृपण काया से कलि-काल को तत्काल निकाल सकते हैं। पण्डित जी ! यह सत्य है कि कर्मयोगियों में और वीर-वंशों में कलि-काल का वास कदापि नहीं हो सकता। कलि के विषैले कीड़े तो कर्म-हीन, कायर जनों की काया में ही पालन पाया करते हैं।

(३) जरासन्ध ने मथुरा नगरी पर अठारह प्रबल आक्रमण किये। वह महा काल, यवन आदि के साथ, यादवों पर विकराल काल बन कर ही आक्रमण किया करता था। उन दिनों में श्री कृष्ण के सखा, सुहृद और शिष्य सभी उनकी सहायता कर रहे थे परन्तु जो वीरता वृन्दावन-वासी दिखाते थे, वह तो आश्चर्य-कारिणी थी। प्रत्येक आक्रमण में शत्रु मथुरा का गढ़-कोट, दुर्ग-द्वार घेर लिया करता था और यादवों को उसके भीतर बन्द करके मारना चाहता था। परन्तु गोप जन अपने दल बना कर, जरासन्ध की सेना पर, ऐसे छुपे छापे मारते रहते थे कि मागधों के तो छक्के छूट जाते थे। एक गोप, नित्य प्रति, रात को शत्रु की सेना पर वाण वर्षा किया करता था। उसके अचूक वाण शत्रुओं के सिरों पर सुदर्शन चक्र बन कर गिरा करते थे। ऐसे, उसने शत्रु सेना के गिने चुने अनेक सैनिक हनन कर डाले। एक दिन वह घायल हो कर श्री कृष्ण के पास आया। महाराज ने अपने साथियों को कहा—यह बड़ा वीर पुरुष है। मथुरा के बचाने में इसका भी हाथ है। इस ने निर्भय भाव से पर-सेना के मुख्य मनुष्यों का संहार किया है परन्तु इसका बड़प्पन यह है कि यह नाम नहीं चाहता। यह नाम पर अपने काम को नहीं बेचता। यदि यह घायल न हो जाता तो इसको कोई जन जानता तक भी न। अब भी हम इसके गुण वर्णन करते हैं तो यह आँख कान बंद किये मुख से राम नाम स्मरण में मग्न पड़ा है। इसमें सकामता का नाम भी नहीं है।

(४) तक्षशिला नाम नगर को जब सिकन्दर ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया तो उसने एक संन्यासी को भी सताना चाहा। वह संन्यासी बड़ा वीत-राग और माननीय व्यक्ति था। सब लोग सिकन्दर के अधीन हो गये, परन्तु वह अपनी कुटी से न हिला। सिकन्दर ने, अपने नौकर भेज कर उसको अधीन हो जाने पर प्रलोभन दिखाया और न अधीन होने पर मृत्यु का भारा भय बताया। परन्तु उस निर्भय मुनि ने सिकन्दर के कथन पर कान तक न लगाया। एक दिन सिकन्दर आप उसके पास गया। मुनि की मोहिनी, मनोहारी और माधुरी मूर्ति के दर्शन से, उसके आकर्षण-कारी कथन से और अद्‌भुत आत्म-बल से तुरन्त प्रभावित होकर सिकन्दर ने कहा—आप मुझ से जो चाहें सो मांगिए। मैं आपको मुंह-मांगे पदार्थ देने को तैयार हूँ। मुनि ने मन्द मुस्कान सहित कहा—सिकन्दर! मेरी मातृ-भूमि मुझ को पुष्कल फल, जल तथा अन्न प्रदान करती रहती है। फिर ऐसी कौन आवश्यक वस्तु है जो मैं तुझ से मांग कर प्राप्त करूँ? राजन ! जो तू स्वयं लोभ-लालसा-वश मार धाड़ करता फिरता है, बिना अपराध जन हनन कर रहा है और बिना वैर वाले देशों पर दौड़ लगाता, त्रास फैलाता है उस सिकन्दर के पास कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो मैं मांगूँ। जिस तूने धन के लोभ से और विजय की कामना के वश भारत के इस भाग के अनेक नगर और सैकड़ों ग्राम भस्म कर दिये हैं उस से मुझे कुछ भी नहीं मांगना है। सिकन्दर ! मेरा राज्य तेरे राज्य से बड़ा है। तू आंख, कान और मन आदि पर राज्य नहीं करता है, पर मेरा इन पर पूरा शासन है। तू जिन पांचों इन्द्रियों का दास बन रहा है वे सभी मेरे वश में मेरी दासियां हैं। मैं तेरे से अधिक बली वीर हूँ। तू तो तीखे बाणों से अनपराधी नारी नरों को मारता है और मैं विवेक विचार के शस्त्रों से पापों का हनन करता रहता हूँ। जिन के बन्धुओं का तू वध करता है वे रोते-पीटते रहते है और सच्चे उपदेश से जिन के

कुसंस्कारों और दोषों का मैं हनन करता हूँ वे सभी, अपने सगे सम्बन्धियों सहित, बड़ी प्रसन्नता मनाया करते हैं। ऐसी अवस्था में मुझे न तो कुछ तुझ से लेना है और न ही तेरा भय है। मैं तो उस राम के राज्य में निर्भय विचरता हूँ जो सब से महान् है और परम पावन पूर्ण पुरुष है। वह सर्वशक्तिमय परमेश्वर है।

मुनि के सच्चे और वीर-भाव-पूर्ण वचन सुन कर सिकन्दर उसका प्रशंसक बन गया। आगे को अकारण मनुष्य हत्याएं करना उसने छोड़ दिया।

(५) सिकन्दर जब पंजाब से, एक प्रकार परास्त होकर, पीछे यूनान को लौटा तब वह एक संन्यासी को पकड़ कर अपने साथ ले गया। वह संन्यासी एक बहुत ही अच्छा वैद्य था। वह संन्यासी विवशता से परवश तो हो गया परन्तु परदेशी की पराधीनता उसके मन को रात दिन कचोटती रहती थी। जन-घातक और स्वदेश-विरोधी की सेवा उसके हृदय को सदा दुःखी रखती थी। वह अपनी जाति के वैरी के पास रहना अपने देश से द्रोह करना ही मानता था। एक दिन वह अपने द्रोह के दुष्कर्म से इतना उत्तप्त हुआ कि उसका प्रायश्चित्त कर देने पर समुद्यत हो गया। अपने आपको अकेले देख उसने धानों के छिलके इकट्ठे किये। फिर उनको आग लगा कर, बड़े धीर-वीर भाव से, उन पर वह आप बैठ गया। जिस समय मन्द-मन्द आग से उसका तन जल रहा था, उस समय वह वीर, मुख से यह कह रहा था—मेरे राम! वीर वंश में जन्म लेकर मैंने यह घोर पाप किया जो मैं जाति-घातक का सेवक बना। आज मैं तुझे साक्षी समझ कर उस सारे पाप अपराध का प्रायश्चित करता हूँ और उससे पार पाने के लिये अपने तन को बलि बना कर अग्नि के अर्पण करता हूँ। वह सुवीर राम नाम की धुनि में लीन, सीधा स्वर्ग धाम को सिधार गया।

(६) एक बार कई सन्त मिल कर विचारने लगे कि वीर किसको कहा जाय। अनेक मतामत मथन करने पर उन्होंने सब सम्मति से यह स्थिर किया कि वीर सात प्रकार के होते हैं—एक तो वे जन वीर होते हैं जो दीन दुःखी मनुष्य की रक्षा करते हैं। दूसरी प्रकार के वीर वे जन हैं जो जाति तथा धर्म के निमित्त अपना आप तक, प्रसन्नता-पूर्वक, अर्पण कर देते हैं। तीसरी पंक्ति के वे वीर हैं जो अपने नियम, व्रत तथा कर्म में सदा सच्चे और सुदृढ़ रहते हैं। चौथी श्रेणी के वीर वे हैं जो पापी, अधम जन से नहीं डरते। पाँचवीं प्रकार के वीर वे जन हैं जो परोपकार में और सेवा में अपना तन मन धन लगा देते हैं। छठी प्रकार के वे जन वीर हैं जो काम को, क्रोध को, मान को, अहंकार को और ईर्ष्या द्वेष को जीत कर संयम और समता का जीवन व्यतीत करते हैं। सातवीं श्रेणी के वीर वे जन हैं जो भगवत्भक्त हरि लीला में काम किया करते हैं। उनको सभी परिवर्तनों में हरि का हाथ दीखा करता है। वे सृष्टि के सारे नाटक का उसी को सूत्रधार समझते हैं। उनकी भक्ति-भरी भावना में भगवान् के विधान को निभाने का निमित्त बन जाना सबसे उत्तम वीर कर्म है। वे भावुक जन कर्ता तो श्री भगवान् को ही कहा करते हैं और अपने आपको उसकी इच्छा का साधन तथा यन्त्र समझते रहते हैं। ऐसे लोग वीत-राग वीर, वर्णन किये गये हैं। इसी प्रकार के वीर, श्री राम चन्द्र जी के हनुमानादि महानुभाव थे और श्री कृष्ण के वृन्दावन-वासी गोप थे।

******

सम भाव

(१) एक पण्डित की कीर्ति सारी अयोध्या में पूर्णमासी की चांदनी बन रही थी। लोगों में उसका आदर सम्मान भी अपार था। एक बार ऐसा हुआ कि उस नगरी के पण्डितों ने ईर्ष्या-वश, उस पर मिथ्या दोष लगाने आरम्भ कर दिये। गली गली में और हाट हाट पर जा कर, वे लोग, उसके अवगुण

वर्णन करते थे परन्तु वह पण्डित किसी के विरूद्ध कुछ भी नहीं कहता था। वह सम भाव में सब सुन लेता था। एक दिन किसी मनुष्य ने उसके कलंकों की कथा अयोध्या नरेश के कानों में जा कही। महाराजा ने उस पण्डित को राज सभा में बुला कर कहा कि आप का आदर राज घराने में भी होता है। आपको उचित है कि आप अपने ऊपर किये गये दोषारोपों का सन्तोष जनक उत्तर देकर हम सब का समाधान कर दें। पण्डित ने गम्भीर भाव से मुस्कराते हुये कहा—राजन् ! जो मैं हूँ और जैसा मैं हूँ, मैं जानता हूँ और अन्तर्यामी पुरुष भी जानता है। इसलिये मेरा अन्तरात्मा सर्वथा सन्तुष्ट है। मेरे अन्तःकरण में असत्य नहीं है, बनावट नहीं है, कपट नहीं है और लोकैषणा भी नहीं है। इसलिये मैं सम हूं। मिथ्या अपवाद की अपवित्र पवन, प्रबल वेग से चल कर भी, मेरे चित सरोवर की समता को भंग नहीं कर सकती। इस कारण मैं मिथ्या-वादियों के साथ वाद-विवाद करना नहीं चाहता। राजा ने दूसरे पक्ष के प्रभाव में आकर उस पण्डित को अपमानित करके राज सभा से निकलवा दिया। उस दिन उसका अपयश, उस सारे नगर में, बादल बनकर बरस रहा था। प्रत्येक नारी नर बड़े कड़े कुवचनों के साथ उसकी कुकीर्ति की कथा कहते फिरते थे। परन्तु वह पण्डित था जो सम भाव से अपने सारे नित्य कर्म करने में लगा हुआ था। किसी तीव्र समालोचक ने भी उसके मधुर मुख पर, उदासीनता की झीनी सी झलक भी कभी नहीं देखी। कुछ काल के पश्चात् उस राजा को अपने विश्वस्त मनुष्यों द्वारा यह ज्ञान हो गया कि वह पण्डित सच्चा है, निर्दोष है और निष्कलंक है। तब उसने उसको राज सभा में आमंत्रित करके बहुत ही सम्मानित करके कहा—पण्डित ! मैं चाहता हूँ कि तेरे विपक्षियों पर मिथ्या दोषारोप का अभियोग चला कर, उनको दण्डित किया जाय परन्तु यह हो तभी सकता है, जब तू स्वयं अभियोग चलाने के पक्ष में खड़ा हो जाये। उसने समभाव में कहा—राजन्! आकाश में शब्द उत्पन्न होकर आकाश में

ही लय हो जाते हैं। अब उनको फिर स्फुरित करने का यत्न मैं क्यों करूं? मेरे मन में समता जैसी पहले थी ऐसी ही अब है। पक्ष विपक्ष की पवन चला कर उसको चंचल बनाना मैं नहीं चाहता। अपनी निर्दोषता की दुन्दुभि बजाना मुझे अभीष्ट नहीं है।

(२) गंगा नदी में पानी चढ़ा हुआ था। लता सहित अनेक वृक्ष उसमें बहते चले आते थे। नाना भांति के पशु, पानी-पूर की पीठ पर, चुप चाप पड़े बहे जाते थे। उस दिन गंगा इतनी उछलती थी कि मानो आज आकाश को चुम्बन करके ही रहेगी। उसके चंचल तरंग, उतावली से दौड़ कर, मुनि कुटियों के भीतर जाते थे और उनको धो कर लौट आते थे। लहरों के लगातार गमनागम से मुनि जन, निज आंगनों में खड़े महा वृक्षों के ऊपर बैठ कर राम-लीला निहार रहे थे। ऐसे समय में एक बहता हुआ बेड़ा मुनियों के सामने से निकलने लगा। उनमें जितने जन थे वे सभी करुणा-जनक आर्त नाद कर रहे थे। मुनियों ने जान लिया कि ये वे ही हैं जो तीन दिन हुए हमारे योगाश्रम को लूटने आये थे। उस समय इन्हों ने यह कहा था कि हम शाही सेना के सैनिक हैं और तुम्हारी गायें लूट लेने को आये हैं। परन्तु वह बेड़ा बहता जाता देखते ही दयावंत मुनि कुमार तत्काल जल में कूद पड़े और पलों में बेड़ा पकड़ कर किनारे पर ले आये। वे सैनिक बड़े आश्चर्य में थे कि तीन दिन की बात है, जब ये हमें तीखे वाणों से बींधते थे और आज हमारे प्राण बचाने में तत्पर हैं। उस समय एक वृद्ध मुनि ने उनको कहा—हम लोग सदा सम भाव में रहते है। केवल कर्तव्य पालन करना ही हमारा काम है। तीन दिन हुए आप हमारे आश्रम में डाकू बन कर आये थे। उस समय जैसे भी हो सके अपनी रक्षा करना हमारा कर्तव्य था। उस काल वही पालन किया था। आज आप हमारे सामने से निस्सहाय और आर्त जन बहते चले जाते थे। आज, ऐसी अवस्था में दया दर्शाना, आर्त का त्राण करना और मरते

मनुष्यों को बचाना ही हमारा कर्तव्य था। मुनि जन सम दृष्टि होते हैं। वे स्वाभाविक मानव कर्म में सम भाव से काम किया करते हैं।

(३) एक साधु से एक सज्जन ने पूछा—महाराज ! सम दृष्टि किसे कहते हैं ? साधु ने उत्तर दिया—सौम्य ! एक तो वह जन सम दृष्टि होता है जो सब में एक सा आत्मा जाने। दुष्ट जनों के बुरे कर्मों को बुरा कहे परन्तु दुष्ट जनों से घृणा न करे। अपने समान सब को समझे। दूसरे—जो जन एक, निरंजन, निराकार, नारायण को सब का ईश्वर माने, वह सम दृष्टि है। तीसरे—जो मनुष्य अपने वैरी को भी रोग में, विपत्ति में सहायता दे वह समदृष्टि है। चौथे—समदृष्टि वह जन है जो दान उपकार करते समय अपने पराये का विचार न करे और जो पक्षपात रहित सत्य कहे। पांचवें—वह समदृष्टि है जो निष्काम भाव से कर्तव्य कर्म करता रहे। छठे—वह समदृष्टि है जो विपत्ति में, बाधा में, दुःख में, वेदना में भगवान् का भरोसा न छोड़े ; रामाश्रय को सर्वोपरि माने। सातवें—वह जन समदृष्टि है जो सब की कल्याण कामना किया करे। ऐसे समदृष्टि जन श्री भगवान् की सम भाव से आराधना करते रहते हैं।

******

मानव जन्म की महत्ता

(१) उत्तर काशी में, एक कन्दरा में एक मुनि टिका हुआ था। वह पूर्ण ज्ञानी और आत्म-दर्शी था। एक बार, एक सज्जन जब उसके दर्शन करके अपने इष्ट स्थान को जाने लगा तो उसको मुनि ने कहा—प्यारे! मेरे पास आकर और नहीं तो मानव जन्म की महत्ता तो अवश्य समझ कर यहां से जाओ। मुनि ने वर्णन किया कि एक बनिया व्यापार करने के लिये देशांतर को गया। वहां वह बारह वर्ष पर्यन्त व्यापार करता रहा। तेरहवें वर्ष जब वह अपने घर में आया तो उस समय उसे ज्ञात हुआ कि उसके सभी सगे सम्बन्धी काल के गाल का ग्रास बन चुके हैं। वही

केवल बचा हुआ है। अपने सारे परिवार का मरण जान कर उसको महा [illegible] कहा—भद्र ! शोक को त्याग दे। उदास न रह! जाग जा और सचेत बन। देख, तेरी गहरी नींद में ही तेरा पारिवारिक खेत, घड़ी पलों की चिड़ियों ने, सारा चुग कर खा लिया। अब तू, पीछे एक दाना बचा पड़ा है। काल की चंचल चूँच, कदाचित् तुझे भी चुन कर चुग जाय तो फिर तू भी पछताता ही रह जायगा। इस कारण अपने मानव जन्म को सार्थक बना। बीता हुआ अवसर हाथ नहीं आया करता। देख, यह मनुष्य जन्म ही सारे विश्व में उत्तम जन्म है। इससे भिन्न सभी जन्म भोग के जन्म कहे गये हैं। कीट, पतंग आदि तो 'जायस्व, म्रियस्व' योनियां है। उनमें निरन्तर उपजना और मरना ही होता रहता है। अनन्त जीवन का लाभ, परमानन्द की प्राप्ति, अपनी सत्ता का जगना और दुःख मात्र की हानि तो मानव जन्म में ही सम्भावित है। मुक्ति मन्दिर का द्वार इसी में खुलता है। सारे मनोरथों के उद्यान इसी में फूलते फलते हैं।

(२) एक उपासक, समुद्र के किनारे, एक शिला पर आसन लगा कर मन ही मन में राम नाम में निमग्न था। समुद्र के छोटे-छोटे अनगिनत तरंग आते थे और उसके चरण धोकर लौट जाते थे, कभी कभी कोई बड़ी लहर भी आकर उसके मस्तक पर जल बिन्दुओं के मोती-बिखेरती हुई उसके सन्मुख साष्टांग नमस्कार करके अति शांत हो जाती थी। ऐसे शोभन समय में एक जिज्ञासु ने उस उपासक को कहा—सज्जन! तू मुझे कोई ऐसा मार्ग बता जिस से मेरा मनुष्य जन्म मंगलमय बन जाय। प्रशांत भाव से उपासक ने कहा—भद्र! यह मनुष्य जन्म अमूल्य वस्तु है। इसका महत्व, पशुओं और पक्षियों की भांति, भोगी जीव बन जाना नहीं है और न ही तितलियों की भांति सज धज कर रहना ही है। इस जन्म का महत्व तो मंगलमय राम नाम का स्मरण करना है, पाप से परित्राण पाना है, पुण्योपार्जन करना है और अपने स्वरूप

को जान जाना है। मनुष्य जन्म ही एक जन्म है जिस में आत्मा काल के चक्कर से निकल सकता है, मृत्यु पर महा विजय लाभ कर सकता है, अपनी शुद्ध सत्ता को जान सकता है, सर्व कर्मों को मिटा सकता है और आनंदमय अविनाशी पद को प्राप्त कर सकता है। सो तू इस जन्म को केवल भोगोपभोग का तुच्छ कीट बन कर न बिता। अपने समय को व्यर्थ कर्म में और अनर्थ कर्म में न लगा। जीवन के एकैक पल को महा मूल्यवान् समझ। ईश्वर की उपासना किया कर और अपने स्वरूप का भी चिन्तन अवश्य करता रह। तेरा जन्म अवश्यमेव मंगलमय हो जायगा।

(३) काशी जी में उपदेश देते समय, एक पण्डित ने कहा—मनुष्य जन्म अति दुर्लभ है। अन्य सारे जन्म अंधकार से घिरे हुए हैं परन्तु ज्ञानमय सूर्य तो यही है। जो मृत्यु सब प्राणियों को मारता रहता है उसको मनुष्य जन्म में ही मारा जा सकता है। मोक्ष तो मनुष्य जन्म में ही मिलता है। ऐसे देव-दुर्लभ जन्म पर नौ दृष्टांत हैं-पहला दृष्टांत देते हुए उसने कहा—एक बार एक घसियारा, घास की पोट सिर पर उठाये नगर की ओर चला आ रहा था। उसके मार्ग में ही एक चिन्तामणि रत्न पड़ा हुआ चमक रहा था। वह घसियारा जब चलता हुआ उस रत्न के समीप आया तो उसको यह बात सूझी कि अंधों की भांति चल कर के देखना चाहिये कि वे कैसे चला करते हैं ? वह अपनी दोनों आंखें बंद किये चलता हुआ, उस स्थान से, आगे निकल गया जहां वह रत्न पड़ा हुआ था। जब उसने आंखें खोलीं तो उसको पीछे से आता हुआ एक और पथिक आ मिला जिसके हाथ में रत्न चमचमा रहा था। पूछने पर जब उस घसियारे ने यह जाना कि इसके हाथ में चिन्तामणि है और इसको मार्ग में पड़ा हुआ वहीं मिला है जहां से मैं आंखें बंद करके आगे निकल आया हूँ तो वह अपने कर्म पर बहुत ही पछताया। उसने अपने आपको धिक्कारते हुये बड़े दुःख से कहा कि यदि मैं आंखें न बंद करता तो यह रत्न मुझ को

मिल जाता, इसकी प्राप्ति से मेरा सारा दरिद्र दूर हो जाता और मेरे ऐश्वर्य का कोई पारावार न रहता। जैसे उसके उस समय के पश्चात्ताप से उसका कुछ भी कार्य सिद्ध नहीं हो सका ऐसे ही जो जन प्रमाद-वश ज्ञान से, भक्ति से, राम भजन से और सुकृत कर्म के करने से आंखें मूंद लेते हैं उनको फिर मानव तन प्राप्त करना महा कठिन हो जाता है।

दूसरे दृष्टांत में पंडित ने कहा—मनुष्य जन्म पाना ऐसा दुर्लभ है जैसे एक अंधे को राजगृह नगर का द्वार मिलना दुर्लभ हो गया था। कहा जाता है कि वह नगर बारह कोस लम्बा था। उसके चहुँ ओर कोट था जिस का एक ही द्वार था। एकदा विशाली नगरी का रहने वाला एक अंधा, भूख का सताया हुआ, राजगृह को इस आशा से चल पड़ा कि वहां दीनों को पुष्कल अन्न प्राप्त हो जाता है। जब वह क्रमशः चलता हुआ कोट की दीवार के पास पहुँच गया तो उसको एक पथिक ने बताया कि कोट की दीवार को हाथ लगा कर चलता चला जा। जब द्वार आ जाय तब वहीं भीतर प्रवेश कर जाना। उसने तथास्तु कह कर दीवार के सहारे चलना आरम्भ कर दिया। चलते-चलते जब द्वार समीप आया तो अचानक उसके सिर में खुजली होने लग गई। उसके एक हाथ में लाठी थी जिस की टेक के बल से वह चलता था और दूसरा हाथ दीवार को लगा कर रखता था कि कहीं द्वार न निकल जाय। उसने उस समय दीवार से लगा हआ हाथ उठा कर सिर खुजलाना आरम्भ कर दिया। ऐसे ही सिर खुजलाता हुआ जब वह द्वार से सौ पांव आगे निकल गया तो उसने फिर दीवार को हाथ लगा लिया। इस प्रकार चलते हुये वह द्वार से कोसों दूर निकल गया। भूख, प्यास और श्रम से वह थक कर बहुत ही निराश हो कर गिर पड़ा। जैसे उस अन्धे को उस समय द्वार का पाना अति दुर्लभ था ऐसे ही मनुष्य जन्म को खो कर, प्राणी को फिर इस जन्म को प्राप्त करना महा दुर्लभ है।

पण्डित ने कहा कि मनुष्य जन्म की महत्ता में तीसरा दृष्टांत एक ब्राह्मण का है। पुरातन काल में अयोध्या नगरी अड़तालीस कोस में बसती थी। उस समय उसमें लाखों मनुष्य निवास करते थे। वहां एक ऐसा भी ब्राह्मण रहता था जो प्रति दिन भिक्षा मांग कर अपना और अपनी पत्नी का पेट पाला करता था। एक बार किसी कारण विशेष से अयोध्या नरेश ने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मण को कहा—विप्र, मैं तुझे वरदान देता हूँ। तू मुझ से जितना चाहे धन-धान्य मांग ले। मैं तुझ को मुँह मांगा धन प्रदान करूँगा। यह सुनकर ब्राह्मण बोला—राजन्, मुझे एक दिन का अवसर दीजिये। मैं अपनी भार्या से सम्मति ले लूं। राजा ने उसको एक दिन का अवसर दे दिया। जब घर पर जा कर उसने अपनी पत्नी से पूछा कि क्या मांगा जाय तो उसने कहा—पतिदेव ! हम तो भिक्षु हैं। हमें धन-सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है ? हम दोनों को प्रति दिन पका-पकाया भोजन मिल जाया करे तो बहुत उत्तम है। सो अयोध्या नरेश से तू यही मांग कि सारे कोसल देश के मनुष्य, बारी बारी, हम दोनों को भोजन करा दिया करें। उसने अगले दिन जा कर राजा से वही वर मांगा। महाराजा ने आज्ञा दे दी—आज से मेरे देश के सभी मनुष्य बारी से इस ब्राह्मण को भोजन कराया करें। पहले दिन महाराजा ने उसको अपने गृह पर, षट्रस्युक्त स्वादुतम उत्तम भोजन जिमाया। राजा की रसोई के बने हुये, नाना व्यंजन युक्त पदार्थ खा कर उस दिन तो उन ब्राह्मण ब्राह्मणी ने अपने अहोभाग्य समझे, अपने को स्वर्गीय सुख सम्पन्न माना परन्तु जब दिनों दिन बारिएं बदलने पर उनको साधारण जनों का रूखा सूखा नीरस अन्न मिलने लगा तो वे लगे राजा की रसोई का अति स्वादीला, सरस भोजन स्मरण करने। परन्तु राजा की बारी का दुबारा आना दुर्लभ जान कर उन्होंने बहुत ही पश्चात्ताप किया।

जैसे लाखों घरों की बारी भुगत कर उनके लिए राजा के घर की बारी का आना दुर्लभ था ऐसे ही एक बार मनुष्य जन्म हार कर फिर

इसको पाना अतीव दुर्लभ है।

दिया। एकदा एक लकड़हारा, लकड़ियों का बोझा सिर पर उठाये, नगर को जा रहा था। मार्ग में, एक सन्त ने उसको कहा—सौम्य ! यह भार मेरी कुटी पर ले चल, मैं तुझ को पूरा दाम दे दूँगा। वह उस बोझ को संत कुटी पर ले गया। उस संत ने उसको पैसे तो दे दिये परन्तु उसकी दीन क्षीण दशा को देख कर, दया वश, उसको एक अति सुन्दर पत्थर भी दे कर कहा—भद्र! यह पारस मणि है इससे तो तू मनों सोना बना सकता है। वह लकड़हारा उस पारस पत्थर को लिये प्रसन्नता पूर्वक अपने घर को गया और अपनी भार्या को उसने वह पत्थर दे दिया। उसकी भार्या ने वह चमकीला और सुन्दर पत्थर अपनी पूनियों की पच्छी में रख छोड़ा। रात बीत गई पर उस लकड़हारे ने अपनी पत्नी को उस पत्थर का कुछ भी भेद न बताया। अगले सवेरे के समय लकड़हारे की भार्या धूप तापने लगी। शीत काल की धूप उसको बड़ी सुखदायक प्रतीत हो रही थी। ऐसे समय में उसके आंगन की नीम पर बैठा हुआ एक कव्वा काँय-काँय करने लग गया। वह लकड़हारिन खीज कर,उसको उड़ाने के लिए इधर-उधर कंकड़ ढूँढ रही थी कि एकाएक उसकी दृष्टि पूनियों की पच्छी में पड़े पत्थर पर जा पड़ी। उसने तत्काल वह पत्थर उठा कर नीम पर कव्वे की ओर बलपूर्वक फैंका। पत्थर नीम पर से होता हुआ समीप के, कीचड़ भरे ताल में जा गिरा। सायं समय जब हुआ तो लकड़हारे ने उसको कहा—प्यारी! वह कल वाला पत्थर तो ले आओ। कुछ सोना तो बना लें। वह बोली—वह तो मैंने काक को उड़ाने में फैंक दिया था और वह उस कीचड़ के ताल में जा गिरा था। वह लकड़हारा मानस वेदना से बहुत ही व्याकुल होकर लगा कीचड़ में पारस पत्थर टटोलने, परन्तु बड़े गहरे कीचड़ में गिरा हुआ रत्न उसको न मिला। ऐसे ही, जो जन, मनुष्य जन्मरूप पारस पत्थर को

केवल हास-विलास के काक उड़ाने के निमित्त दुष्कर्मों के कीचड़ में फैंक देते हैं उन प्रमादियों को यह देव-दुर्लभ दिव्य जन्म फिर मिलना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

पण्डित ने पांचवें दृष्टांत को यों वर्णन किया कि एक नगर में एक महा लोभी बनिया बसता था। वह ऐसा लालची था कि कौड़ी के कारण भी अपना धर्म कर्म बेच देने को समुद्यत हो जाता था। लोग उसको लोभ-लालसा की लता कहा करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि अपने खेत में घूमते समय उस बनिए को, पड़े हुए महा मूल्य पांच रत्न दीख पड़े। उस अज्ञानी ने उनको साधारण पत्थर जानकर वे अपने पुत्रों को खेलने के लिये दे दिये। उन छोटे छोटे बालकों ने उन रत्नों को क्रीड़ा में तोड़ कर उनका चूर्ण कर डाला। जिस समय वे अबोध बालक उन बहुमूल्य रत्नों का चूर्ण करके खेल रहे थे उसी समय उस बनिए का एक जौहरी मित्र उसको मिलने के लिये उसके आंगन में प्रविष्ट हुआ। उसने चूर्ण देखते ही अपने मित्र को कहा—अरे, यह चूर्ण तो अति दुर्लभ रत्नों का है। यह तो तूने घोर अनर्थ कर डाला जो ऐसे रत्नों को बाल क्रीड़ा में चूर-चूर करवा दिया। यह सुन कर वह लोभी बनिया बहुत ही पछताया परन्तु उस समय उसका पश्चात्ताप व्यर्थ था। इसी प्रकार जो मनुष्य मानव जन्म की पांच ज्ञानेन्द्रियों के महा मूल्य रत्नों को केवल विषय वासना के बाल खेल में खो देते हैं, अविवेक और अविचार वश इनका चूर्ण कर डालते हैं वे पीछे पछताया करते हैं। उनको फिर ऐसा रत्न रूप जन्म मिलना दुर्लभ हो जाता है।

पण्डित ने छठा दृष्टान्त देते हुए बताया कि एक नगर में एक कुशल सुवर्णकार रहता था। वह जड़ाई का काम अत्युत्तम जानता था। एक बार उस नगर के राजा ने अपना मुकुट बनवाने के लिए उसको बहु मूल्य मणि मोती और बड़े-बड़े पांच महा हीरे दे कर कहा—इन सब रत्नों को, यथाविधि, मुकुट में ऐसे मण्डित करना कि इसको देखने पर दर्शकों के

मन मोहित हो जायें। सुवर्णकार ने तथास्तु कह कर महाराजा का मुकुट बनाना आरम्भ कर दिया। जब वह बहु मूल्य मणि मोती मण्डित और उत्तम हीरक जड़ित मुकुट बन गया तो सुवर्णकार उसको अपनी दुकान के सन्दूक में बन्द करके रात को प्रसन्नता पूर्वक गाढ़तर निद्रा में सो गया। उसी समय उसकी हाट में पांच चोर घुसे और वही रत्न जड़ित मुकुट लेकर चलते बने। सवेरे जागने पर जब सुवर्णकार ने यह जाना कि महाराजा का मुकुट चुराया गया है तो वह शोक, दुःख और चिन्ता में डूब गया। उसने बहुतेरे उपाय किये परन्तु उसको वह मुकुट न मिला। श्री राम की अदभुत सृष्टि के सुन्दर सिर का, मनुष्य जन्म अमूल्य मुकुट है। इसमें नाना गुणों के मणि मोती शोभा पा रहे हैं और पांच ज्ञानेन्द्रियों के हीरे जड़े हुए हैं। परन्तु जिस प्रमाद, आलस्य की नींद में सोने वाले का यह मुकुट, काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष और निद्रा ये पांच चोर चुरा लेते हैं, जो जन इन पांचों पापों में अपना अमूल्य जन्म गंवा देता है और हरि भक्ति तथा सत्कर्मों से विमुख बना रहता है, उसको यह जन्म फिर प्राप्त करना अतीव दुष्कर हो जाता है।

मनुष्य जन्म की महत्ता पर सातवां दृष्टांत देते हुये पण्डित ने कहा—एक बार चार लकड़हारे लकड़ियां काट लाने के लिये एक बन में गये। रोटियां पकाने के वास्ते आटा उनके पास था। लकड़ियां काट कर और बोझ बांध कर, दोपहर के समय, एक पेड़ के तले चूल्हा चौका लगा कर वे रोटी बनाने लगे। उस समय, उनमें से एक ने कहा—इस वन में बड़े मीठे कंद मूल होते हैं। तुम आग सुलगाओ, इतने में जाकर, मैं कुछ एक कन्द उखाड़ लाता हूँ। उनका शाक बनाकर, हम सब बड़े स्वाद से भोजन खाएँगे। वह घने बन में घुस कर जब एक कंद खोद कर निकालने लगा तो नीचे से एक वस्तु निकल आई जिसको उसने छोटा पतीला ही समझा। वह कुछ एक कंद और पतीला अपने साथियों के

सम्मुख रख कर बोला—देखो, भाग्य कैसा बली है। कंद तो मिलने ही थे परन्तु इनको पकाने के लिए यह पतीला भी मिल गया। उस पतीले में उनको सैकड़ों छोटे-मोटे कंकर से लगे हुए जान पड़े। उन्होंने उतावली से पतीला मांज धो कर चूल्हे पर चढ़ा दिया और लगे उसमें कंद पकाने। जब उनका शाक पक चुका, उसी समय वहां एक तपस्वी मुनि ने आकर कहा—बाबा ! मुझे आग देना। मैं चिल्म पीना चाहता हूँ। लकड़हारा बोला—महात्मा जी ! चौके के भीतर जाकर आप आग ले लीजिये। मुनि ने ज्यों ही चूल्हे में से आग की अंगारी चिमटे से उठाई, उसकी दृष्टि अकस्मात् उस चूल्हे पर धरे पतीले पर जा पड़ी। उस समय उसने उनको बताया—अरे अभागो ! यह पतीला नहीं है। यह तो सुवर्णमय राज मुकुट है। जिनको, इस में चिमटे हुए तुम कंकड़ समझ रहे हो वे मोती हैं, परन्तु तुम ने तो अज्ञानवश वे सभी भस्म कर छोड़े हैं। ये सहस्त्रों रुपयों के मोती तुम ने कोयले कर दिये। मोतियों की महिमा सुन कर वे लकड़हारे बहुत ही पछताये परन्तु उनका पश्चात्ताप विलाप उनको मोती नहीं दे सकता था। उन निर्धनों को फिर ऐसी वस्तु का पाना महा दुर्लभ था। इसी प्रकार जो जन अनेक शुभ सामग्रियों से सजे हुए इस मानव शरीर को भोग विलास के चूल्हे पर चढ़ा कर इसमें अनाचार, अत्याचार और विकार के कंद पकाते रहते हैं उनके शुभावसरों के, शुभ सामग्रियों के, शुभ साधनों के और शुभ कर्मों के संस्कारों के, सभी मोती सड़ जल कर अकाल में ही काले कोयले बन जाते हैं। ऐसे जनों को फिर दैवी सम्पत् युक्त मनुष्य जन्म मिलना महा कठिन हुआ करता है।

पण्डित ने आठवें दृष्टांत में बताया कि एक जाट का बाजरे का खेत पका हुआ था और वह उसकी रखवाली किया करता था। वह घुमानी में कंकड़ डाल कर फैंका करता और उन से चिड़ियाँ, तोते, तिलिहर आदि पंछी उड़ाया करता था। एक दिन हल चलाते हुए उसके एक खेत

प्रेम पथ

(१) सरय के तट पर एक आश्रम था। उसमें भजन पाठ और उपासना आराधना करने वाले ऋषि जन रहते थे। उस आश्रम के मुनि जन अपने जप तप, कथा कीर्तन और ज्ञान ध्यान से सर्वत्र प्रसिद्ध हो रहे थे। उनके भक्ति भाव और प्रेम उपकार की जनता में बड़ी प्रशंसा की जाती थी। ऐसा हुआ कि एक बार मगध देश का राजा, बड़ा भारी दल बल लिये, कोसल देश पर चढ़ आया। एक दिन, सायं समय, उसने वहीं सेना सहित विश्राम किया जहाँ ऋषियों का वह साधनाश्रम था। मागध राजा ने मुनियों को मिलकर उनसे पूछा कि कोसल देश के राजा की सेना कितनी है? उसके प्रधान सेनापति कौन है ? उसके दुर्ग कहाँ और कैसे हैं ? उत्तर में मुनियों ने कहा—मागध ! हम परमात्मा के प्रेम पथ का प्रचार करते हैं। परम पद की परा प्रीति का उपदेश देते हैं। कंद मूल तथा वन्य वस्तुएं खाकर निर्वाह करते हैं, अपना अधिक समय ज्ञान ध्यान में बिताते हैं और वीतराग भाव में रहते हैं। हमें राजनैतिक भेदों का ज्ञान नहीं है। हम तो जिज्ञासुओं को यही बताया करते हैं कि परमात्मा की भक्ति, प्रीति उपार्जन करना और उसके पुत्रों के साथ प्यार से बरतना धर्म का सारासार है परन्तु तूने पूछा है, इस कारण कहना पड़ता है कि कोसल देश का प्रत्येक पुत्र पुत्री अपनी पैतृक भूमि से परम प्यार करता है। इस देश के पुत्र पुत्रियाँ अपने देश के लिए अपने प्राण तक अर्पण करने को तैयार हैं। उनकी नारायण-परायणता, उनका भगवद्-भरोसा, उनका अदम्य वीर भाव और उनकी निर्भयता ही उनका अगम्य तथा अखण्डनीय दुर्ग है। ऐसी सेना और ऐसे दुर्गों के होते हुए, कोसल देश में, मगध देश के राजा की मनःकामना का पूर्ण हो जाना कदापि सम्भव नहीं है। राजन्! यदि तू कोसल को जीतना चाहता है तो श्री राम मंगल नाम की भक्ति कर, सब के सुख मंगल की माला फेर, व्यर्थ में वैर न बढ़ा और प्रेम

तथा मेल मिलाप से काम ले। विश्वास रख, प्रेम की विजय बड़ी प्रबल हुआ करती है। प्रेम का हथियार ऐसा मर्मभेदी प्रहार किया करता है, पर-पक्ष पर विजय तुरन्त प्राप्त हो जाती है। मागध ! श्री राम से डर, पर-देश की प्रजा को पीड़ित करने के अपवित्र उपाय न कर, दूसरे देश को पराधीन करने के पाप में न पड़ और जन हत्या का कारण न बन। राजन्! यह घोर अन्याय और अनर्थ है कि मनुष्य लोभवश दूसरों को दुःख दे, दास बनाए और जनता में अकारण त्रास फैलाए। मुनियों के प्रेम के पावन और प्रबल प्रभाव से वह राजा मगध देश को पिछले पांव लौट गया।

(२) दिल्ली की शाही सेना का एक सेनापति, गंगा महानदी को पार करके उसके तट पर खड़ा होकर, गंगा के हरित भरित वनों को निहार रहा था कि अचानक उसकी दृष्टि, समीप ही स्नान करते हुये एक ब्राह्मण पर जा पड़ी। जब वह ब्राह्मण स्नान कर चुका तो सेनापति ने उसको पास बुलवा कर पूछा—ब्राह्मण! तू नहाते समय मुँह से क्या बोल रहा था? ब्राह्मण ने उत्तर दिया—मैं उस समय श्री राम नाम का पावन पाठ कर रहा था। सेनापति ने कहा—ब्राह्मण! तेरे धर्म में वह बड़ाई नहीं है जो शाही धर्म में पाई जाती है। यदि तू मुक्ति चाहता है तो शाही मत को मान ले, व्यर्थ में राम नाम न रटा कर।

ब्राह्मण ने कहा—भद्र ! मेरा धर्म तो सत्य है, प्रभु का प्रेम है, पर का हित करना है और अपने आत्मा को जानना तथा समझना है। मैं अपने आत्मा को उत्पत्ति और नाश रहित चैतन्यस्वरूप मानता हूँ। मुझ को, अपने आपको नहीं—नास्ति—से बना हुआ मानने में कोई भी युक्ति, कोई भी सचाई और कोई भी भलाई नहीं दीखती। जिसका कारण ही नहीं—नास्ति—है वह कुछ भी नहीं हो सकता। मैं अपनी त्रयकाल अमर सत्ता को बनी हुई वस्तु कैसे मान लूँ ? मैं अपने ऊपर नास्ति को, अभाव को और कारण कार्यवाद को क्यों बैठा लूं? मैं अपने अनन्त जीवन का अपने अनन्त अस्तित्व का, एक

किनारा टूटा हुआ किस युक्ति से समझ जाऊं।

भद्र ! मेरा राम तो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, प्रिय स्वरूप परमेश्वर है। वह सब में सम हैं वह परम पुरुष, परम पद और परम धाम है। मैं उस ब्रह्म को आकाश के एक भाग में रहने वाला, एक मत और एक मनुष्य का पक्षपाती और दुष्ट देव को दमन करने में असमर्थ क्यों मानूँ। मुझे तो शाही मत का ईश्वर पुराणों में वर्णित इन्द्र से किसी प्रकार श्रेष्ठतर नहीं जान पड़ता। मुझ को उसके मानने में कोई बड़ाई नहीं दीखती। भद्र ! मेरे निश्चय की मुक्ति तो आत्मा के शुद्ध स्वरूप का प्रकट करना है, अपने स्वरूप में स्थिति है, परमानन्द की प्राप्ति है, प्रिय स्वरूप परमेश्वर में लयता की उपलब्धि है और प्रकृति के सारे विकारों से मुक्त हो जाना है। मैं ऐसी मुक्ति से विमुख हो कर, स्वर्ग के खान पान को नाना पदार्थों के भोग उपभोग को, अप्सराओं के संयोग रूप रोग को मुक्ति क्योंकर मान लूँ। मुझ को तो भोग संयोग की मुक्ति इस मानव लोक की कल्पना के समान ही जान पड़ती है। प्यारे! राम के प्रेम में तथा राम की भक्ति में मन को रमाने से जो शांति, जो सुख और जो सन्तोष मनुष्य को प्राप्त होता है, वह मतवाद के मोह में कदापि नहीं मिलता। भगवद्भक्ति के पवित्र प्रेम-पथ पर एक बार पद आरोपित करने के पश्चात् फिर पतन का और पाप ताप का भय नहीं रहता। ऐसे उत्तम धर्म को धारण करके मैं मतवाद की मोह माया को अतीव तुच्छ मानता हूँ। उस ब्राह्मण के ऐसे वचन सुनकर वह सेनापति अवाक् हो गया।

(३)कपिलवस्तु नगर के राज घराने में सर्वनाश के दिन आ गये। राजवंश के प्रायः छोटे बड़े सभी जन भिक्षु बनकर देशाटन करने लगे। बंग और बिहार के सभी क्षत्रिय लोग घर बार त्यागने को, कर्तव्य कर्म न करने को और भिक्षु बन जाने को धर्म मानते थे। वे अपने प्रभावों से अन्य मत वालों को चतुर्विध संघ में सम्मिलित हो जाने के लिये बाधित भी किया करते थे।

नवीन मत के आवेश के वश भिक्षु लोग अन्य धर्मियों पर बड़े कड़े और अति कटु कटाक्ष सदा करते रहते थे। उस युग में याजकों का तो बड़ा भारी अपमान किया जाता था। ऐसे काल में एक ब्राह्मण कपिलवस्तु से बाहर, एक उद्यान में आकर ठहर गया और लगा लोगों को उपदेश देने। उसको लोगों ने कहा—विप्र ! अब तू श्रमण बन जा, यजन याजन त्याग दे और श्रुतियों का पाठ न किया कर। अब तेरे धर्म को कोई जन भी नहीं आदर देता। यह सुनकर ब्राह्मण ने कहा—मेरा धर्म तो राम का प्रेम है। इस प्रेम पथ पर मैं सुदृढ़ हूँ। इस पर से मुझे कोई भी चलायमान नहीं कर सकता। मेरा यजन याजन तथा श्रुतियों का पाठ हरि पूजन ही है। मेरा सारा कर्म काण्ड प्रेम रूप राम का पूजोपहार है। मैं शुभ कर्म करके, हरि गीत गा कर श्री राम का ही पूजन किया करता हूँ। हम लोग यज्ञों को रचा कर सत्संग ही लगाया करते हैं जिस से जनता में सत्य का, शुभ का, कर्तव्य कर्म का, मेल मिलाप का, सदाचार का, उत्तमोत्तम विचारों का और सबसे बढ़कर भगवद्भक्ति का प्रचार होता रहता है। ऐसे उत्तम प्रेम-पथ को छोड़कर मैं श्रमणों के पथ पर क्यों चलूँ। श्रमण जन तो बालकों तक को भिक्षु बना कर घोर अनर्थ कर रहे हैं। श्रमण संघ तो पारिवारिक जीवन की प्रेममयी कोमल लता पर कठोर कुठाराघात कर रहा है। इनके कोरे त्याग वैराग्य ने सम्बन्धों के सौन्दर्य को, कर्तव्य के महत्त्व को, गृहस्थ के कर्मों को और परम्परा से चली आती कुल-मर्यादा को सर्वथा नष्ट-भ्रष्ट करने का काम आरम्भ कर रक्खा है। अब कोई किसी की अपेक्षा नहीं करता। पत्नियां रोती रहती हैं, बच्चे पड़े बिलखते है,बड़े-बूढ़े निस्सहाय होते जाते हैं और आश्रित जन दुःखी हो कर रो रहे हैं, परन्तु कर्तव्य-कर्म से विमुख युवक और वयस्क धड़ाधड़ भिक्षु बनते चले जाते हैं। श्रमणों ने तो वीर वंशों को निर्वंश बना देने का मानो बीड़ा उठा रक्खा है, भूमि को निःक्षत्रिय कर देने को ही मानो श्रमण-संघ सुगठित हुआ है। पारिवारिक जीवन के सुन्दर वन को, यह संघ

आज टिड्डी दल बन कर, अपनी कल्पनाओं के शत-शत मुख से चाटता चला जाता है।

प्यारे ! जो जन हरि प्रेमी है, जो जन अपने आपको प्रियरूप मानते हैं और जो परमात्मा को प्रेममय समझते हैं उनको संसार में, सृष्टि में, भूतलाकाश में, जड़जंगम जगत् में, सर्वत्र सुन्दरता ही प्रतीत होती है। वे कर्तव्य कर्मों में कल्याण समझते हैं, उनको सम्बन्ध धर्म के पालन में तप त्याग दीखता है और उन्हें कर्म-योग में ही निर्वाण पद विराजमान जान पड़ता है। भगवदभक्तों को राम प्रेम में, रामानुराग में वह वैराग्य प्राप्त हो जाता है जो भिक्षु तापसों को और किसी भी उपाय से प्राप्त करना असम्भव है। राम रस के रसिक जन, श्रमणों के इस असार संसार से ही निर्वाण पद का सच्चा रस तथा सार निचोड़ लेते हैं। उनको राम की रचना सर्व-सुन्दर, रसवती तथा सारमयी दीख पड़ती है। वे उपासक त्याग का दम्भ न करके अपने सर्व कर्म श्री राम की शांत शरण में समर्पण कर के परम त्यागी बने रहते हैं। उन प्रेम-पथ के पथिकों को, संसार के सभी परिवर्तन श्री राम की रसीली रास के उल्लास और श्री रामेच्छा के विमल विकास ही प्रतीत हुआ करते हैं।

(४) एक आत्म-ज्ञानी, अनुभवी सन्त ने काशी नगरी में चतुर्मास तक रहना स्थिर कर लिया। वह प्रति दिन सत्संग लगाया करता। उसके सत्संग में भक्ति रस की प्रधानता होती थी। एक दिन एक संन्यासी ने उससे पूछा—सन्त जी ! आप का धर्म क्या है ? उसने उत्तर दिया—प्यारे! आत्मा प्रियस्वरूप है। उसी प्रेम सागर के प्रेम कण वासना वायु के साथ मिश्रित होकर बाहर के पदार्थों को, प्रिय रूप बनाते रहते हैं। आत्मा जिस वस्तु में अपने भावों को, अपनी वृत्तियों को, अपनी ममता को, अपने स्नेह सम्बन्धों को, अपनी अनुकूलता के संकल्प को तथा अपने मन को स्थापित कर ले, वही वस्तु प्रिय रूप प्रतीत होने लग जाती है। वास्तव में तो

प्रियस्वरूप वह आत्मा स्वयं ही है और वही प्रेममय अपने आप का तथा पर का ज्ञाता है। मैं आत्मा हूँ इस कारण मेरा धर्म मेरा अपना प्रेममय स्वरूप है। इस अपने प्रेममय तथा ज्ञानमय स्वरूप में मेरी धारणा मेरु शिखर समान अचल तथा सुदृढ़ है। भद्र ! परमेश्वर भी भक्तों ने प्रियस्वरूप ही समझा है। उसी परम प्रेममय प्रभु के संकल्प सूर्य का प्रकाश, यह सृष्टि का सारा सौन्दर्य है। मेरा यही निश्चय है कि जैसे मेरे जीवन की कली, मेरे अपने प्रेम से खिल कर सुन्दर पुष्प बन रही है, इसी प्रकार यह सारी विश्व वाटिका श्री राम के प्रिय संकल्प से हरी-भरी, फूली फली हुई लहलहा रही है। सो मेरा धर्म आत्मा परमात्मा का निश्चय है। ऐसा निश्चय प्रेम से ही प्राप्त होता है। इसलिये आत्मा परमात्मा का प्रेम ही मैं परम धर्म मानता हूँ। इस प्रेम-पथ के उपासक को सारी सृष्टि हरि लीला ही दीखा करती है। वह भगवान् की रचना में भद्रता ही समझा करता है। वह आशा और उमंग से भरा हुआ, परिवर्तनों के कोयलों को हीरे, दुःखों की रेत को स्फटिक, जगत् की हीनता के ताम्र को सुवर्ण, कठोरता के पत्थर को पारस और वैर विरोध के विष को अमृत बना लेता है। वह विवेकी संसार के खारे सागर से ही, पीने योग्य पानी खींच कर तृप्त हो जाता है।

(५) प्रेम का पथ स्वाभाविक है। यह प्राणियों के स्वभाव में निहित है। एक बार दो वीर क्षत्रिय मृगया करने एक संघने वन में गये। वहां उन्होंने बड़े आश्चर्य से देखा कि एक मृगी सीधी सिंह के सम्मुख जा रही है और उसके समीप जाकर निर्भयता से अपने दोनों सींग झुका कर खड़ी हो गई है। सिंह ने लपक कर एक ही झपाटे में उसकी देह काट डाली। उस समय उन दोनों वीरों ने उस सिंह को अपनी गोली का ऐसा लक्ष्य बनाया कि वह एक ही वार की मार से मर गया। जब वे अचेत पड़े सिंह के पास गए तो उन्हों ने जाना कि उस मृगी के साथ चार पांच दिन का

बच्चा था जिस को सिंह से बचाने के लिए वह स्वयं सिंह के सामने हो गई परन्तु अपने नन्हें बच्चे को उसने हनन न होने दिया।

वे दोनों क्षत्रिय वीर हरि प्रेमी थे। उस समय उन्होंने परस्पर कहा—प्रेम कितना स्वाभाविक और बलवान् है कि भीरु मृगी भी अपत्य-प्रेम में इतनी प्रबला और निर्भया हो गई कि सीधी केसरी के सामने जा खड़ी हुई। यदि मनुष्य में भी आत्मा और परमात्मा का पावन प्रेम जग जाय तो वह कितना प्रबल बन जाय, यह जान लेना बहुत ही सरल और सुगम है।

(६) नर्मदा नदी के तीर पर एक छोटा सा ग्राम था। उस ग्राम के समीप ही एक घना वन था। उस वन में सिंह शार्दूल, व्याघ्र, सूअर, हाथी आदि अनेक प्रकार के वनैले पशु रहते थे। एक दिन एक स्त्री अपने एक नन्हे से बच्चे को गोद में लिये नर्मदा पर स्नान करने गई। बच्चे को नदी के तट पर लिटा कर उसने ज्यों ही पानी में प्रवेश किया, तत्काल वन से निकल कर एक चीते ने उसके पुत्र को उठा लिया। बालक का चिल्लाना सुन कर उसने पीछे फिर कर देखा तो चीता बालक को मुंह में लिये वन को दौड़ा जाता उसको दिखाई दिया। मातृ मोह और ममता में मग्न वह, मतवाली सी होकर, उस चीते के पीछे बिजली की भांति दौड़ पड़ी। आगे घना वन आ गया। वहां उस चीते ने ठहर कर उसको घुड़कना आरम्भ कर दिया। परन्तु वह नारी तो पुत्र-प्रेम में ऐसी निमग्न थी कि उस हिंसक जीव से कुछ भी न डरी प्रत्युत वृक्ष का टूटा हुआ एक डाहल उठा कर उसको पटापट पीटने लग गई। चीते के कोमल पेट पर उसकी मार के ऐसे प्रबल प्रहार पड़े कि वह तुरन्त गिर कर अचेत हो गया। उस नारी ने अपने पुत्र को चीते के मुंह से निकाला तो वह उस समय सिसक सिसक कर रो रहा था। माता के मोहक मुखड़े को देखते ही वह तुरंत उसके कलेजे से लिपट गया।

उस सारे दृश्य को देख कर एक ब्राह्मण ने अपने शिष्य को कहा—प्रेम के पथ में बड़ी पवित्रता है। भीरु और अबल प्राणी भी प्रेम

के प्रसाद को प्राप्त करके प्रबल और निर्भय हो जाता है। प्रीति की पावनी वेदी पर मनुष्य अपने प्रियतम प्राणों को भी बलि बना कर चढ़ा देते हैं। यह पवित्र प्रेम, पंडितों ने, पांच प्रकार का कहा है—उनमें से एक तो अपत्य प्रेम है जो माता पिता का पुत्र पुत्री में हुआ करता है। दूसरा—सम्बन्ध सम्बन्धी प्रेम है जो बन्धुओं का बन्धुओं में, संतानों का माता-पिता में, पति-पत्नी का एक दूसरे में और मित्रादिकों में परस्पर पाया जाता है। तीसरा—निश्चय और विश्वास का प्रेम है जो धर्म कर्म में धार्मिक जनों में होता है। चौथा—देश तथा जाति का प्रेम है। पांचवां—आत्मा और परमात्मा का प्रेम है। यही पंचम प्रेम उपासकों को परम पावन पद में पहुँचाता है और यह सर्वोत्तम प्रेम मोक्ष का दाता माना गया है।

(७) मानसरोवर के किनारे बैठा हुआ एक बौद्ध भिक्षु ध्यानावस्थित था। उसका आसन स्थिर था। उसके नेत्र बन्द थे। वह एक प्रतिमा की भांति अविचल मुद्रा में विराजमान हो रहा था। जब वह ध्यान समाप्त करके वहां से चलने लगा तो उसको कैलाश की परिक्रमा करके आता एक संन्यासी मिल गया। वह संन्यासी भी बड़ा सौम्य स्वभाव, सरल प्रकृति, शांत मूर्ति और पवित्र प्रेम का पुतला ही प्रतीत होता था। बौद्ध भिक्षु उससे शिष्ट संलाप करते ही मोहित हो गया। ज्ञान चर्चा करते हुये बौद्ध भिक्षु ने पूछा—संन्यासी जी ! संन्यासियों ने सुबद्धमूल बौद्धवाद को, भारत से, कैसे निकाल दिया था ? संन्यासी ने हंस कर कहा—संन्यासियों ने बौद्धवाद को क्या निकालना था, बौद्धवादों का विरोधी सम्प्रदाय, उस समय, एक और था जिस को उस समय के लोग भक्ति धर्म कहा करते थे। वही वैष्णव सम्प्रदाय था। वे लोग भगवान् विष्णु को प्रिय स्वरूप समझ कर पूजा करते थे। उनके गीतों में, कीर्तनों में, कथनों में और सत्संगों में सरसता तथा मधुरता अधिकतर होती थी जिससे बौद्धवाद का निराशावाद नीरस तथा फीका हो गया। इसी विचार के कुमारिल भट्ट आदि कर्मी लोग

थे, जिन्हों ने अपने बुद्धि बल से बौद्धवादों का बहिष्कार किया था। उपासक लोग प्रेमी और सेवक भी थे। उनके प्रेम प्रचार ने तथा सेवा भाव ने, भारत में, बौद्धमत को प्रभाव रहित बना दिया था। बौद्धवादों को बंग देश के शक्ति मत ने भी बहुत कुछ निस्तेज कर डाला था। शाक्त लोग जब विश्व की धात्री मातृ-शक्ति को मां मां कह कर आराधा करते थे तो उनके मनोमोहक भक्ति-मय माधुर्य ने निरे काल्पनिक बौद्धवाद को असार समान कर के छोड़ा। सच तो यह है कि भक्ति शक्ति के आशावाद के आगे, भक्तों के कर्मयोग के सम्मुख, सेवा भाव के समीप और सब से बढ़ कर प्रेमी उपासकों के प्रेम पथ के सामने शून्यवाद के, विज्ञानवाद के पांव एक बार ऐसे उखड़े कि फिर टिकने ही नहीं पाये।

संन्यासी ने फिर कहा—श्रमण जी ! उस समय के बौद्धवाद में सात दोष थे जिस कारण वह भारत भर से बाहर हो गया। एक तो उस काल के बौद्धों के पास कोई एक धर्म पुस्तक नहीं थी। अर्हन्त लोग जो चाहते थे कहते चले जाते थे। गौतम बुद्ध के नाम से भिक्षुओं ने अनेक वार्ताएँ और वाद रच लिये थे जिन में परस्पर विरोध भी आ गया था। दूसरा दोष, तात्कालिक बौद्धों का त्यागवाद था। वे लोग संसार सुधार का, गृहस्थ धर्म का, सम्बन्ध पालन का, जातीय हित का, देश संरक्षण का और राजा प्रजा के कर्तव्यों का कुछ भी उपदेश नहीं देते थे। इससे लोगों के पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन भ्रष्ट होने लग गये थे, सम्बन्धों के स्नेह सूत्र छीजते जाते थे, सामाजिक संगठन अस्तव्यस्त होता जाता था और जातीय जीवन की ज्योति महा मन्द पड़ गई थी। इससे बौद्धवादी, जनता में, दिनों दिन अप्रिय बनते गए। तीसरा दोष भिक्षु-संघ का बढ़ जाना था। श्रमण लोग अपने प्रभाव से युवकों को, युवतियों को भगा कर, घर छुड़वा कर, झट पट दीक्षा दे देते थे। उनके बन्धु बान्धव रोते चिल्लाते रह जाते परन्तु किसी का कुछ भी बल नहीं चलता

था। बहुतों के बड़े बूढ़े तथा बाल बच्चे निस्सहाय और अनाथ बन जाते थे परन्तु भिक्षु बनाने की रीति में राई रत्ती भर भी रोक नहीं की जाती थी। इससे भी बौद्धवाद में अरोचकता आ गई थी। श्रमणियों के बढ़ जाने से भिक्षु-संघ की जनता में निन्दा भी बहुत होती रहती थी। चौथा दोष, याजकों का अति खण्डन था। याजक जन यजमानों के यजन याजन में वेद के मन्त्रों को गाकर भगवान् का पूजन किया करते थे। ऐसे विष्णु आराधन से लोगों में भक्ति-शक्ति, दोनों की उन्नति होती थी। यज्ञों में प्रधानता सदा ब्राह्मणों की ही बनी रहती थी। श्रमण-संघ इसको सहन न कर सका। श्रमण-संघ क्षत्रियों ने स्थापित किया था। उसमें अधिकांश क्षत्रिय लोग ही सम्मिलित थे। उन्होंने अपने वंशज बल के प्रभाव से मगध देश के राजा द्वारा यज्ञ बन्द करवा दिये और ब्राह्मणों के प्रभाव को निस्तेज कर के छोड़ा। उनके ऐसे कटु कर्मों के कारण और खण्डन के कड़े कटाक्षों से चिढ़ कर शाक्त और वैष्णव लोग बौद्धवाद के विरोध पर खड़े हो गए थे। पांचवां दोष बौद्धवाद में अनात्मवाद था। उसकाल के भिक्षु लोग वाद-प्रिय बहुत थे। वे अपने वादों के ताने बाने में, मकड़ी की भांति, ऐसे उलझे कि आत्मा की स्थापना न कर सके, उसका अस्तित्व न बता पाये। इससे वे वैष्णवों के आत्मवाद के सम्मुख हार गए। बौद्धवाद में छठा दोष अनीश्वर-वाद था। गौतम के उपदेशों में ईश्वर का वर्णन नहीं होता था। इसलिये उसके मत में वह प्रेम और रंग न बसा जो भक्ति धर्म में हुआ करता है। श्रमण-संघ ने अलौकिक कथाएं रच कर गौतम को ईश्वर का पद दिया भी परन्तु चर्म चक्षुओं से दीखने वाले देव में वे वह प्रीति न स्थापित कर सके जो उपासकों की परमेश्वर में होती है। अर्हन्त लोग गौतम बुद्ध से अपने आपको किसी प्रकार भी कम नहीं मानते थे। इन्हीं कारणों से, गौतम के जीवन काल में ही संघ में कलह उत्पन्न हो गई थी और भिक्षु-संघ में वैमनस्य बढ़

गया था। वैष्णवों के ईश्वर-वाद के आगे बौद्धवाद का अनीश्वर-वाद ठहरने न पाया। वैष्णवों के भक्ति भरे भजनों ने, प्रेमपूर्ण पूजा पाठ ने, श्रद्धा सहित कीर्तन-कथन ने और भावनायुक्त उपासना ध्यान ने अनीश्वर-वाद को आकर्षण रहित कर दिया। सातवां दोष, बौद्धवाद का शून्यवाद था। पण्डितों को नाश रूप निर्वाणवाद प्रिय प्रतीत न हुआ। इस कारण, अन्त में भगवान् को प्रिय स्वरूप और आनन्दमय मानने वाले लोग प्रबल हो गए। अस्तिवाद ने नास्तिवाद को तथा शून्यवाद को अन्त में जीत ही लिया।

संन्यासी ने कहा—भिक्षु ! तुझे अपना आप परम प्यारा है, इसके नाश में तुझ को कौन भद्रता प्रतीत होती है ? प्यारे, नाश में न तो भद्रता है और न ही कोई युक्ति ही है। अपने प्रिय स्वरूप को जगाना, पवित्र बनाना ही प्रेम पथ है। यही मोक्ष का मार्ग माना गया है।

(८) हरिद्वार में उपदेश देते हुए एक संत ने सत्संगियों को कहा—प्रेम पथ पर पदार्पण करने वाले प्रेमियों को चाहिए कि वे चार दुष्ट दोषों को त्याग दें—उनमें से एक मदिरापान है। उपासक को इस से बचे रहना उचित है। दूसरा व्यभिचार है। भगवद्भक्तों में यह दुष्ट दोष नहीं होना चाहिये। तीसरा पर पदार्थ अपहरण है। यह कुकर्म भक्ति धर्म में बड़ा बाधक माना गया है। चौथा असत्य दोष है। सत्य के उपासक में मिथ्या भाषण, वचन-भंग, प्रण प्रतिज्ञा को तोड़ना तथा सत्य का लोप कर देना कदापि नहीं होना चाहिये।

प्रेममय परमेश्वर के उपासकों के पथ में पांच विघ्न उपस्थित हो जाया करते हैं जो उनका पथ भ्रष्ट करने का कारण बन जाते हैं। पहला विघ्न संशय है। इस से निश्चय डांवांडोल बना रहता है और धारणा स्थिर नहीं होने पाती। दूसरा विघ्न कुसंग है। कुसंग के संस्कार उपासक को कुव्यसनी और कुमार्गी बना देते हैं। तीसरा विघ्न मतवाद के ग्रन्थ हैं। मत मतांतरों

के ग्रन्थ भी प्रेमी उपासक को संशयशील, भ्रांत और अस्थिर-चित्त बनाया करते हैं। चौथा विघ्न कुतर्क है। कुतर्क करने की प्रवृत्ति से मनुष्य निश्चय-हीन, हठी, दुराग्रही और असत्यवादी बन जाता है। पांचवां विघ्न वाद विवाद है। वादप्रिय मनुष्य को व्यर्थ विवाद करने की, शुष्कवाद चलाने की, स्वपक्ष की मिथ्या खींच-तान की, व्यर्थ तथा मिथ्या वचन बोलने की बहुत बुरी बान पड़ जाती है और उसमें सरलता नहीं रहती।

प्रेमरूप परमेश्वर के उपासक को सप्त साधन प्रति दिन करने चाहिये। प्रथम साधन स्नान, व्यायाम तथा स्वच्छ रहना है। दूसरा पवित्र पाठ करना है। तीसरा साधन सत्संग है। चौथा राम नाम का पतित पावन पुण्यमय जाप है। पांचवां राम-प्रेम का प्रचार है। हरि गीत गा कर प्रेम पूर्ण पदों का पाठ सुना कर तथा हरि चर्चा चला कर दूसरे जनों में श्री राम के पवित्र प्रेम को उत्पन्न करना प्रेम-प्रचार है। छठा साधन उपासकों से, भगवद्भक्तों से प्रीतिपूर्वक बरताव है। सातवां साधन जन-सेवा और सहायता है। ऊपर कहे सात साधन साधकों के लिये स्वर्ग के सोपान हैं, सुख के स्रोत हैं और प्रेम पथ में पूरे सहायक हैं।

प्रेम के उपासक की पहचान चार हैं—एक तो वह भगवद्-भरोसे पर निर्भर करता हो, पूरा विश्वासी हो। दूसरे, सब का हितेच्छुक हो। तीसरे, भक्तिमय प्रेम पदों के पाठ को पढ़ कर अथवा सुन कर गद्गद् हो जाय। हरि यश गाते, सुनते हुए उसके रोमांच हो आय और उसके नयनों से प्रेमाश्रु टपकने लग जायें। चौथे, उसके कथन में, संलाप में, मेल मिलाप में तथा बरताव में सरल प्रेम पाया जाय।

वास्तव में, आत्मा तो अमृत है, सत्य है तथा प्रिय स्वरूप है। इसको वही पथ प्रिय है जो अमृत का है, सत्य का है तथा जिस में प्रेम पाया जाय। आत्मा की तृप्ति तो अनन्त प्रेमामृत को पान कर के होती है, इस कारण यह अपने परम प्रिय स्वरूप को अनंत प्रेममय श्री राम से मिलाना

चाहता है। इसको न तो अपने ज्ञान की, न अपने सुख की, न अपनी शक्ति की, न अपने होने की और न ही अपने प्रेमानन्द की सीमा सन्तोष देती है। यह तो स्वभाव से, नदीवत् इन सब के असीम सागर, श्री राम की ओर ही अनुसरण कर रहा है। इसका उद्देश्य अनंत है। इस की परितृप्ति अनंत प्रेम में है। इसका परम विश्राम, अनंत प्रेम का पद, परम सुख धाम श्री राम है। इस की मुक्ति, परम पावन श्री राम का मंगल मिलाप है।

।। समाप्त।।